हिंदी साहित्य का इतिहास

एम.ए. हिन्दी (पूर्वार्द्ध)

प्रश्न-पत्र : त तीय

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय

रोहतक–124 001

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय सूची

खण्ड-क	**हिंदी साहित्येतिहास के अध्ययन की पूर्व पीठिका**	**5-15**
1.1	इतिहास दर्शन और साहित्सेतिहास	
1.2	हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा, आधारभूत सामग्री और साहित्येतिहास के पुनर्लेखन की समस्याएं	
1.3	हिंदी साहित्य का इतिहासः काल-विभाजन, सीमा निर्धारण और नामकरण	
खण्ड-ख	**हिंदी साहित्य का आदिकाल**	**16-40**
2.1	नामकरण और सीमा	
2.2	परिवेश : ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक	
2.3	वर्गीकरणः सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य, नाम साहित्य, रासो साहित्य	
2.4	आदिकालीन कविता की प्रव त्तियाँ	
2.5	गद्य साहित्य	
2.6	प्रतिनिधि रचनाकार	
खण्ड-ग	**हिंदी साहित्य का भक्तिकाल**	**41-73**
3.1	परिवेश : ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक	
3.2	भक्ति आंदोलन	
3.3	विभिन्न काव्य धाराएं : वैशिष्टय और अवदान	
	3.3.1 संत काव्य धारा : वैशिष्टय और अवदान	
	3.3.2 सूफी काव्य धारा : वैशिष्टय और अवदान	
	3.3.3 राम काव्य धारा : वैशिष्टय और अवदान	
	3.3.4 क ष्ण काव्य धारा : वैशिष्टय और अवदान	
3.4	गद्य साहित्य	
3.5	भक्तिकालीन काव्य की उपलब्धियां	
3.6	प्रतिनिधि साहित्यकार	
खण्ड-घ	**हिंदी साहित्य का रीतिकाल**	**74-91**
4.1	नामकरण	
4.2	परिवेशः ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक	
4.3	दरबारी संस्कृति और लक्षण-ग्रन्थों की परम्परा	
4.4.	रीतिकालीन काव्य धाराएं	
	4.4.1 रीतिबद्ध	
	4.4.2 रीतिसिद्ध	
	4.4.3 रीतिमुक्त	
4.5	रीतिकालीन काव्य की विशेषताएँ	
4.6.	गद्य साहित्य	
4.7.	प्रतिनिधि रचनाकार	
खण्ड-ङ	**आधुनिक काल : हिन्दी काव्य**	**92-299**
लघूत्तरी प्रश्न		**300-236**

एम.ए. (पूर्वार्द्ध)
हिन्दी साहित्य का इतिहास

पूर्णाकः 100
समयः 3 घंटे

प्रश्न-पत्र - त तीय

निर्देशः

1. पूरे पाठ्यक्रम में से दस अति लघु प्रश्न पूछे जाएंगे। परीक्षार्थियों को प्रत्येक प्रश्न का (लगभग 30 से 50 शब्दों में) उत्तर देना होगा। प्रत्येक प्रश्न 2 अंक का होगा। पूरा प्रश्न 20 अंक का होगा।
2. पूरे पाठ्यक्रम से 10 लघूत्तरी प्रश्न पूछे जाएंगे, जिनमें से परीक्षार्थियों को 7 प्रश्नों के (लगभग 100-150 शब्दों में) उत्तर देने होंगे। प्रत्येक प्रश्न 5 अंक का होगा। पूरा प्रश्न 35 अंक का होगा।
3. खंड "अ" और "आ" दोनों खण्डों से कम-से-कम दो-दो और कुल मिलाकर पांच प्रश्न पूछे जाएंगे। परीक्षार्थियों को तीन प्रश्नों के उत्तर देने होगें। जिनमें से प्रत्येक खंड से कम-से-कम एक प्रश्न करना अनिवार्य होगा। प्रत्येक प्रश्न 15 अंक का होगा।

पाठ्य विषय

खण्ड-अ : प्राचीन एवं मध्यकालीन हिंदी साहित्य का इतिहास

1. हिंदी साहित्येतिहास के अध्ययन की पूर्व पीठिका
   - क. इतिहास दर्शन और साहित्येतिहास
   - ख. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा, आधारभूत सामग्री और साहित्येतिहास के पुनर्लेखन की समस्याएं
   - ग. हिंदी साहित्य का इतिहासः काल-विभाजन, सीमा निर्धारण और नामकरण
2. हिंदी साहित्य का आदिकाल
   क. नामकरण और सीमा ख. परिवेश : ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक ग. वर्गीकरणः सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य, नाम साहित्य, रासो साहित्य घ. आदिकालीन कविता की प्रव त्तियाँ ड. गद्य साहित्य च. प्रतिनिधि रचनाकार
3. हिंदी साहित्य का भक्तिकाल
   - क. परिवेश : ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक;
   - ख. भक्ति आंदोलन
   - ख. विभिन्न काव्य धाराएं : वैशिष्टय और अवदान
   - ग. संत काव्य धारा : वैशिष्टय और अवदान　　सूफी काव्य धारा : वैशिष्टय और अवदान
     राम काव्य धारा : वैशिष्टय और अवदान　　क ष्ण काव्य धारा : वैशिष्टय और अवदान
   - घ. गद्य साहित्य; भक्तिकालीन काव्य की उपलब्धियां; प्रतिनिधि साहित्यकार
4. हिंदी साहित्य का रीतिकाल
   क. नामकरण ख. परिवेशः ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक ग. दरबारी संस्कृति और लक्षण-ग्रन्थों की परम्परा घ. विभिन्न काव्य धाराएं; रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध ड. काव्यधाराओं की विशेषताएं च. गद्य साहित्य छ. प्रतिनिधि रचनाकार

खण्ड आः आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास

1. आधुनिक हिंदी साहित्येहिास के अध्ययन की पूर्वपीठिका
   क. परिवेशः ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक ख. 1857 ई० की राज्यक्रांति और पुनर्जागरण
2. भारतेंदु युगः रचनाकार और साहित्यिक विशेषताएं
3. द्विवेदी युगः प्रतिनिधि रचनाकार एवं साहित्यिक विशेषताएं
4. छायावादी काव्यः प्रतिनिधि रचनाकार और साहित्यिक विशेषताएं
5. उत्तर छायावादी काव्य
   - प्रगतिवाद : प्रतिनिधि रचनाकार एवं विशेषताएं
   - प्रयोगवाद : प्रतिनिधि रचनाकार एवं विशेषताएं
   - नयी कविता : प्रतिनिधि रचनाकार एवं विशेषताएं
   - नवगीत : प्रतिनिधि रचनाकार एवं विशेषताएं
   - समकालीन कविता : प्रतिनिधि रचनाकार एवं विशेषताएं
6. हिन्दी गद्य की निम्नलिखित विधाओं का विकास
   कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा, रिपोर्ताज
7. हिंदी आलोचना : उद्भव और विकास
8. दक्खिनी हिंदी साहित्य का संक्षिप्त परिचय
9. उर्दू साहित्य का संक्षिप्त परिचय

2. हिंदी साहित्य का आदिकाल

नामकरण और सीमा

नामकरण

हिंदी साहित्य के इतिहास के विवादास्पद प्रसंगों में एक हिंदी साहित्य के आदिकाल का भी प्रसंग रहा है। हिंदी साहित्य के इतिहास के अनेक विद्वान लेखकों ने इस संबंध में अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं।

हिंदी साहित्य के विधिवत् इतिहास लेखन से पूर्व 'भक्तमाल' 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' 'दो सौ वैष्णव' की वार्ता' आदि कतिपय कविव त संग्रह दो लिखे गए जिनमें काल-विभाजन और नामकरण की खोज की ओर कोई द ष्टि नहीं गई। कुछ विद्वान इसे वीरगाथात्मक रचनाओं की प्रधानता के कारण इसे वीरगाथाकाल कहने के पक्ष में है, लेकिन सिद्धों और नाथों की रचनाएँ इस परिधि में नहीं आ सकती। अतः 'वीरगाथाकाल' न कहकर कुछ ने इसे आदिकाल कहा है, तो किसी ने बीजवपन काल। श ंगार

1. **वीरगाथाकाल**: आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रारम्भिक युग के साहित्य को दो कोटियों-अपभ्रंश और देशभाषा में बाँटा है। उनके मत में सिद्धों और योगियों की रचनाओं का जीवन की स्वाभाविक सरणियों, अनुभूतियों और दशाओं से कोई संबंध नहीं, वे साम्प्रदायिक शिक्षामात्र हैं। अतः शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं आती और जो साहित्य की कोटि में गिनी जा सकी हैं वे कुछ फुटकर रचनाएँ हैं, जिनसे कोई विशेष प्रव त्ति स्पष्ट नहीं होती है। उनके मत में तत्कालीन साहित्यिक रचनाओं में से केवल 'खुसरो की पहेलियाँ', 'विद्यापति पदावली' तथा 'बीसलदेवरासो' को छोड़कर सभी रचनाएँ वीरगाथात्मक हैं। इस युग में राज्याश्रित कवि अपने आश्रयदाता राजा की वीरता का यशोगान तथा उन्हें युद्धों के लिए उकसाने का काम करते थे। इसलिए उन रचनाओं को राजकीय पुस्तकालयों में रखा जाता था। लेकिन बाद में साहित्य संबंधी जो खोज की गई उसके अनुसार शुक्ल ने जिन रचनाओं के आधार पर इस काल का नाम 'वीरगाथाकाल' रखा है, उनमें से अधिकतर बाद की रचनाएँ हैं और कुछ सूचनामात्र हैं। शुक्ल ने जिन बारह रचनाओं के आधार पर विवेच्य काल का नामकरण वीरगाथाकाल किया है, वे हैं-(i) विजयपाल रासो-नल्हसिंह, (ii) हम्मीर रासो-शार्ङ्गधर, (iii) कीर्तिलता-विद्यापति, (iv) कीर्तिपताका-विद्यापति, (v) खुमानरासो-दलपति विजय, (vi) बीसलदेवरासो-नरपति नाल्ह, (vii) प थ्वीराज रासो-चन्दवरदाई, (viii) जयचन्द्र प्रकाश-भट्ट केदार, (ix) जयमंथक-जस-चन्द्रिका-मधुकर, (x) परमाल रासो-जगनिक, (xi) खुसरो की पहेलियाँ और (xii) विद्यापति की पदावली।

   इन रचनाओं में से अधिकतर रचनाएँ अप्रामाणिक एवं सूचना मात्र हैं। खुमानरासो को शुक्ल ने पुराना माना था जबकि मोतीलाल में नारिमा ने इसका रचना काल स० 1730 और 1760 के बीच का माना है। इसी प्रकार से 'बीसलदेव रासो' भी सन्देहास्पद है। शुक्ल ने भी इस ग्रंथ को कोई महत्त्व नहीं दिया।

   'प थ्वीराज रासो' भी अप्रामाणिक रचना है। जगनिक काव्य प्रचलित गीतों के रूप में है, अतः इसे भी सूचना मात्र ही समझना चाहिए। 'हम्मीररासो' तथा भट्ट के द्वारा कृत 'जयचन्द्र प्रकाश' आदि रचनाएँ भी सूचना मात्र है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिन ग्रन्थों के आधार पर इनका नाम 'वीरगाथाकाल' रखा गया, वे या तो सूचना मात्र हैं या बाद में लिखे हुए हैं। दूसरे, शुक्ल ने धार्मिक-साहित्य को उपदेशप्रधान मानकर साहित्य की कोटि में नहीं रखा, किन्तु जिस धार्मिक साहित्य में प्रेरक शक्ति हो और जो रचनाएँ मानव-मन को आन्दोलित करने में समर्थ हो उनका साहित्यिक महत्त्व नकारा नहीं जा सकता। इस द ष्टि से अपभ्रंश की कई रचनाएँ, जो धर्म-भावना से प्रेरित होकर लिखी गई हैं, निस्सन्देह उत्तमकाव्य हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के मत में धार्मिक प्रेरणा या अध्यात्मिक उपदेश को काव्यत्व के लिए बाधक नहीं समझना चाहिए। धार्मिक होने से कोई रचना साहित्यिक कोटि से अलग नहीं की जा सकती। यदि ऐसा मानकर चला जाये तो तुलसी का 'मानस' और जायसी का 'पदमावत' भी साहित्य की सीमा में प्रविष्ट नहीं हो सकेंगे। 'भविष्यत कहा' धार्मिक कथा है, लेकिन इस जैसा सुन्दर काव्य उस युग में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है। संक्षेप में कहा जायेगा कि सभी धार्मिक पुस्तकों को साहित्य के इतिहास में से नहीं हटाया जा सकता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तत्कालीन उपलब्ध सामग्री के आधार पर ही नामकरण किया था। नवीनतम खोजों मे जो ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं, उनकी प्रव त्तियों को भी नामकरण निर्धारित करते समय ध्यान में रखना होगा। मोतीलाल मेनारिया का मत रहा है कि जिन रचनाओं के आधार पर 'वीरगाथाकाल' नाम रखा गया है वे किसी विशेष प्रव त्ति को स्पष्ट नहीं करते, बल्कि चारण-भाट आदि वर्ग विशेष की मनोव त्ति को ही स्पष्ट करते हैं। यदि इनकी रचनाओं के आधार पर किसी काल का नाम 'वीरगाथाकाल' रखा जाए तो राजस्थान में आज भी वीरगाथाकाल ही है, क्योंकि ये लोग आज भी उत्साह से काम कर रहे हैं।

2. **अपभ्रंश कालः** चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और धीरेन्द्र वर्मा ने हिन्दी साहित्य के आदिकाल को 'अपभ्रंश काल' की संज्ञा दी है। आदिकाल के साहित्य में अपभ्रंश भाषा की प्रधानता स्वीकारते हुए उन्होंने इस काल को 'अपभ्रंश काल' कहना अधिक समीचीन समझा है। भाषा के आधार पर साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। साहित्य के किसी भी काल का नामकरण उस काल की साहित्यिक प्रव त्तियों अथवा प्रतिपाद्य विषय के आधार पर उचित समझा जाता है। 'अपभ्रंश काल' यह नाम भ्रामक भी सिद्ध होता है क्योंकि इसमें श्रोता या पाठक का ध्यान हिंदी साहित्य की ओर न जाकर अपभ्रंश साहित्य की ओर आकृष्ट होता है। भाषा-शास्त्र की द ष्टि से भी अपभ्रंश और हिंदी दो अलग-अलग भाषाएं है। इसलिए पुरानी हिंदी को अपभ्रंश कहना भी उचित नहीं है।

3. **संधिकाल और चारण कालः** डा० रामकुमार वर्मा ने हिंदी साहित्य के इस प्रारंभिक काल को 'संधिकाल' और 'चारणकाल' इन दो नामों से अभिहित किया है। उनकी सम्मति में हिंदी भाषा का विकास अपभ्रंश से हुआ है किन्तु अपभ्रंश से एक प थक भाषा के रूप में विकसित होने से पूर्व हिंदी भाषा एक ऐसी स्थिति में भी रही होगी जिसमें वह अपभ्रंश के प्रभावों से सर्वथा मुक्त न हो सकी होगी। अपभ्रंश भाषा के अंत और हिंदी भाषा के आरम्भ की इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए डा० वर्मा ने 'संधिकाल' की कल्पना की है। हिंदी साहित्य के जिस काल को आचार्य शुक्ल ने 'वीरगाथाकाल' कहा है, वहीं पर डा० वर्मा उसे 'चारण काल' कहना उपयुक्त समझते हैं।

4. **सिद्ध सामन्त कालः** विषय वस्तु की द ष्टि से महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ने इस युग के लिए 'सिद्ध सामन्त युग' नाम प्रेषित किया है। प्रस्तुत नामकरण बहुत दूर तक तत्कालीन साहित्यिक प्रव त्ति को स्पष्ट करता है। इस काल के साहित्य में सिद्धों द्वारा लिखा गया धार्मिक साहित्य ही प्रधान है। सामन्तकाल में 'सामन्त' शब्द से उस समय की राजनैतिक स्थिति का पता चलता है और अधिकांश चारण-जाति के कवियों की राजस्तुतिपरक रचनाओं के प्रेरणा स्रोत का भी पता चलता है। लेकिन इस 'सिद्ध सामन्त युग' में सभी धार्मिक और साम्प्रदायिक तथा लौकिक रचनाएँ नहीं आती। राहुल सांस्कृत्यायन अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी को एक ही मानते हैं, साथ ही इस युग की रचनाओं को मराठी, उड़िया, बंगला आदि भाषाओं की सम्मिलित निधि स्वीकार करते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'सिद्ध-सामंत-युग' नाम भी साहित्य के लिए उपयुक्त नाम नहीं है।

5. **बीजवपन कालः** आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इसे बीजवपन काल कहा है। तत्कालीन साहित्य को देखकर यह नाम भी युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उसमें पूर्ववर्ती सभी काव्य रूढ़ियों तथा परम्पराओं का सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है और उसके साथ कुछ नवीन प्रव त्तियों का जन्म हुआ है।

6. **आदिकालः** आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसका नाम 'आदिकाल' सुझाया है। इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है-'वस्तुतः हिन्दी का 'आदिकाल' शब्द एक प्रकार की भ्रामक धारण की स ष्टि करता है और श्रोता के चित्त में यह भाव पैदा करता है कि यह काल कोई आदिम भावापन्न, परम्परा-विनिर्मुक्त, काव्यरूढ़ियों से अछूते साहित्य का काल है, यह बात ठीक नहीं है। यह काल बहुत अधिक परम्परा प्रेमी, रूढ़िग्रस्त और सजग-सचेत कवियों का काल है। वस्तुतः हिंदी साहित्य के आदिकाल के नामकरण का विषय अत्यन्त उलझा हुआ है। जब तक हिंदी की पूर्ण-सीमा निर्धारण नहीं की जाती और जब तक उपलब्ध साहित्य की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता के प्रश्न का समाधान नहीं हो पाता; तब तक किसी निश्चय पर पहुँचना सहज नहीं है। अन्त मे कहा जा सकता है कि किसी निश्चित मत के अभाव में प्रस्तुत काल का नामकरण 'आदिकाल' ही अधिक संगत प्रतीत होता है। यह नाम सर्वाधिक प्रचलित हो गया है।

आदिकाल सीमांकनः प्रस्तुत काल के साहित्य की पूर्वापर सीमा को निर्धारित करने का विचार भी कुछ कम विवादास्पद नहीं है। आचार्य शुक्ल ने इस काल का आरम्भ स० 1050 और अन्त संवत् 1375 (993 से 1318 ई०) माना है। महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ने 8 वीं शती की अपभ्रंशों को पुरानी हिन्दी कह कर अपने सिद्ध सामन्त

युग का आरम्भ इसी काल से मान लिया और इस काल की अपर सीमा 13 वीं शती मानी। डा० ग्रियर्सन ने आदिकाल की अन्तिम सीमा 1400 ई० तक मानी है। मिश्रबंधुओं ने एतदर्थ 1389 ई० का वर्ष स्वीकार किया है। डा० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' इसे 1343 ई० तक ले गये हैं। अधिकांश इतिहासकार शुक्ल जी से सहमत हैं। यह ठीक है कि शुक्ल ने विद्यापति को आदिकाल के अन्तर्गत रखा है, पर विद्यापति का रचना काल 1375 ई० से 1418 ई० के मध्य माना जाता है और इस द ष्टि से आदिकाल की अन्तिम सीमा 1418 ई० निर्धारित की जा सकती है, किन्तु इसमें भी नहीं की। भक्तिकाल में जिन प्रव त्तियों का विकास हुआ, उनकी भूमिका विद्यापति के पूर्व ही पूर्ण हो चुकी थी। अतः विद्यापति को भक्तिकाल में रखकर चौदहवीं शताब्दी के मध्य को आदिकाल की अन्तिम सीमा मानना ही समीचीन होगा। दूसरे शब्दों में, शुक्ल द्वारा निर्धारित 1318 ई० के बाद भी तीन दशाब्द तक आदिकालीन साहित्य सामग्री का प्रसार माना जा सकता है। अतः हिंदी साहित्य के इतिहास के सीमांकन को हम निम्नलिखित रूपों में बांट सकते हैं-

1. आदिकाल सन् 1000-1400 ई०
2. मध्यकाल सन् 1400-1850 ई०
    - (i) पूर्व मध्यकाल (भक्ति साहित्य) सन् 1400-1650 ई०
    - (ii) उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) सन् 1650-1850 ई०
3. आधुनिक काल सन् 1850 से अब तक।
    - (i) हिंदी गद्य (आरम्भ) सन् 1850-1857 ई०
    - (ii) भारतेन्दु काल (पुनर्जागरण) सन् 1857-1900 ई०
    - (iii) द्विवेदी काल-जागरण-सुधारकाल सन् 1900-1918 ई०
4. छायावाद काल सन् 1918-1936 ई०
5. छायावादोत्तर काल सन् 1936 से अब तक
    - (i) प्रगतिवाद सन् 1936 से 1942 ई० तक
    - (ii) प्रयोगवाद नयी कविता सन् 1942-1953 ई०
    - (iii) नवलेखन काल सन् 1953 से अब तक

परिवेशः ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक

प्रत्येक काल के परिवेश की अपनी पहचान होती है। समय परिवर्तन के साथ परिवेश में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। आदिकालीन परिवेश की कुछ प्रमुख विशेषताएँ रेखांकन योग्य हैं-

ऐतिहासिक परिवेश

भारतीय इतिहास का यह युग राजनीतिक द ष्टि से एवं ऐतिहासिक द ष्टि से ग ह-कलह, पराजय एवं अव्यवस्था कार काल है। एक ओर तो इस युग का क्षितिज विदेशी आक्रमणों के भयावह मेघों में आच्छादित रहा और दूसरी ओर रजवाड़ों की पारस्परिक भीतरी कलह घुन की तरह इसे खोखला करती रही। हर्षवर्द्धन की म त्यु के पश्चात् भारत की संगठित सत्ता चूर-चूर हो गई तथा भारत मे एक विशाल मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना हो गई। आठवीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक के भारतीय इतिहास की राजनीतिक परिस्थिति हिन्दू सत्ता के विकास की कहानी है।

ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में दिल्ली में तोमर, अजमेर में चौहान और कन्नौज मे गाहडवालों के शक्तिशाली राज्य थे। 1150 में अजमेर के बीसलदेव चौहान ने तोमरों से दिल्ली से हिमालय तक अपना प्रभुत्व कायम कर लिया। दूसरी तरफ यवन-शक्तियों के आक्रमण का प्रभाव मुख्यतः पश्चिम एवम् मध्यप्रदेश पर ही पड़ा था। इस क्षेत्र की जनता युद्धों तथ अधिकारियों के अत्याचारों से पीड़ित थी। इसी क्षेत्र में हिंदी भाषा का विकास हो रहा था। इस प्रकार इस काल का समस्त हिन्दी साहित्य आक्रमण तथा युद्ध के प्रभावों की मनः स्थिति का परिणाम रहा है।

आदिकालीन युग में चारों तरफ युद्धों का ही बोलबाला था इसलिए जीवन में कहीं भी सन्तुलन तथा शान्ति के दर्शन नहीं होते। इसी समय मोहम्मद गौरी ने भारत जीतने की लालसा से भारत पर अनेक आक्रमण किए। प थ्वीराज चौहान उस समय अजमेर का शक्तिशाली राजा था। परन्तु विदेशी आक्रमण के प्रति विशेष जागरूक नहीं था। परिणामस्वरूप कन्नौज के राजा जयचन्द के षड़यन्त्र मेंऽफँस कर प थ्वीराज चौहान मोहम्मद गौरी के हाथों पराजित हुआ और मारा गया। जयचन्द तथा परमदिदेव आदि शासकों की पास्परिक लड़ाइयाँ अन्तहीन कथाएँ बनती चली गई और अन्त में दोनों का पतन हुआ। दिल्ली में तुर्क सल्तनत की स्थापना हुई और धीरे-धीरे उसका विकास तथा विस्तार होता चला गया। अराजकता, ग ह-कलह, विद्रोह, आक्रमण और युद्ध के वातावरण में यदि एक कवि आध्यात्मिक जीवन की बातें करता था, तो दूसरा मरते-मरते भी जीवन रस भोगना चाहता था और एक कवि ऐसा भी था जो तलवार के गीत गाकर गर्व से जीना चाहता था। यद्यपि इस युग में विरोध करने वाले भी सर्वत्र थे परन्तु फिर भी मुस्लिम ध्वज प्रायः समस्त उत्तरी भारत में फहराने लगा।

आदिकाल के इस युद्ध प्रभावित जीवन में कहीं भी सन्तुलन नहीं था। अराजकता, ग ह-कलह, विद्रोह, आक्रमण और युद्ध के वातावरण में सर्वत्र मारकाट का तांडव फैल चुका था। इसी काल की विचित्र देन है, जिसके फलस्वरूप यदि एक ओर स्त्री-भोग, हठयोग से लेकर आध्यात्मिक पलायन और उपदेशों तक का साहित्य एक ओर लिखा गया, तो दूसरी ओर ईश्वर की लोक-कल्याणकारी सत्ता में विश्वास करने, लड़ते-लड़ते जीने और संसार को सरस बनाने की भावना भी साहित्य रचना के मूल में सन्निहित हुई।

सामाजिक परिवेश

आदिकालीन राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का देश की सामाजिक परिस्थितियों पर भी बहुत गहरा प्रभाव पड़ रहा था। जाति-व्यवस्था गुण और कर्म के आधार पर न होकर वर्ण के आधार पर निरूपित की गयी। एक जाति अनेक उपजातियों में विभक्त हो गई। अल्बरूनी ने कहा है "उन्हें (हिन्दुओं को) इस बात की इच्छा नहीं होती कि जो वस्तु एक बार भ्रष्ट हो गयी है, उसे शुद्ध करके फिर ले लें। उस समय के रूढ़िग्रस्त धर्म के समान समाज भी रूढ़िग्रस्त हो चुका था। नारियाँ भी शौर्य-प्रदर्शन में पुरूषों से कम न थी। जौहर उनके आत्म-बलिदान और शौर्य का प्रतीक था। राजाओं का जीवन विलास भरा था। उनका अधिकांश समय उपपत्नियों के साथ रंग रंलियों मे व्यतीत होता था। राजकुमारों को बचपन से ही राजनीति, तर्कशास्त्र, काव्यशास्त्र, नाटक, गणितशास्त्र एवं कामशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी। नारियों के संबंध में तत्कालीन समाज की धारणा अच्छी नहीं थी। उसे केवल भोग और विलास की सामग्री मात्र समझा गया। हिंदी के कवियों को जनता की इस स्थिति के अनुसार काव्य-रचना की सामग्री जुटानी पड़ी।

जिस युग में धर्म और राजनीति की दुर्दशा हो उसमें उच्च सामाजिकता की आशा नहीं की जा सकती है। जनता शासन तथा धर्म दोनों ओर से निराश्रित होती जा रही थी। जनता भय तथा निरक्षरता के कारण ईश्वर की ओर दौड़ती थी, परन्तु सर्वत्र भ्रम और असहाय की ही स्थिति मिलती थी। जाँति-पाति के बन्धन मजबूत हो चले थे। एक जाति की अनेक उपजातियाँ होने लगी। छुआछूत के नियम भी सख्त हो गए थे। उच्च वर्ग के लोग भोग करने के लिए तथा निम्न वर्ग के लोग जैसे काम करने के लिए ही पैदा हुए थे। नारी तो केवल भोग की वस्तु मात्र रह गई थी। उसे खरीदा और बेचा भी जाने लगा था। सामान्यजन के लिए सुरक्षा व शिक्षा की कोई व्यवस्था ही नहीं थी। सती प्रथा भी उस समय के समाज का एक भयंकर अभिशाप थी। अनेक प्रकार के अन्धविश्वासों ने इस समाज को जकड़ लिया था। उस समय सर्वत्र वीरता और वंश-कुलीनता का बोलबाला था। वीरता और आत्मबलिदान राजपूत की विशेषता थी। स्वयंवर प्रथा उस युग की एक खास पहचान थी। राजपूत द ढ़-प्रतिज्ञे, स्वामिभक्त, ईमानदार तथा कूटनीतिज्ञ और दूरदर्शी थे, परन्तु उनमें भोग-विलास के प्रति भी खूव आसक्ति थी। राजाओं का जीवन भी विलासप्रिय था। न पति वर्ग का अधिकांश समय अन्तपुर में महिषियों, उपपत्तियों तथा रक्षिताओं के साथ रंग-रलियों मे बीतता था। राजा बहुपत्नी थे।

प्रसिद्ध धर्म-शास्त्रीय ग्रंथ 'मिताक्षरा' से तत्कालीन पारिवारिक व्यवस्था का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। परिवार सम्मिलित, पितसत्तात्मक और पित स्थानीय था और उसमें सदस्यों की संख्या पर्याप्त रहती थी। उनके धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक कर्त्तव्य निर्धारित कर दिये जाते थे। स्म तियों मे वर्णित ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य, गान्धर्व, आसुर, पिशाच और राक्षक ये आठ प्रकार के विवाह सैद्धान्तिक द ष्टि से मान्य थे। किन्तु व्यावहारिक द ष्टि से ब्राह्म विवाह का ही अधिक प्रचार था। क्षत्रियों में राक्षक और गांधर्व विवाह अवश्य प्रचलित थे। निम्न वर्णों में आसुर विवाह की प्रथा थी। स्वयंवर की प्रथा राजपूतों तक ही

सीमित रह गयी थी। मुसलमानी आक्रमणों के पश्चात् बाल-विवाह भी प्रचलित हो गया था। विलासिता की प्रव त्ति बढ़ने और यवन, शक, हूणादि के जिनमें स्त्री का बहुत ऊँचा स्थान नहीं था, सम्पर्क में आने के कारण बाल-विवाह की प्रथा को बल मिला। विधवा-विवाह करना निषेध था। समाज के विभिन्न वर्गों के विविध प्रकार के उत्सवों और वस्त्राभूषणों के प्रति प्रेम प्रचलित था। आखेट, मल्ल-युद्ध, घुड़सवारी, ध्रुत-क्रीड़ा, संगीत, न त्य आदि मनोरंजन के साधन थे और कवियों का विशेष आदर था। क्षत्रियों में मदिरा-पान, भाँग और अफीम खाने का प्रचलन था। इस काल का जीवन-क्रम उस समय की वस्तु और मूर्ति-कलाओं मे भली-भाँति प्रतिबिम्बित होता है। जैन मत के गिरिनार तथा आबू, वैष्णव एवं शाक्तों के खजुराहों, भुवनेश्वर और पुरी के मन्दिरों की अद्‌भुत कला के माध्यम से तत्कालीन जीवन की विविधतापूर्वक प्रेरणा स्पष्ट हो जाती है।

सांस्कृतिक परिवेश

हिंदी साहित्य में आदिकाल का आरम्भ उस समय हुआ जब भारतीय संस्कृति अपने चरमोत्कर्ष पर थी। आदिकाल हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों के परस्पर मिलन का काल है। हर्षवर्द्धन के समय हिन्दू संस्कृति प्रत्येक क्षेत्र मे उन्नति के शिखर पर थी। लोगों के आपसी भेद-भाव समाप्त हो गए थे तथा स्वाधीनता व देशभक्ति की भावना को प्रोत्साहन मिल रहा था। संगीत, चित्रमूर्ति एवं भवन-निर्माण इत्यादि कलाओं में ज्यादा रूचि दिखाई देने लगी थी, विशेष रूप से मन्दिरों व मस्जिदों का निर्माण धार्मिक सद्‌भावना का घोतक था। भुवनेश्वर, पुरी, खजुराहों, सोमनाथ, बेलोर काँची, तंजौर आदि स्थानों पर अनेक भव्य मन्दिरों का निर्माण आदिकाल के आरम्भ के समय ही बनाए गए थे। आबू का जैन मन्दिर ग्यारहवीं शताब्दी की महत्त्वपूर्ण देन है जो कि भारतीय स्थापत्य का बेमिसाल नमूना है। अरब इतिहासकार अलबरूनी तथा महमूद गजनवी इन मन्दिरों की भव्यता, विशालता तथा भारतीय कलाओं में धार्मिक भावनाओं की ऐसी व्यापक अभिव्यक्ति को देखकर चकित रह गए थे। किन्तु देश के भाग्य की विड़म्बना यह रही है कि शताब्दियों से श्रेष्ठता की साधना में तल्लीन महमूद गजनवी जैसे आक्रान्ताओं की विषयाकांक्षा का यह कोप-भाजन बन गया और शताब्दियों तक उस कोप से मुक्ति नहीं मिली।

अरब के देशों में आठवीं-नवीं शताब्दी में सूफी मत का उदय हो चुका था किन्तु आदिकाल के अन्त तक भी उसके उदार स्वरूप का प्रवेश तक न हो सका। क्योंकि भारत में जो आक्रान्ता आए, वे उदार भावनाओं के समर्थक नहीं थे। इसलिए इस्लाम संस्कृति का पोषक तत्त्व न बन सका। परिणामस्वरूप दो संस्कृतियाँ एक-दूसरे के सामने मानसिक तनाव की स्थिति में खड़ी एक-दूसरे को शंका की द ष्टि से देखती रहीं।

आदिकाल में भारतीय संस्कृति का जो स्वरूप मिलता है, वह परम्परागत गौरव से रहित तथा मुस्लिम संस्कृति के गहरे प्रभाव से निर्मित है। इस काल में हिन्दू-संस्कृति धीरे-धीरे मुस्लिम संस्कृति से प्रभावित होने लगी। भारत के उत्सव, मेलों, त्यौहारों, वेश-भूषा विवाह तथा मनोरंजन आदि पर मुस्लिम रंग मिलने लगा। यहाँ के गायन, वादन तथा न त्य पर मुस्लिम छाप स्पष्ट है। भारतीय संगीत में सांरगी, तबला तथा अलगोजा जैसे वाधों का समावेश इसका स्पष्ट प्रमाण है। चित्रकला के क्षेत्र में इस काल में जो थोड़ा-बहुत कार्य हुआ, उस पर भी मुस्लिम प्रभाव पाया जाता है। मूर्तिकला को छोड़कर अन्य भारतीय ललित कलाओं में मुस्लिम कला की कलम गहरे रूप में लगी।

साहित्यिक परिवेश

यह युग पारस्परिक कलह एवं बाह्य संघर्षो का युग था पर संस्कृत साहित्य की रचना अबाध होती रही और ज्योतिष, दर्शन एवं स्म ति आदि विषयों पर टीकाएँ लिखी जाती रहीं। डा० रामगोपाल शर्मा ने लिखा है, कि इस काल में साहित्य-रचना की तीन धारायें बह रही थी। प्रथम संस्कृत साहित्य की थी, जो एक परम्परा के साथ विकसित होती जा रही थी। दूसरी धारा का साहित्य प्राकृत एवं अपभ्रंश में लिखा जा रहा था। तीसरी धारा हिन्दी भाषा में लिखे जाने वाले साहित्य की थी। आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, कुन्तक, क्षेमेन्द्र, भोजदेव, राजशेखर, तथा जयदेव इसी युग की देन हैं। प्राकृत तथा अपभ्रंश के कवि धर्म-प्रचार में लगे हुए थे, साहित्य तत्त्व उनकी रचनाओं का सहायक अंग था। हिंदी इस काल की ऐसी भाषा थी जिसमें तत्कालीन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में मुखर हो रही थी।

ग्यारहवीं शती उत्तरार्द्ध साहित्य की द ष्टि से विकासशील था। कर्ण के दरबार में अपभ्रंश कवियों का सम्मान था। जैन-भण्डारों में सुरक्षित ग्रन्थों की भाषा परिनिष्ठित अपभ्रंश के निकट की है। उदाहरणार्थ, 'प्राकृत पैंगलम्' की कई कविताओं में कर्ण की प्रशंसा की गई है। ये कविताएं अपभ्रंश की हैं जो हिंदी के चारण कवियों की भाषा का पूर्णरूप है। इन कविताओं की भाषा

सुथरी एवं साफ है। इस काल में दो श्रेणियों की रचनाएँ अपभ्रंश और देश्यामिश्रित रचनाएँ मिलती हैं। वे इस युग की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक अवस्था के अनुरूप ही है।

इस काल में व्रजयानी और सहजयानी सिद्धों, नांथपंथी योगियों, जैनधर्म के अनुयायी संत एवं मुनियों की रचनाएँ धार्मिक उपदेशपूर्ण शैली में मिलती हैं। वीरता तथा श्र ंगार का चित्रण करने वाले चारणों, भाटों आदि की रचनाएँ भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं।

वर्गीकरणः सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य, नाथ साहित्य, रासो साहित्य

सिद्ध साहित्य

बौद्धमत को मानने वाले ईश्वर की भक्ति का विरोध करते रहे, लेकिन धीरे-धीरे बुद्ध को भगवान के रूप में पूजने लगे। इस धर्म मे जब तान्त्रिक सिद्धों का प्रभाव बहुत बढ़ गया, तो यह धर्म अपने वास्तविक रूप और दिशा से एकदम बदल गया। आठवीं शताब्दी मे तान्त्रिक सिद्धों का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया था। इन्होंने बौद्ध धर्म के त्याग और संयम के स्थान पर भोग विलास को ही जीवन का लक्ष्य मान लिया। शराब पीना और नीच वर्ग की स्त्रियों को योगिनी कहकर उनसे भोग करना आवश्यक समझा जाने लगा। मांस, मत्स्य, मदिरा, मैथुन और मुद्रा, इन पाँच मकारों का सेवन इनकी साधना का प्रमुख अंग था। सिद्धों के चमत्कारों का नारी-समाज पर इतना प्रभाव पड़ा कि स्त्रियाँ लोक-लाज, कुल मर्यादा को छोड़कर विपरीत दिशा में जाने लगी। धर्म के नाम पर समाज में वासना अबाध गति से फूट कर बाहर निकल पड़ी। इन क्रियाओं का प्रयोग भी निर्वाण-प्राप्ति समझा जाने लगा। मन की निर्विकार और निश्चल स्थितियों के लिए 'महासुख' और 'सहजयान' की प्रधानता दी जाने लगी। ईश्वर से अद्वैत सम्बन्ध जोड़ने के लिए सिद्धि के लिए 'सरहप्पा' नाम के सिद्ध ने लिखा है कि 'खाते-पीते' सुख से रमण करते हुए ही जीवन व्यतीत करो।'

इन अनाचारी और वाममार्गी सिद्धों के मार्ग में पण्डित लोग और उनके शास्त्र बाधक थे, इसलिए अपने चेलों और चेलियों को ये उनके विरूद्ध शिक्षा देते थे। ये लोग 'निर्वाण साधना' या 'महासुख' का वर्णन बड़ी अश्लील वाणी में कर गए हैं। अपनी इस 'महासुख' अवस्था को ये 'समरस' अवस्था भी कहते थे और अपनी खुली भाषा में आध्यात्मिक पुट देकर उसकी व्याख्या करते थे। इन सहजमानी सिद्धों की संख्या 84 मानी गई। इनमें कुछ संस्कृत के भी अच्छे विद्वान थे। सरहप्पा, शबरप्पा, लुइप्पा, होम्पिप्पा और कण्हप्पा आदि सिद्ध इनमें उल्लेखनीय हैं।

साहित्यिक योगदान की द ष्टि से सिद्धों का साहित्य दोहा या दूहा नामक मुक्तक रूप में मिलता है। सिद्धों की नीति, रीति, श्र ंगार एवं धर्म संबंधी मान्यताएँ हिंदी के आदि आदिकाल को तो प्रभावित नहीं करती पर संत साहित्य को अवश्य ही प्रभावित करती है, जिसे सिद्धों का योगदान माना जा सकता है।

कुछ सिद्धों का साहित्यिक परिचय

1. **सरहप्पाः** सिद्धों में सबसे अधिक प्रसिद्ध तो 'सरहप्पा' (सरोज वज्र) ही माने जाते हैं जिनका समय संवत् 690 वि० स्वीकार किया जाता है। 'सरहप्पा' की भाषा को 'संध्या भाषा' माना गया है जो कुछ स्पष्ट तथा कुछ अस्पष्ट होने के करण तथा पुरानी हिंदी तथा अपभ्रंश के बीच की होने के कारण भी संध्या भाषा कही गई है। सरहप्पा ने पंडितों को फटकारते हुए तथा अन्तः साधना पर जोर देते हुए लिखा है-

   "पंडिअ सअल सत्त बक्खाण्इ। देहहि बुद्ध बसंत न जाणइ।
   अमणागमण ण तेन विखंडिअ। तोविणिलज्ज मणइ हउँ पंडिअ।"

   - सरहप्पा

   अर्थात पंडित सकल तत्त्वों की व्याख्या करता है परन्तु वह यह नहीं जानता कि बुद्ध तत्त्व (ज्ञान) तो शरीर में रहता है। वह पंडित जीवन मरण से मुक्ति पाने में असमर्थ है फिर भी वह निर्लज्ज अपने को पंडित कहता है। इस दोहे का जो भावार्थ है वैसी ही फटकार कबीरदास भी पंडितों को सुनाते है। सरहप्पा का एक और दोहा शरीर में ही वह स्थान बताता है जो मन का विश्राम स्थल है।

"जहि मन पवन न संचरइ, रवि ससि नाहि पवेस।
तहि बट चित्त विस्राम करू, सरहे कहिअ उवेस।।"

- सरहप्पा

अर्थात जिस मन में पवन संचारित नहीं होती और जहाँ रवि तथा शशि भी प्रवेश नहीं पा सकते, वहाँ बैठकर चित्त विश्राम करता है। सरहप्पा यही उपदेश देता है।

2. **लूहिया (संवत् 830 के लगभग)**: सिद्ध लूइया के 'चर्यागीत' तथा दोहों में भी संध्या भाषा का प्रयोग हुआ है। भाव की द ष्टि से बौद्ध धर्म की मान्यताओं को ही अपने स्वार्थहित घुमा-फिरा कर बताया गया है। जैसे

"काआ तरूवर पंच बिड़ाल। चंचल चीए पइठो काल।

दिट करिअ महा सुइ परिणाम। लूइ भणइ गुरू पुच्छिअ जाण।।"

- लूइया

इस दोहे का रहस्यात्मक अर्थ है। इस प्रकार की रहस्यात्मक प्रव त्ति परवर्ती सन्त-साहित्य को प्रभावित करती है। इन पंक्तियों को सरलार्थ है कि काया रूपी व क्ष को पंच बिडाल नष्ट कर रहे हैं। चंचल चित्त म त्यु की ओर ले जाने वाला है। इसका परिणाम महाशून्य है। लूइया कहता है कि इसका रहस्य गुरू से जानिए।

3. **कण्हप्पा**: (क ष्णापाद संवत् 900 वि० के उपरान्त) सिद्ध साहित्य में कण्हपा की बानी को भी पर्याप्त महत्त्व प्राप्त है। कण्हपा द्वारा प्रयुक्त सन्ध्या भाषा का उदाहरण इस प्रकार है-

"एक्क णा किज्जइ मंत्र शा तंत्र। णिअ घरणी लइ केलि करंत।
णिअ घरघरणी जाव शा मज्जइ। ताव कि पंचवर्ष विहरिज्जइ।।"

अर्थात् एक व्यक्ति मन्त्र-तन्त्र का जाप न करके नित्य अपनी स्त्री के साथ क्रीड़ा करता रहता है। जब तक घरणी रूप घर की नित्य स्वच्छता नहीं की जाती तब तक पंच विहारों में ही घूमता रहता है। इसका भाव नित्य स्त्री-सेवन को संकेतित करता है। वज्रयानियों की सिद्ध मंडली योग एवं मन्त्र-तन्त्र साधना के लिए मद्य तथा स्त्री (डोमिनी, रजकी आदि) का सेवन आवश्यक बताती रही, इसीलिए सिद्ध कण्हप्पा ने डोमिनी के साथ संभोग क्रीड़ा करने के लिए कुछ गीत गाए, जिन में से एक इस प्रकार से है।

"आलो डोंबि! तोए सम करिब म सांग।
निधिण कण्ह कपाली जोइ लाग।।"
× × × ×
"हालों डोंबी! तो पुछमि सद भावे।
आइससि जसि डोंवी का हरि नावे।।"
- कण्हप्पा

सिद्ध साहित्य का योगदान

1. भाषा के विकास की द ष्टि से सिद्धों द्वारा प्रस्तुत अपभ्रंश भाषा ने हिंदी को महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। क्योंकि 'संध्याभाषा' की शब्दावली से बहुत से शब्द-रूप कबीर आदि सतों की बानियों में प्रयुक्त किए गये हैं।
2. शैली की द ष्टि से भी सिद्ध साहित्य के मुक्तक काव्य से दूहा यह दोहा, पद, चर्चा गीत तथा रहस्यात्मक उक्तियों से हिंदी में दोहा पद तथा गीति काव्य रूपों का प्रयोग, मैथिल-कोकिल विद्यापति तथा संतों ने खूब किया है।
3. भाव की द ष्टि से भी सिद्धों की बोलियों ने रागात्मक व त्ति का विकास करके श ंगारी भाव का सन्देश दिया है।
4. दार्शनिक अथवा रहस्यात्मक द ष्टि से सिद्ध-साहित्य ने शंकर के अद्वैतवाद तथा बौद्ध धर्म के शून्यवाद को मिलाकर शरीर में सारी स ष्टि को बताकर उसका उपभोग करने की प्रव त्ति जगाई।
5. सिद्धों का प्रभाव वीर-गाथाओं पर तो नगण्य है परन्तु श ंगारी भाव का प्रभाव स्पष्ट रूप से इन पर देखा जा सकता है। आदिकालीन कवि विद्यापति पर यह प्रभाव स्पष्ट रहा है।

6. सिद्ध-साहित्य ने संत-साहित्य को विशेषतः कबीर, दादू तथा रविदास आदि कवियों को रहस्यवाद के क्षेत्र में तथा उलट-बांसियों के क्षेत्र में बहुत प्रभावित किया है।

जैन साहित्य

भगवान महावीर का जैन साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भगवान महावीर ने अपने धर्म का प्रचार लोकभाषा के माध्यम से किया। पहले जैनधर्म का प्रचार एवं प्रसार उत्तरी भारत में अधिकाधिक रूप से फैला। गुजरात मे इसकी प्रधानता 8 वीं शताब्दी से 13 वीं शताब्दी तक बनी रही। वहाँ के चालुक्य, राष्ट्रकूट और सोलंकी राजाओं पर इसका पर्याप्त प्रभाव रहा है।

भगवान् महावीर का जैनधर्म हिन्दू के सदाचारों के अधिक समीप है। जैन धर्म का ईश्वर स ष्टिनायमक नहीं है। वह चित् एवं आनन्द का स्रोत है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी साधना और पौरूष से परमात्मा का रूप धारण कर सकता है। इस धर्म की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसमें ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह का विशेष महत्त्व है। प्रारम्भिक जैन साहित्य में दोहा-चौपाई पद्धति पर चरित-काव्य या आख्यानक काव्य का निर्माण हुआ। यही परम्परा आगे चलकर सूफी कवियों द्वारा ग्रहण कर ली गई। डा० वार्ष्णेय ने लिखा है, "जैनधर्म की दोहा-चौपाई पद्धति आगे चलकर सूफी कवियों, तुलसी आदि द्वारा अपनाई गई। इन प्रारंभिक रचनाओं के आधार पर ही पुरानी हिंदी का जन्म और पीछे खींच ले जाया जाता है।"

जैन आचार्यों ने प्राकृत के अतिरिक्त अपभ्रंश में प्रचुर रचनाएँ लिखीं। इनका साहित्य मूलतः धर्म-प्रचार का साहित्य है, किन्तु साहित्यिक सौष्ठव के अंश पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं। तत्कालीन व्याकरणादि ग्रंथों में इस साहित्य के उद्धरण मिलते हैं। स्वयंभू, पुष्पदंत, घनपाल जैसे जैन कवियों ने हिन्दुओं की रामायण और महाभारत की कथाओं के राम और कृष्ण के चरित्रों को अपने धार्मिक सिद्धान्तों और विश्वासों के अनुरूप अंकित किया है। इन पौराणिक कथाओं के अतिरिक्त जैन तीर्थकारों एवं महापुरूषों के चरित्र लिखे गये तथा लोक-प्रचलित प्रसिद्ध नैतिकतावादी आख्यान भी जैन धर्म के रंग में रंग कर प्रस्तुत किये गये हैं। जैन-साहित्य में शान्तरस की प्रधानता रही।

साहित्य को जैन-मुनियों का योगदान

हिंदी साहित्य एवं भाषा को जैन आचार्यो ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। अपभ्रंश भाषा को जैन-साहित्य ने न केवल भाषा-विकास की द ष्टि से ही योगदान दिया है, बल्कि भावों, विचारों, जीवन-दर्शन संबंधी भी कुछ ऐसा योगदान दिया है जिससे आदिकालीन हिंदी के रासो ग्रंथों तथा चरित-काव्यों पर विशेष प्रभाव तो काव्य रूप की द ष्टि से पड़ा, साथ ही जैनियों के जीवन-दर्शन ने भी संतों को अन्तर्मुखी प्रव त्ति की ओर प्रव त्त किया। जैनाचार्यों की हिंदी भाषा को देन इस प्रकार रही है-

1. **आध्यात्मिक दर्शन संबंधी देन**: जैन मुनियों तथा आचार्यों ने अपनी रचनाओं में आत्मा, परमात्मा, जीव, ब्रह्म, जगत, माया, समाधि तथा मोक्ष आदि का विवेचन किया जिसका प्रभाव परवर्ती भक्ति-साहित्य पर पड़ा। जैनियों ने सिद्धान्त रूप में यह बताया है कि जीवात्मा तथा परमात्मा में तात्विक अन्तर नहीं केवल गुणात्मक अन्तर है। जो भेद आत्मा और परमात्मा में है वह माया के कारण ही है, ऐसी ही मान्यताएं ज्ञानाश्रयी संत-साहित्य की भी हैं।

2. **वर्ण विषय संबंधी योगदान**: ब्रह्म के विषय में जैन-साहित्य की मान्यता है कि वह ब्रह्म व्यापक है, अनिर्वचनीय, अनादि, अनन्त तथा निरंजन है। यही भावना कबीर आदि संतों की भी रही है। कबीर का रहस्यवाद भी इसी अन्तर्मुखी प्रव त्ति का सूचक है। ब्रह्म तो योगियों के हृदय में रमता है। रमण करने के कारण ब्रह्म को राम भी कहा है। जैन-साहित्य में कर्म संबंधी यह मान्यता है कि समाधि की अवस्था में सभी कर्म विनष्ट हो जाते हैं। इसलिए जैनियों ने समाधि द्वारा कर्म-फल की मुक्ति से निर्वाण पद की प्राप्ति बताई है। जैन मुनियों ने प्रयोगात्मक मुक्ति प्राप्त करने के साधन बताते हुए ग हस्थ धर्म के त्याग की बात कही है। कर्मों के कारण जीवात्मा बन्धनों से मुक्त केवल समाधि अवस्था मे ही हो सकता है। समाधि कष्टसाध्य है इसलिए वह सुख में बाधक है। विषयों के भोग तथा त ष्णादि से समाधि या मुक्ति नहीं मिल सकती। जैन मुनियों में मुनि रामसिंह ने कहा है-

"मुंडिय मुंडिय मुंडिय।
सिर मुंडिय चित्त ण मुंडिया।
चित्तहउ मुंडिय जि कियहु
संसार खंड णु तिकियउ ।।"

अर्थात अरे, तुम अपना सिर तथा दाढ़ी-मूँछ तो मुँडवाते हो, परन्तु अपने मन को काबू में नहीं करते। जो अपने चित्त को मुँडता है, अर्थात् मन पर काबू कर लेता है, उसे संसार नहीं मिटा सकता।

इसी प्रकार की मान्यता कबीरदास की भी रही है जब वह कहते हैं-

"दाढ़ी मूंछ मुंडाय कै, हुआ जो घोटम घोट।
मन को क्यों नहिं मुंडिये जामें भरिया खोट।।"

अर्थात् अरे भोले मनुष्य, तू दाढ़ी, मूँछ तथा सिर मुंडा कर घोटम घोट तो हो गया परन्तु इसमे कोई लाभ नहीं। तू अपने मन को क्यों नहीं मुंडता (काबू करता) तेरे इस मन में ही खोट भरे हुए हैं।

3. **जैन-साहित्य का काव्य रूपः** जैन आचार्यों ने अधिकांश रूप में चरित-काव्यों की रचना की है। इन चरितकाव्यों को लोककथाओं के रूप में ढाला गया है। इसी काव्यरूप ने मध्यकालीन महाकाव्यों को प्रभावित किया है। तुलसी का 'रामचरितमानस' निश्चित रूप से चरित काव्यों की परम्परा का विकसित रूप है। स्वयंभू द्वारा रचित 'पउम चरिउ' से तुलसी तथा जायसी दोनों ही प्रभावित हुए है।

4. **जैन-साहित्य की भाषा एवं वर्णन-शैलीः** जैनाचार्यों ने चरित-काव्यों में दोहा, छप्पयों तथा चौपाइयों की छन्दोबद्ध वर्णन-शैली को अपनाया और पच्चीस चौपाइयों के पश्चात् एक दोहा लिखने की शैली अपनाई। 'रामचरित मानस' पर भी इसी वर्णन शैली का प्रभाव देखा जा सकता है। प्रकृति चित्रण, वर्षा, पशु-पक्षी आदि का वर्णन भी जैन मुनियों ने अपने महाकाव्यों तथा खंडकाव्यों में किया था जिसका प्रभाव हिंदी परवर्ती महाकाव्यों तथा खण्ड काव्यों पर भी देखा जा सकता है। अलंकारों की द ष्टि से भी जैन साहित्य ने हिंदी भाषा के अलंकार विधान को योगदान दिया है।

भाषा प्रयोगिक तौर पर तो जैन-आचार्यो का अपभ्रंश साहित्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ही, क्योंकि जब हिंदी का कोई भाषा वैज्ञानिक व्यावहारिक रूप से शब्दों के किसी रूप का विकास अन्वेषित करना चाहता है तो उसे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा पुरानी हिंदी के शब्दों, रूपों का ज्ञान प्राप्त करना परमावश्यक है। इसलिए अपभ्रंश साहित्य हिंदी भाषा के विकास क्रम को सम्यक् रूप से समझने के लिए अनिवार्य है।

जैन मुनियों के अपभ्रंश साहित्य ने हिंदी के आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल को किसी न किसी भांति अवश्य ही प्रभावित किया है। जीवन-दर्शन आध्यात्मिक रहस्यवाद, काव्य रूप, वर्णन शैली तथा भाषागत योगदान को देखकर कहा जा सकता है कि हिंदी भाषा साहित्य को भली भाँति समझने के लिए अपभ्रंश साहित्य का अध्ययन भी कर लेना आवश्यक है, क्योंकि वह अविच्छिन धारा भारतीय वाङ्मय को सुचारू रूप से उजागर करती है।

3. **नाथ साहित्यः** नाथ साहित्य उपदेशात्मक साहित्य ही है जिसे 'धार्मिक साहित्य' भी कहा जा सकता है। नाथों में 'गोरख' एकमात्र ऐसे योगी हैं जो कबीरादि संतों पर विशेष रूप से प्रभाव डालते हैं। गुरू गोरखनाथ ने तथा उनके अनुयायियों ने गद्य तथा पद्य दोनों में ही पुस्तकें लिखी हैं। जो पुस्तकें नाथ साहित्य से संबंधित है, उनके नाम ये है 'गोरखनाथ की बानी' 'गोरख सार' 'गोरख-गणेण गोष्ठी', 'गोरखनाथ', 'की सत्रह कला', 'महादेव गोरख संवाद', 'दत्तात्रेय गोरख संवाद,' 'विराट पुराण', 'नखइ बोध', 'योगेश्वरी साखी', तथा 'गोरख योग',।

महायान से बज्रयान, बज्रयान से सहजयान और सहजयान से नाथ-सम्प्रदाय का विकास हुआ। जीवन को कर्मकाण्ड के जाल से मुक्त कर सहज रूप की ओर ले जाने का श्रेय नाथों को ही जाता है। इस प्रकार यह सम्प्रदाय सिद्ध-सम्प्रदाय का विकसित एवं पल्लवित रूप है। सिद्धों की विचारधारा को लेकर इस सम्प्रदाय ने उसमें नवीन विचारों की प्राण-प्रतिष्ठा की है।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार इस सम्प्रदाय के 'सिद्ध-मत', 'सिद्ध-मार्ग', 'योग-मार्ग', 'योग-सम्प्रदाय', 'अवधूत-मत', 'अवधूत-सम्प्रदाय' आदि नाम स्वयं सम्प्रदाय में अधिक प्रचलित है। मनुष्यों में मत्स्येन्द्रनाथ इस परम्परा के सर्वप्रथम आचार्य माने जाते हैं। ये कौल साधक थे। कौल-साधना में साधक का प्रधान कर्त्तव्य जीव-शक्ति को जाग त करना है जो जगत् में व्याप्त है और जो कुण्डलिनी के रूप में मनुष्य शरीर में स्थित है। गोरखपंथी साहित्य के अनुसार आदिनाथ स्वयं शिव थे। उनके पश्चात् मत्स्येन्द्रनाथ हुए और उनके शिष्य गोरखनाथ थे। नाथों की संख्या प्रधानतः नौ मानी जाती है। नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चन्द्र, सत्यनाथ, गोरखनाथ, चर्पट, जलन्धर और मलयार्जुन, किन्तु नाथ पंथियों के भी 84 सिद्ध कहे जाते हैं।

इस सम्प्रदाय में इन्द्रिय-निग्रह पर विशेष बल दिया गया। इन्द्रियों के लिए सबसे बड़ा आकर्षण नारी है। अतः नारी से दूर रहने की शिक्षा दी गयी है। इस संबंध में डॉ० शिवकुमार ने कहा है ”सम्भव है कि गोरखनाथ ने बौद्ध विहारों में भिक्षुणियों के प्रवेश का परिणाम और उनका चारित्रिक पतन देखा हो तथा कौल पद्धति या वज्रयान के वाममार्ग मे भैरवी और योगिनी रूप नारियों की ऐन्द्रिक उपासना में धर्म को विकृत होते देखा हो।“

नाथपंथ की दार्शनिकता सैद्धान्तिक रूप से शैवमत के अन्तर्गत है और व्यावहारिकता की द ष्टि से हठयोग से संबंध रखती है। मूलतः हठयोग देह-शुद्धि का साधन मात्र है। नाथ साहित्य के महत्त्व की ओर संकेत करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, ”इसने परवर्ती संतों के लिए श्रद्धाचरण प्रधान धर्म की प ष्ठभूमि तैयार कर दी थी। जिन संत साधकों की रचनाओं से हिंदी साहित्य गौरवान्वित है, उन्हें बहुत कुछ बनी बनायी भूमि मिली थी। डा० रामकुमार वर्मा ने नाथपंथ के चरमोत्कर्ष का समय बारहवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक माना है। उनका मत है कि नाथ-पंथ से ही भक्तिकाल में संत-मत का विकास हुआ था जिसके प्रथम कवि कबीर थे। इस मन्तव्य का समर्थन कथ्य और शिल्प दोनों द ष्टियों से हो जाता है-नाथपंथी रचनाओं की अनेक विशेषताएँ संत-काव्य में यथावत् विद्यमान है। डा० लक्ष्मीसागर ने लिखा है, ”यद्यपि कबीर द्वारा प्रवर्तित संत-साहित्य पर सिद्धों का भी प्रभाव है, किन्तु उसकी नींव नाथ-पंत ने ही डाली थी। सिद्ध यदि पूर्वी भारत में क्रियाशील थे, तो नाथ-पंथियों का क्षेत्र राजपूताना और पंजाब अर्थात् पश्चिमी भारत था।“

(i) **गोरखनाथ**: नाथपंथियों में सबसे अधिक प्रभावशाली गोरखनाथ है। ये मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे। राहुल सांस्कृत्यायन ने गोरखनाथ का समय 845 ई० माना है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी उन्हें नवीं शती का मानते हैं और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तेरहवी शती का बतलाते है। डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ग्यारहवी शती का मानते हैं तथा डा० रामकुमार वर्मा शुक्ल भी इस मत से सहमत हैं। गोरखनाथ का मुख्य स्थान गोरखपुर माना जाता है किन्तु इनके मत का अधिक प्रचार पंजाब तथा राजस्थान में हुआ।

(ii) **रचनाएँ**: इनके ग्रंथों की संख्या चालीस मानी जाती हैं किन्तु डा० बड़थ्वाल ने केवल चौदह रचनाएँ ही उनके द्वारा रचित मानी हैं, जिनके नाम हैं-सबदी, पद, प्राणसंकली, सिष्यादरसन, नरवै-बौध, अभेमात्रा जोग, आतम-बोध, पन्द्रह तिथि, सप्तवार, मघीन्द्र गोरखबोध, रोमावली, ग्यानतिलक, ग्यानचौंतीस एवं पंचमात्रा। गोरखनाथ ने षट्चक्रों वाला योग-मार्ग हिंदी साहित्य में चलाया था। इस मार्ग में विश्वास करने वाला हठयोगी साधना द्वारा शरीर और मत को शुद्ध करके शून्य में समाधि लगाता था और वही ब्रह्म को साक्षात्कार करता था। गोरखनाथ ने कहा है कि वीर वह है, जिसका चित्त विकार-साधन होने पर भी विकृत नहीं होता।

नौ लख पातरि आगे नाचै, पीछे सहज अखाड़ा।
ऐसे मन लै जोगी खेलै, तब अंतरि बसै भँडारा।
मूर्त जगत् में अमूर्त का स्पर्श करते हुए उन्होंने लिखा है,
अंजनमाँहि, निरंजन चेट्या, तिल मुख भेट्या तेल।
मूरति माँहि अभूरति परस्या, भया निरंतरी खेल।।

चौरासी सिद्धों में सरहप्पा, कण्हप्पा, लूहप्पा तथा नौ नाथों में गोरखनाथ की साहित्यिक देन के आधार पर हम उसे तीन वर्गों मे बाँट सकते हैं

1. जीवनद ष्टि से योगदान। (दार्शनिक)
2. भाषा के विकास की द ष्टि से योगदान (भाषा वैज्ञानिक)
3. काव्यरूपों की द ष्टि से योगदान (काव्यशास्त्रीय)

विचारों की द ष्टि से जो योगदान नाथों ने दिया, वह इस प्रकार रहा है-

1. वैदिक दर्शन के विरोधियों तथा पक्षधरों को मध्यवर्गी विचारधारा से प्रभावित किया है। बौध धर्म तथा शांकर अद्वैत को विचारों के धरातल पर समीप लाकर नाथों ने अपनी योग साधना से शैव तथा शाक्त दर्शन को भी मिलाने का कार्य किया है।
2. इंडा, पिंगला, सुषुम्ना, सुरति, निरति, सूर्य, एवं चन्द्र, नाड़ियों आदि के अशास्त्रीय प्रयोग को लोकशास्त्रीय हठयोगी पारिभाषिक शब्दावली में समाविष्ट करके शरीर में ही स ष्टि की कल्पना की।

3. ब्रह्म कर्मकाण्डीय साधना की अपेक्षा आन्तरिक, सहज अथवा हठयोगी साधना पर बल दिया है, जिसका प्रभाव कबीर आदि संतों की वाणियों में देखा जा सकता है। 'महाकुण्डलिनि' अथवा 'पराशक्ति' तो सारे संसार में व्याप्त है परन्तु स्त्री का प्रतिरूप कुण्डलिनी शक्ति मनुष्य के शरीर में ही व्याप्त है। उसी की साधना करने से मनुष्य आत्मतत्व को पहचान लेता है।

4. ब्रह्मा स ष्टि को मिथ्या बताकर लोगों को शांकर अद्वैत के मायावाद के निकट लाने का कार्य भी नाथों ने किया ।

5. शिव तथा शक्ति की एकता दिखाकर नाथों ने एक नई तथा वांछनीय विचारधारा से लोगों को भारतीय जीवन-दर्शन से जोड़ने को अनुपम कार्य किया। गुरू गोरख तथा उसके गुरू मत्स्येन्द्र नाथ (मछेन्द्र नाथ) के वार्तालाप से यह तथ्य स्पष्ट किया जा सकता है कि नाथों ने शिव एवं शक्ति को कैसे मिलाकर प्रस्तुत किया है।

गुरू गोरख पूछते हैं-

"स्वामि! कहाँ बसे शक्ति और कहाँ बसे सीव?
कहाँ बसै पवना, कहाँ बसे जीव?
कहाँ होइ इनका परचाल है?"

गोरख संवाद

गुरू मछेन्द्र नाथ उत्तर देते हैं-

"अबधू! अधैं बसै सक्ति, अधैं बसै सीव।
मध्य बसै पवनि, औ अन्तर बसै जीव।
सारे सरीर होत इनका परचाल है।"

गोरख संवाद

भावार्थ यह है कि वेदान्तीय वाक्यों का अनुवाद करके यह स्थापना की गई कि 'मैं ही ब्रह्म हूँ और सारा संसार ब्रह्ममय है।' शिव तथा शक्ति तो शरीर के आधे-आधे भाग में व्याप्त हैं। इसी विचारधारा ने आगे चलकर शिव का अर्धनारीश्वर रूप भी बनाया। दर्शन की रहस्यात्मक शास्त्रीय मान्यताओं को नाथों ने उन बोलियों में अभिव्यक्त किया जिससे प्रभावित होकर कबीरादि संतों की रहस्योक्तियों तथा विरोधाभासी कथन की उलटबांसियों को प्रेरणा मिली।

4. **रासो साहित्य**: 'रासो-काव्य' के रचना-स्वरूप के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार की धारणाओं को व्यक्त किया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार बीसलदेव रासो में प्रयुक्त 'रसायन' शब्द ही कालान्तर में 'रासो' बना। मोतीलाल मेनारिया के अनुसार- "जिस ग्रंथ में राजा की कीर्ति, विजय, युद्ध तथा वीरता आदि का विस्त त वर्णन हो, उसे 'रासो' कहते है।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार-'रासो' तथा'रासक' पर्याप्त है और वह मिश्रित गेय-रूपक है।" डा० भागप्रसाद गुप्त के अनुसार विविध प्रकार के रास, रासावलय रासा और रासक छन्दों रासक और नाट्य-'रासक, उपनाटकों रासक' रास तथा रासो-न त्यों से भी रासो-प्रबन्ध-परम्परा का संबंध रहा है- यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता।

रास काव्य मूलतः रासक छन्द का समुच्चय है। अपभ्रंश में 29 मात्राओं का एक रासा या रास छंद प्रचलित था। विद्वानों ने दो प्रकार के 'रास' काव्यों का उल्लेख किया है-कोमल और उद्धत। प्रेम के कोमल रूप और वीर के उद्धत रूप का सम्मिश्रण प थ्वीराज रासो में है।

चारण साहित्य की जिस समय रचना हो रही थी वह समय अनुकूल नहीं था, क्योंकि पूरा देश छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। प्रत्येक राज्य का राजा अलग होता था। प्रत्येक राज्य मे आये दिन युद्ध हुआ करते थे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन सामाजिक स्थिति खंडित पड़ी हुई थी। उस समय एक धर्म के लोग दूसरे धर्म और सम्प्रदाय के लोगों को नीचा दिखाने की चेष्टा में लगे हुए थे।

रासो साहित्य सामंती-व्यवस्था प्रकृति और संस्कार से उपजा हुआ साहित्य है।

(i) **रास काव्य परंपरा का विकासः** रासो-काव्य की परंपरा संस्कृत व प्राकृत में नहीं मिलती। अपभ्रंश वैविध्य में जैसा कि विवेचन मिलता है। रासो ग्रंथों का संक्षेप में विवेचन इस प्रकार है-

(क) ***उपदेश रसायन***-इसके रचनाकार श्री जिनदत्त सुरि हैं। इसका रचनाकाल 1200 वि० के लगभग है। इसका विषय जैसा कि नाम से प्रकट है, धर्मोपदेश है।

(ii) **भरतेश्वर बाहुबली रासः** इसके रचनाकार शलिभद्र सूरि हैं। इसकी रचना संवत् 1241 में की गई। इस ग्रंथ मे भरतेश्वर तथा बाहुबली का चरित्र वर्णन है। कवि ने इन दोनों राजाओं की वीरता युद्ध आदि का विस्तार से वर्णन किया है, किन्तु हिंसा और वीरता के पश्चात् विरक्ति और मोक्ष के भाव प्रतिपादित करना कवि का मुख्य लक्ष्य रहा है। 205 छंदों में रचित यह एक सुन्दर खंडकाव्य है।

(iii) **स्थूलभद्र रासः** जिन धर्म सूरि ने 1209 ई० में इस ग्रंथ की रचना की। इस कृति का नायक स्थलिभद्र कोशा नाम की वेश्या के साथ भोगलिप्त रहता है। अंत में स्थलिभद्र को कवि ने जैन धर्म की दीक्षा लेने के बाद मोक्ष का अधिकारी सिद्ध किया है। इस काव्य की भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव अधिक है फिर भी इसकी भाषा का मूल रूप हिंदी ही है।

(iv) **चंदनबाला रासः** उसके रचियता कवि आसगु है। यह कृति पैंतीस छंदों का एक लघु खंड काव्य है, जिसकी रचना 1200 ई० के लगभग आसगु नामक कवि ने जालौर मे की थी। इसकी कथानायिका चन्दनबाला चम्पा नगरी के राजा दधिवाहन की पुत्री थी। एक बार कौशाम्बी के राजा शतानकि ने चम्पा नगरी पर आक्रमण किया, जिसमें उसका सेनापति चन्दनबाला का अपहरण कर ले गया और एक सेठ को बेच दिया। सेठ की स्त्री ने उसे अपार कष्ट दिए। चन्दनबाला अपने सतीत्व पर अटल रहकर सब दुःख सहती रही और अंत मे महावीर से दीक्षा लेकर मोक्ष को प्राप्त हुई। इस प्रकार लघु कथानक पर आधारित यह जैन रचना करूण रस की गंभीर व्यंजना करती है।

(v) **नेमिनाथ रासः** इस ग्रंथ की रचना सुमति मणि ने 1213 ई० मे की थी। 58 छंदों की इस रचना में कवि ने नेमिनाथ का चरित्र सरस शैली में प्रस्तुत किया है। रचना की भाषा अपभ्रंश से प्रभावित राजस्थानी हिंदी है।

(vi) **रेवतं गिरी रासः** इस काव्य कृति के रचियता विजयसेन सूरि है। उन्होंने इस ग्रंथ की रचना 1231 ई० में की थी। इस काव्य में तीर्थकर नेमिनाथ का प्रतिमा तथा रेवंतागिरी तीर्थ का वर्णन है। प्रकृति के रमणीक चित्र इस काव्य के भाव पक्ष तथा कलापक्षों का श्ंगार करते हैं।

रासो काव्य परंपरा का विकास

छंद वैविध्य परक रासो परंपरा की 'संदेश रासक' सुप्रसिद्ध रचना है।

1. प थ्वीराज रासो
2. बीसलदेव रासो
3. परमाल रासो
4. खुमान रासो
5. हम्मीर रासो
6. विजयपाल रासो

1. **प थ्वीराज रासोः** प थ्वीराज रासो को हिन्दी भाषा एवं साहित्य का 'प्रथम महाकाव्य' होने का गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। वीरगाथा कालीन ग्रंथों में यही ग्रंथ सर्वाधिक प्रसिद्ध है। वास्तव में वीरगाथा कालीन साहित्य की प्रतिनिधि रचना होने के कारण इसका महत्त्व साहित्यिक मानदण्ड स्थिर करने में भी सहायक है। इस ग्रंथ के रचियता चन्दवरदाई हैं जो प थ्वीराज चौहान के सखा, दरबारी कवि तथा एक वीर सेनापति रहे। इस ग्रंथ की कथावस्तु में अग्निकुल के राजपूतों की उत्पत्ति से लेकर मुहम्मद गौरी द्वारा प थ्वीराज के पकड़े जाने तक का समग्र जीवन तथा ऐतिहासिक घटनाओं के साथ-साथ प थ्वीराज तथा जयचन्द की शत्रुता एवं संयोगिता स्वयंवर आदि का भी वर्णन किया है।

इस ग्रंथ की रचना 69 समयों (अध्यायों) में की गई है।

2. **बीसलदेव रासो**: इस वीर गीत काव्य की रचना संवत् 1212 विक्रमी में हुई थी। इस की रचना करने वाले नरपति नाल्ह है। उन्होंने अपने आश्रयदाता विग्रहराज चतुर्थ उपनाम बीसलदेव के चरित्र का सुन्दर वर्णन किया है। बीसलदेव बड़े वीर तथा पराक्रमी राजा थे उन्होंने यवनों के विरूद्ध कई सफल युद्ध किए।

3. **परमाल रासो**: इस ग्रंथ के रचनाकार जगनिक नामक भाट कवि हैं जिनका समय सवंत् 1230 है। जगनिक ने अपने आश्रयदाता चन्देले राजा परमाल के दरबार में रहते हुए वीर गीत काव्य की (52 लड़ाइयों की) रचना की।

4. **खुमान रासो**: यह प्रबन्धात्मक काव्य दलपति विजय नामक कवि द्वारा रचित है। ऐसा स्वीकार किया जाता है कि इस ग्रंथ की जो मूल प्रति उपलब्ध हुई है। उसमें चितौड़ के द्वितीय खुमान के युद्धों का वर्णन है, जिसका समय 870 तथा 900 सवंत् के बीच माना गया है। जो प्रति वर्तमान युग की लिखी अथवा छपी मिलती हैं, उसमें बहुत परिवर्तन मिलता है। आधुनिक उपलब्ध प्रतियों को देखकर यह निर्णय करना बहुत कठिन हो जाता है कि मूल ग्रंथ की सामग्री क्या है। इस ग्रंथ की भाषा डिंगल ही है जो पुरानी राजस्थानी या मारवाड़ी कही जा सकती है।

   रासो साहित्य सामंती व्यवस्था, प्रकृति और संस्कार में उपजा हुआ साहित्य है। जिसका संबंध पश्चिमी हिंदी प्रदेश से है। इसे 'देशभाषा काव्य' नाम से भी अभिहित किया जाता है। इस साहित्य के रचनाकारों को हिन्दू राजपूत राजाश्रय में रहने वाले चारण या भाट समाज में सम्मान का स्थान प्राप्त था। ये चारण कला पारखी और कला-रचना में निपुण होते थे। ये लोग योद्धा भी थे।

   जब भी कोई लिपिकार किसी पुरानी पोथी को लिपिबद्ध करता है तो वह अपने समकालीन राजाओं से सम्बद्ध कथानकों को इसलिए जोड़ देता है ताकि उसके आश्रयदाता को भी महत्त्व मिल जाये। यह तथ्य 'खुमाण रासो' में जुड़े बाद के प्रक्षिप्त अंश को देखने से स्पष्ट हो जाता है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में "व त्त-संग्राहकों के पास इतिहास को समझने की पैनी द ष्टि थी, इसीलिए राजस्थान में रहते हुए भी वे आदिकाल की समाप्ति को भक्तिकाल और रीतिकाल के भण्डार में डालने का दुराग्रह करके यश अर्जित कर रहे हैं, जबकि वह सामग्री उन कालों की प्रव त्तियों से किसी भी रूप में मेल नहीं खाती। इन लोगों ने रचनाकारों के नामों के संबंध में भी भ्रम पैदा कर दिया है।"

   इस ग्रन्थ की प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति-पूना संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें कुल पाँच हजार छंद हैं। इसमें समकालीन राजाओ के आपसी विवादों के बाद हुई एकता के साथ-साथ अब्बासिया वंश अलमॉमू खलीफा और खुमाण के साथ हुए युद्ध का चित्रण मिलता है। इस कृति का प्रमुख सरोकार राजा खुमाण का चरित्रांकन करना है। उनके चरित्र के दो प्रस्थान बिन्दु हैं- एक युद्ध और दूसरा प्रेम। इसकी भाषा राजस्थानी हिंदी है। यथा-

   "पिउ चितौड़ न आविऊ सावण पहिली तीज।
   जोवै वाट रति विरहिणी, खिण-खिण अणवै खीज।।
   संदेसो पिउ साहिबा, पाछो फिरिय न देह।
   पंछी घाल्या पीज्जरे, घूटण रो संदेस"।।

5. **विजयपाल रासो**: मिश्रबंधुओं ने इस परम्परा की एक कृति 'विजयपाल रासो' का उल्लेख किया है जिसके रचियता नल्लसिंह है। इस कृति का नायक विजयपाल सम्भवतः विश्वामित्र गोत्रीय गुहिलवंशीय राजा विजयपाल से भिन्न है जिसने 'काई' नामक वीर योद्धा को पराजित किया था। इस राजा के प्रयौत्र विजय सिंह का एक हिंदी शिलालेख दमोह (म० प्र०) में प्राप्त हुआ है। इस रचना में रचनाकार ने राजा विजयपाल सिंह और बंगराजा के बीच हुए युद्धों को सजीव रूप में चित्रित किया है। इसका रचनाकाल सन् 1298 ई० है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसी नाम की दूसरी कृति का उल्लेख भी किया है जिसके रचनाकार मल्लदेव है। शिल्प विधान की द ष्टि से यह आदिकाल के बाद की रचना ठहरती है।

रासो साहित्य की प्रव त्तियाँ

रासो साहित्य की सामान्य प्रव त्तियाँ निम्नलिखित हैं-

1. **वस्तुपरक तथा कथ्यपरक प्रव त्तियाँ**

   (i) **वस्तु कथ्य में अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन की अधिकता**: समकालीन कवियों ने अपने आश्रयदाता राजा को श्रेष्ठ वीर,

पराक्रमी, सम्राट, दानवीर, द ढ़ प्रतिज्ञा, शरणागत रक्षक और अनुपम सौन्दर्यशाली सिद्ध कर उसका अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन किया है। राजाओं का चरित्रांकन करना ही उस काल के रचनाकारों का मुख्य मकसद रहा था। रचनाकार दिन-रात शूर-वीर राजाओं के साथ रहता था। युद्ध के समय भी वह राजा का साथ नहीं छोड़ता था। वह युद्ध के समय सेना का नेत त्व करता था और अपनी ओजस्वी कविताओं से सम्पूर्ण वातावरण और परिवेश को वीरोचित भावना से आपूरित करता था। इस उत्साह, संघर्ष और युद्ध के बीच भी वह राजाओं के यशोगान को बढ़ा चढ़ाकर वर्णित करना नहीं भूलता था।

"चढ़ि तुरंग चहुआन, आन फेरीति पर द्धर।
तास युद्ध मंडयौ, जास जानयौ सबर वर"।

2. **सामंती समाज तथा उसमें निहित संस्कृति का चित्रण**: चारण साहित्य प्रमुखतः सामन्तों का साहित्य है। इस साहित्य में सामंती सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक व्यवस्था के जिन सन्दर्भो का वर्णन किया गया है, वे अतिश्योक्तिपूर्ण अवश्य है पर उसमें यथार्थता भी है जिसे नकारा नहीं जा सकता। सामंतों की उपभोक्ता संस्कृति के अनेक चित्र इसमें सरलता से खोजे जा सकते हैं। विलासिता की प्रत्येक वस्तु के प्रति उनका गहरा लगाव है। कंचन और कामिनी के प्रति जितने वे जागरूक है उतने निम्न और निम्न मध्यवर्ग के प्रति नहीं। सामाजिक कुरीतियों के अन्तर्गत बहु-विवाह, अनमेल-विवाह, गन्धर्वविवाह, सतीप्रथा जैसे अनेक रीति-रिवाजों का प्रचलन था। 'प थ्वीराज रासो' में इन सामाजिक कुरीतियों का सविस्तार वर्णन मिलता है। उस काल में धर्म के नाम पर हिन्दू-मुसलमानों मे आए दिन युद्ध होता रहता था।

"दोउ दीन दीनं कढी बंकि अस्सीं।
किधौं मेघ में बीज कोहिन्नि कस्सीं।।
किये सिप्परं कोर ता सेल अग्गी।
किधौं बद्दर कोर नागिन्न नग्गी"।।

3. **युद्धों का जीवन्त वर्णन सामान्य जन-जीवन नगण्य**: चारण काल की रचनाओं में सामंती परिवेश ओर जीवन को विभिन्न स्तरों के माध्यम से चित्रित किया है। इसमें सामान्य जन-जीवन का वर्णन नगण्य रहा है। दरबारी रचनाकारों से इस प्रकार की अपेक्षा करना गलत होगा कि वे सामान्य जन-जीवन की व्याख्या करे। उस समय के रचनाकार अपने आश्रयदाताओं को युद्ध के लिए प्रेरित करने वाली कविताओं का स जन किया करते थे। यथाः

"बज्जिय घोर निसानं रान चौहान चहूँ दिसि।
सकल सूर सामंत समर बल जंत्र मंत्र तिसी"।।
उठ्ठि राज प्रथिराज वाग लग्ग मनहु वीर नट।
कढ़त तेग मन बेगं लगत मनहु बीजु घट्ट"।।

4. **अर्द्धप्रामाणिक रचनाओं की अधिकता**: चारण साहित्य के अन्तर्गत आने वाली अधिकांशतः रचनाएँ अर्द्धप्रामाणिकता के झूले पर झूल रही हैं। 'प थ्वीराज रासो' प्रामाणिकता के अभाव में पूर्ण प्रतिष्ठा नहीं पा सकी। 'खुमाण रासो' (आल्हाखण्ड) की जो प्रति उपलब्ध है उसका रूप बदला हुआ है। विषयवस्तु और शिल्प की द ष्टि से इन रचनाओं के संबंध में कहा जा सकता है कि इनमें कई शताब्दियों तक परिवर्तन और परिवर्द्धन होते रहे हैं जिसके कारण इनका मूल रूप खत्म-सा हो गया है।

5. **प्रकृति के बहुआयामी स्वरूप की चर्चा**: चारण साहित्य में प्रकृति के भिन्न-भिन्न स्वरूपों की चर्चा की गई है। उनमें प्रमुख ये हैं- आलम्बन, उद्दीपन, परिगणन, आलंकारिक, मानवीकरण आदि। प्रकृति को जहाँ आलम्बन और परिगणन रूप में प्रस्तुत किया गया है वहाँ यथार्थता की प्रधानता है, शेष प्रकृति-प्रसंगों में काल्पनिकता की अधिकता है। इनमें ऋतुओं के जो चित्र उकेरे गए है उनमें अवान्तर रूप से कहीं पुरुष ओर कहीं स्त्री-विरह ही माध्यम बने हुए हैं। भावप्रवणता और प्राकृतिक सौन्दर्य के स्तर पर प्रकृति का उद्दीपन रूप अनुपम है। बसंत ऋतु का चित्रण करते हुए कवि चन्दवरदाई लिखते हैं-

"मवरि अंब फुल्लिंग, कदंब रयनी दिघ दींस।
भंवर भाव भुल्ले, भ्रमंत मकरंदव सींस।

बहत बात उज्जलति, मोर अति विरह अगति किय।
कुलकहंत कल कंठ, पत्र राषस रति अग्गिय"।

भावपरक प्रव त्तियाँ

1. **वीर तथा श ंगार रस वर्णनः** तत्कालीन साहित्य में दो प्रकार की रचनाएँ लिखी हैं प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य। दोनों ही प्रकार की रचनाओं में श ंगार या वीर रस की उद्‌भावना अवश्य देखी जा सकती है। प्रबन्ध काव्यों में एक साथ दोनों रसो का चित्रण मिलता है। चारणों ने अपनी रचनाओं में एक ओर युद्धों के वर्णन में वीरता और पराक्रम की अद्‌भुत स ष्टि की है तो दूसरी ओर रूप-सौन्दर्य, वस्तु-सौन्दर्य और प्रेम से परिपूर्ण सरस चित्र भी उतारे हैं। नारी दोनों रसों के केन्द्र में हैं। नारी प्राप्ति के लिए ही युद्ध होता है और उसकी प्राप्ति के बाद वातावरण विलासपूर्ण हो जाता है। 'प थ्वीरास रासो' एक ऐसा अनूठा ग्रंथ है जिसमें वीर और श ंगार रसों की नियोजना के लिए ही अन्य रसों को भी समाहित किया गया है। श ंगार रस का उदाहरण दर्शनीय है-

   "चंद बदन चष कमल, भौंह जनु भ्रमर गंधरत।
   कीर नास बिबोष्ठ, दसन दामिनी दमक्कत।
   भुज प्रनाल कुच कोक, सिंह लंकी गति वारून।
   कनक कंति दुति देह, जंघ कदली दल आसन"।

   इन रचनाकारों की रचनाओं का प्रमुख सरोकार सामंतों के विलासपूर्ण जीवन तथा उनकी वीरता और पराक्रम को वर्णित करना था।

2. **विरहानुभूति वर्णनः** इस काल के सांमतों की यह विशेषता थी कि वे एक साथ कई नारियों से प्रेम करते थे। उनके जीवन में नई नारियों का क्रम लगातार चलता रहता था। नई नारियों के आ जाने पर पुरानी नारियों के प्रति सामंतों की प्रीत कमजोर पड़ जाती थी। जिससे वे निरंतर दुःखी रहती थीं। कभी-कभी विरहानुभूति का कारण प्रवास भी हुआ करता था। 'बीसलदेव रासो' एक विरह प्रधान काव्य है जिसमें मान और प्रवास से ही विरह का प्रारम्भ दिखाया गया है। इस काल में नारी की कोई सामाजिक स्थिति नहीं थी। वह मात्र विलासिता की वस्तु थी। उसका समाज में कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। 'प थ्वीराज रासो' में संयोगिता के विरह-वर्णन का द श्य अनूठा रहा है-

   "बढ़ि वियोग बहुबाल, चंद विय पूरन मान।
   बढ़ि वियोग बहुबाल, व द्ध जोवन सम मानं।
   बढ़ि वियोग बहुबाल, दीन पावस रिति बढ्ढै।
   बढ़ि वियोग बहुबाल, जज्जि कुल बधु दिन चढ्ढै"।

   उस बाला का वियोग ऐसे बढ़ा जैसे द्वितीया का चन्द्रमा दिन प्रतिदिन बढ़ कर पूर्णिमा तक विकसित होता है या जैसे यौवन व द्धावस्था की ओर बढ़ने लगता है या जैसे पावस की रात बढ़ती है या दिन चढ़ने पर कुलवधू की लज्जा।

शिल्पगत प्रव त्तियाँ

1. **रासो काव्य ग्रन्थों का सर्जनः** सामंतों के आश्रय में रहकर चारणों ने जिन काव्य ग्रन्थों की रचना की है। उन ग्रंथों के नाम के साथ 'रासो' शब्द जुड़ा हुआ है। इस रासो शब्द के सन्दर्भ में अनके विचार प्रचलित हो चुके हैं। अनेक विद्वानों ने इस शब्द की व्युत्पति राजसूय (गार्सा द तासी), रासा (डा० हरप्रसाद शास्त्री), रासक (प० चन्द्रबली पाण्डेय) और रसिया शब्दों आदि से मानते है। जो नवीनतम खोजों के आलोक मे समीचीन नहीं है। प० मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या के अनुसार-"रासो शब्द संस्कृत के 'रास अथवा रासक' से बना है और संस्कृत भाषा में 'रास' के 'शब्द, ध्वनि, क्रीडा, श्रं खला, विलास, गर्जन, न त्य और कोलाहल आदि के अर्थ और रासक के काव्य अथवा द श्य काव्यादि के अर्थ प्रसिद्ध हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'रासो' शब्द का मूल रूप 'रासक' को माना है। 'रासक' एक छंद भी है और काव्य रूप भी।

2. **काव्य रूपः** चारण साहित्य में सांमतों के चरित्रों को उद्‌घाटित करने के लिए जिस अतिरंजनापूर्ण शैली को अपनाया गया था, वे प्रबन्ध काव्य के अधिक निकट थी। वीर और पराक्रम के साहसपूर्ण कारनामों और साहसिक कार्यों को मुक्तक काव्य की अपेक्षा प्रबंध काव्य में सफलतापूर्वक वर्णित करने की सम्भावनाएँ अधिक होती हैं। इसलिए इन चरितप्रधान काव्यों में प्रबंधात्मक शैली को ग्रहण किया गया।

3. **अलंकार विधानः** अलंकारों के प्रयोग से काव्यवस्तु की शोभा बढ़ जाती है। चारणों की कविता में अलंकारों का प्रयोग इसी आशय से किया गया है। अलंकार यहाँ अंग न होकर अंगी है। शब्दालंकार के रूप में इन काव्यों में अनुप्रास, यमक, श्लेष, और वक्रोक्ति के अच्छे प्रयोग दिखलाई पड़ जाते हैं। यमक अलंकार का उदाहरण द ष्टव्य है-

"अंग सुलच्छिन हेम तन, नग धरि सुदरि सीस।
गौरी ग्रहि गोरी गयो, बिना जुद्ध बुझि रीस" ।।

इन रासो ग्रंथों मे अर्थालंकार के सफल प्रयोग भी किए गए हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, संदेह, दीपक, भ्रम, अतिश्योक्ति, प्रतीप द ष्टान्त जैसे अनेक अलंकारों का प्रयोग काव्य-परम्परा को ध्यान में रखकर किया गया है। प्रचलित उपनामों के साथ कुछ नवीन उपनामों के प्रयोग से वस्तु, भाव और शिल्प में रोचकता और प्रभाव बढ़ा है। वे नवीन उपनाम अपनी अर्थ सुलभता और लोक-प्रसिद्धि के कारण अर्थ-गौरव में भी निःसंदेह व द्धि कर सके हैं। यथा-

"जनु छैलनि कुलटा मिलै। बहुत दिवस रस षंक।।

सांगरूपकों के प्रयोग से चारणों ने पुरातन कथासूत्रों, प्राकृतिक सौन्दर्य और मौलिक उद्भावनाओं को साकार रूप दिया है -

"बाल नाल सरिता उतंग। आनंग अंग सुज।।
रूप सु तट मोहन तड़ाग। भ्रम भए कटाच्छ दुज"।।

(i) **छंद विधानः** रासो साहित्य में छंदों के विविधि प्रयोग मिलते हैं जिनमें कुछ ऐसे हैं जिनके रूप का पता नहीं है। छंदों के प्रयोग से रचनाकार की प्रतिभा और दूरदर्शिता का पता चलता है। मात्रा और व त्त से संबंधित इन छंदों का प्रयोग रासो में अधिक हुआ है। यथा- आर्मा, दूहा, पद्धरी, चौपाई, रासा, रोला, सोरठा, करषा, साटक, छप्पय, आदि। 'प थ्वीराज रासो' में अडसठ छंदों का प्रयोग मिलता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस काल में रचनाकारों को छंदों का विशिष्ट ज्ञान था। छंदों के सर्वाधिक प्रयोग के कारण ही तो 'चन्दवरदाई' को 'छप्पय का राजा' कहा गया है।

(ii) **शिल्प विधानः** शिल्प एक गतिशील प्रक्रिया है जो रचना की स जनात्मकता को सार्थक बनाती है। शिल्प का रचाव बहुत कुछ भाषा के रचाव पर निर्भर करता हैं। भाषा की एक विशेष संरचना होती है। रचनाकार लोक-जीवन से उन सार्थक शब्दों को चुनता है जो उनके वस्तुलोक और भाव लोक को सम द्ध करते हैं। रचना की सम्प्रेषणीयता के आधार यही शब्द हैं। चारणों ने रचना को स्तर पर जिन भाषाओं को प्रयोग किया है वे डिंगल और पिंगल भाषाएँ हैं, ये भाषाएँ लोकजीवन से जुड़ी हुई भाषाएँ है। लोक से जुड़े हुए शब्दों लोकोक्तियों और मुहावरों से भाषा सजीव और जीवंत हो गई है। शैली का जुडाव रचनावस्तु से होता है। रचनावस्तु को प्रभावी बनाने के लिए वह जिस प्रणाली को अपनाता है उसे ही 'शैली' कहते हैं। चारण साहित्य का अपना एक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक महत्त्व हैं। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में यह साहित्य उन सामंतों के शोषण-कर्म को उजागर करता है जिसका संबंध जर, जोरू और जमीन से था। उनके द्वारा जो भी युद्ध किए जाते रहे उनका संबंध केवल उन्हीं से था। सामान्य जनता से इसका दूर तक नाता नहीं था। युद्ध की जीत रूप में हस्तगत नारी केवल सामंतों की भोग्या बन कर रह गई थी। सामान्य जनता के हित-चिन्तन जैसे सरोकारों से उसका कोई संबंध नहीं था। राजनीति के नाम पर जो भी हथकण्डे अपनाए जाते थे उससे मात्र सामंतों का हित-चिन्तन होता था। युद्ध इस काल में सामंतों की प्रसिद्धि और गौरव का कारण बने हुए थे। मानव समाज और सर्वहारा वर्ग के बारे में सोचने के लिए उनके पास अवकाश नहीं था। युद्ध जाति विशेष का पेशा बन गया था। इन सामंतों के दो ही कर्म प्रमुख थे- युद्ध करना और युद्ध से प्राप्त वस्तुओं का उपभोग करना। नारियों को भोग्या वस्तु बनाकर इन सामंतों ने अपने सामाजिक स्तर को और भी गिरा दिया था। बाहरी आक्रमणों ने देश, जाति और समाज की स्थिति को अवन्ति के कगार पर पहुँचा दिया। जातीय अस्मिता आये दिन खतरे में पड़ती थी, क्योंकि सामंतों ने जिस उपभोक्ता (सामंती) संस्कृति को विकसित किया था उससे समूची जनता अलग थी। निरतंर युद्ध की अनुगूँज से देश और जाति की सांस्कृतिक विकास की गति थम-सी गई थी। सांस्कृतिक विरासत के रख रखाव की चाह सामंतों में

न थी। युद्ध और विलासिता ही उनके जीवन का मुख्य सरोकार बन गया था। साहित्यिक संरक्षण के रूप में उन्होंने जिन चारण रचनाओं को प्रश्रय दे रखा था उनका कार्य युद्धोन्माद को उत्पन्न कर देने वाली घटना-योजना का आविष्कार था। उन्होंने सामान्य जनता को रचना में स्थान नहीं दिया। सामंत ही उनके लिए सब कुछ थे। सामंतों के चरित्रांकन में ही रचनाकारों की सारी स जनात्मक की ताकत लगी हुई थी। सामाजिक और सांस्कृतिक कर्म के विविध पहलुओं की ओर उनकी द ष्टि नहीं जा सकी। केवल सामंतों का गुणगान करना ही उस काल के रचनाकारों का मुख्य प्रतिपाद था।

आदिकालीन कविता की प्रव त्तियाँ

आदिकालीन हिंदी कविता की प्रव त्तियों का अध्ययन करने की सुविधा को ध्यान में रखते हुए इसे चार भागों मे विभाजित किया जा सकता है।

1. विचारात्मक प्रव त्तियाँ
2. वस्तुपरक प्रव त्तियाँ
3. भावात्मक प्रव त्तियाँ
4. शिल्पनात्मक प्रव त्तियाँ

विचारात्मक प्रव त्तियाँ

1. **आध्यात्मिक क्षेत्र में ब्रह्म का निर्गुण और सगुण रूप**: आध्यात्मिक क्षेत्र को परिपूरित करने के लिए इस काल के रचनाकारों ने ब्रह्म के निर्गुण और सगुण रूप को मान्यता प्रदान की है। सिद्धों और नाथों तथा जैनियों ने ब्राह्मण धर्म के विरोध में सगुण ब्रह्म के स्थान पर निर्गुण ब्रह्म को अपनाने का आग्रह किया है।

   सिद्धों ने तंत्र और मंत्र को अपनाने का आग्रह किया है वही नाथों ने योग को महत्ता प्रदान की है। नाथों का योग सामान्य स्तर का नहीं है। चारण कवि चन्दवरदाई और श्रीकृष्ण के उपासक विद्यापति ने सगुण ब्रह्म की साधना के लिए भक्ति को अपनाने का आग्रह किया है। विद्यापति ने उमा-शिव को स्तुतिपरक पदों में पूजा है। शेष पदों में उन्होंने श्री कृष्ण को आराध्य माना है।

2. **धार्मिक भावना**: सिद्धों ने रूढ़ियों, पाखण्डों, मिथ्याचारों का खुलकर विरोध किया है। नाथों ने कायासाधना को महत्त्व दिया और इन चीजों एवं कार्यो का विरोध किया क्योंकि इनसे साधना में एकाग्रता नहीं आती, एकाग्रता आती है योग साधना के द्वारा। चारण कवियों, जैन कवियों और विद्यापति ने भी इन ब्राह्य आडम्बरों का विरोध किया और धर्म को लोक से और मानव से जोड़ने का सराहनीय कार्य किया।

3. **साहित्यिक क्षेत्र**: सिद्धों की रचनाओं एवं ग्रन्थों में प्रतीकों और उलटबासियों के माध्यम से रहस्यवाद उद्घाटित हुआ है। वह संसार की व्यावहारिक भाषा में व्यक्त नहीं हो सकता। आत्मा और परमात्मा के मिलन की अभिव्यक्ति जहाँ सिद्धों ने प्रतीकों से की है, वहीं नाथो ने पारिभाषिक शब्दावलियों से। सिद्धों ने उलटबासियों का भी प्रयोग किया है।

वस्तुपरक प्रव त्तियाँ

1. **सामंतवादी स्थिति का आंकलन**: सिद्धों नाथों ने सामंतवादी समाज और संस्कृति का आंकलन करते हुए अपने मत प्रस्तुत कर दिये हैं। उनका समाज से कुछ लेना-देना नहीं था। वे पहुँचे हुए साधक थे। जैन और चारण कवियों ने राजाओं के आश्रय में रहकर उनके समाज और संस्कृति को खुली आँखों से देखा था और उसे कविता में ढाला भी था। इस वर्णन में सच्चाई का बखान अधिक था और काल्पनिकता कम।

2. **युद्धों का वर्णन**: सिद्धों नाथों ने न तो युद्धो को महत्त्व दिया है और न सामान्य जनजीवन को। इस कार्य में केवल चारण रचनाकार ही निपुण थे।

3. **नारी के प्रति द ष्टिकोण**: सिद्ध कवियों ने पहले तो नारियों की घुसपैठ का विरोध किया लेकिन बाद में तांत्रिक साधना के तहत इनको भी स्थान देना प्रारम्भ कर दिया। बाद में नैतिक बंधन इतने ढीले हो गये थे कि व्यभिचारपरक बातों का खुलासा होता चला गया।

4. **प्रकृति का वर्णनः** सिद्धों, नाथों ने प्रकृति को साधना का अंग नहीं बनने दिया। उन्होंने प्रकृति का प्रयोग कहीं-कहीं प्रतीक रूप में अवश्य किया है। जैन कवियों ने प्रकृति को नारी का प्रतीक माना है जो साधना में विघ्न पैदा करती है।

भावात्मक प्रव त्तियाँ

1. **विरह की अनुभूतिः** सिद्धों और नाथों ने साधना के स्तर पर विरह को महत्त्वपूर्ण माना है। आत्मा परमात्मा से अलग होकर जो दुःख की अनुभूति करती है उसे ही विरह कहा है। यह विरह आध्यात्मिक साधना का अंग बनकर इन रचनाओं में व्यक्त हुआ है। जैन कवियों की आध्यात्मिक रचनाओं में भी विरह का यही रूप मिलता है।
2. **नारी रूप चित्रणः** सिद्ध साहित्यकारों ने अन्त में भिक्षुणियों को प्रवेश दिलाकर नारी की उपस्थिति को दर्ज करा दिया है। इन नारियों के आगमन से भोग को स्थान मिला जिससे उसमें विकृतियाँ आ गयी। इन विकृतियों के कारण ही इस साहित्य का विकास अवरूद्ध हो गया। नाथों ने नाटियों से अपने-आप को दूर रखा। जैन कवियों ने साधना के क्षेत्र मे साध्वियों के रूप में नारियों को प्रवेश दिलाकर उसे पथ भ्रष्ट कर दिया। स्त्री के विभिन्न अंगों के स्पष्टीकरण के लिए इन कवियों ने प्राकृतिक उपमानों का भरपूर तरीके से उपयोग किया है। चारण कवियों की रचनाओं में नारीत्व चित्रण की प्रधानता देखी जा सकती है।
3. **नायिका-भेद वर्णनः** नायिका-भेद का मिश्रण रास ग्रंथों और मैथिली काव्य की एक विशेषता है। रास-ग्रंथों में जिन नायिकाओं को स्थान मिला है वे ग हस्थिक रूप में है। इन्हें ही शास्त्रीय परिपेक्ष्य मे स्वकीया, नायिका कहा गया है। परकीया नायिका को विद्यापति ने विशेष महत्त्व प्रदान किया है।

शिल्पनात्मक प्रव त्तियाँ

1. **भाषिक प्रयोगः** शिल्प एक प्रक्रिया है वह भी गतिशील जो कि रचना की स जनात्मकता को सार्थकता प्रदान करती हैं। शिल्प का प्रयोग बहुत कुछ भाषा के रचाव पर निर्भर करता है। रचनाकार शिल्प को मध्य नजर रखकर लोक जीवन से उन सार्थक शब्दों का चुनाव करता है जो उनके वस्तुलोक और भावलोक को सम द्ध करते हैं। सिद्धो, नाथों, जैन कवियों, चारण कवियों आदि ने शब्दों का गठंन इसी स्तर पर किया है।
2. **छंद-प्रयोगः** सिद्धों की रचनाओं में स जित चर्यागीत गेय पदों के रूप में प्रकट होते हैं। प्रत्येक चर्यागीत के प्रारम्भ में किसी न किसी राग का उल्लेख मिलता है। इन चर्यागीतों में माश्रिक छंदों का प्रयोग किया गया है।
3. **अलंकार-प्रयोगः** सिद्धों की रचनाओं में अन्त्यानुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग देखने में आता है। नाथ साहित्य में इन अलंकारों के अतिरिक्त श्लेष, वक्रोक्ति, प्रतीक, अपहनुति और उभयालंकार के उदाहरण भरे पड़े हैं। मैथिली साहित्य में शब्दालंकार के साथ अर्थालंकार का प्रयोग भी मिलता है। आदिकालीन काव्यगत प्रव त्तियों का आंकलन इस प्रकार किया जा सकता है-

संदिग्ध प्रामाणिकता

भाषा शैली और विषय सामग्री की द ष्टि से इस काल की रचनाओं के संबंध में कहा जा सकता है कि इसमें निरन्तर कई शताब्दियों तक परिवर्तन होता रहा है। परिवर्तन का यह कार्य इतनी अधिक मात्रा में हुआ है कि इनका मूल रूप भी दब गया है। खुमान रासो में सोलहवीं शती की सामग्री का समावेश कर लिया गया है। प थ्वीराज रासो की प्रामाणिकता आज तक भी संदिग्ध है। इसी प्रकार बीसलदेव रासो, दरमाल रासो आदि की प्रामाणिकता भी संदेह के घेरे में है।

ऐतिहासिकता का अभाव

इन रचनाओं में इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों को लिया गया है, किन्तु उनका वर्णन शुद्ध इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। डा० रामकुमार वर्मा का मानना है कि-”यद्यपि ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण भी उसमें प्राप्त होता है, पर उनका विस्तार और वर्णन कल्पना के सहारे ही किया जाता था, तिथि पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था।“

युद्धों का सजीव चित्रण

आदिकालीन कवि अपने आश्रयदाताओं के साथ युद्ध क्षेत्र में जाते और युद्ध करते थे। इसलिए इनके द्वारा वर्णित युद्ध-अत्यन्त सजीव, मार्मिक और यथार्थ बन पड़े हैं।

आश्रयदाताओं की अतिश्योक्तिपूर्ण प्रशंसा

इस काल में अधिकांश साहित्य की रचना राज्याश्रित कवियों के द्वारा हुई है। कवियों ने अपने आश्रयदाता को ही सर्वश्रेष्ठ वीर, पराक्रमी सम्राट, अनुपम दानवीर, द ढ़प्रतिज्ञ सिद्ध कर उनका अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन किया है। डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार, "कवि का आदर्श अधिकतर अपने चरित-नायक के गुण वर्णन तक ही सीमित रहता था।"

संकुचित राष्ट्रीयता

अपने आश्रयदाता को ही सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ मानने और घोषित करने के कारण ही इन कवियों की राष्ट्रीय भावना केवल अपने आश्रयदाता के छोटे-छोटे राज्यों की सीमाओं तक ही सिमटकर रह गयी थी। वीरता का आदर्श रूप निम्न पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है-

बारह बरिस लौं कूकर जीयें, और तेरह लौं जिए सियार।
बरिस अठारह छत्री जीयें, आगे जीवन कौ धिक्कार।।

जन-जीवन की उपेक्षा

इन ग्रंथों में सामंती जीवन उभर आया है। कवि अपने आश्रयदाताओं की वीरता और रसिक-व त्ति तक ही सीमित रहे हैं, इसलिए इनमें तत्कालीन जन-जीवन उपेक्षित रहा है।

काव्य के रूप

आदिकालीन रचनाएँ प्रबन्ध और मुक्तक दोनों रूपों में मिलती है। प्रथम वर्ग का सर्वाधिक प्राचीन उपलब्ध ग्रंथ है 'प थ्वीराज रासो' और दूसरा ग्रंथ 'बीसलदेव रासो'। आदिकाल में हमें वीर गीत और वीर-प्रबन्ध काव्य दोनों प्रकार के ग्रंथ मिलते हैं।

वीर और श ंगार रस का समन्वय

आदिकालीन साहित्य में प्रायः वीर और श ंगार रस का सुन्दर सामंजस्य है। उस समय स्त्रियाँ ही प्रायः पारस्परिक वैमनस्य का कारण हुआ करती थी। इसलिए वीर गाथाओं में उनके रूप का वर्णन करना, कवियों को अभिष्ट था। युद्ध के समय ही नहीं, शांति के समय भी वीरों के विलास-प्रदर्शन में श ंगार का आकर्षण चित्रित किया गया है।

भाषाओं के विविध रूप

आदिकालीन रचनाओं के दो रूप ही प्रधान मिलते हैं- अपभ्रंश और अपभ्रंश प्रभावित पिंगल अतिरिक्त युद्ध वर्णनों में एक ऐसी भाषा के दर्शन होते हैं जिसे विद्वानों ने 'डिंगल' कहा है। डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है, ' यह वीर रस के लिए बहुत उपयुक्त थी, इसलिए इसका प्रयोग इस काल में बड़ी सफलता के साथ हुआ।'

छंदों का बहुमुखी प्रयोग

छंदों का जितना बहुमुखी प्रयोग इस साहित्य में हुआ है, उतना इसके पूर्ववर्ती साहित्य में नहीं हुआ। दोहा, तोटक, तोमर, गाथा, गाहा, आर्या सट्टक, उल्लाला और कुंडलियाँ आदि छंदों का प्रयोग बड़ी कलात्मकता के साथ किया गया है। हजारीप्रसाद द्विवेदी, के अनुसार 'रासो के छंद जब बदलते हैं तो श्रोता के चित्त में प्रसंगानुकूल नवीन कम्पन्न उत्पन्न करते हैं।'

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आदिकालीन साहित्य अपभ्रंश साहित्य के समान्तर विकसित हुआ है। काव्य-शैलियों, काव्य रूपों आदि की विशाल परम्पराओं के अध्ययन की द ष्टि से इस काल के साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

गद्य साहित्य

आदिकाल में काव्य रचना के साथ-साथ गद्य रचना की दिशा में भी कुछ स्फुट प्रयास लक्षित होते हैं। 'राउलबेल' (चम्पू), 'उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण' और 'वर्णरत्नाकर' इस संदर्भ में उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

राउलबेल

रोडा कृत राउलबेल एक शिलांकित कृति है जिसका पाठ बम्बई के प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय से उपलब्ध कर प्रकाशित कराया गया है। विद्वानों ने इसका रचनाकाल दसवीं शताब्दी माना हैं। यह गद्य-पद्य मिश्रित चम्पू काव्य की प्राचीनतम हिंदी कृति है।

इसकी रचना 'राउल' नायिका के नख-शिख वर्णन के प्रसंग में हुई है। आरम्भ में कवि ने राउल के सौंदर्य का वर्णन पद्य में

किया है और फिर गद्य का प्रयोग किया गया है। 'राउल बेल' से हिंदी में नख-शिख वर्णन की श ंगार-परम्परा आरंभ होती है। कवि ने विषय-वर्णन बड़ी तन्मयता से किया हैं। नायिका राउल का श ंगार आकर्षण से भरा हुआ है। वह सहज रूप में जितनी सुन्दर है, उतनी ही सहज-सुन्दर उसकी सज्जा भी है। इस सौन्दर्य के अनुकूल ही उसकी भावदशा है। रोडा ने उपमा, उत्प्रेक्षा, अलंकारों का प्रयोग करके रूप-वर्णन को प्रभावशाली बना दिया हैं।

इसकी भाषा में हिंदी की सात बोलियों के शब्द मिलते हैं। जिसमें राजस्थानी प्रधान है।

उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण

दामोद शर्मा इस कृति के रचियता है। वह महाराजा गोबिन्द चन्द्र के सभा पंडित थे। गोबिन्द चन्द्र का शासनकाल 1154 ई० माना गया है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार "उक्ति-व्यक्ति प्रकरण' एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण व्याकरण ग्रंथ है। इसमें बनारस और आस-पास के प्रदेशों की संस्कृति और भाषा आदि का अच्छा प्रभाव पड़ता है और उस युग के काव्य रूपों के संबंध में भी थोड़ी-बहुत जानकारी होती है।

इस ग्रंथ की भाषा का एक उदाहरण इस प्रकार है-

"वैद पढब, स्म ति अभ्यासिब, पुराण दंखण, धर्म करब।"

इससे गद्य और पद्य दोनों शैलियों की हिंदी भाषा में तत्सम् शब्दावली के प्रयोग की बढ़ती हुई प्रव त्ति का पता चलता है।

वर्ण रत्नाकर

इस कृति के रचनाकार ज्योतिरीश्वर ठाकुर हैं। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार इसकी रचना चौदहवीं शताब्दी में हुई होगी।

इसकी भाषा में कवित्व, अलंकार तथा शब्दों की तत्समता की प्रव त्तियाँ मिलती है। गद्य में नायिका का वर्णन करते हुए ज्योतिरीश्वर लिखते हैं-

"पुनु कयिसनि नायिका। कामदेवक नगर अइसन शरीर निष्कलंक
चाँद अइसन मुह। कंदल खंजीरीर अइसन लोचन।
यमुना के तरंग अइसन भुजइ।"

इन पंक्तियों से 'वर्ण रत्नाकर' एक शब्दकोश सा प्रतीत होता है, किन्तु सौन्दर्य ग्रहिणी प्रतिभा भी साथ ही साथ स्पष्ट प्रभाव दिखा रही है। हिंदी गद्य के विकास में 'राउलवेल' के पश्चात 'वर्ण रत्नाकर' का योगदान भी कम नहीं कहा जा सकता। इन कृतियों के अतिरिक्त और भी रचनाएँ इस समय में लिखी गई होंगी, लेकिन किसी कारणवश वे उपलब्ध नहीं हो सकी। ये कृतियाँ गद्य-धारा के प्रवाह की अखंडता को कायम रख सकी हैं।

आदिकालीन साहित्य का जनजीवन जिन अनुभूतियों से प्रकट हुआ था, उनमें पर्याप्त विविधता थी। समाज की विभिन्न स्थितियों पर द ष्टिपात करके सहज जीवन का मार्ग सुलझाने से लेकर हठयोग की साधना तक आदिकाल में मुक्तक काव्य रूप का जो विस्तार हुआ, निश्चय ही उसका पर्याप्त ऐतिहासिक महत्त्व है।

प्राकृत और अपभ्रंश से लेकर 'राउलबेल' तक श ंगार की जो परम्परा आयी थी, वह भक्तिकाल को प्रभावित करती हुई रीतिकाल तक चली आयी।

इस समय में एक साथ धार्मिक मनोव त्तियों का सात्त्विक चित्रण मिलता है, श ंगार की सहज सरसता दिखाई देती है, वीररस के द श्य भी मिलते हैं तथा ऐसे चित्र सामने आते हैं, जिनसे एक स्वतंत्र जाति के अहंकार का पूरा बिंब उसकी समस्त टूटन के साथ उभरता है।

आदिकालीन साहित्य में छंद-प्रयोग की विविधता देखी गई है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने छंद की द ष्टि से कुछ सीमाएँ बनायी हैं। उन्होंने श्लोक को लोकिक संस्कृत का, गाथा को प्राकृत तथा दोहा को अपभ्रंश का मुख्य छंद स्वीकार किया है।

आदिकालीन साहित्यिक रचनाओं की विशेषताएँ

1. **युद्धों का सजीव चित्रण**: आदिकाल के हिंदी साहित्य में युद्धों का ऐसा सजीव, चित्रात्मक, एवं ध्वन्यात्मक वर्णन हुआ

है कि उन रासो-ग्रंथों को पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है मानो तलवारें खडक रही हो।

2. **वीर रस तथा उत्साह की प्रधानताः** आदिकालीन साहित्य में उत्साह जन्य वीर रस की अभिव्यक्ति हुई है जैसे युद्ध के लिए प्रेरित करते हुए क्षत्रिय वीरों को इस प्रकार उत्साहित किया जाता है कि क्षत्रियों का सार्थक जीवन प्रकट हो उठता है।

3. **प्रकृति चित्रणः** प्रकृति के विभिन्न उपादानों यथा पर्वतों, नदियों, व क्षों, सरोवरों, पशु-पक्षियों, मेघ एवं बिजली आदि का चित्रण एवं वर्णन बहुत ही मार्मिक ढंग से मिलता है।

   साधारण लोगों के जीवन चित्रण का अभाव भी आदिकालीन साहित्य की विशेषता है।

डिंगल तथा पिंगल भाषा की प्रधानता ही आदिकालीन साहित्य की भाषागत विशेषता है। वैसे देशी भाषा अवहट्ट तथा शौरसेनी अपभ्रंश का भी प्रयोग मिलता है।

आदिकालीन साहित्य में वीर रस की प्रधानता युद्धों के सजीव चित्रण, आश्रयदाताओं की प्रशंसा, प्रकृति चित्रण ऐतिहासिकता का अभाव, राष्ट्रीयता का अभाव, अतिश्योक्तिपूर्ण कथन, ओजगुण तथा डिंगल भाषा का प्रयोग करने की प्रव त्तियाँ देखी जा सकती हैं। यद्यपि वीरगाथा काल में साधारण लोगों का जीवन संबंधी साहित्य बहुत ही कम मिलता है परन्तु खुसरो की पहेलियाँ तथा मुकरियाँ इस अभाव की पूर्ति करने वाली हैं।

आदिकालीन साहित्य में प्रबन्धात्मक मुक्तक तथा वीर गीतों संबंधी जो ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं उनमें से जो रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं वे प्रबन्ध काव्यात्मक 'रासो' ग्रंथ ही है। 'रासो' शब्द का संबंध विभिन्न विद्वानों ने रास (आनन्द) रसायन, रहस्य तथा रासक शब्द से जोड़ा है। वास्तव में रासो का एक अन्यार्थ (रास्सा झगड़ा) जो राजस्थानी में प्रयुक्त होता है, वह भी, ग्रहणीय है। क्योंकि वास्तव में रासो ग्रंथ में वीर नायक की प्रशस्ति के अतिरिक्त युद्धों का ही वर्णन सांगोपांग हुआ है। इन ग्रंथों में एक राजा का दूसरे राजा या सामन्त से सकारण युद्ध, नखशिख वर्णन तथा प्रकृति चित्रण का सुन्दर समावेश हुआ है।

आदिकालीन साहित्य की कुछ बातें उल्लेखनीय रही हैं-

संदिग्ध रचनाएँ

आदिकाल के अधिकांश रासो-ग्रंथो की ऐतिहासिक प्रामाणिकता संदिग्ध ही है। जैसे हिंदी के प्रथम महाकाव्य 'प थ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता आज तक भी संदिग्ध ही है। इसी प्रकार 'बीसलदेव रासो', 'खुमान रासो' तथा 'परमाल रासो' की प्रामाणिकता भी संदिग्ध है।

ऐतिहासिक तथ्यों का अभाव

आदिकालीन साहित्य में भारतीय ऐतिहासिक घटनाओं, तिथियों तथा पात्रों की नामावली प्रामाणिक सिद्ध नहीं होती।

संकुचित राष्ट्रीयता

आदिकालीन साहित्य में सार्वभौम राष्ट्रीयता का अभाव है क्योंकि छोटे-छोटे राजा अपने ही क्षेत्र को राष्ट्र मान बैठे थे। हिंदी के आदिकाल में साहित्यिक रचनाएँ तीन धाराओं के रूप में प्रवाहित हो रही थी। प्रथम धारा संस्कृत साहित्य की थी। दूसरी धारा का साहित्य प्राकृत एवं अपभ्रंश में लिखा जा रहा था। तीसरी धारा हिंदी भाषा मे लिखे जाने वाले साहित्य की थी। ज्योतिष दर्शन और स्म ति आदि विषयों पर टीकाएँ और टीकाओं पर भी टीकाएँ लिखी जाती थीं। नवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक कन्नौज एवं कश्मीर संस्कृत साहित्य रचना के केन्द्र रहे और इसी बीच अनेक आचार्य, कवि, नाटयकार तथा गद्यकार उत्पन्न हुए। आनन्दवर्द्धन, अभिनव गुप्त, कुन्तक, क्षेमेन्द्र, भोजदेव, मम्मट, राजशेखर विश्वरनाथ भवभूति व जयदेव इसी युग की देने हैं। इसी समय शंकर, भास्कर, रामानुज आदि आचार्य हुए। संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत एवं अपभ्रंश का श्रेष्ठ साहित्य भी प्रभूत मात्रा में इसी युग में लिखा गया। जैन आचार्यों तथा पूर्वी सीमान्त पर सिद्धों ने अपभ्रंश के साथ लोकभाषा को रचनाओं में प्रयुक्त किया। इस काल में बज्रयानी और सहजयानी सिद्धों, नाथों, जैन धर्म के अनुयायी विरक्त मुनियों एवं ग हस्थ उपासकों और वीरता एवं श ंगार का चित्रण करने वाले चारणों, भाटों आदि रचनाएँ विशेष रूप से रची गई।

प्रतिनिधि रचनाकार

चन्दवरदाई

महाकवि चन्दवरदायी, वीरगाथा काल के प्रतिनिधि महाकवि हैं। चन्दवरदायी प थ्वीराज चौहान के सखा, दरबारी कवि तथा

सामन्त थे। ये भट्ट जाति में जगात गोत्र के थे। ऐसा कहा जाता है कि इनका जन्म भी प थ्वीराज की जन्म तिथि को हुआ ओर म त्यु भी प थ्वीराज की पुण्य तिथि के साथ हुई। चन्दवरदायी का जन्म लाहौर में जबकि प थ्वीराज को अपना दत्तक पुत्र बनाकर दिल्ली का राज्य भी प थ्वीराज को सौंप दिया तो उसी समय के आस-पास चन्दवरदायी भी दिल्ली आकर प थ्वीराज के सखा तथा राजकवि बन गए। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि चन्दवरदायी का समय (संवत् 1205-1149) के मध्य माना गया है।

चन्दवरदायी षडभाषा, व्याकरण, काव्य साहित्य, छन्द शास्त्र ज्योतिष, पुराण तथा नाटक आदि अनेक विधाओं में पारगंत थे। युद्ध में, आखेट में, सभा में तथा यात्रा में प थ्वीराज के साथ ही रहते थे। जब शहाबुद्दीन गोरी प थ्वीराज को कैद करके गजनी ले गया तो कुछ दिनों पश्चात् चन्दवरदायी भी मुहम्मद गोरी के दरबार में पहुँचा तथा दिल्ली से जाते हुए अपने महाकाव्य को अपने पुत्र जल्हण के हाथ सौंप गया। कहते हैं चन्दवरदायी ने प थ्वीराज के साथ मिलकर शब्दभेदी बाण की कला में निपुण प थ्वीराज द्वारा गोरी को मरवाने की सफल योजना बनाई।

वीरगाथाकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि चन्द दिल्ली के अन्तिम हिन्दू सम्राट, प थ्वीराज के राजसामन्त और राजकवि थे। उनके जन्म के विषय में कहा जाता है कि 'रासो' के आधार पर उनका जन्म संवत् 1205 ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम बैण अथवा राववेणु था। चन्द षट्भाषाओं, व्याकरण, काव्य, साहित्य, छन्दशास्त्र, ज्योतिष, पुराण आदि अनेक विषयों के ज्ञाता थे। चन्द के पुत्रों में जल्हण सबसे योग्य था और इसी ने अधूरे रासो को चन्द की म त्यु के पश्चात् पूरा किया था। ऐसी जनश्रुति प्रचलित है। 'रासो' में चन्द ने अपने आश्रयदाता और मित्र राजा प थ्वीराज का यशोगान किया है। 'रासो' चन्दवरदाई का अमर काव्य है।

अमीर खुसरो

अमीर खुसरो भारतवर्ष के बहुत बड़े प्रतिष्ठित कवि रहे हैं। सौन्दर्य, संस्कृति, प्रकृति, हास्य-व्यंग्य आदि विषयों को अपनी अनुभूति के केन्द्र में रखकर उन्होंने भारतवर्ष को कालजयी और उजासमयी रचनाएँ प्रदान की हैं। अमीर खुसरो अनूठी प्रतिभा के अनूठे साहित्य-साधक थे। उनका जन्म 1250 ई० एटा (उत्तर प्रदेश) जिले के पटियाली नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम सैफुद्दीन महमूद था। बाल्यावस्था में ही अमीर खुसरो के पिता का किसी लड़ाई में निधन हो गया था। इसके पश्चात उन्हें अपने नाना के यहाँ आश्रय ग्रहण करना पड़ा। खुसरो के नाना का घर भारतीय सभ्यता और भारतीय संस्कृति का केन्द्र था। वहीं पर उन्होंने हिंदी के साथ, संस्कृत, फारसी, तुर्की, अरबी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं में कुशलता दक्षता प्राप्त की। 18 वर्ष की कम आयु में ही खुसरो दिल्ली के साहित्यिक गलियारों में चर्चित हो गए।

अमीर खुसरो कई सुल्तानों के आश्रय में रहे। पहला आश्रय उन्हें मलिक छज्जू जो उनका भतीजा था, का मिला। इस आश्रय स्थल पर खुसरो दो वर्ष तक रहे। इसके बाद वे बादशाह बलबन के छोटे पुत्र बुगराखाँ के दरबार में तीन साल तक रहे। तत्पश्चात् खुसरो बलबन के बड़े लड़के सुल्तान हाकिम के दरबार मुलताना में लगभग पाँच वर्ष तक रहे। इसके अतिरिक्त खुसरो सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी, सुल्तान कुतुबुद्दीन, सुल्तान मलिक तुगलक, मुहम्मद तुगलक आदि के दरबार में रहे। दरबारों में रहकर उन्होंने अनेक प्रकार के जीवनानुभवों को प्राप्त किया।

प्रख्यात सूफी संत हजरत निजामुद्दीन औलिया अमीर खुसरो के गुरू थे। 1325 ई० में उनका निधन हो गया था। गुरू निधन से अमीर खुसरो पागल से हो जाते हैं और अपना सर्वस्व लुटाकर गुरू की समाधि-सेवा में लीन हो जाते हैं। हजरत निजामुद्दीन की म त्यु के थोड़े समय पश्चात ही उनका भी निधन हो जाता है। अमीर खुसरो की समाधि हज़रत निज़ामुद्दीन के पैताने बनी हुई है, जो सभी जाति और सभी धर्म के लोगों के लिए पूजनीय है। अमीर खुसरो को अपनी मात भाषा पर गर्व था। उन्हें हिन्दुस्तानी होने का भी गर्व था। उन्होंने स्वीकार किया कि वे हिंदी को पानी के सहज प्रवाह के समान बोल सकते है-'तुर्क-ए-हिन्दुस्तानयम मन हिन्दवी गोयम चू आब'-उन्होंने हिन्दी को तुर्की और फारसी से भी श्रेष्ठ माना है। यथा-

> **"इस्बात मुफ्त व हुज्जत कि राजेहू अस्त।**
> **बर पारसी व तुर्की अज़ अल्फाज़े खुशग़वार।।**

अमीर खुसरो प्रतिभावान विद्वान थे उन्हें लोकशास्त्र ओर लोकसाहित्य का भी सम्यक ज्ञान था। इसीलिए वे अरबी, फारसी, तुर्की, हिंदी में पर्याप्त रचनाएँ रचने में समर्थ हो सके। विद्वानों ने अमीर खुसरो की रचनाओं की संख्या 199 बताई है, किन्तु प्राप्त रचनाओं की संख्या 28 के लगभग रही है। खुसरो की प्रसिद्ध फारसी रचनाओं का ब्योरा इस प्रकार है-वस्तुल हयात,

गुर्रतुल कमाल, निहायतुल कमाल, वकीयः नकीयः, किरानुस्सादैन, ताजुल-मुफ्तूह, नुह सिप्हर, खम्स-ए-खुसरो, खिज्रनामा, तारीख-ए-अलाई, तुगलकनामा आदि।

अमीर खुसरो फारसी के सिद्ध कवि थे, लेकिन उन्होंने हिंदी में भी पर्याप्त रचनाए रची है। उनकी रचनाओं की संख्या निश्चित नहीं कही जा सकती है। उन्होंने हिंदी की वकालत करते हुए अपने ग्रंथ 'गुर्रतुलकमाल' की भूमिका में लिखा है-

"चूं मन तूती-ए-हिन्दम अर रासत पुर्सी
ज़मन हिन्दवी पुर्स ता नग्ज़ गोयम।

अर्थात सही समझों तो मैं हिन्दुस्तान की तूती हूँ। यदि तुम मुझसे मीठी बातें करना चाहते हो तो हिन्दवी में बात करो। अमीर खुसरो की हिंदी में कोई प्रामाणिक रचना नहीं मिलती है। इसका अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता कि उन्होंने हिंदी में रचनाएँ ही नहीं की है। डा० भोलानाथ तिवारी ने खुसरो की प्राप्त हिन्दी कविताओं को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया है। (i) पहेलियाँ, (ii) मुकरियाँ, (iii) निस्बतें, (iv) दो सखुन, (क) हिंदी (ख) फारसी और हिंदी (v) ढकोसले, (vi) गीत, (vii) कव्वाली, (viii) फारसी-हिंदी मिश्रित छंद, (ix) सूफी दोहे, (x) ग़ज़ल, (xi) फुटकल छंद, (xii) खालिकबारी। अमीर खुसरो की जनसामान्य में अतिशय प्रतिष्ठा का कारण उनकी पहेलियाँ, मुकरियाँ, निस्बतें दो सखुन आदि हैं। ये लोक जीवन से ही केवल सम्बद्ध नहीं है, वरन् लोकजिह्य पर भी विद्यमान हैं। पहेलियां बौद्धिक व्यायाम से सम्बद्ध होती हैं, मुकरियाँ, 'मुकरने' के भाव से जुडी है और निस्बतें शब्दक्रीड़ा से युक्त हैं।

पहेली- (बूझ पहेली)

बीसो का सिर काट लिया।
न मारा न खून किया।

मुकरी-

सगरी रैन मोरे सँग जागा।
भोर भयी तो बिछुड़न लागा।
बाके बिछुडे फाटत हिया।
ऐ सखि साजन, न सखि दिया।

अमीर खुसरो प्रेम और सौन्दर्य के विशिष्ट रचनाकार हैं। उनकी प्रेम-चेतना और सौन्दर्य-भावना में भारत के अध्यात्म जगत को देखा जा सकता है। अमीर खुसरो की अध्यात्म चेतना लोक चेतना से भरपूर अभिषिक्त हैं इसमें प्रकृति का, रहस्य का, जीवन का, समाज का सच्चा प्रतिरूप द ष्टिगोचर होता है। अमीर खुसरो द्वारा रचित बाबुल का गीत उनकी सौंदर्य और राग की समग्र अनुभूति को उजागर करता है, यथा-

काहे को बियाहे बिदेस, सुन बाबुल मोरे।
हम तो बाबुल तोरे बाग की कोयलिया,
कुहकत घर-घर जाऊँ, सुन बाबुल मोरे।
चुग्गा चुगत उड़ि जाऊँ, सुन बाबुल मोरे।

हास्य और व्यंग्य भी अमीर खुसरो की कविता की अन्यतम प्रव त्ति है। दरबार ने उनकी इस प्रव त्ति को पैदा किया और उसी ने इसको विकास और प्रकाश भी दिया। हास्य और व्यंग्य के माध्यम से खुसरो ने बन्धुत्व, सद्‌भाव, निरभिमानता, आशा, आह्लाद, आनन्द, मैत्री आदि को सम्प्रेषित करने का प्रशंसनीय प्रयास किया हैं।

अमीर खुसरो का भाषा पर असाधारण अधिकार था। उन्होंने कविता को लोक से जोड़ने का प्रयास किया। उनकी भाषा हिन्दी या खड़ी बोली है जो उस समय दिल्ली के आसपास बोली जाती थी। इसके साथ ही, उनकी भाषा पर बोलियों का भी प्रभाव देखा जा सकता है। अमीर खुसरो ने अपनी रचनाओं में पद, दोहे गीत, गज़ल आदि काव्य रूपों का विधान किया है। उनके यहाँ अलंकार का अनायास व्यवहार भी देखा जा सकता है। खुसरो की अभिव्यक्ति-शक्ति उनकी संवेदना को और अधिक व्यापक तथा प्रभावशाली बनाने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

अमीर खुसरो बड़े ही विनोदप्रिय और सहृदय व्यक्तित्व के स्वामी थे, सामान्य जन-जीवन में विश्वास रखते थे। जन-जीवन के साथ घुल-मिलकर रहना उनका स्वभाव बन चुका था। इसीलिए उनकी रचनायें भी महत्त्वपूर्ण स्थान अर्जित कर पायी।

रचनाएँ

अमीर खुसरो का हिंदी साहित्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है क्योंकि उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा भिन्न-भिन्न विषय प्रस्तुत कर मनोविनोद और मनोरंजन की सामग्री प्रस्तुत की। अपभ्रंश मिश्रित और डिंगल भाषा पर उन्होंने सर्वप्रथम खड़ी बोली और ब्रजभाषा का सफलतापूर्वक प्रयोग किया।

उनकी रचनाओं में भारतीय और इस्लामी संस्कृतियों के समन्वय का पता चलता है। उनकी रचनाओं से लोक-भावनाओं का परिचय प्राप्त हो जाता है। उनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार थी-खलिकबारी, पहेलियाँ, मुकरियाँ, दो सुखने, गजल, आदि। सवंत् 1381 ई० में इनकी म त्यु हो गई थी।

विद्यापति

जन्म परिचयः विद्यापति का जन्म 1360 ई० के आस-पास मिथिला प्रांत में बिसपी नामक ग्राम में हुआ। इनके पिता गणपति ठाकुर उच्च कोटि के विद्वान तथा राज्यमंत्री थे। इससे विद्यापति को प्राचीन साहित्य एवं भाषाओं के अध्ययन की पूर्ण सुविधा मिलती रही।

रचनाएँ: विद्यापति की प्रमुख रचनाएँ भूपरिक्रमा, पुरूष परीक्षा, लिखनावली, विभागसार, वर्षकृत्य, गंगावाक्यावली, कीर्तिलता, कीर्तिपताका आदि रही हैं।

यद्यपि विद्यापति ने अनेक ग्रंथ संस्कृत तथा अवहट्ट भाषा के लिखें, पर इनकी प्रसिद्धि विशेषता 'पदावली' के कारण ही हुई। 'पदावली' के कारण ही विद्यापति मैथिली कोकिल के नाम से प्रसिद्ध है। विद्यापति समय-समय पर जो पद मैथिली भाषा में गाते रहे, उन्हीं का संग्रह 'विद्यापति पदावली' के नाम से प्रसिद्ध है।

'विद्यापति की पदावली' का हिन्दी साहित्य में अपना प थक महत्त्व रहा है। इसमें ऐसे पद पाए जाते हैं जिनका आदर राजाओं के प्रासादों से लेकर झोंपड़ियों तक समान रूप से है।

विद्यापति के बारे में कहा जा सकता है कि वे श ंगारी कवि थे। विद्यापति शैव थे। इसलिए उनकी शिवस्तुति और दुर्गास्तुति में भक्ति भावना की जो गहनता मिलती है राजा-कृष्ण विषयक कविता में नहीं मिलती। कहा जाता है कि विद्यापति के पदों को सुनकर महाप्रभु चैतन्य भक्ति के आवेश में लोट-पोट हो जाते थे।

विद्यापति का व्यक्तित्व विविधमुखी है। हिन्दी काव्यकारों में विद्यापति का स्थान बहुत ऊँचा माना जाता है। इनकी कविता इतनी लोकप्रिय हुई कि बंगाली, बिहारी और हिंदी प्रदेश के लोग इन्हें अपना-अपना कवि सिद्ध करने लगे। काल के हिसाब से विद्यापति की गणना आदिकाल के अन्तर्गत मानी जाती है।

विद्यापति अनेक राजाओ के आश्रय में रहे। विद्यापति का सारा जीवन राजदरबारों में बीता। वे कीर्तिसिंह, देवसिंह, शिवसिंह, पदमसिंह, हरिसिंह आदि राजाओं के आश्रम में रहे। शिवसिंह ने मिथिला पर अनेक वर्षों तक राज किया। वास्तव में शिवसिंह का शासनकाल विद्यापति के जीवन का उत्कर्ष काल था। राजा शिवसिंह उनके आश्रयदाता ही नहीं, बाल सखा भी थे।

विद्यापति का व्यक्तित्व और कृतित्व अन्यतम है। इसीलिए कवि को सम्मान के रूप में अनेक उपधियाँ दी गई। उदाहरणार्थ-अभिनव जयदेव, कविरंजन, कवि शेखर राजपण्डित आदि। विद्यापति अनेक आयामी प्रतिभा के रचनाकार थे। संस्कृत, अवहट्ठ और मैथिली भाषा पर उनका विशेष अधिकार था। इसीलिए तीनों ही भाषाओं में उनकी रचनाएँ प्राप्त होती हैं। रचनाओं का विवरण इस प्रकार है-

संस्कृत रचनाएँ: (i) पुरूष परीक्षा, (ii) भूपरिक्रमा, गंगा वाक्यावली, विभासागर, दानवाक्यावली, दुर्गा भक्तिरंगिणी, गयापत्तलक, वर्णकृत्य, मणिमंजरी।

अवहट्ठ भाषा में रचित पुस्तकें: कीर्तिलता, कीर्तिपताका।

मैथिली की रचनाएँ: इसमें विद्यापति कृत पद आते हैं। इन पदों की संख्या लगभग एक हजार है। विद्यापति ने इन पदों की रचना विविध भाव दशाओं में की है। ये गीत विद्यापति की अमरता को कायम रखे हुए हैं।

विद्यापति की कविताओं मे उनकी भक्ति भावना का सहज सम्प्रसार देखा जा सकता हैं। राधा-कृष्ण, सीता-राम, शिव-शक्ति, गंगा, भैरवी गणेश आदि देवी-देवों से सम्बन्धित अनेक पद उन्होंने लिखे हैं। अनेक विद्वानों ने उन्हें भक्त स्वीकार किया है। उनको भक्त प्रमाणित करने वाली अनेक किंवदंतियाँ भी लोक में व्याप्त हैं। इन विविध आयामों के विकास और विस्तार को देखकर यह स्वीकार करने मे संकोच नहीं रह जाता है कि विद्यापति की कविता-विद्यापति के पद, भक्ति-भावना की सहज प्रकृति से पुष्ट है।

विद्यापति की कविता का दूसरा आयाम श्ंगार और सौन्दर्य है। विद्यापति का दरबार में रहना, सौंदर्य का शरीरी-मांसल वर्णन करना, वयःसन्धि का निरूपण करना, जयदेव की परम्परा में आना विद्यापति को श्ंगारी कवि की परिधि में लाता है। उन्होंने हरिकथा के समान अनन्त सौंदर्यकथा की अपूर्ण अवतारणा की है। उसके मर्म को समझाते-बुझाते हुए उन्होंने लिखा है-

सखि हे, पुछसि अनुभव मोय।
सेहो पिरीत अनुराग बखाइत।
तिले-तिले नूतन होय।
जनम अवधि हम रूप निहारल।
नयन न तिरपित भेल।।

विद्यापति सौंदर्य के सच्चे सर्जक, साधक और आराधक थे। सौंदर्य की सान्द्रता उनका शील और वही उनकी शक्ति थी। विद्यापति सौंदर्य में खूब रमे थे और सौंदर्य की सजलता ने उनके मन तथा प्राणों को सरसित कर रखा था। इसी कारण वे ऐसे सौंदर्य की सर्जना कर सकने में समर्थ हो सके है जो द्रष्टा को भावक, विस्मित, चकित करता है। विद्यापति के पद, चाहे वे श्ंगारमूलक हों यह भक्तिमूलक हों, सौंदर्यमूलक हो या सांस्कृतिमूलक, गीतात्मक है। हिंदी जगत् के विद्वानों ने उन्हें हिंदी गीतिकाव्य परम्परा का वास्तविक प्रवर्त्तक स्वीकार किया है। अपनी गीतिशैली की मधुरता, मदिरता तथा प्रभविष्णुता के लिए विद्यापति हिन्दी साहित्य में अनूठे-अनुपम हैं। वैयक्तिकता, रागात्मकता, काल्पनिकता, भाव एकता, संक्षिप्तता, शैलीगत सुकुमारता, संगीतात्मकता, लोकतत्त्व आदि विशेषताओं से विद्यापति के गीत आनन्दित आन्दोलित है। उनके गीतों में एक गीत अवलोकनीय है-

डम डम डम्फ दिमिक द्रिमि मादल, रूनु झुनु मंजीर बोल।
किंकिनि रनरनि बलआ कनकनि, निधु बने राम तुमुल उतरोल।
बीन खाब मुरज स्वर मंडल, सा रि ग म प ध नि सा बहुविधभाव।
घटिता घटिता धुनि म दंग गरजनि, चंचल स्वर मण्डल करू राव।।
स्रमभरे गलित लुलित कबरीजुत, मालति माल विथारल मोति।
समय बसंत रास रस वर्णन, विद्यापति मति छोमित होति।

भाषा और शिल्प की द ष्टि से भी विद्यापति की प्रतिभा अनेकोन्मुखी है। संस्कृत, अवहट्ठ और मैथिली में उन्होंने रचनाएँ की हैं। उनके समस्त गीत, मैथिली भाषा में हैं, जो उनकी कीर्ति की ध्वजाएँ हैं।

विद्यापति का देहावसानः विद्यापति की म त्यु 1450 ई० में मानते हैं।

3. हिंदी साहित्य का भक्तिकाल

परिवेशः ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक

भक्ति काल का उद्भव विशेष परिस्थितियों में हुआ है। भारत मुस्लिम शासन में अनेक विषमताओं से जूझ रहा था। ऐसे में जनमानस को आस्था विश्वास और भक्ति से ही जीने का मार्ग मिलता है। इस काल की प्रमुख प्रव त्तियाँ रेखाकंन योग्य है

ऐतिहासिक परिवेश

हिंदी साहित्य का मध्यकाल भारत में मुस्लिम साम्राज्य के क्रमिक उत्थान-पतन का युग है। उस समय का शासक दिल्ली का सुलतान मुहम्मद बिन तुगलक उत्तर से दक्षिण तक अपने राज्य का विस्तार करना चाहता था। इसी विचार का लक्ष्य कर उसने दिल्ली की अपेक्षा देवगिरी को अपनी राजधानी बनाया और उसका नाम दौलताबाद रखा। 1375 से 1700 विक्रमी संवत् तक दास, खिलजी, तुगलक, सैयद, लोदी, मुगल आदि वंशों के व्यक्ति दिल्ली की गद्दी पर रहे। जाति और संस्कृति की द ष्टि से ये विदेशी ही बने रहे। भले ही इनमें से अनेक का जन्म भारत में हुआ था। धार्मिक दमन, राज्य विस्तार के लिए निरन्तर युद्ध तथा ऐश्वर्य और विलासिता का जीवन इनकी विशेषताएँ रही जिसके परिणामस्वरूप हिंदी धर्म व वैष्णन भक्ति के पुनर्जागरण को बल मिला। अपने धर्म की रक्षा के लिए एक अखिल भारतीय धार्मिक आन्दोलन, जिसे भक्ति आन्दोलन भी कहा जाता है, प्रारम्भ हुआ। भक्ति आन्दोलन के प्रेणेता दार्शनिक, संत, महात्मा और समाज-सुधारक थे जिन्होंने एक ओर इस्लाम की आक्रामकता के विरुद्ध जन-जन को संगठित किया, वहीं दूसरी ओर सद्भाव स्थापित करने का प्रयास भी किया।

सोलहवीं शती के मध्य में बाबर ने मुगल सल्तनत की नींव डाली उसने मेंवाड़ के राणा सांगा को पराजित करके राजपूतों के प्रतिरोध को रोक दिया, किन्तु पठानों ने हिम्मत न हारी। पठान शासक शेरशाह सूरी ने हुमायूँ को पराजित किया। शेरशाह के उत्तराधिकारी अयोग्य निकले ओर मुगलों का नेत त्त्व अकबर जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति के हाथ में आ गया। कालान्तर में सम्राट अकबर के सामने देश के छोटे-छोटे हिन्दू और मुसलमान शासकों ने एक-एक कर घुटने टेक दिये। अकबर का प्रतिरोध महाराणा प्रताप ने किया और वे आजीवन लड़ते रहे। शाहजहाँ के शासन के अन्तिम दिनों में बुन्देलखण्ड में चंपतराय और महाराष्ट्र में शिवजी ने स्वतन्त्रता का झंडा ऊँचा किया।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्तिकाल का सामान्य परिचय देते हुए कहा है, "देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रहा गया।" कोई भी साहित्य युग परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता है। किन्तु भक्तिकालीन साहित्य परिस्थितियों से बहुत कम प्रभावित हुआ। एक भक्तिकालीन कवि ने लिखा है।

'सन्तन कहा सीकरी सों काम।'

वह न तो राजदरबार को महत्त्व देते थे और न प्राकृत-जन का गुणगान करते थे। मुस्लिम शासक केवल अनुदार एवं असहिष्णु ही नहीं कहे जा सकते। उनके शासन-काल में संस्कृत एवं देशी भाषाओं के साहित्य, संगीत और कला को प्रोत्साहन मिला। जौनपुर के सुल्तानों ने शास्त्रीय संगीत का पुनरूदार करवाया तथा 'संगीत शिरोमणि' नामक संस्कृत ग्रंथ का निर्माण कराया। भक्ति काव्य का धर्म विकास मुगल-साम्राज्य के समय में हुआ है, किन्तु राजनीतिक व्यवस्था के प्रति असन्तोष इन कवियों की वाणी में यत्र-तत्र अवश्य मिल जाता है। जैसे-

"म्लेच्छनि भार दुखित मेंदिनी।"

"वेद धर्म दूरि गये, भूमि चोर भूप भये।
साधु सीद्यमान जान रीति पाप पीन की ।।"

सामाजिक परिवेश

इस युग में सामाजिक परिस्थितियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति में आदान-प्रदान हुआ। उस समय तक हिन्दू-मुसलमानों में परस्पर विवाह हो जाते थे। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हिन्दुओं और मुसलमानों में पूर्ण समन्वय स्थापित हो गया था। कुछ मुसलमान शासक हिन्दुओं के साथ अत्यंत कठोर व्यवहार करते थे। अलाउद्दीन ने दोआब के हिन्दुओं से उपज का 50 प्रतिशत भाग कर के रूप में बड़ी कठोरता से वसूल किया था। उस युग के हिन्दुओं की आर्थिक विपन्नता का चित्र खींचते हुए 'तारीखे फिरोजशाही' के लेखक बर्नियर का कहना है कि "उन हिन्दुओं के पास धन संचित करने के कोई साधन नहीं रह गये थे और उनमें से अधिकांश को निर्धनता, अभावों एवं आजीविका के लिए निरन्तर संघर्ष में जीवन बिताना पड़ता था। प्रजा के रहन-सहन का स्तर बहुत निम्न कोटि का था। करों का सारा भार उन्हीं पर था। राज्य पद उनको अप्राप्त थे।" तुलसीकृत 'कवितावली' की निम्नलिखित पंक्तियों से तत्कालीन समाज की स्थिति स्पष्ट झलकती हैं-

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि।
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।।
जीविका विहीन लोग सीघमान सोच बस।
कहँ एक एकन सौं, कहाँ जाई, का करी।।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति का विवेचन करते हुए लिखा है। "दैनिक जीवन, रीति रस्म, रहन-सहन, पर्व-त्यौहार आदि की द ष्टि से तत्कालीन भारतीय समाज, सुविधा-सम्पन्न और असुविधा-ग्रस्त इन दो वर्गों में विभक्त था। प्रथम वर्ग में राजा-महाराजा, सुल्तान, अमीर, सामन्त और सेठ-साहूकार आते थे, जिनमें मनमाने ढंग से वैभव प्रदर्शन की उल्लासपूर्ण प्रव त्ति पायी जाती थी। द्वितीय वर्ग में किसान, मजदूर, सैनिक, राज्य-कर्मचारी और घरेलू उद्योग-धन्धों में लगी सामान्य जनता थी जो प्रथा-परम्परा का पालन कर संतोष की साँस ले लिया करती थी।"

हिन्दुओं में जाति-पाति के बंधन दिन-प्रति-दिन कठोर होते जा रहे थे, किन्तु इनके प्रति आवाज भी उठ रही थी। महाराष्ट्र के नामदेव की भाँति उत्तर भारत में रामानन्द और उनके शिष्य कबीर खुलकर इसका विरोध कर रहे थे। उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों का खंडन किया। हिंन्दू-मुस्लिम एकता का संतों का प्रयास मुगल-काल में संगीत, कला आदि के क्षेत्रों में दोनों संस्कृतियों के समन्वय में देखा जा सकता है।

तत्कालीन साधु-समाज पर भी पाखण्ड की काली छाया मंडराने लगी थी। भारतीय मुस्लिम समाज की अवस्था हिन्दुओं से अधिक भिन्न न थी। वर्ग-व्यवस्था में आस्था न रखने वालों में भी किसी न किसी प्रकार का आपसी भेदभाव बना हुआ था। इन दिनों दास प्रथा भी प्रचलित थी। हिन्दू कन्याओं को सम्पन्न मुसलमान अधिकाधिक संख्या में क्रय करके अपने घरों में रख लिया करते थे। कुलीन नारियों का अपहरण करवाकर अमीर लोग अपना मनोरंजन करते थे। स्त्रियों को पुरूष जैसा स्तर व सम्मान प्राप्त नहीं था। मुस्लिम महिलाओं की स्थिति हिन्दू स्त्रियों से अधिक भिन्न न थी। बहु विवाह प्रथा के कारण हरमों में इनकी दुर्गति हुआ करती थी। मुस्लिम समाज अपने मूल रूप को खोकर एक प्रकार से भारतीयकरण में प्रचलित हो गया था।

सांस्कृतिक परिवेश

तत्कालीन समय में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियाँ एक-दूसरे के निकट आई। संगीत, चित्र तथा भवन-निर्माण कलाओं में दोनों संस्कृतियों के उपकरणों में समन्वय स्थापित हुआ। समन्वयात्मकता भारतीय संस्कृति की मूलभूत विशेषता है। पुराणों में समन्वयात्मकता को जाग त करने व उसे बढ़ावा देने का यथा-सम्भव प्रयास किया गया है। मूर्ति-पूजा, तीर्थ यात्रा, धर्म-शास्त्रों का सम्मान, कर्म फल में विश्वास, अवतारवाद अथवा सगुण भक्ति का ही सर्वत्र आधिपत्य दिखाई देता है। भारतीय समाज में समय-समय पर विदेशी और विजातीय तत्त्वों के आते रहने के कारण परस्पर संघात होते रहे हैं। परन्तु इन्हीं में से होकर एक जीवनी-शक्ति का संचार भी होता रहा है कि भारतीय साहित्य डूबते-डूबते उभरकर इस युग की एक अन्य उल्लेखनीय विशेषताओं में गिना जा सकता है, जिनकी धुरी पर हिन्दू जीवन चक्र चलता रहा और इस्लाम के भारत-प्रवेश के पूर्व तक अविकृत रूप में प्रचलित रहा। मध्यकालीन हिन्दू समाज के दो पक्ष उभरकर हमारे सामने आते हैं। एक वह जो शास्त्रों का समर्थक है और दूसरा वह जो परम्परागत विश्वासों तथा मान्यताओं अथवा स्वानुभूति का पक्षधर है। यह दूसरा पक्ष ही पौराणिक पक्ष है। परवर्ती आचार्यो ने इन्हीं मतों की व्याख्या प्रतिव्याख्या के रूप में विशिष्यद्वैत, केवलाद्वैत, द्वैताद्वेत, शद्धाद्वैत आदि मतों

की स्थापना की। इन सभी में ईश्वर को निरपेक्ष मानकर उसकी भक्ति का प्रतिपादन किया गया है, परन्तु आत्मा, परमात्मा, मोक्ष, पुनर्जन्म आदि के सिद्धान्त प्रायः ज्यों के त्यों रह गये हैं।

ईश्वर और मनुष्य के बीच संबंध स्थापित करने का एक माध्यम धर्म है। जाति, कुल, देश-काल और परिस्थितियों से निरपेक्ष होकर नैतिक दायित्व का निर्वाह करना धर्म है। धर्माचार अथवा नैतिकता समाज परक है और धर्म साधनाव्यक्तिनिष्ठ। साध्य और साध का एकीकरण साधना के माध्यम से होता है। परन्तु इस काल में धर्म-साधनों की बाढ़ सी आ गई और गुप्त साधनाओं के अन्तर्गत तुच्छ साधनाएँ भी इसमें प्रवेश कर गई। धर्माचार के नाम पर अनाचार, मिथ्याचार और व्याभिचार तक पलने लग गया। फलस्वरूप ज्ञान-चर्चा की आड़ में पाखण्ड़ को प्रश्रय मिलने लगा और समाज में एक प्रकार की अराजकता फैल गई।

मध्यकाल में अरूचि और संस्कार का प्राधान्य था। इस कारण बहुधा सांमजस्य बिगड़ जाता था। और सन्तुलन बनाये रखने के लिए बार-बार समन्वय की ओर उन्मुख होना पड़ता था। इस प्रकार मध्यकाल में भारत की सामाजिक संस्कृति का रूप और अधिक निखरने लगा। ताजमहल और लाल किला भारतीय तथा ईरानी वास्तुकलाओं के सम्मिश्रण के उत्तम निदर्शन है। नायक-नायिकाओं के नयनाभिराम चित्रों तथा विविध कलाओं के रूप में दोनों जातियों की चित्र कलाओं का समागम दर्शनीय है। एलोरा के समीप कैलास मन्दिर में शिव की मूर्ति के सिर के ऊपर बोधिव क्ष स्थित है। खजुराहो से उपलब्ध कोक्कल के वैधनाथ मन्दिर वाले शिलालेख में ब्रह्म, जिन, बुद्ध तथा वामन को शिव का स्वरूप कहा गया है।

साहित्यिक परिवेश

भक्तिकाल में जिस साहित्य की रचना हुई वह अधिकांश पद्य में अर्थात् छन्दोबद्ध काव्य रूप में है। उस समय संस्कृत तो उच्च हिन्दू वर्ग के लोगों की काव्य भाषा थी। शाही दरबारों में अरबी-फारसी को प्रयोग होता था। परन्तु हिन्दी की लोकभाषाओं का, विशेष रूप से अवधी तथा ब्रजभाषा का, काव्य में प्रयोग होता था। कबीर ने तो ऐसी मिली-जुली लोकभाषा का प्रयोग किया है जिसे सधुक्कड़ी खिचड़ी अथवा सन्ध्या भाषा कहा गया है। भक्तिकाल में प्रबन्धकाव्य, मुक्तक काव्य तथा गीतिकाव्य की रचना हुई। संस्कृत भाषा के कुछ ग्रंथों की टीकाएँ भी हुई। हिंदी भाषा और साहित्य ने भक्तिकालीन परिवेश में उच्चकोटि का सहित्य रचने की प ष्ठभूमि नहीं बल्कि चरम विकास प्राप्त किया। कबीर, सूर तथा तुलसी की रचनाएँ साहित्यिक परिवेश की अनुपम देन हैं।

भक्तिकालीन साहित्य चरमोत्कर्ष का साहित्य था। इसकी विशेषताएँ अन्य कालों से कही अधिक चरम सीमा पर थी।

1. **गुरू की महिमा का वर्णनः** सभी संतों तथा भक्तों ने गुरू की महत्ता का स्वीकार किया है, क्योंकि भक्तिमार्ग में वही व्यक्ति दीक्षित होता है जिस पर गुरू की कृपा हो। बिना गुरू के ज्ञान होना संभव नहीं। निर्गुण भक्तिधारा के प्रमुख संत कबीर ने तो गुरू को गोबिन्द अर्थात् ईश्वर से भी पहले पूजने की बात कहीं है जैसे कि-

   "गुरू गोबिन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पाय।
   बलिहारी गुरू आपकी, जिन गोबिन्द दियो बताय।।"

   सगुण भक्तिधारा में तुलसीदास ने भी ऐसा ही कहा है-

   "बिना गुरू कहां ते पाऊं, दीजो ज्ञान हरिगुण गाऊं।" अथवा

   रामचरिमानस के आरम्भ में बालकाण्ड में लिखा है।

   "बन्दौं गुरूपद पदुम परागा"।

   सूरदास ने भी गुरू की महत्ता एवं कृपा को स्वीकार किया है। सूफी संत जायसी ने भी भक्तिमार्ग दिखाने वाले गुरू को ही स्वीकारते हुए लिखा है

   "गुरू सूआ जेहि पंथ दिखावा"।

2. **नामकरण अथवा नाम की महत्ताः** ईश्वर को चाहे निर्गुण मानने वाले सन्त हो अथवा सगुण मानने वाले भक्त कवि हो सभी ने राम, कृष्ण तथा अल्लाह के नाम को स्मरण करने की बात कही है। तुलसी ने तो कलियुग में केवल 'राम नाम' को आधार मान कर 'कलियुग केवल नाम अधारा' कहा, संत कवियों ने राम और रहीम में कोई अंतर नहीं माना, परन्तु कबीर के 'राम' और तुलसी के 'राम' में भिन्नता देखी जा सकती है।

3. **भक्तिभावना का प्राधान्यः** सारे भक्ति साहित्य में भक्ति की प्रधानता दिखाई पड़ती है। संत कबीर ने भक्ति के बिना सारे संसार को डूबा हुआ और मरा हुआ ही माना है। वे कहते है-

"हरि भक्ति जाने बिना बूढ़ि मुआ संसार।"

भक्तों ने भी उस ज्ञान का खण्डन किया है जो भक्ति के विरूद्ध है। सूरदास ने गोपियों के माध्यम से उद्धव को कहलवाया है -

"बार-बार वचन निवारो, भक्ति विरोधी ज्ञान तिहारो"।

4. **प्रेमभाव की अभिव्यक्तिः** भक्तिकालीन साहित्य में मनुष्यमात्र तथा ईश्वर के प्रति सच्चे प्रेम की भावना देखी जा सकती है। संत कबीर ने तो पंडित अथवा विद्वान होने की कसौटी ही प्रेम को बताया है।

"पोथी पढ़ि पढ़ि, जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढि सो पंडित होय।।

सूफी संतों ने भी प्रेम को भक्ति का आधार माना है।

5. **संसार के बंधनों से मुक्त होने का भावः** सम्पूर्ण भक्तिसाहित्य में ईश्वर या ब्रह्म के प्रति राग तथा संसार के प्रति वैराग्य की भावना पाई जाती है। भक्ति को ही सांसारिक बधनों से छुटकारा दिलाने का साधन माना है। इसी वैराग्य भाव को मुक्ति अथवा मोक्ष की कामना भी कहा जा सकता है।

6. **सत्संग, भजन-कीर्तन व संगीत का महत्वः** भक्तिकालीन साहित्य में सत्संग की महत्ता स्वीकार करते हुए संतों की संगति को भक्तिभाव तथा शुद्धाचरण के लिए हितकर बताया है। सूर एवं तुलसी ने भी सत्संग की महत्ता स्वीकार की है। भक्ति साहित्य में लोक–संगीत तथा कीर्तन को भी उचित स्थान दिया गया है। तुलसी ने लिखा है,

"बिनु सत्संग विवेक न होई"।

कबीर, तुलसी, सूर सभी ने सत्संग की महत्ता पर बल दिया है।

7. **जाति पाँति तथा ऊँच–नीच के भाव का खण्डनः** भक्ति साहित्य के क्षेत्र में जाति–पाँति, ऊँच–नीच तथा छूआ–छूत का सभी संतों, सूफियों तथा भक्त कवियों ने प्रबल खण्डन किया है। यह भी हो सकता है कि अधिकांश सन्त तथा भक्त तथाकथित निम्न जातियों अथवा हीन समझी जाने वाली जातियों से संबंधित थे। इसके अतिरिक्त भगवत् भक्ति में ऊँच–नीच के भाव को सर्वथा त्याज्य ही माना गया हैं क्योंकि ईश्वर की आराधना करने वाले एक समान है। कबीर ने कहा भी है।

"जाति न पूछो साध की, पूछ लीजियों ग्यान।
मोल करो तलवारि का, पड़ी रहन दो म्यान।।

तुलसी का भी मानना है कि

जाति–पांति पूछे नहि कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।।

8. **भगवान तथा भक्त संबंधी भावः** सच्चे भक्त तो भगवान को भी अपने वश में कर लेते है। भगवान से व्यक्तिगत संबंध स्थापित करने की बात संत कवि तथा सूफी भी मानते हैं। ऐसे कई प्रसंग भक्तिकालीन साहित्य में देखे जा सकते है जहाँ भक्त की लाज बचाने को भगवान को किसी न किसी रूप में आकर सहायता करनी पड़ी

"जब जब भीड़ पड़ी संतन पर आकर प्राण बचायें।"

इसी सन्दर्भ में किसी सूफी संत ने कहा है

"खुदी को जो खुद से जुदा देखते हैं
खुदी को मिटाकर खुदा देखते हैं।"

9. **लोक भाषा में लोक जीवन का दर्शनः** भक्तकाल के सभी संतों, भक्तों तथा रचनाकारों ने संस्कृत भाषा को न अपनाकर लोकभाषा ब्रज, अवधी अथवा सधुक्कड़ी मिली जुली साधारण बोलचाल की भाषा को अपने साहित्य का माध्यम बनाया।

भक्ति आन्दोलन

भक्ति भगवान के प्रति मानव की प्रेम भावना का प्रवाह है। इस भावना–प्रवाह से वह तो आनन्द की अनुभूति करता ही है जबकि उससे दूसरे लोग भी आनन्द की अनुभूति प्राप्त करते हैं। भक्ति का मूल उद्गम हमें वेदों से ही दिखाई पड़ने लगता है। वह उनकी भक्ति–भावना का ही प्रयास है। जिससे ऋषियों ने गहरी श्रद्धा और अनुरक्ति के द्वारा देवताओं पर ऋचाएँ लिखी हैं। विष्णु को भगवान रूप में प्रतिष्ठा मिल चुकी थी। गीता इसका प्रमाण है। इस कृति में ज्ञान, भक्ति और कर्म का श्रेष्ठ समन्वय भी हुआ है। पुराण साहित्य तो भक्ति की द ष्टि से विशेष महत्त्व रखते है। पुराण–काल में वैष्णव भक्ति का बड़ा ही चमत्कारी वर्णन मिलता है।

भक्ति आंदोलन के उदय का एक कारण मुसलमान आक्रान्ताओं को भी माना जाता है। इस सन्दर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत इस प्रकार है–"देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके मंदिर गिराये जाते थे, देव मूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरूषों का अपमान होता था और वे कुछ न कर सकते थे। ऐसी स्थिति में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतन्त्र राज्य भी नहीं रह गये। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के नीचे हिन्दू जनता पर उदासी छाई रही। अपने पौरूष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करूणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?"

भक्ति आन्दोलन के आचार्यों में शंकराचार्य, रामानुज, निम्बार्क, रामानन्द, महवाचार्य, बल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु आदि रहे हैं। हिंदी का भक्ति आन्दोलन संवत् 1400 से 1700 तक का माना गया हैं। इसमें प्रमुख रचनाकार कबीरदास, रैदास, नानक, जायसी, सूरदास, मीरा, तुलसीदास, आदि दिग्गज कवियों ने भक्ति कालीन परिवेश को आन्दोलन के रूप में उद्घाटित किया है।

भक्ति के उत्थान का त तीय काल 1375 ई० से माना जाता है। इस काल में हिंदी साहित्य भक्ति से ओत–प्रोत था। इसलिए हिंदी–साहित्य के इतिहास में यह काल 'भक्ति–काल' कहलाता है। मध्यकालीन भक्ति का विकास दो शाखाओं में हुआ–निर्गुण तथा सगुण। इनकी भी दो–दो शाखायें है। निर्गुण में ज्ञानाश्रयी तथा प्रेमाश्रयी शाखा एवं सगुण में कृष्ण तथा राम–शक्ति की शाखा। इस प्रकार भक्ति आन्दोलन का संक्षेप में विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है-

भक्ति दो भागों में प्रवाहित होकर चली

(1) सगुण (2) निर्गुण

सगुण भक्ति आगे दो भागों में विभाजित हुई-

(1) रामभक्ति (2) कृष्ण भक्ति

निर्गुण भक्ति के भी दो भाग इस प्रकार है-

(1) संत मत(ज्ञानाश्रयी) (2) सूफी मत (प्रेमाश्रयी)

भक्ति आंदोलन के विषय में विभिन्न विद्वानों के मत इस प्रकार रहे हैं-

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्ति आन्दोलन को पराजित मनोव त्ति का परिणाम तथा मुस्लिम राज्य की प्रतिष्ठा की प्रतिक्रिया माना है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है, "अपने पौरूष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करूणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग की क्या था।" डा० ताराचन्द आदि विद्वानों ने माना है कि भारतीय भक्ति आन्दोलन मुस्लिम संस्कृति के सम्पर्क की देन है और शंकराचार्य, निम्बार्क, रामानुज, रामानन्द, वल्लभाचार्य, आलवार, संत तथा लिंगाचत आदि सम्प्रदायों की दार्शनिक मान्यताओं पर मुस्लिम प्रभाव है।

प्रायः अधिकांश विद्वानों का मत है कि भक्ति का बिखा ऐसा नहीं है जो विदेशों से लाया गया हो। न ही यह निराशा प्रव त्तिजन्य है और न ही किसी प्रतिक्रिया का फल। वस्तुतः यह एक प्राचीन दर्शन–प्रवाह और प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा की एक अविच्छिन धारा हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है, "नया साहित्य (भक्ति साहित्य) मनुष्य–जीवन के एक निशचित लक्ष्य और आदर्श को लेकर चला। यह लक्ष्य हैं भगवद्भक्ति, आदर्श, शुद्ध सात्विक जीवन और साधन, भगवान के निर्मल चरित्र और सरस लीलाओं का गान। इस साहित्य को प्रेरणा देने वाला तत्त्व भक्ति है। इसीलिए यह साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य से अति उत्तम है।

मध्यकालीन भक्ति साहित्य प्रायः पद्यमय है और वहाँ साहित्य काव्य का पर्याय है। इसीलिए काव्य रसिकों अथवा साहित्य—पारखियों का ध्यान अचानक ही उन मानदण्डों की ओर आकृष्ट हो जाता है जिन्हें उत्कृष्ट काव्य की कसौटी मान लिया जाता है और जो किसी न किसी काव्यशास्त्र परम्परा का अनुसरण करते हैं। कबीर, जायसी, सूर तथा तुलसी जैसे संवेदनशील इस काल में छाये रहे। इस समय संस्कृत की टीकाओं, व्याख्याओं की स ष्टि होती रही।

धार्मिक संघर्ष के इस युग में तत्कालीन बादशाहों तथा राजाओं के भक्ति कवियों ने प्रशस्ति, श ंगार, रीति, नीति आदि से सम्बन्धित मुक्तक और प्रबन्ध दोनों प्रकार की रचनायें की। इस काल में वीर-रस प्रधान काव्यों की रचना हुई तथा इसके साथ-साथ अन्य रसों की भी रचनाएँ लगातार आती रहीं। मुगल बादशाह शेरशाह सूरी और शहजादे तथा अनेक प्रादेशिक मुस्लिम शासकों के अतिरिक्त अनेक हिन्दू राजाओं ने हिंदी भाषा को प्रोत्साहन तो दिया परन्तु संस्कृत के समानान्तर हिंदी को वह सम्मान न मिल सका जो उसे मिलना चाहिए था। राजस्थानी ब्रजभाषा की रचनाएँ अधिकता में देखने को मिलती हैं और इसमें भक्ति-भावना का प्रखर स्वर है। धर्म की व्याख्या करने वाले इन काव्यों में उच्च-कोटि के काव्य के दर्शन होते हैं। उसकी आत्मा भक्ति है, इसका जीवन स्रोत रस है और उसका शरीर मानव है। इस युग का भक्ति साहित्य हृदय, मन और आत्मा को प्रभावित करता है। यह साहित्य लोक तथा परलोक दोनों की ही व्याख्या मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करता है।

भक्तिकालीन साहित्यकारों द्वारा उठाये गये आन्दोलनकारी कदम

1. **रूढ़ियों तथा आडम्बरों का विरोधः** प्रायः सभी संत कवियों ने रूढ़ियों, मिथ्या आडम्बरों तथा अन्धविश्वासों की कटु आलोचना की है। इसका कारण इन लोगों का सिद्धों तथा नाथ पन्थियों से प्रभावित होना है। ये लोग तत्कालीन समाज में पाई जाने वाली इन कुप्रव त्तियों का कड़ा विरोध कर चुके थे। इन कवियों ने मूर्तिपूजा, धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसा, व्रत, रोजा, नमाज, हज्ज इत्यादि विधि-विधानों का कड़ा विरोध किया है।

   "बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
   जो जन बकरी खात है, तिनको कौन हवाल।।"

   × × × ×

   "पत्थर पूजें हरि मिले तो मैं पूजूं पहार।
   ताते वह चक्की भली पीस खाय संसार।।"

   × × × ×

   "कांकर पत्थर जोरि के, मस्जिद लई बनाय।
   ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, बहिरा हुआ खुदाय।।"

2. **आत्मसमर्पण की भावनाः** संत एवं भक्ति साहित्य में सभी इतिहासकारों की मान्यता रही है क्योंकि भक्ति के क्षेत्र में जब तक कोई व्यक्ति अपने अहं अथवा 'मैं' की भावना को मिटा नहीं देता, तब तक उसे किसी प्रकार की आध्यात्मिक उपलब्धि नहीं हो सकती। तुलसी ने तो अपनी दास्य भक्ति में किसी प्रकार का अहं नहीं रखा।

3. **भजन तथा नाम की महत्ता पर बलः** संत कवियों ने ईश्वर-प्राप्ति के लिए भजन तथा नाम-स्मरण को परमावश्यक माना है। इसीलिए उन्होंने कहा है कि-

   "सहजो सुमिरन कीजिए, हिरदै माहिं छिपाइ।
   होठ-होठ सूँ न हिलै, सकै नहीं कोई पाइ।।

   संत कवि ब्राह्य-विधानों से परिपूर्ण किसी भी साधना-पद्धति में आस्था नहीं रखते। अपने आराध्य का, मन को एकाग्र कर, स्मरण करना ही उनके लिए यहाँ अभिप्रेत रहा है।

4. **गुरू की महत्ता पर बलः** सभी संतों ने ब्रह्म-साधना के लिए सद्गुरू का पथ-प्रदर्शन अनिवार्य माना है। सद्गुरू ही उन्हें परम तत्त्व के रहस्य से परिचित करा, उनके हृदय में उसके प्रति अनन्य प्रेम की भावना उत्पन्न करता है। नामदेव ने गुरू-महिमा को व्यक्त करते हुए कहा है।

   "सुफल जनम मोको गुरू कीना। दुख बिसार सुख अंतरदीना।
   ज्ञान जान मोको गुरू दीना। राम नाम बिन जीवन हीना।।"

5. **नारी के प्रति द ष्टिकोण**: संत कवियों ने सती एवं पतिव्रता नारियों की प्रशंसा की है। नारी के सत् पक्ष का निरूपण करते हुए कबीर ने लिखा है-

"पतिव्रता मैली भली, काली कुचित कुरूप।
पतिव्रता के रूप, वारौं कोटि सरूप।।"

उन्होंने नारी की कभी भी निन्दा नहीं की है। केवल नारी के कामिनी रूप की निन्दा जरूर की है, उसे माया पथ भ्रष्ट करने वाली माना है।

भक्ति आन्दोलन का उदय दक्षिण-भारत को मानना या न मानना । विद्वानों में चर्चा का विषय रहा है। भक्ति आन्दोलन का उदय बेशक दक्षिण में न माना जाये, लेकिन यह स्वीकार करना पडेगा कि पाँचवी और छठी शताब्दियों में दक्षिण में जैनों और बौद्धों का पतन होता है और शैवों तथा वैष्णवों को अपने कार्य में विजय प्राप्त होती हे। निसंदेह कहा जा सकता है कि, तत्कालीन आलवारों तथा नायनमारों का भक्ति आन्दोलन में विशेष महत्त्व रहा है। इसी महत्त्व को निरूपित करते हुए नन्द लाल सिन्हा ने कहा है-"भारत की एकता तथा हिन्दुत्व का सुधार उपस्थित करने के लिए भक्ति आन्दोलन को प्रव त्त करके दक्षिण के आलवार तथा नामनमार सतों ने हमें आभारी कर दिया।" भक्ति आन्दोलन के इतिहास में आलवारों और नायनमारों का योगदान चिरस्मरणीय रहेगा। आलवारों को वैष्णव कहा गया है। इनकी संख्या 12 मानी गयी है। इनकी रचनाएँ 'दिव्य प्रबन्धम्' में संकलित हैं जिसका सम्पादन नाथमुनि ने नौवीं शती के अन्त में किया था। 'दिव्य प्रबन्धम्' में सकलित पदों की संख्या लगभग चार हजार है। नायनमार को शैव कहा जाता है। इनका भी उद्देश्य हिन्दू धर्म की रक्षा करना था। इन्होंने अपनी सारी-अर्चना शिव को ध्यान में रखकर की है। तिरूज्ञान सम्बन्धक, अप्पर, सुंदर मूर्ति नायनमारों में प्रधान है। भक्ति के प्रचार और विस्तार में इनका विशेष महत्त्व है। भक्ति आन्दोलन को तीव्र गति प्रदान करने में आचार्यों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। इस आन्दोलन में जिन आचार्यों ने कार्य को गति दी, उनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है-

शंकराचार्य

शंकराचार्य का कार्यक्षेत्र सारा भारतवर्ष था। उन्होंने भक्ति का ही प्रचार नहीं किया, वरन् आने वाली पीढ़ी का मार्ग दर्शन भी किया। अद्वैत का प्रचार करना ही उनके जीवन का लक्ष्य था। अनैतिकता अन्धविश्वास तथा हिंसा से भक्ति को मुक्ति दिलाने का श्रेय शंकराचार्य को ही है।

रामानुज

के० एल० नीलकान्त शास्त्री ने लिखा है कि भक्ति आन्दोलन के संगठनात्मक तत्त्वों को बलशाली सिद्ध करने का सबसे बड़ा श्रेय आचार्य रामानुज को है। आचार्य की सबसे महत्त्वपूर्ण देन भक्ति जगत् में बुद्धि पक्ष तथा हृदय पक्ष दोनों का समन्वय करना था। रामानुज का दार्शनिक सिद्धान्त विशिष्टताद्वैतवाद है।

निम्बार्क

निम्बार्क के दार्शनिक सिद्धान्त को द्वैताद्वैत कहते हैं। इनके दो ग्रन्थ बताये जाते हैं-वेदान्त पारिजात सौरभ तथा दशश्लोभी। हिंदी को इस सम्प्रदाय की महत्त्वपूर्ण देते है। घनानंद इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत आते हैं।

रामानन्द

रामानंद के विषय में प्रचलित है कि

"भक्ती द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानन्द।
परगट किया कबीर ने, सप्तदीप नवखंड।।"

इस सन्दर्भ में देवीशंकर अवस्थी ने कहा है कि उत्तर भारत में वैष्णव साधना का पहला केन्द्र काशी में श्री वैष्णवों का बना। दक्षिण में भक्ति रामानन्द के गुरू राघवानंद लाए थे। परंतु संभवतः दक्षिण की परिस्थितियों में पले-बढ़े राघवानंद उत्तर भारत की मनोव त्ति के अनुकूल नहीं बन पाये थे, परंतु अपने विद्रोही शिष्य रामानंद को अलग सम्प्रदाय चलाने की आज्ञा देकर एक समुचित कार्य किया था। रामानन्द ने भक्ति के क्षेत्रर में अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये। उन्होंने भक्ति का द्वार सभी वर्गो और जातियों के लिए खोला, देवासन-पूजासन पर राम-सीता की प्रतिष्ठा की और लोक भाषाओं को मान प्रदान किया। उनकी दो रचनाएँ भी प्राप्त है। 'वैष्णव मताब्ज-भास्कर' तथा 'श्री रामार्चन पद्धति'।

मध्वाचार्य

आचार्य मध्वाचार्य का जन्म 1197 में कर्नाटक में माना जाता है। इन्होंने द्वैतवादी मत का प्रवर्त्तन किया था। गीता भाष्य, विष्णुतत्त्व निर्णय, बाह्मसूत्र भाष्य, उपनिषद् भाष्य, सदाचार स्म ति आदि उनके प्रधान ग्रन्थ हैं। मध्वाचार्य ने मायावाद का विरोध करते हुए उसका खण्डन किया था। चैतन्य सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक चैतन्य महाप्रभु माध्व सम्प्रदाय के भक्त थे।

बल्लभाचार्य

बल्लभाचार्य शुद्धाद्वैतवाद (पुष्टिमार्ग) के प्रवर्त्तक थे। आचार्य बल्लभ मायावादियों तथा नास्तिकों के घोर विरोधी थे। बल्लभाचार्य की भक्ति पद्धति का नूतन रूप और उसमें कृष्ण के माधुर्य भाव की उपासना की स्वीकृति अपनी विशिष्ट देन है जो विष्णु स्वामी के युग में किसी भी रूप में प्रचलित नहीं थी। आचार्य बल्भ ने संवत् 1556 में श्री नाथ के मन्दिर का निर्माण करवाया था। हिंदी भक्ति साहित्य की सम द्वि में इस मन्दिर का बड़ा महत्त्व रहा है। इस सन्दर्भ में देवीशंकर अवस्थी ने लिखा है कि "यह मंदिर आगे चलकर न केवल बल्लभ सम्प्रदाय का ही केन्द्र पीठ बना, बल्कि अष्टछाप के गायक कवियों की स जन-भूमि भी बनने का गौरव इसी ने प्राप्त किया। हिंदी के भक्ति साहित्य के निर्माण में इस मंदिर का स्थान अक्षुण्य रहेगा।"

चैतन्य महाप्रभु

चैतन्य महाप्रभु प्रभावशाली व्यक्तित्व के स्वामी थे। भक्तिमार्ग में दीक्षित हो जाने के बाद शास्त्रार्थ में उनकी रूचि समाप्त हो गई, उपदेशक बनने की उन्हें याद नहीं रही तथा जयदेव, विद्यापति आदि की कृतियों, ब्रह्म संहिता तथा लीला शुक बिल्वमंगल के 'कृष्णों कर्णाम त' को छोड़कर अपने भावावेश में कुछ पढ़ने का कभी अवसर नहीं मिला। राधा कृष्ण की लीलाओं का स्मरण और भावन, कृष्ण-संकीर्तन एवं हरिबोल का निरन्तर उच्चारण बस यही उनके नैमित्तक कर्म, धर्म, प्रचार या शास्त्रार्थ थे। पर इनके पीछे संवेग की सान्द्रता, आत्मा की गहनता एवं गूढ़तम पुकार थी जिसने उन्हें इतना मोहक और प्रभावशाली बना दिया। इसके अतिरिक्त भक्ति आन्दोलन के अन्य आचार्यों में स्वामी हरिदास, गोस्वामी, हित हरिवंश आदि का भी नाम बड़े गौरव से लिया जाता है।

भक्ति आन्दोलन सामाजिक विषमता को मिटाकर सामाजिक समता का सन्देश देता है। वह जाति-पाँति, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब में किसी प्रकार का अन्तर नहीं मानता है। भक्ति आंदोलन वैयक्तिक और सामाजिक शुचिता पर भी बल देता है। चारित्रिक उन्नति का पक्ष लेता है। भक्ति आंदोलन धार्मिक उदारता पर टिका हुआ है। यह धार्मिक सद्भाव का पक्षधर है। ब्रह्मचारों-बाह्याडम्बरों का तीव्र विरोध भक्ति-आंदोलन का मूल लक्ष्य रहा है। इसी लक्ष्य के कारण कबीर आदि संतों ने हिन्दू तथा मुसलमान किसी में कोई भेद नहीं माना है। वे दोनों धर्मावलम्बियों को समझाते हुए कहते हैं कि-

"कह हिन्दू राम पियारा, तुरक कहै रहमाना।
आपस में दोउ लरि लरि मुये, मरम न काहू जाना।

हिंदी भाषा एवं साहित्य के लिए भक्ति आंदोलन एक वरदान था। इस आन्दोलन से सम्बद्ध कवियों ने लोक भाषा में काव्य की रचनाएँ की है। कबीर ने एकता स्थापना का बड़ा विनम्र और प्रसन्न प्रयास किया है लेकिन कबीर ने संस्कृत को अस्वीकार करते हुए उसे कूप जल माना है। यथा-

"कबिरा संस्कीरत है कूप जल, भाषा बहता नीर।"

भक्तिकालीन साहित्य सच्चे अर्थों में संवेदनशील रहा है। साहित्यकारों का मानस स्वच्छ और उदार था। इसीलिए उनका साहित्य जन-भावनाओं की सहज, प्रव त्तियों, परिस्थितियों, विकृतियों और विडम्बनाओं का एक विशाल शब्द-चित्त है। दूसरे शब्दों में उन्होंने तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्र अंकित किया है। भक्तिकालीन आन्दोलित साहित्य, आशावाद और आस्था की भावना संस्थापित करने में सहायक साहित्य है। यह जीवन-शक्ति का अजस्र स्रोत है। इसमें युग-बोध और युग-चेतना का व्यापक रूप प्रतिफलित है। भक्तिकालीन साहित्य रचियताओं ने तत्कालीन समाज को दोषमुक्त कर परिष्कृत बनाने की चेष्टा की है।

विभिन्न काव्य धाराएं : वैशिष्ट्य और अवदान

संत काव्य धारा वैशिष्ट्य और अवदान

सन्त काव्य में कृत्रिम सौन्दर्य नहीं है, बल्कि उसमें वनराजि का स्वाभाविक सौन्दर्य है। इस काव्य में आध्यात्मिक विषयों की अभिव्यक्ति हुई है। पर वह जन-जीवन में डूबी हुई अनुभूतियों से सम्पन्न है। सन्त काव्य में अनेक धार्मिक सम्प्रदायों के प्रभाव को आत्मसात् किया है, किन्तु इसमें धर्म अथवा साधना की कोई शास्त्रीय व्याख्या नहीं है, इस काव्य में जन-जीवन के सत्य की अभिव्यक्ति अलंकार विहीन सीधी-साधी भाषा में हुई है। सन्त साहित्य साधना, लोक पक्ष तथा काव्य वैभव सभी द ष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। सन्त-कवियों की विचार सरणि निजी अनुभूतियों पर आध त है। सन्त साहित्य में एक अद्‌भुत विचारगत साम्य है।

1. **अवतारवाद का खण्डनः** सभी संतों ने राम कृष्ण अथवा अन्य किसी भी रूप में ईश्वर के अवतार लेने को मिथ्या और भ्रामक बताया है। बहुदेववाद का भी खंडन किया है। सभी संतों ने ब्रह्म, विष्णु तथा महेश की इसीलिए निन्दा की है कि वे भी माया ग्रस्त हैं। इस प्रकार की विचारधारा इस्लाम धर्म के एकेश्वरवाद के भी निकट है तथा शंकर के अद्धैत के अनुरूप भी है हिन्दू-मुस्लिम दोनों जातियों में विद्वेषाग्नि को शान्त करके उनमें एकता की स्थापना के लिए इन्होंने एकेश्वरवाद का संदेश सुनाया-

   "यह सिर नवे न राम कूं, नाहीं गिरियो टूट।
   आन देव नहिं परसिये, यह तन जायो छूट।।"

2. **जाति-पाँति के भेद-भाव का विरोधः** संत कवि जाति-पाँति के नियमों के कट्टर विरोधी थे। इनकी द ष्टि में सब मनुष्य बराबर थे तथा भगवद्-भक्ति का समान अधिकार था।

   "जाति पाँति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।

   संत सामाजिक क्रान्तिकारी थे। उन्होंने सामाजिक अन्याय का विरोध किया था। छुआछूत, हिन्दू-मुसलमान में विद्वेष और भेदभाव की उन्होंने खुलकर निन्दा की थी और मानव-मात्र को समान मानने की आवाज बुलंद की थी।

3. **रहस्यवादी प्रव त्तिः** संत कवियों की रहस्य भावना सूफी कवियों के रहस्यवाद से भिन्न है, क्योंकि संतों ने आत्मा के संबधों की समानता पति-पत्नी के संबंधों से करते हुए स्पष्ट रूप में यही माना है कि आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए आतुर हो उठती है। संतों की रहस्यात्मक पद्धति भारतीय परम्परा के अनुकूल है। इस रहस्यवाद का मूल आधार अद्धैतवादी चिन्तन है। कबीर के कथनानुसार-

   "जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहिर भीतर पानी।
   फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना, यह तत् कहो गयानी।।"

   संतों के रहस्यवाद पर योग का भी स्पष्ट प्रभाव है जहाँ इंगला, पिंगला और सहसदल कमल आदि प्रतीकों का प्रयोग है। इनमें रहस्यवाद वहाँ भी मिलता है, जहाँ वे उलटबाँसियों के रूप में गुह्य साधना का वर्णन करते हैं।

4. **संत काव्य में युग चेतनाः** संत काव्य की महत्ता प्रतिपादित करते हुए डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने कहा है "संतों का व्यक्तित्व सच्चे अर्थों में संवेदनशील था। उनका मानस स्वच्छ और उदार था। इसीलिए उनका साहित्य जन-भावनाओं की सहज, प्रव त्तियों, परिस्थितियों, विकृतियों, तथा विडम्बनाओं का एक विशाल शब्द-चित्र है। दूसरे शब्दों में, उन्होंने तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्र अंकित किया है। संतकाव्य, आत्मविश्वास, आशावाद और आस्था की भावना संस्थापित करने में सहायक साहित्य है। यह जीवन-शक्ति का अजस्र स्रोत है। इस काव्य का प्रमुख प्रयोजन है- त्रस्त, संतप्त, उपेक्षित, उत्पीड़ित मानव को परिज्ञान प्रदान करना। इसमें जीवन का स्वरूप, विश्लेषण और व्याख्या उपलब्ध होती है। संक्षेप में, निर्गुण काव्य आचरण की पवित्रता का संदेश लेकर जनता के सम्मुख आया।

5. **निर्गुण की उपासनाः** संत काव्य की मूल भावना निर्गुण की उपासना है। उनका निर्गुण बौद्ध साधकों के शून्य से प थक है। वह संसार के प्रत्येक कण में व्याप्त है, वही प्रत्येक साँस में है। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, कबीर का कहना है -

   "पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
   कहिबे कूँ सोभा नहीं, देख्या ही परवान।।"

यद्यपि संतों ने अपने इस निर्गुण निराकार ब्रह्म को पौराणिक नाम ही प्रदान किया है, जैसे राम, कृष्ण, केशव, गोपाल आदि परन्तु इन पौराणिक महापुरूषों से अन्य बातों में वह इनसे नितान्त भिन्न है। कबीर ने इसी भेद को स्पष्ट करते हुए कहा है-

"राम नाम तिहुँ लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना।।"

6. **गुरू की महत्ताः** सभी संतों ने ब्रह्म-साधना के लिए सद्गुरू का पथ-प्रदर्शन अनिवार्य माना है। सद्गुरू ही उन्हें परम तत्व के रहस्य से परिचित करा, उनके हृदय में उसके प्रति अनन्य प्रेम की भावना उत्पन्न करता है। नामदेव ने गुरू महिमा को व्यक्त करते हुए कहा है-

"सुफल जनम मोको गुरू कीना। दुख बिसार सुख अंतर दीना।
ज्ञान जान मोको गुरू दीना। राम नाम बिन जीवन हीना।।"

7. **रूढ़िवाद और मिथ्याडंबर का विरोधः** भक्ति कालीन सभी संतों ने रूढ़ियों, मिथ्याडंबरों तथा अन्धविश्वासों की कटु आलोचना की है। इसका कारण इन लोगों का सिद्धों और नाथपंथियों से प्रभावित होना है। कबीर ने तिलक, छाया, माला, रोजा, नमाज, योग की क्रिया आदि को व्यर्थ ठहराया और इनके मानने वालों को फटकारा। उनकी भर्त्सना में चिढ या खीझ नहीं, परोक्ष रूप से उपदेश का भाव उभर रहा है-

"दुनिया कैसी बावरी, पाथर पूजन जाय।
घर की चकिया कोई न पूजै, जेहि का पीसा खाय।।"

8. **लोक कल्याण की उत्कट भावनाः** संतों की साधना में वैयक्तिकता की अपेक्षा सामाजिकता अधिक है। नाथ सम्प्रदाय की साधना व्यक्तिगत और पद्धति शास्त्रीय थी, जबकि संतो की साधना सामाजिक और पद्धति स्वतंत्र है। इन्होंने जन-समान्य में आत्म-गौरव की दीप्ति भर दी थी, जिसके कारण उन्होंने प्रत्येक प्रकार के अन्याय-अत्याचार का प्रतिरोध करने की शक्ति प्राप्त कर ली थी।

9. **भाषाः** अधिकांश संतों ने अपने काव्य की भाषा में प्रदेश विशेष की बोली के साथ ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी, हरियाणवी आदि शब्दावली को प्रयुक्त किया है, जिसे अधिकांश विद्वानों ने 'सधुक्कड़ी' भाषा कहा है। तत्कालीन परिवेश के अनुरूप संत-वाणी की रचना मुख्यतः जनता के अशिक्षित, उपेक्षित और पिछड़े हुए वर्गों के लिये हुई थी। संतों की भाषा अति सरल, कृत्रिमताविहीन और सहज है।

10. **अलंकारः** संत कवि अलंकारवादी भी नहीं थे, किन्तु उनकी कविता में अनेकानेक शब्दगत और अर्थगत अलंकार सहज रूप से आ गये हैं। उपमा, रूपक, द ष्टान्त, तद्गुण, स्वभावोक्ति, सहोक्ति, अत्युक्ति, विशेषोक्ति, अन्योक्ति, उल्लेख, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, असंगति, श्लेष, यमक, अनुप्रास, काव्यलिंग आदि अलंकार उनके काव्य को चमत्कार प्रदान करते हैं। संतों के रूपक जीवन की सामान्य प्रव त्तियों एवं घटनाओं पर आधारित हैं। कबीर आदि के रूपक और प्रतीक बड़े सशक्त हैं और जीवन के व्यापक क्षेत्र से लिये गये हैं।

संतों का साहित्य लोक-भावना का यथार्थ बिम्ब प्रस्तुत करता है। जीवन में आस्था और विश्वास का संदेश देता है। मध्ययुगीन सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं के भावात्मक निरूपण में यह काव्य अप्रितम है। संतों ने अपने समय के मानव-समाज को दोषमुक्त कर परिष्कृत बनाने की चेष्टा की है।

सूफी काव्य धारा : वैशिष्टय और अवदान

भारत में सूफियों का प्रवेश ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती के समय हुआ। इन सूफियों की उदार मनोव त्ति और आध्यात्मिक प्रेम-साधना से प्रभावित होकर कुछ सहृदय मुसलमान कवि इनके धर्मानुयायी बन काव्य रचना में प्रव त्त हुए, और इनका काव्य 'सूफी प्रेमाख्यानक काव्य' की संज्ञा से जाना जाने लगा। अन्य देशों के साहित्य की भाँति अरबी-फारसी में भी सर्वप्रथम प्रेमकाव्य और वीरकाव्य की परम्परा उद्भूत हुई, किन्तु इस प्रेम परम्परा में परमात्मा के परम प्रेम और आतंरिक अनुभूतियों का चित्रण नहीं था, अरबी साहित्य की अपेक्षा प्रेम और रहस्य तथा सूफी सिद्धान्त का सम्यक् प्रतिपादन फारसी साहित्य में हुआ है। इस समय हिन्दू और मुसलमानों के बीच सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक संघर्ष का आविर्भाव था, इसलिए

सूफियों को अपने प्रयास में अपेक्षित सफलता नहीं मिल पा रही थी। वे राजसत्ता के विरोध में पहले ही परास्त हो चुके थे। हिंदी के सूफी कवियों ने भारतीय लोककथाओं, हिंदी भाषा, हिंदी छंद और भारतीय चरित्रों को अपने काव्य का उपजीव्य बनाकर हिन्दू जनता को सूफी सिद्धान्तों पर विमोहित करके उन्हें इस्लाम की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया। हिन्दी के सूफी कवि भारतीयता के पोषक होकर भी इस्लाम के ही समर्थक हैं, क्योंकि यह 'आखिरी कलाम' में उनके वर्णन से ज्ञात हो जाता है। हिन्दू मुसलमान संस्कृतियों के प्रेम-पूर्ण काव्य की अभिव्यक्ति इसमें देखी जा सकती है। हिन्दू धर्म के प्रधान आदर्शों को मानते हुए भी सूफी सिद्धान्तों के निरूपण में मुसलमान साहित्यकारों की कुशलता है। इन दोनों भिन्न सिद्धान्तों के एकीकरण ने प्रेम-काव्य को सजीवता के साथ ही साथ लोकप्रियता भी प्रदान की। फलस्वरूप जिस प्रकार संत-काव्य की परम्परा धार्मिक काल के बाद भी चलती रही, उसी प्रकार प्रेम-काव्य की परम्परा भी धार्मिक काल के बाद भी साहित्य में द ष्टिगोचर होती रही है।

सूफी काव्य में वैशिष्ट्य और अवदान की प्रक्रिया इस रूप में देखी जा सकती है-

1. **लोक-पक्ष एवं हिन्दू संस्कृति का अवलोकन**: सूफी प्रेम—काव्यों में हिन्दू लोक-संस्कृति की वैयक्तिकता एवं सामाजिकता का चित्रण हुआ है। हिन्दू लोक-संस्कृति में व्याप्त अन्ध-विश्वास, जादू-टोना, मन्नत, मनोतियाँ, तीर्थ, व्रत आदि का चित्रण हुआ है। लोकोत्सव, लोक-व्यवहार लोकाचार तथा लोकनाथ द्वारा हिन्दू लोक-संस्कृति में चली आ रही परम्परागत प्रेम कहानियों की प ष्ठभूमि, फारसी की मसनवी शैली तथा इस्लाम धर्म की मान्यताओं को समन्वित करके प्रस्तुत किया गया है। प्रेमकाव्यों में षट् ऋतुओं का वर्णन और बारहमासा आदि का वर्णन भारतीय काव्य-परम्परा के अनुसार हुआ है।

   (i) **नारी के विषय में चित्रण**: सूफियों ने प्रेम द्वारा प्राप्त की जाने वाली सुन्दर नारी को परमात्मा का प्रतीक माना है। प्रेम का प्रमुख पात्र नारी ही वह नूर है जिसके बिना सम्पूर्ण संसार अंधकारमय है। इन कवियों ने नारी का साध्य तथा प्रेम को साधन माना है। नारी का सौन्दर्य ईश्वरीय प्रतिच्छाया है। परशुराम चतुर्वेदी का मत है को "सूफी कवियों ने नारी को यहाँ अपनी प्रेम साधना के साध्य रूप में स्वीकार किया है जिसके कारण वह इनके यहाँ किसी प्रेमी के लौकिक जीवन की निरी भोग्य वस्तु मात्र नहीं रह जाती। वह उस समय की साधन-सामग्री भी नहीं कहला सकती जिसमें उसे बौद्ध सहजयानियों ने मुद्रा नाम देकर सहज साधना के लिए अपनाया था। वह उन साधनों की द ष्टि में स्वयं एक सिद्धि बनकर आती है और इसी कारण इन प्रेमाख्यानों में उसे प्रायः अलौकिक गुणों से युक्त भी बतलाया जाता है।"

   (ii)) **मनोवैज्ञानिक पद्धति**: सूफियों ने ज्ञानमार्गी संतों की भाँति धर्म या जाति का खण्डन नहीं किया बल्कि मनोवैज्ञानिक आधार पर हिन्दुओं तथा मुसलमानों को प्रेम मार्ग में एक समान बताया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, "प्रेमस्वरूप ईश्वर को सामने लाकर सूफी कवियों ने हिन्दू और मुसलमानों दोनों को मनुष्य के सामान्य रूप में दिखाया और भेदभाव के द श्यों को हटाकर पीछे पीछे कर दिया।"

2. **सूफी काव्य में प्रेम-पक्ष**: सूफियों का मुख्य प्रतिपाद्य प्रेम है और प्रेम के वियोग पक्ष को इन्होंने अधिक महत्त्व दिया है। सूफी कवियों ने प्रेम का जो चित्रण किया है, उस पर विदेशी और भारतीय दोनों शैलियों की छाप द ष्टिगोचर होती है। जायसी ने फारसी की शैली के अनुसार नायक को प्रेम में विह्ल तथा प्रेमपात्र की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील दिखाया है। भारतीय धर्म के अनुसार तो आत्मा को पत्नी और परमात्मा को पुरूष मानकर पत्नीरुपी आत्मा को पुरूषरूपी परमात्मा की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील माना जाता है। सूफी कवियों ने प्रारम्भ में नायक को प्रियतमा (ईश्वर) की प्राप्ति में प्रयत्नशील दिखाने के बाद उपसंहार में नायिका (प्रियतमा) के प्रमोत्कर्ष को भी दिखलाया।

3. **सूफी काव्य में प्रबन्धात्मता**: सूफी रचनाकारों ने लौकिक प्रेम कहानियों के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की है। इन कवियों ने जिस प्रबन्धात्मकता को अपनाया है वह भारतीय महाकाव्य तथा फारसी 'मसनवी शैली'' का मिश्रित रूप है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मसनवी को अन्योक्ति काव्य की संज्ञा दी है। सूफी कवियों के प्रेमाख्यान एक ही प्रकार के साँचे में ढले हुए लगते है, क्योंकि सभी का लक्ष्य प्रेम तत्त्व का निरूपण करना है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि "कथानक को गति देने के लिए सूफी कवियों ने प्रायः उन सभी कथानक रूढ़ियों का व्यवहार किया है जो परम्परा से भारतीय कथाओं में व्यवहृत होती रही हैं, जैसे चित्र, दर्शन, स्वप्न, द्वारा अथवा शुक-सारिका आदि द्वारा नायिका का रूप देख या सुनकर उस पर आसक्त होना, पशु-पक्षियों की बातचीत से भावी घटना का संकेत पाना, मन्दिर या चित्रशाला में प्रिय युगल का मिलन होना इत्यादि।" सूफी काव्य में व्यवहृत कुछ ईरानी साहित्य की रूढ़ियों का भी वर्णन किया है, जैसे प्रेम-व्यापार में पाटियों और देवों का सहयोग आदि।

4. **सूफी काव्य में धार्मिक सहिष्णुताः** धार्मिक द ष्टिकोण से हिन्दूओं के वेदान्त और मुसलमानों के सूफीमत में बहुत साम्य है। मौलाना सैयद सुलेमान नदवी सूफीमत को वेदान्त से प्रभावित मानते है। उनका मत है, "इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि मुसलमान सूफियों पर भारत में आने के बाद, हिन्दू वेदान्तियों का प्रभाव पड़ा। इन दोनों धर्म के सिद्धांतों ने प्रेमकाव्य की रूप-रेखा का निर्माण किया। जो प्रेमकथाएँ मुसलमान कवियों द्वारा लिखी गयी है उनमें धार्मिक संकेत अवश्य हैं, पर जो प्रेम-कथाएँ हिन्दू साहित्यकारों द्वारा लिखी गयी है उनमें काव्यत्व और घटना वैचित्र्य ही प्रधान है। इतना अवश्य है कि हिन्दू प्रेम कथाकारों ने मुसलमानों द्वारा चलाई गयी प्रेम-कथा के आदर्शों का पूर्ण रूप से पालन किया हैं।

5. **प्रतीक विधान का मार्मिक चित्रणः** सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं में कुछ शब्दों को सांकेतिक रूप में प्रयुक्त किया है, जिन्हें 'प्रतीक विधान' के अनुसार विशिष्ट सन्दर्भ में विशेष अर्थ के लिए प्रयोग किया है। जायसी द्वारा रचित 'पद्मावत' में इस प्रयोग को देखा जा सकता है; यथा

   "तन चितउर मन राउर कीन्हा।
   हिय सिंघल बुधि-पद्मिनी चीन्हा।।"

   तात्पर्य यह है शरीर तो चितौड़ है, मन राजा है, हृदय सिंघल द्वीप है और बुद्धि पद्मिनी है। इसी प्रकार के प्रेमाख्यानों में प्रतीक-विधान देखा जा सकता हैं। संत काव्य धर्माश्रय एवं राजश्रय से दूर लोकाश्रय में मुक्त रूप में पोषित होने वाली यही एक परंपरा है जिसने तत्कालीन जनता की काव्य-रूचि एवं मनोरंजन की अभिलाषा को रोमांचक आख्यानों द्वारा भर दिया है।

सूफी काव्य धारा के प्रमुख कवियों में मौलाना दाऊद, कुतुबन, जायसी, मंझन, उसमान आदि हुए हैं जिन्होंने अपने काव्य में सूफी काव्य परम्परा को अग्रसर किया है।

सूफी कवियों का कथा क्षेत्र ऐतिहासिक और काल्पनिक दोनों ही है। ऐतिहासिक कथानकों के रूप में रत्नसेन एवं पद्मावती रहे है। सूफी कवियों द्वारा समस्त रचनाएँ एक प्रकार से कथा-रूपक के अन्तर्गत आती है।

इनके प्रेमाख्यानों में नायक-नायिका को सांसारिक संबंधों के प्रति उदासीन दिखाया गया है। इन काव्यों में नायकों पर योगियों का प्रभाव द ष्टिगत होता है। नायक को जीवन और नायिका को ब्रह्मा का प्रतीक माना गया है।

सूफी कवियों की लौकिक द ष्टि बड़ी सजग थी। अपने आस--पास के विस्त त वातावरण को इन्होंने बखूबी प्रकट किया है। उनकी रचनाओं में भारतीय जीवन एवं संस्कृति का बड़ा सजीव चित्रण हुआ है। भारतीय सामाजिक जीवन के प्रतीक त्योहारों, उत्सवों एवं संस्कारों का इनकी रचनाओं में समावेश देखा जा सकता है।

सूफी कवियों का प्रमुख काव्य आदर्श अध्यात्म विरह एवं प्रेम का निरूपण करना था, किन्तु इसके साथ ही यश की लालसा, लोकहित एवं कल्याण की भावना भी इनके काव्य में समाहित अंग है।

राम काव्य धारा : वैशिष्टय और अवदान

राम काव्य जीवन की आदर्श कथा है। जीवन जैसा विविध और व्यापक है रामकथा या राम काव्य भी उतना ही विस्त त और बहुमुखी है। राम काव्य में जीवन अपनी विराटता के साथ व्यक्त हुआ है। भक्तिकाल में ऐसे राम काव्य को निम्नलिखित द ष्टिकोणों से देखा गया है।

राम के दो रूप माने गये हैं-एक निर्गुण रूप है तो दूसरा सगुण। निर्गुण रूप से हमारा तात्पर्य देह और दैहिक संबंधों से परे के राम जबकि सगुण राम अवतारी हैं, दशरथ-सुत के रूप में। भक्तिकालीन रामकाव्यधारा के कवियों ने निर्गुण राम की नहीं वरन् सगुण रूप के राम की अवतारणा अपने काव्यों में की है। उन्होंने राम और रामकथा को देशकाल तथा जनजीवन के अनुरूप मानकर प्रस्तुत किया है। रामकाव्यधारा में ऐसे विराट् राम की प्रतिष्ठा हुई है और भक्तों तथा कवियों ने राम के इन्हीं रूपों की अर्चना-वंदना की है। रामकाव्यकारों के लिए राम सर्वत्र विद्यमान रहते हैं।

राम काव्यधारा की दार्शनिक चेतना पर कई दर्शनों का प्रभाव देखा जा सकता है। इसीलिए विद्वान उस पर शंकर के अद्वैतवाद तथा रामानुजाचार्य के विशिष्टता द्वैतवाद का प्रभाव अनुभव करते हैं। रामकथा के कवियों का प्रयोजन रामभक्ति था। वे व्यक्ति के मन की कालुष्य को समाप्त कर देना चाहते थे, इसीलिए रामभक्ति का सहारा लिया। रामभक्त कवियों के उपास्यदेव राम विष्णु के अवतार हैं और परमब्रह्म स्वरूप है। अरण्यकाण्ड में इस प्रकार स्तुति की गई है-

"जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म व्यापक विरज अज कहिं गावहीं।
करि ध्यान-ग्यान विराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं।।"

इनके राम में शील, शक्ति और सौन्दर्य का समन्वय है। वे मर्यादापुरूषोत्तम है और आदर्श के प्रतिष्ठापक है। यही कारण है कि राम और सीता के नाम पर परवर्ती साहित्य में उच्छ ृंखल प्रेम उस रूप से चित्रित नहीं हुआ जैसा की राधा और कृष्ण के नाम पर।

1. **राम काव्य धारा में समन्वयात्मकताः** राम काव्य की समन्वयात्मक विचारधारा अत्यन्त उदार है। जिसमें ज्ञान, भक्ति, धर्म तथा कर्म का सुन्दर समन्वय तो है ही, साथ ही निर्गुण तथा सगुण में भी एकरूपता प्रकट होती है। तुलसीदास कहते हैं -

    "अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।।"

2. **राम काव्य में लोक मंगल की भावनाः** राम भक्ति साहित्य में लोक मंगल की भावना को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। इसी भावना से राम को आदर्श लोक-सेवक, आदर्श ग हस्थ एवं आदर्श राजा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। आदर्श की प्रतिष्ठा राम के जीवन का अर्थ और इति है

    "परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
    पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।"

    राम भक्ति काव्य की प्रमुख विशेषता यह भी है कि उसमें साधारण लोगों के कल्याण की भावना को सर्वोच्च स्थान मिला है। लोक मंगल की भावना से ओत-प्रोत होकर राम को आदर्श लोक-सेवक तथा आदर्श ग हस्थ आदि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। सारे राम काव्य का केन्द्रीय भाव आदर्श समाज की स्थापना तथा लोक कल्याण की भावना को प्रसारित करना है। तुलसीदास ने रामराज्य की आदर्श कल्पना के लिए ही राम को आदर्श पुत्र तथा आदर्श राजा के रूप में स्थापित किया है। कौशल्या जैसी आदर्श माता, लक्ष्मण तथा भरत जैसे आदर्श भाई, सीता जैसी आदर्श पत्नी, हनुमान जैसे आदर्श सेवक एवं भक्त तथा सुग्रीव जैसे आदर्श मित्रादि की कल्पना एवं स्थापना से लोक संग्रह की भावना ही स्पष्ट होती है। राक्षसों को अर्थात् अत्याचारियों का नाश करके आदर्श समाज की स्थापना करना ही राम काव्य की विशेषता है।

3. **आदर्श पात्रों का चरित्र चित्रणः** राम भक्ति साहित्य में ऐसे पात्रों को विशेष महत्त्व दिया गया है जो अपने सदाचार से लोक में मर्यादा तथा आदर्श की स्थापना करने वाले हो। राम काव्य की यह विशेषता है कि उसमें सत् और असत्, सज्जन तथा दुर्जन, अच्छे और बुरे, सतोगुणी रजोगुणी, तथा तमोगुणी सभी प्रकार के पात्रों का चित्रण किया गया है। अन्त में असत्य पर सत्य की अथवा 'रावणत्व' पर 'रामत्व' की विजय दिखाई गई है। अन्त में दुर्जनों को दण्ड तथा सज्जनों को सफलता मिलती दिखाई गई है। राम को स्वयं ब्रह्मस्वरूप होते हुए भी मानव के रूप में लीला करते हुए दिखाकर तुलसी ने सिद्ध किया है कि अन्त में रामत्व की ही विजय होती है क्योंकि पापियों का संहार करने के लिए राम को नर रूप धारण करना पड़ता है।

4. **जगत तथा जीवात्मा संबंधी विचारः** राम काव्य में सारे संसार को ही राम तथा सीता युक्त माना है और इसीलिए तुलसीदास ने कहा है-

    "सिया राम मय सब जग जानी, करउँ प्रनाम जोरि-जुग पानी।"

    यह सारा संसार ही राम और सीता की लीला-स्थली है। राम परम पुरूष चेतन सीता प्रकृति है। पुरूष तथा प्रकृति से ही यह सारी स ष्टि व्याप्त है। जीवात्माएँ उसी परम पुरूष का अंश है।

5. **वैधी भक्ति का अनुसरणः** रामभक्ति काव्य ऐसी भक्ति का अनुसरण करता है जिसे शास्त्रीय शब्दावली में 'वैधी भक्ति' माना जा सकता है। वैधी भक्ति में श्रद्धा और प्रेम का समन्वय होता है तथा भागवत पुराण में वर्णित नवधा भक्ति के प्रायः अधिकांश लक्षण मिलते है। कीर्तन-भाव से जो नियम बनाये जाते हैं उन्हें 'विधि' माना जाता है और विधि के अनुसार की गई भक्ति को वैधी भक्ति कहते है। वैधी भक्ति में साधक या भक्त शरीर, मन, आत्मा, प्रकृति और समाजगत अनुशीलों द्वारा भगवान का भजन करते हैं। राम भक्तों के इष्ट 'राम' का शील, शक्ति और सौन्दर्य ही ऐसा है जिस पर साधक या भक्त अपने तन-मन और आत्मा से मुग्ध हो जाता है और अपने को राम का सेवक या दास समझकर भक्ति करता है, इसी कारण तुलसी की भक्ति को दास्य भाव की भक्ति भी माना जाता है क्योंकि तुलसीदास ने कहा है-

    "सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।"

वैधी भक्ति में हरि-कीर्तन और सत्संग का विशेष महत्त्व होता है, इसीलिए कहा गया है-

"बिनु सत संग बिबेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।"

इसी कारण राम भक्ति का अनुसरण करने वाले भक्तों तथा कवियों ने 'राम नाम' के कीर्तन तथा सत्संग करने को भक्ति का एक साधन बताया है। राम भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता है कि सामाजिक प्रतिबद्धता और मूल्य-बोध को प्रबल प्रेरणा। यह निश्चित है कि जिस समय बाल्मीकि रामायण की रचना हुई होगी, उस समय समाज व्यवस्था के आधारभूत आदर्शों की स्थापना की बहुत बड़ी आवश्यकता अनुभव की जाती रही होगी। तब से आदि रामायण सभी आदर्शनवेता भक्तों और भक्तकवियों की प्रेरणा का अक्षय स्रोत बनी रही है। इसका चरमोत्कर्ष तुलसी-काव्य में मिलता है। तुलसी ने धर्म की जीवन-सापेक्ष व्यावहारिक व्याख्या प्रस्तुत की है और आचार दर्शन या शील सौन्दर्य और कर्म-सौन्दर्य को ही धर्म कहा है। धर्म सभी सत्कर्मों की समष्टि है, धर्म जीवन की व्यापक व्यवस्था है यह मूल्यबोध विष्णुदास की रामायण-कथा में भी देखने को मिलता है। सूरदास के रामावतार संबंधी पदों में भी पवित्रता सतीत्व और वीरता के उदात्त की अभिव्यक्ति हुई है।

राम काव्य परम्परा की अन्य विशेषता एवं अवदान पाप का सक्रिय प्रतिरोध और शौर्य है। समूचे भक्ति-काव्य में जिसे सच्चे अर्थो में शक्ति काव्य कहा जा सकता है, वह रामकाव्य ही है। इस काव्य में पाप और पतन के विरूद्ध सक्रिय प्रतिरोध और संघर्ष निरूपित किया गया है। रामभक्ति काव्य की धारा में सामाजिक संवेदना बड़ी गहरी है। सामाजिक द ष्टि से रामभक्ति काव्य की महत्ता विशेष रूप से रही है। जिस समय रामभक्ति काव्य का प्रणयन हो रहा था उस समय का समाज अनेक प्रकार की भ्रांतियों का और रूढ़िवादिता का सामना कर रहा था। मुगलों के शासन के कारण भारतीय संस्कृति खतरे में पड़ी थी। ऐसे विषम समय में रामभक्ति काव्य प्रणेताओं ने भारतीय समाज को पुनर्गठित किया।

प्रकृति को मानव की चिर सहचरी माना जाता है। रामभक्ति के कवियों ने राम की उपासना करते हुए प्रकृति के अनेक रूपों को अपनी रचनाओं में प्रर्याप्त स्थान प्रदान किया है। इन कृतियों में वन, जंगल, पहाड़ ग्राम, जन-जीवन, सरिता, आदि का समावेश किया है।

रामकाव्य धारा का हिंदी साहित्य जगत् में विशेष स्थान है। रामकाव्यधारा में उपास्य श्री राम हैं जिनका व्यक्तित्व और चरित्र अति उत्तम है। राम शील व संकोच, मर्यादा और महानता की पराकाष्ठा पर आरूढ है। उनके चरित्र में भारतीय संस्कृति-हिन्दू धर्म के दर्शन होते हैं। रामभक्ति काव्य मानवीय मूल्यों की मंजूषा है।

रामभक्ति काव्यधारा की सबसे बड़ी उपलब्धि उसकी समन्वय साधना रही है। समन्वय की अंतत चेष्टा के माध्यम से तुलसी आदि कवियों ने उस समय के मानव-मानव को एक करने के प्रशस्त कार्य को अंजाम दिया। राम को आश्रय बनाकर कवियों ने जीवन-यापन का सफल संदेश दिया है।

कृष्ण काव्य धारा : वैशिष्ट्य और अवदान

कृष्ण काव्यधारा के वैशिष्ट्य और अवदान को स्पष्ट जानने के लिए इसे हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं-

1. वस्तुगत वैशिष्ट्य और अवदान
2. भावगत वैशिष्ट्य और अवदान
3. शिल्पगत वैशिष्ट्य और अवदान

वस्तुगत वैशिष्ट्य और अवदान

1. **निर्गुण के स्थान पर सगुण की आराधना**: कृष्ण काव्य धारा के कवियों ने निर्गुण के स्थान पर सगुण ब्रह्म को प्रमुखता दी है क्योंकि साधना के स्तर पर उसे ज्ञानी ही जान सकते है। भक्तों में ज्ञान का अभाव होता है। वह आँखों के सामने नहीं दिखाई पड़ता। सगुण ब्रह्म निरन्तर उनके सामने दिखाई पड़ता है। इसलिए उसकी साधना सरल होती है।
2. **श्रीकृष्ण का मानवी और अवतारी रूप**: इस काव्य धारा के रचनाकार प्रभु श्री कृष्ण के दो रूपों का चित्रण करते हैं-मानवी और अवतारी। मानवी रूप में वे नन्द यशोदा और देवकी-वासुदेव के पुत्र है। अवतारी रूप में वे एक ईश्वर हैं।

3. **तत्कालीन समाज और संस्कृति**: इस युग के काव्यकारों ने तत्कालीन समाज और उसमें फलती-फूलती संस्कृति का यथार्थ वर्णन किया है।

भावगत वैशिष्ट्य और अवदान

1. **वात्सल्य और श ृंगार रस**: कृष्ण काव्य धारा के सभी रचनाकारो ने वात्सल्य और श ृंगाररस को प्रमुखता दी है। वात्सल्य प्राणिमात्र के मन की एक व त्ति होती है। वात्सल्य वर्णन में कृष्णभक्त कवियों ने श्री कृष्ण के बाल्यकाल से लेकर किशोरावस्था की विभिनन क्रीड़ाओं का सफल चित्रण प्रस्तुत किया है। इसमें सूर का वात्सल्य सबसे निराला कहा जा सकता है। यह वर्णन जितना यथार्थ है उतना की सहज एवं मार्मिक।
2. **विरहानुभूति चित्रण**: कृष्ण काव्य धारा के रचनाकारों ने वियोग श ृंगार के अन्तर्गत विरह की विभिन्न भूमियों का सजीव रूप चित्रित किया है। विरह की अनेकों दशाएँ इस काव्य में प्रस्तुत की गई है। इन कवियों का विरह संवेदना जन्य है।

शिल्पगत वैशिष्ट्य और अवदान

1. **मुक्तक काव्य-रचना**: कृष्ण काव्य धारा के रचनाकारों ने प्रबंध रचनाओं का निर्माण न करके मुक्तक काव्यों का निर्माण किया है। कीर्तन भजन-जन्य आतुरता इनके काव्य रूपों में देखी जा सकती है। इन रचनाकारों ने पदों की रचना की है।
2. **बिम्ब तथा प्रतीक विधान**: कृष्ण काव्यकारों ने बिम्बों और प्रतीकों का प्रयोग रसानुभूति के लिए किया है। भ्रमरगीत में सन्दर्भित पदों में 'भ्रमर' का प्रयोग प्रतीक रूप में किया गया है।

कृष्ण भक्ति काव्य में दार्शनिकता

कृष्ण भक्ति काव्य का मुख्य उद्देश्य तो शंकर के अद्वैत दर्शन का खण्डन करके सगुण कृष्ण भक्ति की स्थापना करना है। कृष्ण भक्ति साहित्य की दार्शनिक प ष्ठभूमि स्वामी बल्वभाचार्य तथा स्वामी हितहरिवंश के राधावल्लभी सम्प्रदायों से निर्मित हुई 'पुष्टिमार्गीय', प्रेमा रागानुगा तथा माधुर्य भाव की मधुरा भक्ति माना है। उस भक्ति की दार्शनिक मान्यताएँ तो भागवत पुराण में वर्णित पुष्टिमार्गी जीवन दर्शन है।

कृष्ण काव्य के वैशिष्ट्य और अवदान को इस रूप में प्रकट किया जा सकता है।

1. **भक्ति का स्वरूप प्रेम**: कृष्ण भक्ति का आधार प्रेम है। इस प्रकार उनकी भक्ति को प्रेमा-भक्ति अथवा रागानुगा-भक्ति माना जाता है। जब कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम अथवा आसक्ति हो जाती है, तब स्वाभाविक रूप से सांसारिक भोग-विलास आदि विषयों से विरक्ति हो जाती है। अतः कृष्ण भक्ति में प्रव त्ति तथा निव त्ति दोनों व त्तियाँ ही कलात्मक रूप में समन्वित दिखाई देती हैं कृष्ण-भक्तों की ऐसी 'प्रेमा-भक्ति' वात्सल्य, सख्य तथा माधुर्य आदि तीनों रूपों को धारण करने वाली त्रिवेणी है। वास्तव में यदि मनोवैज्ञानिक तथा काव्य शास्त्रीय द ष्टि से देखा जाये तो उपर्युक्त तीनों भाव श ृंगार रस के तीन प थक-प थक स्थायी भाव हैं। जैसे पुत्र-विषयक रति से वात्सल्य रस, मित्र-विषयक रति से श ृंगार एवं माधुर्य रस तथा गुरू विषयक रति से भक्ति रस निष्पन्न होता है। प्रेम का चरम रूप माधुर्यमयी मधुरा भक्ति में देखा जा सकता है क्योंकि ऐसी स्थिति में भक्त तथा भगवान् में कोई भेद नहीं रहता है।
2. **जीव तथा ब्रह्म के रूप की चर्चा**: आचार्य बल्भ के दार्शनिक विचारों के अनुसार ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, जीव और जगत् उसी ब्रह्म के सत् और चित्त अंश है। वही ब्रह्म आनन्दमय श्री कृष्ण के रूप में नित्य लीलामय है। वल्लभ का सिद्धान्त दार्शनिक शब्दावली में शुद्धाद्धैतवाद माना जाता है। इस दर्शन के अनुसार ब्रह्म सगुण है जो साक्षात् कृष्ण के रूप में देखा जा सकता है। कृष्ण पूर्ण रूप से सोलह कला पूर्ण रसमय है। श्रीकृष्ण का धाम गोलोक है तथा गोपों, गोपियों, यमुना, व न्दावन, लताएँ, कुंजे आदि सभी जगतवादी जीवात्माएँ कृष्ण का ही अंश है। राधा-कृष्ण ही इष्टदेव हैं।
3. **वेद-मर्यादा तथा कर्मकाण्ड पर चर्चा**: कृष्ण भगतजनों का जीवन-दर्शन है कि समस्त प्राणी चेतना का रागमय अथवा कृष्णमय हो जाना ही सच्चा ज्ञान है, जो प्रेमा-भक्ति से सभी कृष्ण-भक्तों को सुलभ है। इसलिए कृष्ण भक्त वैदिक मर्यादा जप, तप, योग तथा कर्मकाण्ड को महत्त्व न देकर केवल 'प्रेम' पर बल देते है।
4. **निव त्ति और प्रव त्ति के बारे में विचार**: बल्लभाचार्य द्वारा स्थापित दर्शन में निव त्ति तथा प्रव त्ति दोनों ही जीवन मार्गो का अनुपम योग है। मुख्य रूप से प्रव त्ति का पोषक होते हुए भी स्वाभाविक निव त्ति को अपनाया जाना कृष्ण-भक्तों की

विशेषता है। मनोविकारों और मन की सभी प्रव त्तियों को कृष्णोन्मुख करना तो प्रव त्ति मार्ग है तथा कृष्णलीला उस प्रव त्ति मार्ग का साधन है। स्वाभाविक रूप में जब भक्त प्रेम से उन्मुक्त होकर कृष्णमय हो जाता है तो वह संसारी क्रियाकलापों से विरक्त हो जाता है जिसे निव त्ति मार्ग कहा है। नवधा-भक्ति में प्रव त्ति तथा निव त्ति दोनों मार्गों का सम्मिश्रण है।

5. **श्रीकृष्ण के विभिन्न नामों का उल्लेखः** श्री कृष्ण जो स्वयं ब्रह्म-स्वरूप है उनका सौन्दर्य अद्वितीय है। उन्हें लीलाचारी, नटवर नागर, श्याम मुरारी, गोविन्द, गिरिधर, घनश्याम, राधेश्याम, बांकेबिहारी, रसीले कृष्ण आदि अनेक नामों से संबोधित करते हुए कृष्ण भक्ति में नाम स्मरण का भी विशेष महत्त्व है, क्योंकि भक्त को अपनी इच्छानुसार जो नाम प्रिय लगे उसी का स्मरण करे।

6. **सत्संग तथा गुरू की महिमाः** कृष्ण-भक्ति दर्शन में सत्संग, कीर्तन, संगीत तथा रासलीलाओं पर विशेष बल दिया जाता है। गुरू की महिमा तो सभी कृष्ण भक्तों ने गाई है। गुरू-कृपा से ही भक्त, प्रेमा-भक्ति में अनुरक्त होता है।

7. **लोकमंगल की अपेक्षा लोकरंजन को प्रमुखताः** पुष्टिमार्गीय कृष्ण-भक्तजनों तथा अन्यों ने लोकमंगल की भावना को अधिक महत्त्व नहीं दिया जितना महत्त्व उन्होंने लोकरंजन को दिया है। लोकरंजन की भावना पर अधिक बल इसलिए भी दिया गया क्योंकि प्रव त्ति मार्ग के अनुसार लोक मनोरंजन, ऐन्द्रिय आकर्षण तथा तुष्टि से ही भक्त को प्रेम का अद्भुत आनन्द मिलता है।

8. **रासलीलाओं के भिन्न-भिन्न रूपों की चर्चाः** कृष्ण भक्ति के क्षेत्र में कृष्ण की जीवन संबंधी अनेक प्रकार की लीलाओं को चित्रित करके पुष्टिमार्गीय जीवन दर्शन की ख्याति फैलाई है। इसीलिए, भगवान कृष्ण को गोपियों के साथ न त्य करते हुए भी दिखाया जाता है और ग्वालों के साथ माखन-चोरी करते हुए भी दिखाया है। लगभग कृष्ण सभी लीलाएँ करके भी उनसे निर्लिप्त रहते हैं। इनके अनेक रूपों का चित्रण इस प्रकार किया जा सकता है-

(i) **ब्रह्म को सगुण तथा साकार रूप में माननाः** कृष्ण भक्ति साहित्य में सगुण ब्रह्म की उपासना करने ही रीति है। कृष्ण भक्तों की मान्यता है कि कृष्ण ही ब्रह्म अथवा ईश्वर है जो साकार एवं सगुण है। कृष्ण की नित्य अजर-अमर है। अतः कृष्ण काव्य की यही प्रमुख विशेषता है कि उसमें कृष्ण एवं राधा को ही इष्ट माना है।

(ii) **अवतारवारः** कृष्ण-भक्तों में विष्णु के अवतार कृष्ण को दुष्टों का संहार तथा सज्जनों का उद्धार करते हुए दिखाने की प्रव त्ति है। जब अधर्म तथा पाप चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं तब बैकुण्ठ-धाम से विष्णु को कृष्ण के रूप में अवतार लेना पड़ता है। अपनी लीला का प्रदर्शन करना भी अवतार का स्वभाव है।

(iii) **प्रेम-भाव का निरूपणः** कृष्ण-भक्तों ने भक्ति का आधार एकमात्र प्रेम तत्त्व ही माना है। प्रेम की उच्चतम कोटि मधुरा भक्ति है। कृष्ण के प्रति प्रकट किया गया सच्चा प्रेम ही श ंगार रस का स्थायी भाव 'रति' है जो भक्तों की भावनानुसार 'वात्सल्य' 'संख्य' तथा 'माधुर्य' भाव में परिणत होता है। इसीलिए श ंगारी भाव ही प्रधान है।

(iv) **ब्राह्याडम्बरों का विरोधः** कृष्ण भक्ति में प्रेम का पंथ ही अनूठा रहा है। इसमें जप, तप, योग तथा वैदिक कर्मकाण्ड की आवश्यकता नहीं। प्रेम को किसी ब्रह्याडम्बर की आवश्यकता नहीं, वह तो ह्रदय की अनुभूति कही जा सकती है।

(v) **वात्सल्य, श ंगार तथा शान्त रस की प्रधानताः** सम्पूर्ण कृष्ण काव्य में प्रमुख रूप से वात्सल्य श ंगार तथा माधुर्य जन्य शांत रस की अभिव्यक्ति मिलती है।

(vi) **संगीत की ओर प्रव त्तिः** कृष्ण-भक्ति साहित्य में संगीत-माधुरी को महत्त्व प्रदान करने के लिए ही अधिकांश भक्ति पद राग-रागिनियों में निबद्ध है। सूरदास, नन्ददास तथा मीरा के पद संगीतमय साहित्य के प्रमाण है।

(vii) **प्रकृति चित्रणः** कृष्ण भक्ति साहित्य भावात्मक काव्य है। ब्रह्म प्रकृति का चित्रण इसमें या तो भाव की प ष्ठभूमि में हुआ है या उद्दीपन भाव के लिए। डा० ब्रजेश्वर ने लिखा है, "द श्यमान जगत् का कोई भी सौन्दर्य उनकी आँखों से छूट नहीं सका। प थ्वी, आकाश, जलाशय, वन-प्रान्त तथा कुंज-भवन की सम्पूर्ण शोभा इन कवियों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में निःशेष कर दी है।"

(viii) **काव्य रूपः** कृष्ण काव्य का स जन प्रायः मुक्तक शैली में हुआ है। कृष्ण काव्य में एक प्रबन्ध काव्य भी मिलता है, जिसकी रचना शुद्ध ब्रजभाषा में हुई। ग्रंथ का नाम है, 'ब्रज विलास' नन्ददास के भँवरगीत, रास पंचाध्यायी आदि में कथात्मकता की मनोव त्ति देखी जा सकती है।

गद्य साहित्य

भक्तिकालीन समय में गद्य साहित्य के क्षेत्र में भी उत्थान का काल रहा है। इसमें अनेक रचनाकारों ने अपनी कृतियों से इस काल को सुशोभित किया है। भक्ति कालीन गद्य साहित्य को हम चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं-

1. ब्रजभाषा में रचित गद्य साहित्य
2. खड़ीबोली में रचित गद्य साहित्य
3. दक्खिनी में रचित गद्य साहित्य
4. राजस्थानी में रचित गद्य साहित्य

1. **ब्रजभाषा में गद्य साहित्यः** भक्तिकालीन समय में गद्य साहित्य में उल्लेखनीय कार्य किया गया। इसमें इतिहास, भूगोल, सामाजिक, संदर्भित विषयों में कार्य किया गया। गद्य के इतिहास में गोरखपंथी ग्रंन्थों की चर्चा मिलती है।
2. **खड़ी बोली में गद्य साहित्यः** उत्तर भारत में खड़ी बोली में रचित गद्य रचनाओं का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। प्रामाणिक रचनाएँ 17वीं शताब्दी से प्राप्त होती है। इस काल की जो रचनाएँ मिलती हैं, वह इस प्रकार हैं-कुतुबशतक, भागलु पुरान, गणेस गोसठ, पोथी सचुषुंड।
3. **दक्खिनी में गद्य साहित्यः** दक्खिनी का अविर्भाव सूफियों और संतों के द्वारा हुआ। इन रचनाओं का विषय प्रेमाख्यानक रहा है। इसका आदि कवि गेसूदराज बन्दानवाज माना जाता है। दक्खिनी गद्य की कृतियों में वजही कृत 'सबरस' का विशेष महत्त्व रहा है। इसका गद्य कवित्वमय है।
4. **राजस्थानी में गद्य साहित्यः** राजस्थानी का गद्य इतिहास काफी पुराना है। मारवाड़ी बोली में गद्य का पुष्कल साहित्य प्राप्त होता है। इस गद्य में अनेक विषयों को अपने वर्णन का विषय बनाया है। राजस्थानी गद्य की प्रमुख भक्तिकालीन गद्य कृतियाँ-तत्त्व विचार प थ्वीचन्द्र चरित्र, धनपाल कथा, अंजनासुंदरी कथा' आदि है। इन कृतियों में कुछ कृतियां जैन धर्म से संबंधित भी रही हैं।

भक्तिकालीन राजस्थानी गद्य की और भी रचनाएँ है। उनमें से कुछ रचनाओं के नाम ये हैं-आदिनाथ चरित्र, कालिकाचार्य कथा, श्रावक व्रतादि अतिचार, कल्याण मंदिरस्रोत की अवचूरी यानी व्याख्या, गणितसार, मुग्धावबोध मौक्तिक टीका (टीका ग्रंथ) कोकशास्त्र बालावबोध, उक्ति संग्रह भाष्य आदि।

राजस्थानी मारवाड़ी भाषा की गद्य रचनाएँ भी शामिल की जाती है उनमें वंशावली, पट्टावली, पीढ़ावली रचनाएँ ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेखपरक हैं। कुछ आज्ञापत्र, ताम्रपत्र, प्रशस्ति पत्र भी गद्य से मिलते है। संस्कृत-प्राकृत ग्रंथों की व्याख्याएं मिलती है। 'बेली किसन रूक्मणी री टीका' इस काल की प्रसिद्ध टीका है। ये सब गद्य रचनाएँ अललित गद्य की कोटि की है। ललित गद्य की रचनाएँ भी है पर वे परिमाण में कम है।

भक्तिकालीन गद्य साहित्य की विशेषताएँ

1. भक्तिकालीन गद्य साहित्य की प्रव त्ति प्रायः आदिकालीन गद्य साहित्य की तरह पद्यानुकारी गद्य जैसी रही है। पद्य में तुक का जो महत्त्व था वह इस समय के गद्य में भी देखने में आता है। एक तरह से यह पद्य को गद्य की ओर ले जाने का प्रयास है; जैसे "महाराज मांगियों सो पाओ" गद्य साहित्य के जो अंश मिलते है वे गद्य खंडो के रूप में ही जानने चाहिए। सम्पूर्ण गद्य रचना रचने का अभी चलन नहीं हुआ था। जो रचनाएँ ऐसी मिलती है जो कि गद्य में है और पूरी रचना गद्य में है, उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। इस तरह की एक रचना 'चंद छंद बरनन की महिमा' है, 'इसके रचयिता गंग कवि है। वस्तुतः यह प थ्वीराज रासो की महत्ता को प्रतिपादित करने के उद्देश्य से लिखी गई परवर्ती रचना है। इसकी प्रामाणिकता में संदेह है।
2. **भक्तिकाल के गद्य के कई रूप मिलते हैंः** ब्रजभाषा गद्य, खड़ी बोली गद्य, दक्खिनी गद्य, राजस्थानी गद्य आदि। इनमें से ब्रजभाषा गद्य की पंडिताऊ छवि, दक्खिनी गद्य की उर्दू-फारसी मिश्रण पद्धति खड़ी बोली की गद्य कृतियाँ बहुत सी पद्य रचना के अनुवादवाली है। छः राजस्थानी गद्य मुख्य रूप से कथा, वर्णन, वचनिका, पत्रावली, गुर्ववाली, बलावबोध आदि के रूप में बढ़ी है।

3. भक्तिकालीन गद्य के सन्दर्भ में ऐसी रचनाएँ भी आ गई है जिनका उल्लेख दूसरे विद्वानों ने अपभ्रंश की गद्य रचनाओं के संदर्भ में किया है। उदाहरण के लिए प थ्वीचन्द्र नामक कृति है जिसके रचयिता माणिक्य चन्द्र सूरि है। इसका मतलब यह है कि अपभ्रंश का चलन अभी तक वर्तमान था। वह धीरे-धीरे कम हो रहा था। इसलिए बहुत से विद्वान अपभ्रंश और पुरानी हिंदी में स्पष्ट अन्तर करने में अधिक सक्षम रहे हैं।
4. भाषा की वैज्ञानिक द ष्टि से भक्तिकाल का गद्य बड़े महत्त्व का है। किस प्रकार संहित भाषा व्यवहित बनती है उसका संश्लिष्ट पद-क्रिया रूप सरलता की ओर है और उसका पूर्व रूप इस काल के गद्य में मिलता है बहुत से शब्द एकदम संस्कृत विभक्तियों से युक्त होकर प्रयुक्त हुए है और बार में उनकी वे विभक्तियाँ घिसकर वर्तमान हिंदी रूप में ढली है। महादेव गोरषगुष्टि में आये ऐसे शब्द इस तरह के उदाहरण हैं-उतपतते, कथन्ति, कथित, भ्रमते। उतपतते शब्द मूलरूप से संस्कृत की आत्मनेपदी धातु के रूप का है। कथन्ति संस्कृत के कथयन्ति क्रिया रूप में संक्षिप्तीकरण है। कथित, भ्रमते भी संस्कृत के विभक्ति युक्त शब्द है।
5. भक्तिकालीन गद्य में ललित गद्य का समावेश अपेक्षाकृत अधिक होना प्रारंभ हो गया था। जो गद्य वंशावली पत्र, टिप्पणी, व्याख्या, व्याकरण, गणित अनुवाद आदि के रूप में बिखरा हुआ था वह परिमाण में अधिक था पर ललित गद्य भी अपना स्वर उठा रहा था।
6. इस समय के गद्य के साथ पद्य का समावेश कई रूपों में देखने में आता है कुछ रचनाएँ ऐसी है जो पूर्णतः गद्य की हैं। दूसरी तरह की रचनाएँ गद्य के साथ पद्य को भी साथ-साथ लेकर चली हैं। तीसरी पद्य प्रधान ऐसी रचनाएँ है जिनमें थोड़ा बहुत गद्य भी आता चला जाता है।
7. गद्य के विकास की दुर्बलता में विद्वानों ने पद्य के झुकाव को कारण माना है। पद्य प्रायः कंठ करने में सरल होता है। इसलिए पद्य को अधिक प्रमुखता मिलती रही है और इस जमाने तक साहित्य को कंठस्थ करने की परम्परा बराबर बनी हुई थी। अतः गद्य की ओर झुकाव कम रहा।
8. दक्खिनी हिंदी की तरह दक्खिनी गद्य भी उर्दू फारसी मिश्रित रूप में इस काल में देखने में आता है। इसके रचयिता मुख्यतः वे मुसलमान विद्वान थे जिनका हिंदी से संबंध था या जो हिंदी प्रदेश से दक्खिन में जा बसे थे।
9. गद्य खंड के ऐसे अनेक नमूने हैं जो किसी एक भाषा के अनिवार्यतः नहीं लगते। ब्रजभाषा, खड़ीबोली, राजस्थानी और अपभ्रंश के मिले-जुले गद्य खंड इस समय देखने में आते है। उनके अलगाव की स्थिति धीरे-धीरे बदलने की ओर थी पर यह बदलाव मंद मालूम पड़ता है।

भक्तिकाल में साहित्यिक (ललित) गद्य बहुत कम परिमाण में रचा गया। इस समय की ललित ग्रन्थ रचनाओं की संख्या बीस से अधिक नहीं है। भक्तिकालीन सामान्य गद्य का भी परिमाण विशाल नहीं कहा जा सकता हैं। बौद्धिक व्यावहारिक जीवन के अपेक्षाकृत कम विकसित होने, तत्कालीन जन-मानस के आज की अपेक्षा अधिक भावुक, काव्यप्रिय, धर्मनिष्ठ होने भक्ति-आन्दोलन की तीव्रता, संस्कृत, प्राकृत, और अपभ्रंश की पथ प्रश्रय, प्रव त्ति, प्रेम का अभाव, कागज की कमी, साहित्य को कण्ठस्थ करने की परम्परा और विभाषाओं में व्याख्यानुवाद की प्रव त्ति प्रबल न होने के कारण गद्य का विकास भक्तिकाल में नहीं हो सका।

भक्तिकालीन काव्य की उपलब्धियाँ

भक्तिकालीन समय हिंदी साहित्य के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण काल रहा है। हिंदी के उच्चकोटि के और बड़े महत्त्व के कवि इस काल में हुए हैं। कबीर, जायसी, तुलसी, सूर, मीरा, रसखान आदि सभी इसी काल की शोभा थे। अपनी प्रतिभा और काव्य सर्जना की असीम प्रभावशाली दक्षता के कारण उन्होंने इस काल को सुशोभित किया है। अपने-अपने क्षेत्र के ये सर्वाधिक प्रभावशाली कवि हुए है। काव्य संबंधी अनेक विशेषताओं के साथ-साथ इनमें भक्ति की अतल स्पर्शी गंभीरता भी देखने में आती है। भक्ति और काव्य का इतना उच्चकोटि का व्यामिश्रण और किसी काल में नहीं मिलता। भारतीय संस्कृति का यह मूल गुण रहा है कि यहाँ लौकिकता से पारलौकिकता को ऊँचा माना जाता रहा है। धर्म और अध्याय में बढ़े हुए मन्त्रपूत आर्ष-चक्षु ऋषियों के सामने सम्राट लोग झुकाते रहे है। भक्तिकाल में भी ऐसी ही पाते हैं। पहुँचे हुए सन्त-साधुओं के सामने राजा और राजनेताओं ने अपना सिर झुकाया है। उनकी कृपा की याचना की है। अकिंचनता के सामने सम्पन्नता का ऐसा झुकाव और किसी काल में देखने में नहीं आता। इतनी अधिक गंभीरता और आध्यात्मिक उच्चता के होते हुए भी ये कवि अपने को सदैव, दीन, हीन, तुच्छ और कमजोर समझते रहे।

रामभक्ति काव्य के महात्मा तुलसीदास ने तपस्वी बाल्मीकि द्वारा प्रचलित रामकथा को अपने ढंग से प्रस्तुत करके रामकथा का सर्वजन सुलभ स्वरूप पैदा किया। उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की-विनयपत्रिका, रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली आदि उनमें से प्रमुख हैं। सभी में राम की कथा को तरह-तरह से बढ़ाया गया है। भगवान के अवतार की कथाश्रित व्याख्या करके राजा रंक, ग हस्थी भिखारी, ऊँच-नीच, अच्छे-बुरे, बालक-व द्ध, स्त्री-पुरूष सबके लिए भगवान की पूजा अर्चना, पाठ रामायण, सेवा सत्संग का मार्ग, खोल दिया। शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त के सन्यास मार्ग की प्रतिष्ठा थी। उसे स्वीकार न करके रामानुजाचार्य सम्मत विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त की तुलसी ने व्यावहारिक सरलता प्रस्तुत की। पतंजलि ने अपने व्याकरण महाभाष्य में एक श्रुति वाक्य का उल्लेख किया है-

"एकः शब्दः सम्यकः ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके काम धुग्भवति।"

अर्थात एक ही शब्द यदि अच्छी तरह से जान लिया जाए और उसका ठीक-ठीक प्रयोग कर दिया जाए तो वह स्वर्ग में भी और इस लोक में भी मनवांछित फलों को देने वाला होता है। ऐसा लगता है गोस्वामी तुलसीदास ने एक शब्द राम को अच्छी तरह जान लिया था उसका ठीक प्रयोग भी किया था। वह उनके लिए इस लोक में तो मनवांछित फलदाता हुआ ही उनका परलोक भी सुधर गया।

रामचरितमानस के अत में वे कहते हैं-

"जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदास हूँ।
पायो परमविश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।"

कृष्ण भक्त कवियों के सिरमौर अंधे सूर ने अपने बंद नेत्रों से ब्रह्म को माया के संबंध से रहित देखकर शुद्धाद्वैत समर्थित विचारों को भगवान सम्मत सूरसागर में अभिव्यक्त किया। ब्रजभाषा का महा महत्त्व का सूरसागर कृष्ण भक्ति का आकार ग्रंथ है। भागवत पुराण से प्रभाव लेकर अपनी मौलिकता और मेंधा से और कवित्व शक्ति से बड़े निखरे रूप में प्रस्तुत किया। भागवत पुराण में जिसका नाम भी नहीं है, उस राधा को मूल्य देकर रसनीयता का ऐसा सागर बहाया जिसमें तपोभूमि व न्दावन और ब्रज विश्वविख्यात हो गये। सूरदास की सूक्ष्मेंक्षण शक्ति बड़ी अद्‌भुत थी। बाललीला का वर्णन करके उन्होंने ऐसा साहित्य उभारा जो सहज ही रस चुबिनी कोटि में रखा गया और वात्सल्य को रसत्व सिद्ध करने में अतीव सहायक रहा। श ंगार का संयोग वियोग गोपियों के माध्यम से व्यक्त करे रसनीय काव्य प्रदान किया। उन्हें वात्सल्य और श ंगार रस का सम्राट कहा जाता है। ऊँचे भक्त और ऊँचे कवि, दो अद्‌भुत शिखरों का मेंल सूर के साहित्य में है। अष्टछाप के कवि और मीरा तथा रसखान अपनी-अपनी तरह से काव्य को आगे बढ़ाते रहे पर उनको प्रेरणा देन वाल सूरदास ही है जिनको ब्रज के पत्ते-पत्ते में सांस-सांस में रमें कृष्ण का उनकी आझदिनी शक्ति राधा का अनुभव होता रहा। सूर के सामने राधा संबंधी साहित्य था जिसका सूर ने रसमय प्रयोग किया। रूप गोस्वामी महाराज के 'भक्तिरसाम त सिन्धु' और 'उज्जवलनील मणि' इस तरह की गहराई के बेहद प्रशंसनीय ग्रंथ हैं। हितहरिवंश का राधासुधानिधास्तव भी इसी कोटि का है। उसके एक-एक श्लोक पर सूर जैसा सिद्ध कवि सौ-सौ छंद लिख सकता है, जैसे, एक श्लोक द्रष्टव्य है-

"प्रेमोल्लासेक सीमा परम रस चमत्कार वैचित्र्य सीमा।
सौन्दर्यस्यैक सीमा किमपि नववयोरूप लावण्य सीमा।।
लीला माधुर्य सीमा निज जन परमौदार्य्य वात्सल्य सीमा।
सा राधा सौख्य सीमा जयति रतिकला केलिमाधुर्य सीमा।।"

अर्थात प्रेम के उल्लास की एक सीमा, परम रस के चमत्कार की विचित्रता की सीमा, सौन्दर्य की एक सीमा, अनिर्वचनीय नवीन वय रूप लावण्य की सीमा, लीला युक्त माधुर्य की सीमा, निजजन के प्रति परम उदारता और निज जन 'दासीजन के' प्रति वात्सल्य की सीमा, सौख्य की सीमा, रतिकलाओं, और केलियों के माधुर्य की सीमा, श्री राधा की जय-जयकार होती रहे।

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में कृष्ण काव्य लिखने वाले अपरिमित कवि मिल जायेंगे लेकिन उनमें जो स्थान सूर को मिला, वह किसी अन्य को नहीं मिल सकता है। सूरसागर सूर की सर्वसम्मत प्रामाणिक रचना है। सूर के सागर में प्रेम की उत्ताल तरंगे सदैव तरंगायित होती रहती है। सूर की द ष्टि पैनी थी। वे अपने युग के समाज के प्रति पूर्णतः सचेत रचनाकार थे। यवनों के अत्याचार से आक्रांत जनता के मन से जब ईश्वर के प्रति विश्वास उठ गया था, ऐसे समय में सूरदास ने अपने दिव्य प्रेमसंगीत द्वारा जीवन में आस्था जगाई और आशा का संचार किया।

भक्तिकालीन साहित्य में तुलसी का प्रादुर्भाव एक युगान्तारी घटना है। इनमें कारयित्री प्रतिभा का अद्‌भुत सामंजस्य देखा जा सकता था। तुलसी का लोकानुभव अत्यन्त व्यापक था। वे सच्चे अर्थों में व्युत्पन्न कवि थे। भक्तिकालीन रचनाकारों ने समाज की निम्न वर्गीय जनता की वर्ग चेतना की व्यंजना की है। तुलसी एवं सूर जैसे समाज के दिशावाहक, प्रेरणास्रोत एवं महिमामंडित कवि कभी-कभी इस धरती पर जन्म लेते हैं। जिस काल में इस प्रकार के महिमामंडित कवि एवं रचनाकार उत्पन्न हुए हो वह काल अवश्य ही उपलब्धियों से भरा होगा।

भक्तिकालीन समय में हिंदी साहित्य के महान् रचनाकार उत्पन्न हुए। इन्होंने न केवल अपनी रचना-धर्मिता, काव्य-लालित्य, अलंकरण और भाषा भाव से राष्ट्र एवं समाज की प्रतिष्ठा बढाई, अपितु लोक चेतना को अद्‌भूत संजीवनी प्रदान की है। ऐसी लोक चेतना से समाज को दिशा प्राप्त है। इस प्रकार से समाज धीरे-धीरे दासत्व से मुक्ति, भौतिकता से अध्यात्म, अविपरीत अंधकार से प्रकाश तथा म त्यु से अमरत्व की ओर जाने में समर्थ होता है। शाश्वत संदेश का वहन करने वाली यह चेतना एक जाति की नहीं, अपितु मानवता के लिए आलोक-स्तम्भ बनती है। इस प्रकार के महान् रचनाकार केवल रचनाकार ही नही रह जाते, वरन् युगद्रष्टा महापुरूष और लोकनायक के रूप में प्रतिष्ठित हुआ करते हैं।

जिस समय उत्तर भारत में नाथों और सिद्धों की अंतस्साधना प्रचलित हो चुकी थी, उसी समय दक्षिण भारत में आलवार भक्तों की भावधारा भी प्रवाहित हो रही थी जिसका समर्थन वहाँ के वैष्णव आचार्यों द्वारा किया गया। दक्षिण भारत में वैष्णव धर्म की स्थापना करने वाले रामानुज, मध्व, विष्णु स्वामी और निम्बार्क के चार महान् आचार्य हुए। इनके प्रयास से वैष्णव धर्म की पावन धारा दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित होने लगी। भक्ति के आचार्यों एवं भक्त कवियों की प्रेरणा से भक्तिकाल में चार मुख्य धाराओं का उदय हुआ-संत काव्यधारा, सूफी काव्यधारा, कृष्णकाव्यधारा एवं राम काव्यधारा। भक्ति आन्दोलन के परिणामस्वरूप हिंदी में ऐसे साहित्य की स ष्टि हुई जिसमें काव्य कला का चरम विकास दिखायी देता है। गुण एवं परिणाम दोनों की द ष्टियों से इस युग में विपुल साहित्य लिखा गया है।

भारतीय धर्म साधना एवं चेतना के इतिहास में हिंदी संत काव्य का प्रमुख स्थान हैं। धर्म, साधना एवं लोक जीवन के निर्मल स्वरूप को विकृत तथा विषम बनाने वाले तत्त्वों की इन कवियों ने तीव्र स्वर में आलोचना की। अंधविश्वास में डूबे समाज के लिए इन्होंने कल्याणकारी अभिनव मार्ग प्रशस्त किया। लोककल्याण के नाम पर प्रसारित आडम्बर, अनाचार एवं बह्यचारों की निंदा करते हुए संतों ने उसकी निस्सारता प्रमाणित की। संतों के कण्ठों से प्रस्फुटित ये वाणियाँ मंदाकिनी के द श्य मानवता का मंगल पाथेय बनीं। संतों की द ष्टि में कवि एवं कवि कर्म सामान्य नहीं था। इन्होंने अपने संदेशों एवं उच्चादर्शों के प्रचार हेतु काव्य को माध्यम बनाया। हिंदी साहित्य में संत काव्य ने साहित्य एवं कला की अभिनव मान्यताएँ संस्थापित की। इनका मतवाद सहज साधना पर अवलम्बित है, उनकी दार्शनिक विचारधारा मूल उद्‌गम उपनिषद है। इनकी वाणी में सरलता एवं प्रभावोत्पादकता विद्यमान है। ये संत नैतिकाता के प्रचारक, सत्य उद्‌घाटक एवं समाज-सुधारक थे। इनमें अटूट विश्वास भरा हुआ था। संत कवियों की समाज साधना उन्हें अन्य कवियों के सामान्य स्तर से ऊपर उठाकर सम्मानित आसन पर प्रतिष्ठित कर देती है।

अपने तत्कालीन युग की धार्मिक विसंगति को दूर कर इन संतों ने सांस्कृतिक सामंजस्य स्थापित किया। इन्होंने हिन्दू एवं मुस्लिम के संघर्ष से पीड़ित मानव के ह्रदय में यह भरने का पुष्ट प्रयत्न किया कि राम-रहीम, केशव-करीम में भिन्नता नहीं है। धर्म की सबसे बड़ी विशेषता है औदार्य, करूणा से मुक्त होना, दया एवं सहिष्णुता का विकास करना। इन गुणों से परे रहकर मानव लौकिक-आलौकिक कोई सुख नही प्राप्त कर सकता। समाज, धर्म और संस्कृति के विकास एवं उत्थान की द ष्टि से संतों का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। उन्होंने अपने रचना बल के द्वारा सत्य, क्षमा, दया, त्याग, विनय, समता, समद ष्टि, कथनी, करनी, आदि सामाजिक विश्वासों की परिपाटी ही बदल दी है।

संतों का लक्ष्य बड़ा ही व्यापक रहा है। इन्होंने जीवों के निस्तार के लिए उच्चादर्शों के उपदेश दिए। मानव को कल्याणकारी पथ पर अग्रसर करना ही इनका उद्देश्य था। इनके ह्रदय में दुःखियों के प्रति असीम संवेदना थी। वे संसार को सुखी एवं प्रसन्नचित देखना चाहते थे। इसलिए इन्होंने सामाजिक परिवेश को सुधारने का सतत् प्रयास किया। संसार का सम्पूर्ण दुःख दारिद्रय वे अपने ऊपर लेना चाहते थे। इससे अधिक व्यापक तथा महत्त्वपूर्ण मानवतावादी द ष्टिकोण उच्च कोटि के संतों में ही हो सकता है।

"जे दुखिया संसार में, खावो तिनका दुक्ख।
दलिद्‌दर सौंपि मलूक को लोगन दीजै सुक्ख।।"

संतों का मत था कि सद्‌गुण एवं नैतिक शक्ति बहुत ही प्रभावोत्पादक होती है इसीलिए इन्होंने मानव में मानसिक शक्ति बढ़ाकर उत्साह भरने की चेष्टा की। वे मानते थे कि मानव में वह शक्ति है जिसके नाते वह अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं कर सकता है। स्पष्टतः इन्होंने नैतिकतापूर्ण मानवतावाद का समर्थन किया जिससे जनता में आर्थिक उदारता और विनम्रता आई।

संत साहित्य सामाजिक प्रगतिशीलता का प्रतीक है। प्रत्येक द ष्टि से यह साहित्य प्रगतिशीलता के रंग में अनुरंजित है। काव्य के अंतरंग-बहिरंग पक्षों में तत्कालीन संत कवि पूर्णतः प्रगतिशील हैं। भाषा, भाव, रस, छंद, आदि की द ष्टि से उन्होंने ऐसे प्रयोग किये जो उनके युग की मान्यताओं को पुष्टता, प्रदान करते हैं। इनके द्वारा सुझाये गये विचार भविष्य के लिए मानदंड बन गये। उन्होंने समाज में प्रगतिशील विचारों का समावेश कर युग-युग से पीड़ित जनका का उद्धार किया। संत चरनदास के विचारों में इस प्रकार की स्थिति का सुंदर आकलन किया गया है-

"एकन पग पनही नहीं एक चढ़ै सुखपाल।
एक दुखी एक अति सुखी, एक भूप इक रंक,
एकन को विद्या बड़ी, एक पढ़े नहिं अंक।
एकन को मेंवा मिलै, एक चने भी नाहिं,
कारन कौन दिखाइये, करि चरनन की छांहि।।

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि इन संतों ने जिस साहित्य की रचना की, वह सच्चे अर्थों में जन-साहित्य है। भाषा एवं विचार-बोध की द ष्टि से वह शुद्ध रूप से लोक की वस्तु है। अपनी वाणी के द्वारा संतों ने देश को एक महान् सांस्कृतिक जाल से बाँध दिया। सामंती एवं अभिजात श्रं खलाओं के छिन्न-भिन्न हो जाने पर जातीयता विकसित हुई, जिसका शासन वर्ग की सभ्यता और संस्कारों से दूर-दूर तक कोई संबंध नहीं था। संतों में एक गहरा दायित्व-बोध था जिसके द्वारा वे देश और समाज के सजग प्रहरी बने। एक उदाहरण द ष्टव्य है-

"सुखिया सब संसार है, खावै और सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै और रोवै।।"

सूफी काव्यधारा भक्तिकाल की दूसरी महत्त्वपूर्ण धारा है। इसको प्रेमाख्यानक काव्य के नाम से भी जाना जाता है। भक्तिकाल को स्वर्ण युग बनाने में इस धारा के कवियों का योगदान भी महत्त्वपूर्ण रहा है। सूफी मत इस्लाम धर्म का प्रतिनिधित्व करने वाली एक प्रमुख धारा का नाम है, जिसक पर कुरान का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। दिल्ली के शासक किसी न किसी सूफी साधक के शिष्य बनते थे और उसे विशेष सम्मान देते थे। मुगल-राज्य के विस्तार के साथ-साथ सूफियों का भी प्रसार होता गया। प्रमुख कारण यह था कि सूफियों ने भी अपने आप को इस्लाम से अलग नहीं होने दिया। हिंदी में प्रचलित प्रेमाख्यानों की हृदयग्राही परम्परा के द्वारा उन्होंने जनता के मध्य अपने विचारों का प्रचार किया। अकबर के युग तक सूफीमत प्रेम एवं भक्ति पर आधारित होकर सर्वमान्य हो चुका था। धीरे-धीरे इस मत में भारतीय संगीत, न त्य, देवोपासना की भावना आदि का प्रवेश होता चला गया।

सूफी संतों ने ऊँच-नीच के भेदभाव को मिटाने का सतत् प्रयास किया। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि जीवन में प्रेम की भावना ही उच्च एवं प्रधान होती है। सूफियों के दर्शन की भावना इतनी सरल और मधुर थी, कि जनता ने उसे बड़े हर्ष और प्रेम के साथ अपने जीवन में आत्मसात् कर लिया। सूफी कवि उदार प्रकृति के थे, इसी कारण उनके प्रेमाख्यानों में धार्मिक कट्टरता के दर्शन कम होते हैं।

साहित्यिक द ष्टि से हिंदी सूफी काव्य का विशेष महत्त्व है। इन सूफी कवियों ने सुंदर प्रबन्ध काव्यों की रचना की है। उपमान, योजना, कथानक रूढ़ि तथा वस्तु वर्णन की प्रधानता के कारण उन्हें इस विधा को स्वीकार करना पडा। इनकी कथा का आधार पौराणिकता पर आधारित प्रसंग और घटनाएँ हैं। इनका संयोग-वियोग तथा नख-शिख वर्णन अत्यन्त आकर्षक है। इनके द्वारा रचित प्रेमाख्यानों का उद्देश्य मनोरंजन कम आध्यात्मिक प्रचार अधिक माना गया है। कथा रूढ़ियों के स्रोत भारतीय और भारतीयेत्तर दोनों रहे हैं। फारसी की मनसबी शैली का प्रभाव अधिक रहा है। सांसारिक प्रेम उनके लिए ईश्वरीय प्रेम का सोपान था। सूफी काव्य परम्परा के लगभग समस्त प्रेमाख्यानकों की सामान्य विशेषताएँ प्रायः एक जैसी रही है, लेकिन इनमें से कुछ कृतियाँ अपना विशिष्ट स्थान रखती है तथा समाज पर लम्बा प्रभाव छोड़ जाती हैं। जायसी की अमरकृति 'पद्‌मावत' भी इसी तरह की कृति रही है। जायसी इन कवियों में विशेष तौर पर सर्वोपरि हैं और 'पद्‌मावत' इस परम्परा का गौरव ग्रंथ है। जायसी

से पूर्व की सभी प्रेमकथाएँ कल्पित थीं। जायसी ने अपने ग्रंथ 'पद्मावत' में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। रत्नसेन और पद्मावती की प्रणय कथा को अपनी कल्पना से रससिक्त कर अत्यन्त आकर्षक बना दिया है। लौकिक प्रेम के आधार पर आध्यात्मिक अभिव्यंजना करने वाले इस ग्रंथ में प्रेम-साधना को ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग बतलाया है। पद्मावत की प्रेम कहानी हिन्दू घरों में प्रचलित कहानी है। जिसे जायसी ने मुस्लिम संस्कृति से जोड़कर हिन्दू-मुसलमानों के मध्य निरन्तर बढ़ रही खाई को कम करने का कार्य किया। यह जायसी का उत्कृष्टतम योगदान कहा जा सकता है। जायसी की नागमती का विरह-वर्णन हिंदी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ विरह वर्णन माना जाता है।

जायसी ने लोक संस्कृति के विभिन्न तत्त्वों को अपने काव्य में रखकर एक ओर तो काव्यात्मकता की रक्षा की है और दूसरी ओर लोक संस्कृति को जीवित रखने का प्रशंसनीय कार्य किया है। इन्होंने हिन्दुओं की कहानी को उनकी ही बोली में प्रस्तुत किया। इन कथाओं में लोकप्रचलित घटनाओं, विश्वासों और गाथाओं को प्रकट किया गया है। इस द ष्टि से जायसी को लोक कवि कहा जा सकता है।

कृष्ण काव्य में कृष्ण का उपास्यरूप महाभारत, हरिवंश विष्णु पुराण, तथा श्रीमद्भागवत पुराणों में विस्तार से मिलता है। महाभारत, हरिवंश तथा विष्णुपुराण में व ष्णिवंशीय सात्वतकृष्ण के ऐश्वर्यमय रूप की प्रधानता है, वैसे तो भक्ति काल में कृष्ण काव्य लिखने वाले अपरिमित कवि हुए हैं, किन्तु इनमें सूरदास का स्थान सर्वप्रमुख रहा है। सूरदास को न केवल अष्टछाप के कवियों, अपितु सम्पूर्ण कृष्ण कथा कवियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। 'सूरसागर' सूर की सर्वसम्मत प्रामाणिक रचना है। हरि लीला इसका वर्ण्य-विषय है। दैन्य, वात्सल्य, सख्य, श्रं गार, आदि में सूर की मौलिकता झलकती है। नन्द-यशोदा के साहचर्य में वात्सल्य, श्रीदामा आदि सखाओं के सान्निध्य में सख्य तथा ब्रज कुमारियों के प्रसंग में माधुर्य स्पष्ट झलकता है। प्रत्येक पद मुक्तक एवं स्वतंत्र आवाद्य है किन्तु कुछ खण्ड काव्यात्मक विशेषताओं से सम्पन्न है।

सूरदास की द ष्टि बड़ी तीव्र थी। वे अपने युग के सचेष्ट रचनाकार थे। यवनों के अत्याचार से आक्रांत जनता के मन से जब ईश्वर के प्रति विश्वास उठ चुका था, ऐसे समय में सूर ने ब्रज कुमारी द्वारा अपनी मन को सरल-सुहावना बनाकर चतुर्दिक् भुवन मोहन की मुरली बजाई। अपने दिव्य प्रेम संगीत द्वारा जीवन में आस्था जगाई और आशा का संचार किया। उन्होंने समानता की परिपाटी पर आधारित एक ऐसे मानव-समाज की स ष्टि की जो विश्व-बन्धुत्व तथा निश्छल प्रेम पर आधारित था।

सूर के कृष्ण सदैव सामान्य रहे हैं, विशिष्ट नहीं, चाहे वे राजा नंद के पुत्र रहे हो चाहे स्वयं राजा। सूर की वह जीवन-द ष्टि कितनी स्प हणीय है जिसमें आज की तरह कहीं भय और तनाव नहीं है, है जो केवल मुरली की मधुर ध्वनि, नाचना-गाना, खेल और मनोविनोद। यहाँ नगरीय जीवन की चमक-दमक नहीं है। कालिन्दी का सुंदर कूल है। सूर का काव्य समाज को नव जीवन की प्रेरणा देता हैं। कोई भी जीवन से ऊबता नहीं है। भारतीय जीवन द ष्टि पूर्ण की आराधना करती है। यही कारण है कि सूर का काव्य अपूर्ण द ष्टि वाले मानव को सदैव आकर्षित करता है।

सूर की भाषा ब्रज भाषा है इन्होंने ही सर्वप्रथम ब्रज भाषा को एक सुव्यवस्थित साहित्यिक भाषा के रूप में अपनी रचनाओं में स्थान दिया। वास्तव में जो लालित्य और मोहकता ब्रज भाषा में है, वह किसी अन्य भाषा में नहीं है। इसमें काव्योपयोगी रमणीय शब्दों की भरमार है। श ंगार रस के लिए तो ब्रजभाषा के समकक्ष कोई भाषा ही नहीं ठहरती। इसकी शब्दावली बड़ी ही सम द्ध है। सूर ने ब्रजभाषा को जनभाषा, धार्मिक भाषा तथा साहित्यिक भाषा का गौरव प्रदान किया है। इस द ष्टि से हिंदी जगत् में उनकी उपलब्धि महान् है। हिंदी का कृष्ण भक्तिकाव्य संपूर्ण हिंदी काव्य में अनुभूति की तलस्पर्शिता और अभिव्यक्ति की भंगिमा के कारण श्रेष्ठ है। ये भक्त कवि मानसी उपासना के कारण स्वयं अनुभूतिमय हो गये थे। इसलिए इनके काव्य में संवेदन की सच्चाई और बोध की गरिमा दिखायी देती है। मानव का सौन्दर्य और प्रेम यहाँ साकार हो उठता है। नारी और पुरुष का साहचर्य, रूपासक्ति, मान, समर्पण, एक दूसरे में अंतर्लीन हो जाने की आतुरता रखते है। इन कवियों ने व्यापक सांस्कृतिक चेतना का उन्नयन किया जिसका मूल बिन्दु सौन्दर्य था।

उत्तर भारत में राम भक्ति के प्रचार का श्रेय स्वामी रामानन्द को जाता है। रामानुज के श्री सम्प्रदाय में दीक्षित होकर भी उन्होंने रामावत् सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। रामानुजाचार्य ने विष्णु के अन्य रूपों में रामरूप को तथा अन्य भक्तिभावों में दास्य को विशेष महत्त्व दिया। उत्तर भारत में ही गुह्य साधना के रूप में सीताराम के सौन्दर्य रूप की उपासना भी प्रचलित थी तथा आचरण पक्ष में सामाजिकता की द ष्टि से अध्यात्म रामायण की परम्परा भी ग्रहीत थी।

हिन्दी साहित्य जगत में तुलसी का प्रादुर्भाव एक युगान्तरकारी घटना है। इसमें कारयित्री एवं भावयित्री प्रतिभा का अद्‌भुत सामंजस्य था। इनका अध्ययन जितना गंभीर था, लोकानुभव उतना ही व्यापक-विशाल। राम-कथा के अनन्त स्रोतों का मंथन करके तुलसी ने जो मानस-नवनीत निकाला, उसकी स्निग्धता से भारतीय जन मानस ही नहीं, अपितु विश्व मानवता आज भी अपरमित आनंद का अनुभव करती है। तुलसीदास हिन्दी साहित्य के सर्वाधिक महिमावान कवि है।

तुलसीदास ने राम के जिस रूप-स्वरूप की प्रतिष्ठा की उसमें अपरिमित शक्ति, शील एवं सौन्दर्य का अद्‌भुत सामंजस्य दिखाई देता है। इन विशेषताओं में मानव की सम्पूर्ण उदात्तता समाहित हो गयी है। आराध्य शक्तिशाली होगा तभी वह भक्तों की रक्षा करने में समर्थ होगा। युगीन लोक रक्षण की द ष्टिगत रखते हुए तुलसी ने राम को शक्तिमान के रूप में प्रस्तुत किया। शील से शक्ति मर्यादित होती है, उसके दुरूपयोग की संभावनाएँ कम होती है। इसलिए तुलसी ने राम के सर्वगुण सम्पन्न रूप की अवधारणा की है। वे आदर्श पुत्र, पति, भाई, स्वामी आदि रूपों में दिखाई देते हैं। तुलसी की भक्ति पद्धति सेवक-सेव्य भाव की है। राम-नाम के प्रति पूर्ण विश्वास के साथ जीवन की समग्र नैतिकता के आधार पर वे भारतीय समाज के महत्त्वपूर्ण घटक सिद्ध हुए। सम्पूर्ण उत्तर भारत में जितना आदर उनके 'रामचरितमानस' को मिला, उतना इग्लैंड में बाइबिल को भी नहीं मिला होगा। तुलसीदास ऐसे महान् देवदूत हैं जो रामानंद के सिद्धान्त को पूर्व से पश्चिम तक ले गये तथा उसे स्थिर विश्वास में परिणत किया।

भक्तिकाल की चारों धाराओं का अनुशीलन करने पर हम पाते हैं कि इन सारे संतों और भक्तों का उद्देश्य रचनात्मक है। वे मानव-मानव में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रखते हैं। एक ओर निर्गुण संत आत्म परिष्कार और चित्तशोधन करते हैं। वे ईश्वर की इच्छानुसार जीवन जीने में विश्वास करते हैं। **'जेहि बिधि राखै त्यूँ रहौं जो कुछ देइ सो खाऊँ।'** वहीं दूसरी ओर सूफी संत हैं जो हिन्दू-मुस्लिम के बीच की युगीन दरार देखते है; उसे कम करने का प्रयास करते है। इसके साथ ही कृष्ण-काव्यधारा के कवियों ने जीवन में प्रेम की प्रतिष्ठा करके, तुलसी जैसे कवियों ने एकत्व दर्शन करके समूचे युग और मानवता का कल्याण किया है।

भक्ति आन्दोलन में युग जीवन की आतंरिक वेदना की स्वानुभूति, भगवान की भक्ति और करूणा में स्थिर आशा एवं आस्था के स्वर मुखर है। निराश एवं हतोत्साहित जनता के जीवन में शक्ति का नव-संचार है। भारतीय साहित्य चिन्तन परम्परा का समन्वय और विकास है। पौराणिक प्रतीकों, मिथ्यों, शास्त्रीय कथाओं, विचारों एवं अनुभूति धाराओं का लोकाभिमुखी रूप है। तथा उनका लोक कथाओं से संयोग है। भक्तिकाव्य लोक प्रतिभा की रचनात्मक शक्ति की देन है। इस काल में हिंदी की अन्य शैलियों जैसे-गद्य आदि का विकास उतना नहीं हुआ था, किन्तु काव्य-क्षेत्र में ही जो विविध शैलियाँ विकसित हुई, वे गुणों एवं परिमाण की द ष्टि से अपरिमित हैं। युगानुरूप इन कवियों ने जिस राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना का विकास किया, सामाजिक सौहार्द लाने का प्रयास किया, वह अन्यत्र दुर्लभ है। भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग कहना उचित एवं तर्कसंगत है।

भक्ति काल : स्वर्ण युग

हिंदी साहित्य के भक्तिकालीन समय को साहित्यिक क्षेत्र का स्वर्ण युग माना जाता है। भक्तिकाल निस्संदेह हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग है। इस काल का साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य एवं परवर्ती साहित्य से निश्चित रूप में उत्कृष्ट है। भक्तिकाल से पूर्व हिंदी के आदिकाल अथवा वीरगाथा काल में कविता वीर और श ंगार-रस प्रधान थी, जीवन की अन्य दशाओं और क्षेत्रों की ओर कवियों का ध्यान गया ही नहीं। इस काल के चारण कवि राज्याश्रित थे और उनकी कविता अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशस्तिमात्र थी। सर्वोपरि इस काल के साहित्य की प्रामाणिकता भी संदिग्ध है। भक्तिकाल के उत्तरवर्ती साहित्य में रीतियुक्त अथवा श ंगार-प्रधान कविता का बोलबाला रहा है। इस काल की कविता में भी जीवन की स्वस्थ प्रेरणाएँ नहीं रहीं एकमात्र श ंगार की ही इस युग में प्रधानता है। और उसमें भी अश्लीलता अधिक है। वस्तुतः रीतिकालीन कविता 'स्वान्तः सुखाय' अथवा 'जनहिताय' न होकर 'सामन्त सुखाय' है। आधुनिक काल का साहित्य अपनी व्यापकता एवं विविधता की द ष्टि से भक्तिकाल से आगे निकल जाता है। विशेषकर गद्य-साहित्य का विकास जितना आधुनिक युग में हुआ है, उतना भक्तिकाल में नहीं। इसके विपरीत भक्तिकाल में गद्य का प्रायः अभाव सा ही रहा है परन्तु अनुभूति की गहराई एवं भाव-प्रवणता के क्षेत्र में आधुनिक युग का साहित्य भक्तिकाल के साहित्य की समकक्षता में नहीं रखा जा सकता।

भक्तिकालीन साहित्य को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग माना गया है। इस सन्दर्भ में अधिकांश विद्वानों का एक मत है। इस संदर्भ में कुछ मत उल्लेखनीय हैं-

बाबू श्यामसुन्दर दास का मत

भक्तिकाल में अनेक भक्त कवियों-कबीर, सूर, तुलसी, मीराबाई, रसखान आदि की वाणी (साहित्य) की सरिता अगाध रूप में बही है। डा० श्यामसुन्दर दास के शब्दों में -'जिस युग में कबीर, जायसी, तुलसी, सूर जैसे रससिद्ध कवियों और महात्माओं की दिव्य वाणी उनके अन्तः करणों से निकलकर देश के कोने-कोने में फैली थी, उसे साहित्य के इतिहास में सामान्यतः भक्तियुग कहते हैं। निश्चय ही वह हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग था' इस संदर्भ में आगे लिखते हैं- 'हिंदी-काव्य में से यदि वैष्णव कवियों के काव्य को निकाल दिया जाए तो जो बचेगा वह इतना हल्का होगा कि उस पर किसी प्रकार का गर्व न कर सकेंगे। लगभग दो सौ वर्षों की इस हृदय और मन की साधना के बल पर ही हिन्दी अपना सिर प्रान्तीय साहित्यों के ऊपर उठाये हुए है। तुलसीदास, सूरदास, नन्ददास, मीरा, रसखान, हितहरिवंश, कबीर इनमें से किसी पर भी संसार का कोई साहित्य गर्व कर सकता है। हमारे पास ये सब हैं। ये वैष्णव कवि हिंदी भारती के कण्ठमाल हैं।'

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपना मत स्पष्ट करते हुए लिखा है। "समूचे भारतीय इतिहास में ये अपने ढंग का अकेला साहित्य है। इसी का नाम भक्ति-साहित्य है। यह एक नई दुनिया है।"

1. **भक्तिकालीन काव्य सर्वोत्तम काव्य के रूप में**: अंग्रेजों का मानना है कि 'यदि हमारे सम्मुख एक ओर शेक्सपियर रखा जाए और दूसरी ओर विश्व का साम्राज्य, तो हम पहले शेक्सपियर को ही चुनेंगे। 'हमारे यहाँ सूर, तुलसी, नन्ददास आदि कितने ही शेक्सपियर हुए हैं जो भारती के कण्ठहार है।' इस प्रकार हिंदी के समालोचकों ने एकमत से हिंदी साहित्य के भक्तिकाल को हिंदी का स्वर्णयुग माना हैं यह काल हिंदी काव्य की चतुर्मुखी उन्नति का काल था। काव्य-सौष्ठव, समन्वयवाद, भारतीय-संस्कृति, भावपक्ष, कलापक्ष और संगीत आदि सभी द ष्टियों से यह काव्य सर्वोत्तम है। यह एक साथ हृदय, मन और आत्मा की त प्ति करता है।
2. **भक्तिकालीन हिंदी साहित्य की चार काव्यधाराएँ**: भक्तिकालीन काव्य की विविध रूपों में प्रगति हुई। इस काल की चार काव्य-धाराओं ने एक साथ हिंदी साहित्य की व द्धि कर डाली। चार काव्यधाराएँ निम्नलिखित हैं-

1. संत काव्यधारा
2. प्रेम काव्यधारा
3. कृष्ण काव्यधारा
4. राम काव्यधारा

1. **संत काव्य धारा**: सन्त काव्यधारा के प्रमुख कवि कबीर है। इनके अतिरिक्त दादूदयाल, नानक, सुन्दरदास आदि का स्थान सन्तों में महत्त्वपूर्ण है। कबीर आदि संतों के साहित्य में रहस्यवाद, भक्ति, खण्डन-मण्डन एवं सुधार की भावनाएँ हैं। काव्यत्व की द ष्टि से भी इनके काव्य में शब्दगत, अर्थगत एवं रसगत रमणीयता विद्यमान है। कबीर ने 'साखी', 'शब्द', 'रमैनी' की रचना की है, जो 'बीजक' कृति में विद्यमान है।

   संत काव्य की विशेषताएँ

   (i) **गुरू की महिमा का सुन्दर चित्रांकन**: संत साहित्य में ही नहीं, वरन् सकल भारतीय जीवन और वाङ्मय में गुरू को अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है, क्योंकि गुरू को ही अन्धकार-अज्ञान का निरोधक बताया गया है। इस जगत् में गुरू की महत्ता और अपरिहार्यता निर्विवाद है। गुरू सत्पुरूष (ब्रह्म) का अनुभावक ज्ञाता होता है। वह अनन्त (ब्रह्म) को अनन्त लोचनों से दर्शाता है, इसलिए वह अनन्त महिमामण्डित है।

   "सतगुरू की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
   लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार।।"

   गुरू की संत साहित्य में अभूतपूर्व अभ्यर्थना हुई है। संत दादूदयाल की निर्भ्रान्त धारणा है कि गुरू ही मनुष्य से पशुता को परास्त कर देवत्व स्थापित करता है, ज्ञान देकर ब्रह्म की अनुभूति कराता है, इसीलिए दादू गुरू-उपदेश को अत्यन्त दुर्लभ स्वीकार करते है। इसी दुर्लभता को भावित करके उसे मुक्तिदाता के रूप में अंगीकार किया है -

"जीव रचा जगदीश नैं। बांध्या काया मांहि।
जन रजब मुक्ता किया तौ गुर समि कोई नाहिं।।"

(ii) **माया की व्यर्थता का चित्रण**: माया का सिद्धान्त भारतीय अध्यात्म क्षेत्र की सबसे प्रमुख विशेषता है। 'माया' शब्द की व्युत्पति 'मा' धातु से मानी जाती है। जिसका शाब्दिक अर्थ है परिधि, सीमा या फिर माप। कोई ऐसा रूप या अन्य वस्तु जिससे लोग धोखे या भ्रम में पड़ जाते हैं माया कही जा सकती है। इस प्रकार माया वह आवरण है, जो आत्मा-परमात्मा के मध्य भेद का पर्दा डालकर उसे अपने सत्स्वरूप से प थक करती है तथा नाना सांसारिक कर्मों में अलिप्त करती है। वह भ्रम, अज्ञान व धोखा कहा जायेगा। संत कबीर ने माया को जीव और ब्रह्म के मध्य भेद डालने वाली शक्ति बताया है। इसने अपने हाथ में सत्, रज, तप, तीनों गुणों को धारण कर रखा है-

"माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फाँसि लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी।।"

संतों ने माया को अनेक नामों से जाना-बखाना हैं। कबीर ने इस माया को बहुरूपिणी-मनोमोहिनी बताया है। इसकी व्याप्ति सर्वत्र है। समग्र संसार इसी माया में आलिप्त है। मिथ्या जानकर भी मानव-माया-मोह में मग्न हो जाता है। सुंदरदास का मत इस सन्दर्भ में इस प्रकार है-

"माया मोह माँहि जिनि भूलै।
लोक कुटुम्ब देषि मत फूलै।
इनके संग लागि क्या जरना,
समुझि देषि निश्चै करि मरना।।"

(iii) **संसार की असारता का चित्रण**: संत कबीर आदि निर्गुणिए संतों ने अद्वैतवादियों की तरह ब्रह्म की सत्यता और जगत् की अनित्यता को सुरेखित किया है। उन्होंने जगत् की क्षणिकता का बोध कराने के लिए इस संसार को सुमेंर का फूल, धुंध का मेंघ, कागज की पुड़िया आदि से उपमित किया है। गुरू नानक भी चमक-दमक वाले इस संसार को अनित्य मानते हैं। संत मूलकदास को भी समस्त संसार मरा हुआ प्रतीत होता है। और संसार का समस्त ऐश्वर्य 'फटकन' लगता है।

"जेते सुख संसार के इकट्ठे किये बटोर।
कन थोरे कांकर घने, देखा फटक पछोर।।"

(iv) **नारीविषयक चिन्तन**: संतों ने नारी के दो रूपों की अवधारणा की है- एक तो उसा का कामिनी रूप है जिसे संतों ने गर्हित और त्याज्य माना है, दूसरा उसका सती रूप है जो संतों के लिए बड़ा मान्य और ग्राह्य है। संत कबीर ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कनक और कामिनी की निन्दा की है। कामिनी भक्ति, मुक्ति और ज्ञान की विनाशिका होती है, इसीलिए कबीर उसे त्याज्य बताते हैं-

"नारि नसावै तीनि सुख जौ नर पासैं होइ।
भगति मुकति जिन ध्यान, मैं पैसि न सकई कोई।।"

(v) **नैतिक भावना की प्रबलता**: 'नीति' एक व्यापक शब्दभाव है। यह उत्कृष्ट आचार-संहिता है। नीति ही मानव को कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक प्रदान करती है। काव्य और जीवन का बड़ा ही समीपी संबंध है।

नैतिक भावना से अनुप्राणित होकर संतों ने अपनी कविता में प्रणय, दान, दया, अहिंसा, सत्संगति, सदाचार, सत्यता, परोपकार, क्षमा, शौर्य, निन्दा, त्याग, क्रोध विसर्जन, अभिमान हीनता आदि नीति के नाना रूपों को शब्दांकित किया है। प्रेम की अनिवार्यता को भावित करके संत। कबीर उस शरीर को व्यर्थ एवं हेय मानते है। जो प्रेम रस से लबालब नहीं भरा है। संतों के मन में दान की बड़ी महिमा थी।दान देकर दाता स्वयं का अभ्युदय करता है। कबीर ने इस भावसत्य को व्यंजित करते हुए कहा है-

"ऋतु बसंत जाचक भया, हरिख दिया द्रुम पात।
ताते नव पल्लव भया, दिया दूरि नहिं जात।।"

(vi) **मानवतावादी चिन्तन**: भक्तिकालीन संतों के समय धर्म के वास्तविक स्वरूप का लोप हो चुका था, इसीलिए संतों ने बाह्यचारों एवं बाह्याडम्बरों के खण्डन द्वारा लोकमानस को धर्म के मूल रूप को समझने के लिए उद्बोधित कियां इस उद्बोधन में उन्होंने हिन्दू और मुसलमान की एकता का प्रतिपादन किया। जातिय एकता की स्थापना की, ब्राह्मणों के थोथे ज्ञान को दमित किया लोगों को समाज तथा धर्म की संकुचित सीमा को तजकर सार्वभौमिक और सार्वकालिक जीवन-मूल्यों को अंगीकार करने की सलाह दी।

"कछु न कहाव आप कौ; काहू संग न जाइ।
दादू निर्परव है रहै, साहिब सौं ल्यौ लाइ।।"

प्रेम काव्यधारा

प्रेमकाव्य के कवियों में जायसी, कुतुबन, मंझन, उसमान आदि प्रमुख हैं। इस शाखा के प्रतिनिधि कवि जायसी है। उनका 'पद्मावत' हिंदी का प्रथम सफल महाकाव्य है। जायसी आदि प्रेममार्गी कवि सूफी मुसलमान है, परन्तु उन्होंने अपनी सहिष्णुता, उदारता आदि गुणों से हिन्दू मुस्लिम संस्कृति में एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। ये कवि 'प्रेम की पीर' के कवि है। लौकिक प्रेमकथाओं के माध्यम से इन्होंने आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना की है। ये कवि भी रहस्यवादी हैं। शुक्ल जी ने इन्हीं के रहस्यवाद को शुद्ध भावात्मक रहस्यवाद माना है।

प्रेम काव्यधारा में प्रेमाख्यानों के वर्ण्य-विषय की विशेषताएँ

1. **प्रेम काव्यधारा में प्रेम एक मादक तत्त्व के रूप में**: प्रेम काव्य धारा में प्रेम एक मादक तत्त्व के समान माना जाता है जिसकी खुमारी में सूफी साधक खुदा के नूर को उसकी अनुभूति को अभिव्यक्त करने में सफल होता है। मिलन की स्थिति में उसे संसार की स्म ति नहीं रहती, देह का किंचित मात्र ध्यान नहीं रहता है। सूफियों की सम्पूर्ण साधना प्रेम पर आश्रित है। उन्होंने ईश्वर को प्रियतम माना है। उनके लिए वह अमूर्त होता हुआ भी मूर्तिमान सौंदर्य है, माधुर्य लोक का शासक है और प्रेम का प्रचारक है। प्रेमी कवि बरक्तुल्ला ने कहा है कि कहीं, ईश्वर, कही प्रेमी और कहीं प्रियतम तथा कही स्वयं प्रेम ह-

   "कहीं माशूक कर जाना, कहीं आशिक सितां माना।
   कहीं खुद इश्क ठहराना, सुनो लोगों सुखावानी।।"

2. **प्रेम काव्यधारा में नायक-नायिका**: इन प्रेमकथाओं में नायक नायिकाओं को सांसारिक संबंधों के प्रति उदासीन दिखाया गया है। इन काव्यों के नायकों पर योगियों का प्रभाव द ष्टिगत होता है। समस्त प्रेमाख्यानों के नायक योगी होकर ही निकले हैं और योग-साधना से ही उन्होंने सिद्धि प्राप्त की है। नायक को जीवन का और नायिका को ब्रह्म का प्रतीक माना गया है।

3. **लोक द ष्टि**: प्रेम काव्य धारा की लोक द ष्टि बड़ी ही सजग रही है। अपने आस-पास के विस्त त वातावरण से कहीं पर अद श्य की निराधार विस्त त कल्पना इन कवियों ने नहीं की, वरन् उनकी रचनाओं में भारतीय जीवन एवं संस्कृति का बड़ा सजीव चित्रण हुआ है। सामाजिक जीवन के आनन्दोल्लास एवं मर्यादा के प्रतीक त्यौहारों, उत्सवों, सामाजिक रीतियों एवम् संस्कारों का वर्णन भी इन प्रेमाख्यानों में यत्र-तत्र प्राप्त होता है। माता-पिता की सेवा, स्त्री का समाज में स्थान, श्वसुर-ग ह का भय आदि सामाजिक समस्याओं पर भी इन कवियों ने अपने विचार प्रकट किये हैं।

4. **कथानक रूढ़ियाँ**: इन प्रेमाख्यानों के वर्णन-विषय में एक बात यह ध्यान देने योग्य है कि इनमें सिंहल यात्रा या उसके अभाव में किसी अन्य यात्रा का वर्णन अवश्य रहता हैं इसके अतिरिक्त अपभ्रंश के चरित-काव्यों की कतिपय कथानक रूढ़ियों का भी इनमें समावेश हुआ है, यथा उजाड़नगर या वन में किसी सुंदरी से साक्षात्कार फिर राक्षस के हाथों से उसे छुड़ाना, नायिका-चित्र निर्माण, पशु-पक्षियों का मनुष्य की बातों में बोलना एवं उनकी भाषा समझना, नायक-नायिका के मिलन में अधिकांशतः शुक का योग आदि।

5. **काव्यादर्श-प्रेरणा और प्रयोजन**: यद्यपि हिंदी प्रेम काव्यधारा के कवियों का प्रमुख काव्यादर्श अध्यात्म, विरह एवं प्रेम का चित्रण करना था, किन्तु इसके साथ ही उनका काव्यादर्श यश की लालसा, लोक-हित एवं समाज-कल्याण, कान्तासम्मित उपदेश तथा सूफी-सिद्धान्तों एवं इस्लाम धर्म के प्रचार की भावना से भी संयुक्त था। संत कवियों में काव्य रचना के प्रति यश की कोई कामना नहीं रही है। जबकि इसके विपरीत सूफी कवि यश की लालसा से भी काव्य-स जन में प्रव त्त हुए है। यद्यपि उन्होंने काव्य के माध्यम से अपने आध्यात्मिक विचारों की अभिव्यक्ति की है।

कृष्ण काव्यधारा

कृष्ण काव्य के प्रतिनिधि कवि सूरदास हैं। इनके अतिरिक्त नन्ददास, परमानन्ददास आदि अष्टछाप के कवियों, हितहरिवंश, मीरा तथा रसखान का नाम इस साहित्य में आदरपूर्वक लिया जाता है। कृष्णभक्त कवियों ने गीतिकाव्य की रचना की है। कृष्ण के लोकरंजन रूप को लेकर सख्य सख्य एवं माधुर्यभाव से भक्ति की है। सूर का 'सूरसागर' गीतिकाव्य का श्रेष्ठ उदाहरण है। इनके वात्यल्य भाव और श ंगार-रस का चित्रण अपूर्व भक्ति-भावना, समन्वयवाद, लोक-मंगल की भावना, भाव, भाषा और शैली सभी द ष्टियों से उत्कृष्ट है। सूरसागर सूर की सर्वसम्मत प्रामाणिक रचना है। हरि लीला इसका वर्ण्य विषय है। दैन्य, वात्यल्य, संख्य, श ंगार तथा शांत भाव व्यंजक इन पदों से सूर की मौलिकता दिखायी देती हैं सूर के सागर में प्रेम की उत्ताल तंरगे, सदैव तंरगायित होती रहती है। ऐसे युग जीवन में स्नेह स्रोत सूख गया था। सूर ने उसके कण-कण में प्रेम को प्रतिष्ठित कर दिया। प्रेम की यह विजय सूर की अपनी विजय है। योग सर्वसुलभ नहीं है, ज्ञान का पार नहीं है, वेद सुनना सबके लिए वैध नहीं है। ऐसे में प्रेम या भक्ति ही सर्वसुलभ है। प्रेमियों की भक्तों की कोई जाति नहीं है। प्रेम में कही गोपनीयता भी नही ंहै। यह परमार्थ का मार्ग प्रशस्त करता है-

> **"प्रेम प्रेम ते होइ, प्रेम ते पारहिं जइये।**
> **प्रेम बध्यों संसार, प्रेम परमारथ पइये।**
> **साँचों निहचै प्रेम कौ, जीवन मुक्ति रसाल।।**
> **एकै निहचै प्रेम कौ, जाते मिलै गोपाल।।"**

कृष्ण काव्य धारा की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार प्रकट की जा सकती हैं-

1. **भक्ति के बहुआयामी स्वरूप का चित्रण**: कृष्ण काव्यधारा के रचनाकारों की भक्ति रागानुगा कोटि की है। भक्ति इन रचनाकारों के लिए साध्य है, साधन नहीं। इस भक्ति में सख्य एवं कान्ताभाव की प्रधानता है। दास्य और वात्सल्य भक्ति के साथ नवधाभक्ति को भी इसमें महत्त्व मिला है। निम्बार्क सम्प्रदाय में स्वकीया भाव पर और चैतन्य तथा बल्लभ सम्प्रदाय में परकीया भाव की भक्ति का विशेष महत्त्व रहा है। प्रेमाभक्ति का समाहार भी आगे चलकर माधुर्य भक्ति में हो जाता है।

> **"हमारे हरि हारिल की लकरी।**
> **मनक्रम बचन नंद-नंदन उर, यह द ढ़ करि पकरी।।"**

2. **गुरू महिमा और नाम स्मरण की महत्ता पर बल**: कृष्ण काव्यधारा के रचनाकारों ने संत, सूफी और रामकाव्य के स जनकर्त्ताओं के समान ही गुरू की महिमा का गान किया है। वे भव सागर में डूबते हुए शिष्यों को ज्ञान से आलोकित कर बचाने का उपक्रम करते हैं। गुरू ही उपास्य के प्रति शिष्यों में प्रेम उपजाता है। ज्ञान का आलोक फैलाता है, भक्ति के मार्ग पर चलने का आह्वान करता है और प्रभु-दर्शन कराने में अह्म भूमिका निभाता है। यह सभी गुरू कृपा पर ही निर्भर होता है। सूरदास ने लिखा है।

> **"गुरू बिनु ऐसी कौन करे?**
> **माता-तिलक मनोहर बाना, लै सिर छत्र धरै।**
> **भवसागर तै बूड़त राखै, दीपक हाथ धरै।**
> **सूर स्याम गुरू ऐसो समरथ छिन मैं ले उधरै।"**

3. **समकालीन सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यक्ति**: भक्तिकालीन युग के कृष्ण काव्यों में समकालीन सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को यथार्थ रूप में सम्प्रेषित किया गया है। आज का समाज जितना विकसित और सम द्ध है उतना उस समय का समाज विकसित नहीं था। उस काल के सामाजिक और सांस्कृतिक कर्मों से पता चलता है कि उस काल में चारगाही संस्कृति का ही बोलबाला था। गोचारण कर्म ही उस समय का प्रधान पेशा था। पर्व और उत्सव में सामूहिक सहभागिता की अपनी अलग पहचान थी। बच्चों का जन्म हो या कर्म, उसमें सभी भागीदारी निभाते थे। श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव का एक उदाहरण द ष्टव्य है-

"हौं इक नई बात सुनि आई।
महरि जसोदा ढोटा जायौ, घर-घर होति बधाई
द्वारैं भीर गोप-गोपिनी की, महिमा बरनि न जाई।
अति आनन्द होत गोकुल मैं, रतन भूमि सब छाई।
नाचत व द्ध, तरून अरू बाल, गोरस-कीच मचाई।
सूरदास स्वामी सुख सागर, सुंदर स्याम कन्हाई।।"

4. **विरहानुभूति की धार्मिक अभिव्यंजना**: कृष्ण काव्य धारा के रचनाकारों ने वियोग श ंगार के अन्तर्गत विरह की विभिन्न भूमियों को सजीव रूप से चित्रित किया है। विरह की जितनी भी अन्तर्दशाएँ सम्भव है, वे सभी इस काव्य में मिल जाती है। इन कवियों का विरह वर्णन संवेदनाजन्य है। परिस्थितियाँ इसमें आड़े हाथ नहीं आती। विरह का एक-एक पल विरहिणी के लिए कल्प के समान अहसास होता है। सूरदास ने इस विरहानुभूति को विभिन्न अन्तर्दशाओं के रूप में प्रस्तुत किया है, जो बड़ा ही हृदय विदारक है-

"निरखति अंक स्याम सुंदर के बार-बार लावन्ति छाती।
लोचन जल कागद मसि मिलिकै, है गई स्याम स्याम की।।"

5. **राधाकृष्ण और गोपियों के मिलन का सजीव चित्रण**: कृष्ण काव्यधारा के कवियों ने राधाकृष्ण और गोपियों के मिलन को एक विस्त त फलक पर आयोजित किया है। यह विस्त त फलक ब्रज और व न्दावन का वह क्षेत्र है जिसमें इन सभी की प्रेमक्रीड़ाएँ संचालित होती है। खेलते हुए कृष्ण कभी ब्रज की संकरी गली में और कभी यमुना के तट पर निकलते हैं जहाँ पर उनकी भेंट राधा और उसकी सखियों से हो जाती है। राधा गौरवर्णी थी और कृष्ण श्यामवर्ण। राधा की सुंदरता को देखते ही वे मुग्ध हो गये। यथाः

"खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
कटि कछनी पीतांबर बाँधे हाथ लिये भौंरा, चक डोरी।।"

राम काव्यधारा

तुलसी का 'रामचरितमानस' हिंदी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है और हिन्दू धर्म तथा संस्कृति का गौरव-ग्रन्थ है। इस प्रकार सैकड़ो कवियों ने भक्तिकाल के साहित्य को विकसित किया है। राम अनन्त हैं, उनके गुण अनन्त है, उनकी कथा अनन्त है। राम के नाना अवतार हैं लोक में उनके चरित्र का निरूपण करने वाली अनेक रामायणें हैं। वास्तव में, रामकथा देश और काल से परे है। उसकी धारा युग-युग से प्रवाहित होती चली आ रही है तथा अपनी सरसता से कवियों-कलाकारों-भावकों-भक्तों को आनन्दित करती रही है। युगीन परिवर्तनों के बावजूद राम का रूप सर्वत्र मनोहारी तथा प्रभावशाली रहा है।

रामकाव्यधारा की विशेषताओं को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है-

1. **राम के सगुण साकार रूप की अर्चना**: राम के दो रूप माने गये हैं एक निर्गुण रूप और दूसरा सगुण रूप। भक्तिकालीन रामकाव्यधारा के कवियों ने निर्गुण राम की नहीं, वरन्, सगुण राम रूप की अवतारणा अपने काव्यों में की है। उन्होंने राम और रामायण को देशकाल तथा जनजीवन के अनुरूप बनाकर प्रस्तुत किया है। राम काव्यधारा में ऐसे विराट् राम की प्रतिष्ठा हुई है और भावुक भक्तों तथा कवियों ने राम के इन्हीं रूपों की अर्चना-वंदना की है। रामकथाओं के लिए राम ही सर्वस्व हैं।
2. **दार्शनिक चेतना**: भक्तिकालीन राम कथाकार दार्शनिक नहीं, वरन् वे कवि थे। राम कथा के विविध पक्षों का रसमय गायन करना उनका उद्देश्य था। वे कोरे ज्ञान को महत्त्व नहीं देते थे। कोरी शिक्षा उनके समीप मिथ्या थी। 'विनयपत्रिका' में तुलसी ने कहा है-

"वाक्य-ग्यान अत्यन्त निपुन भव-पार न पावै कोई।।
निसि ग ह मध्य दीप की बातन्ह तम निव त्त न होई।।"

राम काव्यधारा की दार्शनिक चेतना पर कई दर्शनों का प्रभाव देखा जा सकता है। रामकथा के कवियों का प्रयोजन रामभक्ति था। वे व्यक्ति मन के कालुष्य को समाप्त कर देना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने 'कलिमल शमन' और 'भव-तरन' के लिए रामभक्ति का सहारा लिया है ।

3. **सामाजिक संवेदनाः** रामभक्ति काव्य की सामाजिक संवेदना बड़ी गहरी है। सामाजिक द ष्टि से रामभक्ति काव्य की विशेष महिमा है। जिस समय रामभक्ति काव्य का प्रणयन हो रहा था, उस समय समाज अनेक प्रकार की भ्रांति और अशांति का शिकार था और मुगलों के शासन के कारण भारतीय संस्कृति संकट में पड़ी थी। ऐसे विषम समय में रामभक्ति काव्य प्रणेताओं ने भारतीय समाज को पुनर्गठित तथा भारतीय संस्कृति को पुनर्जाग त करने का उपक्रम किया है।
रामभक्ति का समग्र प्रयत्न आदर्श समाज और आदर्श परिवार की स्थापना का था जिसके आधार पर उन्होंने समपर्ण और प्रेम को अंगीकार किया है, विवेकपूर्ण, कर्त्तव्यपालन को स्वीकार किया है। तुलसी आदि रामभक्ति के कवि वर्णाश्रम व्यवस्था के पक्षधर थे, इसीलिए वे वर्णाश्रम मर्यादा के विरूद्ध आचरण पर अपना क्षोभ प्रकट करते हैं और वर्णाश्रम व्यवस्था की महत्ता पर बल देते हैं-

"बरनाश्रम निज-निज धरम, निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नही भय सोक न रोग।।"

4. **युगीन समस्याओं का निरूपणः** श्रेष्ठ साहित्यकार तत्कालीन समस्याओं से मुँह मोड़कर साहित्य-सर्जना नहीं कर सकता है। वास्तव में, वह युगबोध से जुड़कर युग को संदेश भी देता है। तुलसीदास आदि रामभक्ति काव्य के श्रेष्ठ कवि है और रामोपासना करते हुए भी उन्होंने अपने युग की समस्याओं को अनदेखा नहीं किया है। अनेक युगीन समस्याओं को रामकथा में यथास्थान निरूपित किया गया है। इतना ही नहीं, उस समय का लोक जीवन विपन्न और कारूणिक था, उसका चित्रण भी 'कवितावली' में चित्रित किया गया है। यथा-

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका विहिन लोग सीघमान सोच बस,
कहैं एक एकन सों, 'कहाँ जाई, का करी'?
दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबन्धु।
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी।।"

5. **समन्वय की विराट् चेष्टाः** भारत, भारतीय संस्कृति और भारतीय साहित्य संगम का देश है, यहाँ पर संगम की संस्कृति है और संगम का साहित्य है। संगमधर्मिता इसकी प्रधान प्रव त्ति है। कितनी ही विचारधाराओं के लोग यहाँ आये, बसे। इसी कारण यहाँ समन्वय की विराट् चेष्टा हुई है। यह समन्वय अनेक स्तरों पर दिखाई पड़ता है। देवता-राक्षस और मानव की संस्कृति में संवेदना और शिल्प में समन्वय करके रामभक्ति काव्य में समन्वयवाद को प्रतिष्ठित किया है। समन्वय साधना से संबंधित कुछ पंक्तियाँ द्रष्यव्य हैं-

"प्रेम पुलकि केवट कहिनामू। कीन्ह दूरि ते दंड प्रनामू।
रामसखा रिषि बरबस भेंटा जनु महि लुटत सनेह समेंटा।।"

भक्तिकालीन साहित्य का सारांश

आध्यात्मिकता एवं साहित्यिकता का समन्वय

भक्तिकाव्य में मार्मिक भावनाओं एवं कवित्व का सामंजस्य वर्तमान है। भक्तिकालीन काव्य जैसे 'रामचरितमानस' जहाँ धर्म का उच्चतम रूप हमारे सामने रखता है, वहाँ उसमें उच्चकोटि का कवित्व भी है। यदि उसमें दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं माधुर्य भाव की भक्ति का निरूपण है, तो दूसरी ओर उसमें लौकिक जीवन की अभिव्यक्ति भी अत्यन्त सफलता से हुई है। भक्तिकालीन साहित्य भक्तों के हृदय की प्यास बुझाता है, तो काव्यरसिकों को भी रसमग्न कर देने की शक्ति रखता है। 'रामचरितमानस', 'सूरसागर' आदि इस प्रकार के काव्यग्रंथ हैं। इन रचनाओं में भक्तिभाव की गम्भीरता, भाषा की सुकुमारता, अनुभूति की तीव्रता तथा रसोद्रेक की पूर्ण क्षमता है।

लोकमंगल का साहित्य

भक्तिकालीन साहित्य में लोक मंगल की भावना भी निहित है। यद्यपि 'सूर' ने लोकमंगल की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया और वे कृष्ण के लोकरंजन, मधुर और लीलामय रूप में ही मग्न रहे, परन्तु सम्पूर्ण रूप से भक्ति साहित्य में लोकमंगल की भावना प्रमुख है। ये कवि भक्त होने के साथ-साथ समाज सुधारक और जननायक थे। जायसी, कबीर और तुलसी के काव्य में समाज

को महान सन्देश दिये गए हैं। तुलसीदास के विषय में आचार्य शुक्ल के शब्द अक्षरशः सत्य हैं-'भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कह सकते है, तो इसी महानुभाव (तुलसी) को ही।' इस काल के कवि भक्त, समाज सुधारक लोकनायक एवं भविष्यद्रष्टा थे। कविता के संबंध में तुलसी के शब्दों में उनका आदर्श था।

"कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहुँ हित होई।

भक्तिकाल में लोक और परलोक का सामंजस्य है। वह ह्रदय, मन और आत्मा की प्यास शांत कर सकता है। इसमें काव्यत्व, भक्ति, संस्कृति आध्यात्मिकता का मधुर समन्वय है। इस प्रकार भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग कहना तर्कसंगत एंवा समुचित मालूम पड़ता है।

प्रतिनिधि साहित्यकार

कबीरदास

1. **जन्मः** कबीरदास का जन्म संवत् 1455 में हुआ था। कुछ विद्वान इनका जन्म 1456 में मानते हैं
2. **प्रमुख रचनाएँ:** कबीर की एक ही प्रामाणिक रचना है बीजक जिसके तीन भाग है-सारवी, शब्द, रमैणी।

हिन्दी साहित्य की भक्तिकालीन काव्य-धारा के निर्गुण पंथी कवियों में कबीरदास का स्थान सर्वोच्च है। वे एक महान् विचारक होने के साथ-साथ प्रतिभा सम्पन्न कवि भी थे। उन्होंने सैकड़ों वर्षों से चली आ रही रूढ़ियों को तोड़ डाला। वे एक सच्चे संत, कवि और समाज सुधारक थे।

काव्यगत विशेषताएँ

कबीरदास संत पहले थे कवि बाद में कविता उनके लिए साधन थी, साध्य नहीं। उन्होंने प्रसिद्धि प्राप्ति के लिए काव्य स जन नहीं किया, बल्कि अपने विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए काव्य स जन किया। समाज-सुधारक एवं उपदेशक के रूप में उनके क्रान्तिकारी विचारों के दर्शन होते है। कबीरदास बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनके काव्य की विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

(1) निर्गुण ईश्वर में विश्वास, (2) समाज सुधारक, (3) गुरू महिमा का वर्णन, (4) क्रान्तिकारी विचारक, (5) सदाचार पर बल , (6) रहस्यवाद, (7) भक्ति-भावना, (8) प्रेम भावना, (9) माया के प्रति सावधान, (10) जाति-पाति की भावना का खण्डन आदि।

कबीरदास एक साधु संत, कवि आदि सभी रूपों में थे। समाज सुधारकों में उनका प्रथम स्थान है। उन्होंने व्यावहारिक ज्ञान को सुन्दर रूप दिया। कबीर निर्गुण काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी भक्ति भावना में निम्नलिखित बातें उभरकर सामने आती है।

नाम स्मरण

कबीर की भक्ति में नाम का महत्त्व अत्यधिक है। तुलसी के लिए जिस प्रकार "राम तैं अधिक राम कर नामू" है, उसी प्रकार कबीर के लिए भी नाम ब्रह्म है, किन्तु यह नाम स्मरण हाथ में मनका लेकर नहीं करना चाहिए, यह तो मन द्वारा किया जाता है

"माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुआँ तो दस दिसि फिरै, सो तो सुमरिन नाहिं।।"

गुरू की महत्ता पर बल

कबीर की भक्ति में सर्वाधिक महत्त्व गुरू को दिया गया है। सतगुरू की महान् कृपा है, जो भक्त पर अमित उपकार करता है। वह भक्त में अनन्त द ष्टि उघाड़ देता है, जिससे वह अनन्त ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है। वह अपने शिष्य के हाथ में ऐसा ज्ञान-दीपक थमा देता है कि वह सन्मार्ग पर सहजतया चल सकता है। कबीर की द ष्टि में गुरू का स्थान गोविन्द से भी उच्चतर है, क्योंकि गोविन्द की पहचान तो गुरू ही करता है। कहा भी गया है-

"गुरू गोविन्द दोऊ खड़े काके लागौं पाइ।
बलिहारी गुरू आपने जिन गोविन्द दियो बताइ।।"

माधुर्य भाव

कबीर की आत्मा निराकार ब्रह्म के लिए उसी प्रकार छटपटाती है, जिस प्रकार कोई प्रिय अपने साकार प्रेमी के लिए विकल होता है। राम से बिछुडने पर कबीर को अहर्निश तीव्र वेदना होती है। उसे रात दिन एक क्षण भी सुख नहीं मिलता-

"वासरि सुख ना रैणि सुख, ना सुख सुपनै माहिं।
कबीर विछुट्या राम सूँ। ना सुख धूप न छाँहि।।"

भक्त कबीर की एक ही अभिलाषा है और वह है प्रियतम के दर्शन। यह दर्शन वे अपना सर्वस्व लुटा देने पर भी करना चाहते हैं -

"यहु तन जारौं मसि करौं, ज्यों धुँआँ जादू सरग्गि।
मति वै राम दया करै, बरसि बुझानै अग्नि।।"

आचरण की शुद्धता

कबीर की भक्ति में सदाचार का महत्त्व अत्यधिक है। आचरण की अशुद्धता ईश्वर मिलन में बाधक है। कनक और कामिनी के पीछे दौड़ने वालों को उस लौ की प्राप्ति कहाँ

"एक कनक अरू कामिनी दुर्गम घाटी दोइ।

'कामिनी' की तो सभी सन्तों ने बुराई की है। पर यहाँ 'कामिनी' का अर्थ सामान्य नारी से नहीं लिया जाना चाहिए। 'कामिनी' वह नारी है जो काम-वासना में लिप्त रहती है। कामिनी कबीर के लिए काली नागिन के समान है। वे कहते है। कि नारी की झाँई पड़ने से ही भुजंग अन्धा हो जाता है, किन्तु जो सदा ही नारी के साथ रहते हैं उनकी क्या गति होगी-

"नारी की झाँई परत, अन्धा होत भुजंग।
कबिरा उनकी कौन गति, नित नारी के संग।।"

आचरण की शुद्धता पर सत्संगति का बहुत प्रभाव पड़ता है यदि असाधु का संग हो जाए तो भक्ति-मार्ग अवरूद्ध ही हो जाएगा।

"कबिरा संगति साधु की, हरै और की व्याधि।
संगति बुरी असाधु की, आठौं पहर उपाधि।।"

ईश्वर की एकता

परम्परागत हिन्दुओं से कबीर का यही विरोध है कि उनका बहुदेववाद में तनिक भी विश्वास नहीं। हिन्दुजन, अपने इष्ट की न जाने कितने नामों से आराधना करते है। राम, कृष्ण, शिव, महेश, देवी, दुर्गा, भवानी आदि भक्त कबीर इन सबके पीछे एक ही ईश्वर की कल्पना करते हैं। कबीर का ईश्वर कण-कण में व्याप्त है, निराकार एवं निर्गुण है। एक स्थल पर तो उन्होंने राम-रहीम, बिसिमिल-बिसंभर, कृष्ण-करीम की एकता प्रतिपादित की है-

"हमारे राम रहीम करीमा कैसौ अलह राम सति सोई।
बिसमिल मेंटि बिसम्भर एकै और न दूजा कोई।।"

सूरदास

सूरदास के जन्म स्थान के विषय में विद्वानों में अनेक मत रहे हैं। इस सन्दर्भ में चार स्थानों का उल्लेख हुआ है। डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल गोपांथल (ग्वालियर) को, कवि मियाँ सिंह मथुरा में बल्लभगढ़ के पास को सूरदास का जन्म स्थान मानते हैं फिर भी अधिकांश विद्वान हरिदास के मत से सहमत है। उन्होंने इनका जन्म सीही ग्राम (हरियाणा) में इनका जन्म माना हैं जहाँ तक सूरदास की जन्म तिथि का प्रश्न है, पुष्टि सम्प्रदाय के अनुसार सूरदास स्वामी बल्लभाचार्य से आयु में दस दिन छोटे थे। इस आधार पर सूरदास की जन्म तिथि संमवत् 1535 सुदी 5 मंगलवार ठहरती है। कुछ विद्वानों ने उनका जन्म 1540 में माना है।

प्रमुख रचनाएँ

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज के अनुसार सूरदास रचित ग्रन्थों की संख्या पच्चीस बताई जाती है, किन्तु इन रचनाओं में से कुछ अप्रामाणिक है और कुछ सूरसागर की ही अंश है। सूर कृत तीन रचनाएं ही प्रामाणिक मानी जाती है (1) सूरसागर, (2) सूरसारावली, (3) साहित्य लहरी।

काव्यगत विशेषताएं

सूरदास कृष्ण भक्ति शाखा के अन्तर्गत सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। उनकी इस महान् कीर्ति का मुख्य कारण है उनकी प्रगाढ़ भक्ति भावना।

भक्ति भावना

सूरदास सगुण ईश्वर के उपासक थे। इसीलिए उनकी भक्ति को सगुण भक्ति कहते है। भक्ति उनके लिए साधन नहीं साध्य थी। उनकी भक्ति माधुर्य भाव की भक्ति थी, जिसमें आत्म-समर्पण की भावना अति आवश्यक है।

बाल लीला वर्णन

सूरदास ने बालक श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं का अत्यन्त मनोहारी ढ़ग से चित्रण प्रस्तुत किया है। उन्होंने श्रीकृष्ण की चेष्टाओं, क्रीड़ाओं और विभिन्न संस्कारों का वर्णन विस्त त रूप से किया है। बाल-मनोविज्ञान के क्षेत्र में सूरदास का कोई जोड़ नहीं है।

वात्सल्य भाव

सूरदास ने पुरूष होते हुए भी माता का हृदय पाया था। उन्होंने माता यशोदा के हृदय के वात्सल्य भावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति की है। मात हृदय के चित्रण में सूरदास को अद्‌भुत सफलता प्राप्त हुई है।

श ंगार वर्णन

सूरदास भक्त कवि होते हुए भी श ंगार वर्णन के सम्राट कवि माने जाते हैं। श ंगार प्रेम भी उनकी भक्ति का प्रमुख साधन है। सूरदास के श ंगार का वियोग पक्ष अधिक उज्जवल एवं हृदयस्पर्शी है। संयोग में प्रिय की समीपता निरन्तर बनी रहती है। सूरदास का सम्पूर्ण काव्य गीति काव्य है। अतः उन्होंने गेय पदों की रचना की है। छन्दों के स्थान पर उन्होंने विभिन्न राग-रागिनियों का प्रयोग किया है। फिर भी कवि ने कहीं-कहीं पर दोहा चौपाई छन्दों का भी प्रयोग किया है। सूरदास के काव्य में अलंकारों का भी अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक प्रयोग किया गया हैं।

तुलसीदास

जीवन परिचय

तुलसीदास के परम शिष्य, बाबा बेणी माधवदास द्वारा रचित 'गोसाई चरित' के अनुसार इनका जन्म श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन, सम्वत् 1554 में हुआ लेकिन अनेक कारणों से विद्वान इस तिथि से सहमत नहीं है। डा० माताप्रसाद गुप्त के अनुसार विद्वान इनका जन्म सम्वत् 1589 ई० मानते है। अधिकाश विद्वान इनका जन्म स्थान (उत्तर प्रदेश) बांदा जिले के राजापुर गाँव को मानते हैं अन्य विद्वान सोरों नामक स्थान को इनका जन्म स्थान मानते है। ये सरयूयारी ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी था। इनका विवाह दीनबन्धु की पुत्री रत्नावली से हुआ।

प्रमुख रचनाएं

तुलसीदास के नाम से 36 रचनाएं जुड़ी हुई है। इनमें से बारह रचनाएं ही प्रामाणिक है। दोहावली, कवितावली, गीतावली, कृष्णगीतावली, विनय पत्रिका, राचरितमानस, इत्यादि महत्त्वपूर्ण रचनाएं समाहित हुई है।

काव्यगत विशेषताएं

1. **विषय की व्यापकताः** तुलसीदास ने अपने युग का गहन एवं गंभीर अध्ययन किया है। उन्होंने अपने युग के जीवन के लगभग सभी पक्षों पर लेखनी चलाई है। उनके काव्य में धर्म, दर्शन, संस्कृति, भक्ति, कला आदि का सुन्दर समन्वय हुआ है। विभिन्न भावों और सभी रसों को उनकी रचनाओं में स्थान मिला है।
2. **श्रीराम का स्वरूपः** महाकवि तुलसीदास ने अपने काव्य में श्रीराम को विष्णु का अवतार मानते हुए उसके सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों का उल्लेख किया है। श्री राम को धर्म का रक्षक और अधर्म का विनाश करने वाला माना है। उन्होंने श्रीराम के चरित्र में शील, सौन्दर्य एवं शक्ति का समन्वय प्रस्तुत किया है।
3. **समन्वय की भावनाः** तुलसीदास के काव्य में समन्वय की भावना का अद्‌भुत चित्रण हुआ है। तत्कालीन समाज में धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि सभी समस्याओं का किसी-न-किसी रूप में उल्लेख हुआ है।
4. **दार्शनिक भावनाः** तुलसीदास का सम्पूर्ण काव्य दार्शनिक प ष्ठभूमि पर आधारित है। तुलसीदास ने दर्शन के नीरस सिद्धान्त को भावपूर्ण एवं कोमल भाषा में बड़ी सफलता पूर्वक उद्‌घाटित किया है। तुलसीदास ने विविध दार्शनिक मतों को ग्रहण करते हुए भी उनमें तारतम्य बैठाकर उनका अद्‌भुत समन्वय किया है। उनकी दार्शनिक विचारधारा मौलिकतापूर्ण है।

5. **प्रकृति-चित्रणः** तुलसीदास ने प्रकृति का अत्यन्त मनोरम चित्रण किया है। तुलसी काव्य में प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रण किया गया है। उनके काव्य में वन, नदी, पर्वत, पक्षी आदि का विस्त त वर्णन मिलता है।

6. **प्रबन्ध योजनाः** तुलसी की प्रबन्ध-योजना अद्वितीय है। उनकी लगभग सभी रचनाओं में कथा-सूत्र पाया जाता है। रामचरितमानस की प्रबन्ध-पटुता सर्वश्रेष्ठ है। सारी कथा मार्मिक प्रसंगों से भरी पड़ी है।

7. **कला-पक्षः** तुलसी के काव्य का कला-पक्ष काफी समुन्नत एवं विकसित है। उन्होंने अपने समय की प्रसिद्ध अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं में काव्य रचना की। 'रामचरितमानस' में अवधी तथा 'विनय पत्रिका' में ब्रज भाषा का सफल प्रयोग हुआ है।

8. **म त्युः** तुलसीदास सम्वत् 1680 को श्रावण शुक्ला की सप्तमी को अपना नश्वर शरीर त्याग कर प्रभु शरण में चले गये।

मीराबाई

जीवन परिचय

मीराबाई का जन्म सम्वत् 1555 में राव दादू के चौथे पुत्र रत्नसिंह के घर हुआ बताते हैं। बाल्यकाल में ही इनकी माता चल बसी। इसलिए इनके पितामह ने इनका लालन-पालन किया। इनके पितामह अत्यन्त धार्मिक प्रव ति के थे जिसका प्रभाव मीराबाई पर भी पड़ा। बचपन से ही साधु-सन्तों की संगति और दर्शनों के कारण इनके हृदय में भगवद् भक्ति के अंकुर फूट पड़े थे। बारह वर्ष की अल्पआयु में ही मीरा का विवाह मेंवाड़ के महाराणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से हो गया, किन्तु मीरा अधिक देर तक दाम्पत्य जीवन का सुख न भोग सकी और जल्द की विधवा हो गई। अब मीरा का अत्यधिक समय साधु-संतों की संगति में बीतने लगा। राजकुल पहले ही इनके आचार-व्यवहार से रूष्ट था। पति भोजराज व महाराणा साँगा (ससुर) की म त्यु के पश्चात् तो मीरा पर अत्याचार और भी बढ़ते चले गए। परिणामस्वरूप मीरा ने राजमहल त्याग दिया।

प्रमुख रचनाएं

'नरसी जी का माहरो', 'गीत गोविन्द की टीका', 'मीरानी गरबी', 'मीरा के पद', 'राग सोरठ के पद', 'रास गोविन्द' तथा 'मीराबाई की मलार' और कुछ फुटकर पद आदि उल्लेखनीय रचनाएं है। मीराबाई के फुटकर पद लगभग 200 के करीब हैं।

काव्यगत विशेषताएं

1 **भक्ति भावनाः** भारतीय भक्त कवियों में मीराबाई का स्थान सर्वोपरि है। सूर की भक्ति की भाँति मीराबाई की भक्ति भी माधुर्य-भाव की भक्ति है। कहीं-कहीं पर तो मीरा ने सूर और तुलसी को भी पीछे छोड़ दिया है। तुलसी की भक्ति दास्य-भाव की भक्ति है सूर की भक्ति माधुर्य-भाव की भक्ति है, लेकिन मीराबाई तो स्वयं राधा बन गई और भगवान् श्रीकृष्ण को ही अपना पति मानने लगी।

2. **विरह भावनाः** मीरा के काव्य में श ंगार वर्णन हुआ है। मीरा के काव्य में संयोग की अपेक्षा वियोग पक्ष को अधिक स्थान प्राप्त हुआ हैं। मीरा के विरह की अनुभूति विस्त त एवं गहन है। विरह-वर्णन की द ष्टि से मीरा का स्थान सम्पूर्ण हिंदी साहित्य में श्रेष्ठ है। इनका विरह वर्णन जायसी एवं सूरदास से बढ़कर है।

3. **रहस्यानुभूतिः** सगुण ईश्वर की पुजारिन होते हुए भी मीरा के काव्य में विभिन्न स्थलों पर रहस्यमयी भावनाओं का वर्णन हुआ है। इसलिए उनको रहस्यवादी कवयित्री भी कहा जा सकता है।

4. **गीति-तत्त्व की प्रधानताः** मीरा के काव्य की प्रमुख विशेषता 'गेयता' है। निश्चित रूप से मीरा का काव्य गीति-काव्य है। गीति काव्य की सभी विशेषताएं आत्माभिव्यक्ति, संक्षिप्तता, तीव्रता, संगीतात्मकता, भावात्मकता आदि उनके काव्य में देखी जा सकती है।

5. **भाषा शैलीः** मीरा के काव्य में भाषा शैली अत्यन्त मार्मिक एवं सरस व सरल है। उनकी भाषा में सर्वत्र एकरूपता नही है। उन्होंने कही राजस्थानी का प्रयोग किया है तो कही ब्रज और गुजराती का।

अंत में यही कहा जा सकता है कि मीराबाई भक्तिकालीन शिरोमणि कवियों में से एक थीं। उनका काव्य चरमोत्कर्ष की सीमा है।

4. हिंदी साहित्य का रीतिकाल

नामकरण

रीतिकाल के नामकरण को लेकर भी विद्वानों में मतभेद रहा हैं। हिंदी साहित्य का सर्वप्रथम काल-विभाजन करने वालों में, जार्ज ग्रियर्सन का नाम आता है। जिन्होंने इसे रीतिकाव्य नाम दिया। आगे चलकर मिश्र बन्धुओं ने इसे दो भागों में विभाजित करते हुए पूर्वालंकृत काल तथा उत्तरालंकृत काल की संज्ञा दी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे आरम्भ में तो उत्तर मध्यकाल तथा रीतिकाल नाम दिया परन्तु इसे श्ंगार काल कहने की भी छूट देते हुए लिखा, "इस काल को रस के विचार से कोई श्ंगारकाल कहे तो कह सकता है।" इस प्रकार आचार्य शुक्ल तक इस काल के कई नाम सामने आ गए। जैसे रीतिकाल, पूर्व तथा उत्तर अलंकृतकाल, उत्तर मध्यकाल, रीतिकाल तथा श्ंगार काल इत्यादि। अब इन्हीं नामों तथा अन्य लेखकों द्वारा सुझाये गये नामों की समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है।

किसी भी भाषा के साहित्यिक इतिहास का काल-विभाजन तथा नामकरण करते हुए रचनाओं की बहुलता, साहित्यकारों में प्रमुख तत्कालीन कर्त्ता, विषयवस्तु तथा प्रव त्ति-विशेष को ही आधार बनाया जा सकता है। किसी भी साहित्यिक काल का विभाजन तत्कालीन साहित्य की मुख्य प्रव त्ति के आधार पर किया जाना ही अधिक तर्कसंगत माना जाता है। जार्ज ग्रियर्सन ने तुलसीदास के बाद जिसे रीतिकाल कहा है वह इसलिए माना जाता है कि रीतिकाल मे जो रचनाएँ रची गई उनमें एक विशेष प्रकार की काव्य-शैली को रीतिकाल कहा गया। मिश्रबन्धुओं ने इस काल को अलंकृत काल इसीलिए कहा, क्योंकि इस काल की रचनाओं में काव्य के अलंकरण पर ही अधिक ध्यान केन्द्रित रहा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सुझाये गये नामों के विषय में कह सकते हैं कि उन्होंने मनोविज्ञान तथा तत्कालीन साहित्य की विशेष अभिरूचि तथा प्रव त्ति विशेष को ध्यान में रखते हुए तीन नाम सुझाए। आचार्य शुक्ल ने तत्कालीन काव्य पद्धति विशेष अर्थात् रीति-विशेष के आधार पर इसे रीतिकाल कहना ही उचित समझा है।

रीतिकाल के नामकरण के संबंध में और भी विचार सामने आते हैं। मिश्रबन्धुओं ने अपने 'मिश्रबन्धु विनोद' नामक हिंदी साहित्य के इतिहास में इस काल को 'अलंकृत काल' नाम दिया था। उनका कहने का आशय यह था कि इस युग में कविता को अलंकृत काल नाम दिया जाना चाहिए। मिश्रबन्धुओं का तर्क बहुत सशक्त नहीं माना गया। उन्होंने इस युग की कविताओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि यह कविता अलंकृत है यानी अलंकारों के आग्रह से युक्त है। पर क्या केवल अलंकारों की ही निहिति इस काल की कविता में है। रसानुभूति की द ष्टि से इस काल की कविता का मूल्य किसी से कम नहीं है। ध्वनि और वक्रता भी उसमें पर्याप्त मात्रा मे मिलती है। इसलिए केवल अलंकारों का आग्रह इंगित करना, इतना अधिक समीचीन नहीं है जिसके कारण कि इस युग का नामकरण ही उस आधार पर कर दिया जाए। दूसरी बात यह है कि इस काल से पहले या बाद मे भी जहाँ अधिक अलंकृत कविताएँ सामने आती है तो उनका नामकरण भी क्या अलंकारों के आधार पर करने की सोच सकते हैं। इसलिए मिश्र-बन्धुओं ने जिस प्रव त्ति का अभियान करके इस काल को 'अलंकृत काल' कहा है वह एकांगी और अपूर्ण लगती है।

1. **डा० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'**: ने रीतिकाल का नाम 'कला-काल' माना है। 'कला-काल' से तात्पर्य उस काल से है, जिसमें हिंदी क्षेत्र में काव्य को कलापूर्ण किया गया, अर्थात्, उसमें काव्य के चमत्कृत एवं चातुर्यपूर्ण गुणों को ध्यान में रखकर रचनाएँ की गई और साथ ही कला के नियम से संबंध रखने वाले रीति या लक्षण ग्रन्थों की रचना हुई। इस नाम के देने मे रीतिकाल काव्य के बाह्य पक्ष पर तो प्रकाश पड़ता है पर उसकी एक बड़ी विशेषता श ंगारिकता की उपेक्षा हो जाती है। यह नाम प्रायः उसी तरह का है जैसे ग्रीव्ज या मिश्रबन्धुओं ने दिया है। हिंदी साहित्य मे इसे भी स्वीकार नहीं किया गया।

2. **डा० भगीरथ मिश्र**: डा० भगीरथ मिश्र ने हिंदी साहित्य के इस युग का नाम 'रीति श्ंगार' काल रखा है। वे मानते हैं कि श ंगार की प्रव त्ति रीतिकाल की एक विशेषता है जिसे सभी स्वीकार करते हैं पर उसके साथ ही उस युग के साहित्य

की चेतना है 'पद्धति परकता' एक पैटर्न के काव्य की रचना करने की पद्धति इस काल में अधिक दिखलाई देती है। डा० भगीरथ मिश्र के इस नाम मे यह आपत्ति है कि पद्धति परकता से अलग भी कुछ कवि रीतिकाल में थे। घनानंद, बोधा, आलम, ठाकुर आदि की कविता को उस रीतिकाल पद्धति से अलग कर पाते है। बिहारी और घनानंद पद्धति एक नहीं है। अतः रीति श ंगार नामकरण की बात भी विद्वानों को उसी प्रकार स्वीकार्य नहीं है जैसे 'कला-साहित्य' की।

3. **पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र:** इस काल को प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'श ंगार काल' के नाम से अभिहित किया हैं उनकी मान्यता यह है कि इस युग की एक बड़ी प्रव ति श ंगार की थी। इसलिए इस युग को 'श ंगार काल' के नाम से पुकारा जाना चाहिए। 'श ंगार काल' की मीमांसा करने पर भी यही सिद्ध होता है कि यह नाम भी उपयुक्त नहीं है। प० मिश्र ने यह देखकर इस काल का नाम शं गार काल दिया है क्योंकि इस काल की कविता में श ंगार की प्रव त्ति बहुत अधिक है। बात यह है कि शं गार वण्रन की प्रव त्ति इस कविता में धन की प्राप्ति के लिए आई। राजाओं की वासना को त प्त करने के लिए शं गार-वर्णन हुआ है। कवियों द्वारा अपने मन से वह यह निकला अन्यथा भिखारी यह क्यों कहते-

"आग के कवि रीझिहैं तो कविताई न तो,
राधिका कन्हाई सुमिरन कौ बहानौ है।"

इस काल में कुछ ऐसे भी कवि हुए है जिन्होंने शं गार को प्रमुखता नहीं दी। कुछ कवि तो ऐसे भी हुए है जिन्होंने लक्षण-ग्रन्थों की रचना करके भी शं गार को कोई स्थान नही दिया। इसलिए इस काल की श्रं गारिकता के मूल में कवि की अपनी रूचि ने होकर आश्रयदाता की रूचि थी। इस काल में शं गार के अतिरिक्त नीति प्रकृति-चित्रण आदि की कविताओं की भी कमी नहीं है। सभी प्रकार की कविताओं की प्रव त्ति श ंगार की कैसे मानी जा सकती हैं। इसीलिए इस काल को 'श ंगार काल' नाम जो दिया गया, वह इतना उपयुक्त नहीं लगता। इसलिए इस काल का नाम 'रीतिकाल' देना अधिक समीचीन हैं। रीति की प्रव त्ति, के अन्तर्गत लक्षण ग्रन्थ भी आ जाएँगे शं गार की रचनाएं भी और श ंगारेत्तर रचनाएँ भी, क्योंकि लक्षण बताने और उसके अनुसार कविता करने की रीति सभी प्रकार की कविताओं मे देखने मे आती है। अतः इस काल का नाम 'रीतिकाल' सबसे अधिक उपयुक्त है।

आज हिन्दी साहित्य के लगभग सभी विद्वान, आलोचक तथा साहित्य के इतिहास-लेखक यह स्वीकार करते हैं कि इस काल का नाम 'रीतिकाल' ही उचित है क्योंकि उसमें तत्कालीन कवियों की काव्य-रचना पद्धति एवं काव्य-शिक्षा दोनों ही बाते आ जाती है। रीतिकाल का नामकरण करने के पश्चात् एक और बात भी विद्वानों में मतभेद का विषय बनी हुई है कि रीतिकाल का संस्थापक आचार्य किसे माना जाये? इस विषय में विद्वानों के दो वर्ग है। एक वर्ग तो आचार्य केशव को रीतिकाल का संस्थापक मानता है और दूसरा वर्ग आचार्य केशव के बाद होने वाले आचार्य चिन्तामणि त्रिपाठी को ही रीतिकाल का संस्थापक तथा प्रवर्त्तक मानता है। इस मतभेद को उत्पन्न करने वालों मे सर्वप्रथम तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ही है, क्योंकि उनके मतानुसार तो केशवदास की गणना भक्तिकालीन कवियों में की जानी चाहिए क्योंकि कालक्रम के अनुसार केशवदास संवत् 1612 से 1674 तक जीवित रहे। इसके अतिरिक्त आचार्य शुक्ल यह भी तर्क देते है कि आचार्य केशव ने अपने लक्षण ग्रंथों मे संस्कृत के अलंकारवादियों भामाह, दण्डी, उद्‌भट, रूय्यक आदि की पद्धति को अपनाया। शुक्ल ने यह भी कहा है कि केशव ने जिन अलंकारवादी आचार्यों के संस्कृत समीक्षा-शास्त्र से अलंकार-संबंधी सामग्री ग्रहण की उसमें अलंकार तथा अलंकार्य का भेद स्पष्ट नहीं था। उन्होंने तो रस को अलंकार ही मान लिया था। केशव के विपरीत चिन्तामणि त्रिपाठी ने तथा उनके पीछे चलने वाले रीति-कवियों ने अलंकारों का वर्णन 'चन्द्रालोक' और 'कुवलयानन्द' के आधार पर किया।

उपर्युक्त कथनों से तथा ऐसे ही कुछ अन्य वक्तव्यों से यह मतभेद बढ़ता ही गया, परन्तु निष्पक्ष होकर विवेचना करने पर जो निर्णय लिया जाये वह उचित ही कहा जायेगा। यह ठीक है कि आचार्य केशव को कालक्रम के अनुसार भक्तिकाल में लिया जा सकता है परन्तु केवल कालक्रम को ही एकमात्र आधार नहीं माना जा सकता। जहाँ तक केशव की रीति-पद्धति का प्रश्न है वह चाहे दण्डी तथा उद्‌भट से प्रभावित हो अथवा पोषित हो अथवा अन्य किसी से, है तो रीति पद्धति ही। आचार्य चिन्तामणि द्वारा अपनायी गई काव्य रचना तथा साहित्य साधना की पद्धति भी रीति पद्धति ही है। जिसे उन्होंने रसवादियों, रीतिवादियों, ध्वनिवादियों आदि के अतिरिक्त चन्द्रालोक तथा कुवलयानन्द आदि अलंकारवादियों से प्रेरणा ग्रहण करके अपनाया है।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि हिंदी रीतिकाल के संस्थापक आचार्य केशवदास ही हैं। जिन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र को लोकभाषा यानि ब्रजमिश्रित अवधीमें प्रस्तुत करके आगे आने वाले कवि-आचार्यों के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया। अतः काल का नाम 'रीतिकाल' सबसे अधिक उपयुक्त है।

परिवेश : ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक

ऐतिहासिक परिवेश

हिंदी साहित्य के इतिहास में संवत् 1700 से 1900 तक का समय रीतिकाल के नाम से अभिहित किया गया है। यह वह समय था जब भारत में मुगलों का राज्य था। मुगलों के वैभव-विलास और विजय-व त्तान्त के अनेक उदाहरण इस बात के प्रमाण है कि उस समय बादशाहों का उत्कर्ष चरम अवस्था पर पहुँचा हुआ था। शासक समर्थ थे और जैसे ही युद्ध से अवकाश मिलता था, विलासिता में डूबे रहते थे। इसका परिणाम यह भी हो रहा था कि जिस शासन को अकबर ने अपनी नीति से द ढ़ बनाया और जहाँगीर ने भी अच्छी तरह संभाला वह शाहजहाँ के समय पूर्ण विस्त त और सम द्ध था। शाहजहाँ के समय से ही रीतिकाल का आरंभ होता है। विद्वानों ने माना है कि शाहजहाँ के समय से मुगल-काल उत्कर्ष के बिन्दु से नीचे गिरने लगा था। इस संबंध में डा० नगेन्द्र का मत है कि-"जिस प्रकार साहित्य के इतिहास में भक्ति काव्य के चरम वैभव के बाद संवत् 1700 के आस-पास से ही कविता क्षयग्रस्त होने लगी थी, ठीक उसी प्रकार राजनैतिक इतिहास में मुगल-साम्राज्य भी अपने सम्पूर्ण यौवन को प्राप्त करने के उपरान्त ह्रासोन्मुख हो चला था।"

मध्ययुग में समाज सामन्तवादी पद्धति का था। उच्च वर्ग के राजा और सामन्तों का जीवन, वैभव से पूर्ण था। दिल्ली के अनुकरण पर छोटे-छोटे राजाओं में भी वैभव-विलास की प्रव त्ति थी। उपवन और रमणीय विहार-स्थल उस समय के समाज के लिए वांदनीय थे। पुष्प, इत्र, गंध, फव्वारे और अन्य विलास सामग्री राजा और सामन्तों को त प्ति देती थीं। इस तरह के समाज का कवियों की रचनाओं पर भी असर पड़ा। इस संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है-"श्रं गार-वर्णन को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया। इसमें जनता की रूचि नहीं, आश्रयदाताओं की रूचि थी, जिनके लिए वीरता और कर्मण्यता का जीवन बहुत कम रह गया था।" रीतिकाल में निम्न वर्ग का जीवन सदा की भाँति उपेक्षित था। उनकी आर्थिक स्थिति भी ठीक नहीं थी। कवि और कलाकारों का वर्ग राजा लोगों के यहाँ रहता था जो वैसे ही उच्च आशाएँ-आकांक्षाएँ रखता था।

तत्कालीन समय में मुगलों की उत्तराधिकार की नियम हीनता ने अशांति और संघर्ष का वातावरण बना दिया। देश के अन्य भागों मे भी इसी तरह के विद्रोह और संघर्ष के तेवर बढ़ रहे थे। अकबर के राजपूत सहयोगी नीति को औरंगजेब ने ध्वस्त करके जयपुर पर अधिकार किया तो मारवाह और मेवात सभी मुगलों के विरूद्ध हुए और संघर्ष करते रहे।

शाहजहाँ के समय में स्थापत्य-कला की विशेष उन्नति हुई, दिल्ली का लाल किला और जामा मस्जिद, मोती मस्जिद, दीवाने आम, ताजमहल आदि उसकी वास्तु कलाप्रियता के प्रमाण है। वह साहित्य प्रेमी भी था, तथा फारसी, संस्कृत और हिंदी के कवियों को संरक्षण प्रदान करता था। पंडितराज जगन्नाथ, आचार्य सरस्वती आदि कवि उसके दरबार से सम्बद्ध थे। प्रमुख रीतिकालीन कवि चिन्तामणि उसके कृपापात्र थे। इसके समय में ज्योतिष, अंकगणित, बीजगणित आदि में पर्याप्त प्रगति हुई। औरंगजेब ने लगभग अर्द्ध शताब्दी तक शासन किया। उसका साम्राज्य धार्मिक कट्टरता, अत्याचार एवं अन्याय का शासन रहा। उसकी संकीर्णता के फलस्वरूप जाट, सिक्ख, राजपूत, मराठा आदि सभी उसके विरोधी हो गये। हिन्दू मन्दिरों और पाठशालाओं को तोड़ने की आज्ञा दे दी गयी। काव्यकला से वह घ णा करता था। उसने कलाविदों को दरबार से निकाल दिया अतः उनको ओरछा, कोटा, बूँदी, जोधपुर आदि राज्यों में शरण लेनी पड़ी। इस प्रकार औरंगजेब का अधिकांश समय विरोधियों का दमन करने में बीता। औरंगजेब के बाद थोड़े-थोड़े समय के लिए अनेक मुगल शासक हुए, लेकिन उनका समय अकर्मण्यता, अयोग्यता, विलासिता आदि का इतिहास है।

सामाजिक परिवेश

रीतिकालीन काव्य की सर्जना भी सामाजिक परिवेश सम्राट के आंतक और जनसाधारण के दैन्य की परिस्थिति है। राजा बादशाह का प्रभुत्व लिए शासक वर्ग था जो, शासन को चलाने वाले थे, दूसरे गरीब किसान, व्यापारी, दुकानदार थे। इतिहासकारों ने इन्हें क्रमशः योद्धा वर्ग और उत्पादक वर्ग कहा है। उनकी स्थिति को स्पष्ट करते हुए डा० ईश्वरी प्रसाद ने कहा है-"भोक्ता वर्ग सम्राट के परिवार और दरबारों से लेकर उनके नौकर चाकर और दासों तक फैला हुआ था। यह वर्ग राज्य की शक्ति था अतएव उत्पादक वर्ग पर इसका पूर्ण प्रभुत्व था। सामाजिक स्थिति भी उनकी श्रेष्ठ थी। इन दोनों के बीच बहुत बड़ा अन्तर था-शासक और शाषित-शोषक और शोषित का।"

इस समय का एक समाज मुगलों का परिवार और उनके दरबारी सामन्तों का था। बहुमूल्य आभूषण, हीरे जवाहरात, रत्न, माणिक, स्वर्ण रजत आदि के बेहद प्रयोग से ऐश्वर्य का पता चलता था। स्त्रियों के आभूषण और इत्र, फुलेल, श्रंगार प्रसाधनों का जिस दरबार में प्रसार था उसने उस समय के कवियों को काव्य में तरह-तरह की साज सज्जा को चित्रित करने की एक द ष्टि अच्छी प्रकार दे रखी थी। श्रंगार और वैभव विलास सुरा सुराही के ऐसे चित्रण रीतिकाव्य में इसी से बड़े स्वाभाविक रूप में मिलते हैं। इस तरह का एक बड़ा प्रसिद्ध कवित्त कविवर पद्माकर द्वारा रचित इस प्रकार रहा है-

"शिशिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्है,
जिनके अधीन एते उदित मसाला हैं।
तान तुक ताला है विनोद के रसाला हैं,
सुबाला है दुशाला है बिशाला चित्रशाला हैं।।"

वैभव विलास के इस समाज में क्रीड़ा और मनोविनोद के तत्कालीन प्रचलित साधनों की कमी नहीं थी। शतरंज चौसर का खेल, तोता मैना कबूतर को पालना, शिकार और जानवरों की लड़ाई के शौकीन ये लोग श्रमिक दलित वर्ग के दुःख अभाव से अपरिचित होकर जीवन जी रहे थे।

स्त्रियों की सामाजिक स्थिति दयनीय थी। वे पुरूष की सम्पत्ति अथवा भोग्या मात्र थीं। किसी कन्या का अपहरण अभिजात वर्ग के लोगों के लिए साधारण बात थी। कदाचित् इसीलिए अल्पायु में लड़कियो का विवाह अधिक प्रचलित हो गया था। बेगमों और रक्षिताओं की अगिनत सख्या के होते हुए भी लोग वेश्याओं के यहाँ पड़े रहते थे- उनके इशारों पर लोगों के भाग्य का निर्णय तक हो जाया करता था। वस्तुतः भारतीय इतिहास में यह घोर पतन का युग था। रीतिकालीन कवियों द्वारा नारी के चित्रण से उसकी सामाजिक परिस्थिति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। वस्तुतः इस काल का कवि अपने आश्रयदाताओं के भोगपरक जीवन को देखकर और उस प्रकार के जीवन को यश और सम्मान का कारण समझकर उसे कल्पना और वाग्वैदग्ध्य के बल पर अपनी चरम सीमा तक घसीट ले जाने के लिए मजबूर था।

इसके अतिरिक्त समाज का एक और भी वर्ग था वह था विद्वान और कवि कलाकारों का। ये प्रायः छोटे वर्ग से आये हुए होते थे परन्तु बादशाह और राजा-सामन्तों के आश्रय में रहते थे। इनकी कला का पुरस्कार बड़े लोग ही दे सकते थे। इसलिए ये उनके आश्रय में रहते थे और उसी तरह का तेवर रखते थे। कई कवि तो जैसे केशव, बिहारी, भूषण तो राजाओं की तरह ही रहते थे। मुगल साम्राज्य के पतन की परिस्थिति का इन कवि-कलाकारों पर भी प्रभाव पड़ा। दिल्ली के बादशाह औरंगजेब के बाद दिल्ली में स्थायी शासन न होने से ये कलावन्त छोटे-छोटे राजा, नबाव, सामन्तों और रईसों के आश्रय में रहने लगे। रीतिकाल के कवियों के समाज का यह जीवित सत्य है।

सांस्कृतिक परिवेश

तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक अवस्था के समान इस युग में देश की धार्मिक-सांस्कृतिक स्थिति भी अत्यन्त शोचनीय थी। अकबर, जहाँगीर, और शाहजहाँ की उदारतावादी नीति तथा संतों और सूफियों के उपदेशों के कारण हिन्दू और इस्लाम संस्कृतियों के निकट आने का जो उपक्रम हुआ था, वह औरंगजेब की कट्टरता के कारण एक प्रकार से समाप्त हो चला था। भक्तिकाल में काव्य की जो चार धारायें प्रारम्भ हुई थीं वे किसी न किसी रूप में इस युग में भी वर्तमान थीं किन्तु उनकी आध्यात्मिक गरिमा संत और भक्त कवियों की अपने उपास्य के प्रति अनन्य निष्ठा, स्वान्तः सुखाय काव्य-रचना का संकल्प, राजकीय वैभव की उपेक्षा और लोकमंगल की भावना धीरे-धीरे समाप्त हो रही थी। संत कवियों की बाह्याचार विरोधमूलक व त्ति और सूफियों के प्रेम की पीर का कुछ प्रभाव समाज पर अवश्य पड़ा था। इस आलोच्यकालीन युग में भी पुरानी परम्परा के सूफी तथा संत विद्यमान थे, पर किसी में भी कबीर, नानक अथवा जायसी जैसा व्यक्तित्व और प्रतिभा नहीं थी, जो जन-जीवन को प्रभावित कर सकती। ये लोग पूर्ववर्तियों की वाणी के मात्र प्रचारक थे। इस युग में रामकाव्य-धारा की पूर्व परम्परा एक प्रकार से अवरूद्ध सी हो गयी थी और उसमे जो रसिक सम्प्रदाय पनप रहा था, उसमें घोर श्रंगारिकता आ गयी थी। सूरदास एवं अष्टछाप के अन्य कवियों ने राधाकृष्ण के प्रेम का खुलकर वर्णन किया था। यद्यपि उसके मूल में आध्यात्मिक चेतना प्रखर रूप से विद्यमान थी, किन्तु रीतिकाल तक आते-आते भक्ति और अध्यात्म का आवरण क्षीण होता गया और लौकिक श्रंगार प्रबल होता गया। रीतिकाल के लगभग सभी कवियों ने प्रेम-वर्णन में सम्मान के साथ राधाकृष्ण का नाम लिया किन्तु श्रंगार का अतिरंजनात्मक वर्णन किया।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इस युग में देश की सांस्कृतिक अवस्था भी अत्यन्त शोचनीय थी। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ की उदारतावादी नीति तथा संतों और सूफियों के उपदेशों के परिणामस्वरूप हिन्दू और इस्लाम एक-दूसरे के विरूद्ध होने लगे थे। वैष्णव सम्प्रदायों के मठाधीश राजाओं और सामन्तों को गुरूदीक्षा देने में गौरव का अनुभव करने लगे थे मन्दिरों में अब ऐश्वर्य और विलास की लीला होने लगी थी। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई थी कि हिन्दू अपने आराध्य राम-कृष्ण का अतिशय शृंगार ही नहीं करने लगे थे, उनकी लीलाओं मे अपने विलासी जीवन की संगति खोजने लगे थे। धर्म का नैतिकता के साथ संबंध विछिन्न हो गया। जनता के अन्धविश्वासों का लाभ पुजारी और मुल्ला उठाते थे और ये धर्म स्थान भ्रष्टाचार तथा पापाचार के केन्द्र बन गए थे।

साहित्यिक परिवेश

साहित्य और कला की दृष्टि से यह युग पर्याप्त समृद्ध कहा जा सकता है। इस काल के कवि और कलाकार यद्यपि साधारण वर्ग के व्यक्ति थे तथापि उन्हें अपने आश्रयदाता मुगल-सम्राटों या देशी नबावों से इतना सम्मान मिलता था कि समाज के प्रतिष्ठित लोगों में उनकी गिनती की जाती थी। मुगल दरबार की भाषा फारसी थी। उस समय फारसी शैली मजनूं आदि की रोमानी कहानियाँ भी निबद्ध हो रही थीं। जिनका प्रभाव रीतिकालीन हिंदी साहित्य पर स्पष्ट देखा जा सकता है। शाहजहाँ आत्म-प्रशंसा सुनने का अत्यन्त प्रेमी था। ब्रजभाषा जन-जीवन के निकट होते हुए भी फारसी के प्रभाव से न बच सकी। विलासी आश्रयदाताओं की वासना को गुदगुदाने के लिए लिखी हुई शृंगारिक रचनाओं पर भी इस शैली का ऐसा ही प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। परन्तु संयोग से ये कवि चमत्कार के उपकरणों के लिए फारसी की ओर उन्मुख न होकर संस्कृत की ओर उन्मुख हुए। इतना ही नहीं, इन लोगों ने इन उपकरणों का निरूपण भी इतने मनोयोगपूर्वक किया कि आज पद्धति अथवा रीति के कारण ही इस युग को रीतिकाल की संज्ञा देना अधिक उपयुक्त समझा जाता है। इधर जन समुदाय के ऐसे कवि भी विद्यमान थे, जो स्वतंत्र रूप से काव्य की रचना कर रहे थे।

प्रदर्शन-प्रधान रीतिकालीन चित्रकला नायक-नायिकाओं की बंधी-बंधाई प्रतिकृतियाँ तैयार होती रहीं। उस समय की चित्रकला की नायक-नायिकाओं के रूढ़िबद्ध चित्र, पौराणिक कथाओं पर आधारित चित्र तथा राग-रागनियों के प्रतीक चित्रों का बाहुल्य है। कृष्ण और राधा के तो उस युग में अश्लील चित्र बने ही, साथ ही साथ शिव-पार्वती को भी उसी कोटि में लाकर खड़ा कर दिया।

काव्य और चित्रकला के अतिरिक्त इस युग में स्थापत्य-कला और संगीत कला का भी विशिष्ट स्थान रहा। मुगल सम्राट शाहजहाँ को यद्यपि संगीत का अच्छा ज्ञान था। तथापि उसकी रूचि स्थापत्य कला में अधिक रही। शाहजहाँ ने जितनी इमारतें बनवायी, उन सबमें सूक्ष्म सौन्दर्य पर अधिक ध्यान दिया गया है। आगरा का 'ताज' और दिल्ली का 'दीवाने खास' इसके सशक्त उदाहरण हैं। इस काल में कवियों और कलाकारों को राजाश्रयों में यथोचित सम्मान प्राप्त होने के कारण साहित्य और कला की स्थिति कुल मिलाकर अच्छी रही। किन्तु अंलकारप्रिय विलासी आश्रयदाताओं की अभिरूचि से अत्यधिक प्रभावित रहने के कारण इनमें से किसी का भी क्षेत्र गुण की दृष्टि से विशद् न हो सका।

हिंदी रीतिकाल को मानव-मूल्यों के मापदण्ड पर पतनोन्मुख ही कहा जायेगा क्योंकि प्राकृतिक प्रतिभा को कुंठित करके आरोपित मूल्यों को कोई भी प्रबुद्ध आलोचक उचित नहीं कह सकता। इसीलिए रीतिकालीन हिंदी साहित्य में जो शृंगार एवं अलंकरण की प्रवृत्ति देखी जाती है वह प्रदर्शन की भावना ही है। रीतिकालीन साहित्य की उपलब्धि मौलिक रचनाओं में नहीं देखी जा सकती, क्योंकि मौलिक रचनाएँ तो बहुत ही कम लिखी गई।

दरबारी संस्कृति और लक्षण ग्रन्थों की परम्परा

रीतिकालीन दरबारी संस्कृति सांस्कृतिक अवन्ति से परिपूर्ण समय था। इसमें संस्कृति का विचारपक्ष बड़ा दुर्लभ था। जहाँगीर और शाहजहाँ दोनों ही बादशाहों के दरबारों में अद्भुत वैभव तो था, लेकिन अतृप्त विलास और वासना का सागर भी उमड़ रहा था। औरंगजेब तो इन दोनों से विलग था। उसका संस्कृति और विलास-वैभव के प्रक्षय से कुछ भी लेना-देना नहीं था। दरबारी संस्कृति चमत्कार, आडम्बर, प्रतिस्पर्द्धा, शृंगारिकता आदि से युक्त थी जिसमें जीवन्तता के स्थान पर मात्र परम्परा का अन्धानुपालन था। रीतिकालीन काव्य और दरबारी संस्कृति दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

रीतिकाल के कवियों ने अपने आश्रयदाताओं को सामान्य नर के रूप में चित्रित न करके दिव्य और आलौकिक गुणों से मंडित करके चित्रित किया है। कवियों ने राजाओं को अवतारी पुरूष के रूप मे महिमा-मंडित किया है। भूषण न अपने आश्रयदाता शिवाजी को कहीं विष्णु और कही राम का अवतार माना है। रीतिकालीन कवियों द्वारा स्वामिभक्ति का प्रदर्शन भी दरबारी संस्कृति का अंग रहा है। स्वामिभक्ति के लिए जयसिंह, रत्नसिंह आदि राजाओं का उल्लेख मिलता है। दरबारी संस्कृति की अभिरूचि का केन्द्र-शं गार और काव्यशास्त्र था। काव्यशास्त्र में रस, अलंकार, नायिकाभेद आदि ही प्रधान प्रतिपाद्य विषय थे। सामंती वैभव और सामंती समाज का चित्रण भी रीतिकालीन दरबारी संस्कृति की एक प्रव त्ति थी। रीतिकालीन सांमती समाज वैभव और ऐश्वर्य की पराकाष्ठा का समाज था। रीतिकालीन अनेक कवियों ने इस वैभव का बड़ा ही चमत्कारी और अलंकारी वर्णन प्रस्तुत किया है।

साहित्य सीमित संस्कृति और सांस्कृतिक जीवन तक ही सीमित रह गया। साहित्य पूरे समाज का चित्र नहीं बन सका था। संस्कृत के बाद प्राकृत और अपभ्रंश की रचनाओं में भी लक्षण ग्रन्थ परम्परा दिखाई पड़ती है। हिंदी साहित्य की रीतिपरम्परा की प्रधान प्रेरणा, संस्कृत काव्यशास्त्र ही रहा है। निस्संदेह, लक्षण काव्य परम्परा के लिए हमें संस्कृत के साथ अपभ्रंश और प्राकृत की सम द्ध परम्परा के अवदान को भी सहज रूप में स्वीकार करना चाहिए। यही परम्परा आगे चलकर रीतिकाव्य में प्रतिफलित हुई है। रीतिकालीन लक्षण परम्परा के असंख्य कवि हुए हैं। आचार्य केशवदास चिन्तामणि त्रिपाठी, तोष, मतिराम, भूषण, सुखदेव, रसलीन पद्‌माकर आदि जिन्होंने लक्षण ग्रन्थों की रचना की। रीतिकालीन लक्षण ग्रन्थ काव्यशास्त्र के सर्वागनिरूपक ग्रन्थ है।

रीतिकाल की एक प्रमुख विशेषता यह भी रही है कि इसमें अनेक लक्षण ग्रन्थों का निर्माण हुआ जिनमें अलंकरण में प्रव त्ति प्रमुख है। अलंकार शास्त्र में उत्तम कविता के उदाहरणों में सैकड़ों सरस श्लोक उद्‌ध त किये गये हैं। इस शास्त्र की आरम्भ में दो स्पष्ट धाराएँ विद्यमान थी। एक नाट्‌यशास्त्र में प्रकट हुई थी जिसका प्रधान प्रतिपाद्य 'रस' था दूसरी, चिंता अलंकार शास्त्र के रूप में प्रकट हुई जिसका प्रद्य विवेच्य विषय अलंकार थे। इन दो सम्प्रदायों को एकत्र करने का काम ध्वनि, सम्प्रदाय के पंडितों ने किया।

रीतिकालीन हिंदी कवियों तथा आचार्यों की मुख्य प्रव त्ति लक्षण ग्रन्थों को रचने अथवा संस्कृत के काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तों को लक्षण तथा उदाहरणों में स्पष्ट करने की रही। रीति निरूपण से अभिप्राय लक्षण ग्रन्थ लिखकर आचार्यत्व की पदवी प्राप्त करना ही समझना चाहिए। रीतिकालीन साहित्यकारों ने काव्य के क्षेत्र में अलंकारिकता, प्रदर्शन तथा चमत्कारपूर्ण उक्तियों को अपने काव्य का प्रतिपाद्य बनाया। उन्होंने तो अलंकारों को कविता रूपी कामिनी के लिए अनिवार्य घोषित किया। इसीलिए केशव दास ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि-

"जदपि सुजाति सुलच्छिनी, सुबरन सरस सुव त्त।
भूषन बिनू न बिराजई, कविता बनिता भित्त।।"

अर्थात् कविता तथा बनिता चाहे कितनी ही उच्च जाति की क्यों न हो, अच्छे लक्षणों वाली सुवर्ण, रसीली तथा पुष्ट क्यों न हो? परन्तु जब तक वे भूषण (अलंकार) धारण नहीं करती, तब तक शोभा नहीं पा सकती। इसी कारण रीतिकाल के अधिकांश साहित्यकारों ने अलंकारों के सहारे ही अपनी रचनाएँ रची। अलंकार शास्त्र ही उस समय का साहित्य शास्त्र माना जाता था। अतः काव्य में अलंकरण की प्रव त्ति भी खूब फली-फूली।

रीतिकालीन रचनाकारों ने प्रबन्ध काव्य की अपेक्षा मुक्तक काव्य शैली को प्रमुखता प्रदान की। तत्कालीन आश्रयदाताओं को तुरन्त प्रसन्न करने के लिए मुक्तक काव्य शैली का खूब प्रसार हुआ क्योंकि मुक्तक काव्य चुने हुए फूलों का गुलदस्ता है जिसमें सभा या दरबार को आसानी से मोहित किया जा सकता है।

इस काल के कवियों ने रीति या शास्त्र की भूमिका पर अपनी कविता की रचना की है। केशवदास ने सर्वप्रथम शास्त्रीय पद्धति पर रस और अलंकारों का निरूपण 'रसिक प्रिया' और 'कविप्रिया' में किया, किन्तु चिन्तामणि त्रिपाठी से लक्षण ग्रन्थों की अखण्ड परम्परा चलती रही। इन ग्रन्थों मे रीतिबद्ध कवियों ने कोई मौलिक उद्‌भावना नहीं की है, वरन् संस्कृत के काव्यशास्त्र के विवेचन को भाषा में पद्यवद्ध कर दिया है, केवल लक्ष्य ग्रन्थ लिखने वाले कवियों ने रीति का कसाव कुछ ढीला कर दिया है। किन्तु फिर भी रीति की परिपाटी का ज्ञान हुए बिना इनकी कविता को अच्छी तरह नहीं समझा जा सकता है।

रीतिकालीन काव्य और दरबारी संस्कृति

रीतिकालीन काव्य और दरबारी संस्कृति दोनों को एक-दूसरे का पूरक माना जाये तो अत्युक्ति नहीं होगी। वास्तव में, दरबारी संस्कृति ही रीतिकालीन काव्य का आधार है। रीतिकालीन काव्य में चित्रित दरबारी संस्कृति का अध्ययन इस प्रकार किया जा सकता है।

1. **आश्रयदाताओं की अतिरंजित प्रशस्ति**: रीतिकालीन दरबारी संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता राजप्रशस्ति रही थी। इस कालखण्ड में राजप्रशस्ति के तीन आयाम हैं-युद्धवीर, दानवीर और धर्मवीर। भूषण ने महाराज शिवाजी के माध्यम से युद्धवीरता का सर्वोच्च प्रतिमान प्रस्तुत किया है। यहाँ पर यह भी उल्लेख करना समीचीन प्रतीत होता है कि मुस्लिम शासकों के विरोध में संघर्ष करने वाले शासकों का ही युद्ध कौशल रीतिकालीन कवियों द्वारा वर्णित हुआ है। वैसे जो छत्रपाल की वीरता के वर्णन के लिए भूषण विख्यात हैं, लेकिन मतिराम ने भी इस प्रसंग और पात्र को अपनी कविता का प्रतिपाद्य बनाया है। व तान्त है कि छत्रपाल औरंगजेब से युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे। मतिराम इस दशा की व्यंजना इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

   "औरंग-दारा जे जुरे दोऊ युद्ध, भर भर क्रुद्ध विनौद-विलासी,
   भारू बजै, मतिराम, बखानै, भई अति अस्त्रनि की बरषा सी।
   नाथ-तने तिहिठौर मर्‌यौ, जिय नाजिकै छत्रि को रन करसी।
   सीस भयो हर-हार सुमेरू, छता भयो, आप सुमेरू को बासी।।"

   रीतिकालीन रचनाकारों ने राजा के धर्मवीर रूप की चर्चा भी की है। भूषण ने शिवाजी के प्रशस्ति वर्णन के माध्यम से उनके धर्मवीर स्वरूप की विवेचना की है, यथा-

   "वेद राखे विदित पुरान परसिद्ध राखे,
   राम-नाम राख्यो अति रसना सुघर मैं।
   हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिम की,
   काँघे में जनेऊ राख्यौ माला राखी गर मैं,
   राजन ही हद्द राखी तेग-बल सिवराज,
   देव राखे देवल स्वधर्म राख्यौ घर मैं।।"

2. **दिव्यता और अलौकिकतायुक्त आश्रयदाता**: रीतिकालीन कवियों ने अपने आश्रयदाताओं को सामान्य नर के रूप में चित्रित न करके दिव्य और आलौकिक गुणों से सम्पन्न करके चित्रित किया है। कवियों ने उन्हें अवतारी पुरुष के रूप में भी महिमा-मंडित किया है। महाकवि भूषण ने अपने आश्रयदाता शिवाजी को कहीं विष्णु और कहीं राम का अवतार माना है। उन्होंने शिवाजी को राम का अवतार मानते हुए कहा है-

   "दशरथ राजा राम भौ वसुदेव के गोपाल।
   सोई प्रगट्‌यौ साहि के श्रीसिवराय भुआल।"

   न केवल भूषण ने बल्कि अन्य रीतिकालीन कवियों ने भी अपने-अपने आश्रयदाताओं में दिव्यता की प्रव त्तियों को प्रमुखता से स्थान दिया है। कविवर पद्‌माकर को अपने आश्रयदाता जगतसिंह के रूप में राम और कृष्ण के अवतारों की प्रतीति होती है, यथा-

   "प्रबल, प्रताप कुल दीपक छता के पुण्य
   पातक पिता के राम राजा ज्यों भगतराज।
   कान्ह अवतार बैरी-बारिधि-मथनकाज,
   सील के जहाज बली विक्रम तखत राज।।"

3. **राजरूचि का विवरण**: कवियों, कलाकारों, दस्तकारों आदि को आश्रय देना दरबारी संस्कृति की राजरूचि थी। यह उस समय की सामान्य राजरूचि रही थी। आजमशाह ने देव को आश्रय दिया, सुजानसिंह ने सूदन को पारछीत ने ठाकुर को राजभोगी लाल ने देव को दलेल सिंह ने थान कवि को तथा ललन ने बेनी प्रवीन को आश्रय दिया था।

श्ृंगार-निरूपण और शास्त्र-निरूपण उस युग की काव्य-प्रवृत्ति थी। इस प्रवृत्ति की पृष्ठभूमि मे राजाओं की श्ृंगारिक रूचि विद्यमान थी और उनकी शास्त्रीयता के प्रति आग्रह थी। इस आग्रह के परिणामतः अनेक शास्त्रीय ग्रन्थ लिखे गये। इन ग्रन्थों में कुछ सर्वागनिरूपक ग्रन्थ थे और कुछ विशिष्टांग निरूपक। आलंकारिक ग्रन्थो में भाषा भूषण (महाराज जसवन्त सिंह) नरेन्द्र भूषण, (भान कवि), ललित ललाम (मतिराम) आदि का विशेष उल्लेख मिलता है। दरबारी संस्कृति की राजरूचि का केन्द्र-श्ृंगार और काव्यशास्त्र था। काव्यशास्त्र में रस, अलंकार, नायिकाभेद आदि ही प्रधान प्रतिपाद्य विषय थे। श्ृंगारिकता की रूचि ने कला के सभी रूपों को अपने कब्जे में कर रखा था।

4. **स्वामिभक्ति का प्रदर्शनः** स्वामिभक्ति का प्रदर्शन भी दरबारी संस्कृति का अंग रहा है। स्वामिभक्ति के लिए जयसिंह, रतनसिंह, छत्रपाल, भावसिंह, आदि राजाओं का उल्लेख मिलता है। महाराज शाहजहाँ (भूषण के नायक छत्रपाल नहीं) दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ के अधीन थे। शाहजहाँ के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करते हुए उन्होंने औरंगजेब से युद्ध किया। भावसिंह ने शिवाजी से युद्ध किया, वह भी औरंगजेब से मैत्री निर्वाह करने के लिए। इस प्रशस्ति का प्रदर्शन मतिराम ने इस प्रकार किया है-

   "सूबनि को मेटि दिल्ली देस दलिबे कौं चमू
   सुभट समूहिन सिवा की उमहति है।
   कहैं मतिराम ताहि रोकिबे कौं संगर में
   काहू के न हिम्मति हिये में उलहति है।
   सत्रुसाल नंद के प्रताप की लपट सब
   गरबी गनीम वरगीन कौं दहति है।
   पति पातसाह की इजति उमराव की।
   राखी रैया राव भावसिंह की रहति है।।"

5. **सामंती समाज का चित्रणः** सामंती समाज का चित्रण भी रीतिकालीन दरबारी संस्कृति की एक प्रवृत्ति थी। रीतिकालीन सामंती समाज वैभव और ऐश्वर्य की पराकाष्ठा का समाज था। रीतिकालीन अनेक कवियों ने इस वैभव का बड़ा ही चमत्कारी और अलंकारी वर्णन किया है। इस दृष्टि से कवि मतिराम, गंजन, भिखारीदास आदि अनेक कवियों का काव्य दर्शनीय है। गंजन की कुछ प्रमुख पंक्तियों का अवलोकन-

   "मीना के महल जखाफ दर परदा है,
   हलबी फनूसन में रोशनी चिराग की।
   गुलगुली गिलम गरक आब पग होत,
   जहाँ बिछी मनसद लालन के दाम की।।
   केती महताबमुखी खचित जवाहिरन,
   गंजन सुकवि कहैं बौरी अनुराग की।
   एतमादुदौला कमरूद्दीन खाँ की मजलिस,
   सिसिर में ग्रीष्म बनाई बड़ भाग की।।"

   दरबारी संस्कृति में सामंती समाज का विशेष महत्त्व होता है। इस समाज में सरदार, मनसबदार, अमीर-उमराव के साथ शासन, न्याय और सुरक्षा से सम्बद्ध कर्मचारी आते थे। दरबारों से कुछ जातियाँ भी अनायास सम्बद्ध थीं। इसमें चारण, भाट, मागद, सूत, बंदीजन आदि प्रमुख है। सामंती समाज में सामान्या (गणिका) का विशेष आदर था। वह सौन्दर्य और आकर्षण का केन्द्र हुआ करती थी।

   कवि चन्द्रशेखर ने इन वेश्याओं-गणिकाओं का चित्रण इस प्रकार किया हैं-

   "बसन विभूषन बिराजत बिमल वर
   मदन मरोरनि तरकि तन तोरतीं।।
   प्यारे पातसाह के परम अनुराग रंगी,
   चाप भरी चापल चपल दृग जोरतीं।
   काम अबला सी, कलाधर की कला सी,
   चारू चंपक लता सी चपला सी चित चोरतीं।।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता हैं कि उत्तर मध्यकाल में आकर प्रेम की उदान्त भावनाएँ लौकिक वासनाओं के रूप में परिवर्तित हो गयीं। पूरा सामाजिक परिवेश और साहित्य श्ृं गार के सागर में डूबने लगा था। अमौलिक शास्त्रीय ज्ञान इस युग का शास्त्रीय ज्ञान बन गया। ऐसी स्थिति में, साहित्य सीमित संस्कृति और सांस्कृतिक जीवन तक ही सीमित रह गया था। साहित्य समाज का दर्पण होता है, लेकिन ऐसी स्थिति में वह पूरे समाज का चित्र नहीं खींच सका और यही सब रीतिकालीन दरबारों की संस्कृति रही है।

रीतिकालीन काव्य धाराएँ

रीतिबद्ध

'रीतिबद्ध' काव्य धारा वह काव्य है जिसमें रीति अर्थात् परम्परागत काव्यशास्त्र को हिंदी में प्रत्यक्षतः रूपांतरित न करके रीति अथवा परम्परागत काव्यशास्त्र का पूर्ण अनुसरण व निर्वाह किया गया है। रीतिबद्ध काव्य लक्षणों और उदाहरणों से युक्त होता है।

रीतिबद्ध उन कवियों तथा आचार्यों को माना गया है जिन्होंने संस्कृत-काव्यशास्त्र में प्रतिपादित काव्यांगों के आधार पर हिंन्दी भाषा (लोकभाषा अवधीया ब्रज) में लक्षण ग्रन्थों की रचना की है। ऐसे कवि आचार्यों ने काव्यांगों के लक्षण भी प्रस्तुत किये है तथा उनके सुन्दर उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं। ऐसे रीतिबद्ध काव्य की रचना करने वाले कवियों ने अपने आपको 'कवि तथा शिक्षक' माना है। इन्हें शास्त्र कवि अथवा आचार्य कहना अधिक उपयुक्त है। ऐसे रीतिबद्ध आचार्यो ने संस्कृत के अलंकार सम्प्रदाय को विशेष रूप से तथा रीति, ध्वनि तथा वक्रोक्ति को गौण रूप में आधार बनाया है। ऐसे आचार्य-कवियों ने उस समय के सामन्तों, राजाओं, नवाबों, अमीरों, रईसों, कवियों तथा रसिक सामाजिकों के लिए संस्कृत भाषा में पूर्व रचित काव्यांगों को लोकभाषा में प्रयुक्त करने का प्रयास ही किया था परन्तु ऐसे आचार्यों का मुख्य उद्देश्य तो अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करना ही था परन्तु ऐसे आचार्यों का साहित्यिक उद्देश्य तो, संस्कृत भाषा में रचित साहित्यशास्त्र का हिंदी लोकभाषा म

अनुवाद करना था। इसलिए ऐसे रीतिबद्ध आचार्य कवियों ने किसी नए काव्य सिद्धान्त की स्थापना नहीं की। इसी कारण इन रीतिबद्ध आचार्यों के लक्षण ग्रन्थों में मौलिकता अथवा गहनता नहीं आ पाई। वे तो एक पूर्व प्रतिष्ठापित बँधी-बँधाई परिपाटी का अनुसरण करते रहे। इन्हें संस्कृत-साहित्य शास्त्र का तथा संस्कृत भाषा का पूर्ण ज्ञान था, परन्तु इन्होंने संस्कृत भाषा में रचनाएँ नहीं की। इन्होंने संस्कृत साहित्यशास्त्र से तत्कालीन युग की प्रव त्ति के अनुसार सरल, रोचक तथा श्ृं गारपरक सामग्री को ही ग्रहण किया। ऐसे रीतिबद्ध आचार्य अलंकारों तथा नायक-नायिका भेद आदि के निरूपण में ही उलझे रहे, उन्होंने भारतीय शास्त्र के गंभीर प्रश्नों को नहीं पूछा। रीतिबद्ध आचार्य-कवियों ने दोहरी भूमिका निभाई। वे लक्षण ग्रन्थ भी रचते रहे तथा अलंकार प्रधान कविता भी करते रहे। इन्होंने अधिकांश साहित्य पद्य में ही रचा। इस वर्ग में भी दो प्रकार के साहित्यकार सामने आते हैं। एक तो ऐसे आचार्य-कवि है जिन्होंने लक्षण ग्रन्थ भी लिखे और साथ-साथ लक्ष्य ग्रंथ भी रचे। इस कोटि में केशवदास, चिन्तामणि, मतिराम, देव तथा पद्माकर आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दूसरे वर्ग रीतिबद्ध आचार्यो मे उन काव्यशास्त्रियों का है जिन्होंने केवल लक्षण ग्रन्थ ही लिखे परन्तु कवितामय लक्ष्य ग्रंथ नहीं लिखे। ऐसे आचार्यों में श्रीपति का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि रीतिबद्ध काव्य वह है जिसमें रीति का साक्षात् निरूपण न होकर उसका निर्वाह व अनुसरण मात्र होता है। सही अर्थ में रीतिबद्ध काव्य के कवि सर्जक कवि होते हैं, आचार्य नहीं।

रीतिसिद्ध

'रीतिसिद्ध' काव्य से अभिप्राय उस दरबारी काव्य से है जिसके अन्तर्गत कवियों ने परम्परागत काव्यशास्त्र का निर्वाह करने के साथ ही उसमें सिद्धता भी प्राप्त की थी। अवलोकनीय बात यह रही है कि इन कवियों का आचार्यत्व इनके कवि-कर्म में बाधक नहीं बना। यही कारण है कि अधिकतर कवियों में रीतिग्रंथ रचने की प्रव त्ति विद्यमान रही थी। भूषण जैसे वीर कवि भी रीति का मोह नहीं त्याग सके और 'शिवराज भूषण' नामक ग्रन्थ रच डाला। ऐसी स्थिति में संस्कृत काव्यशास्त्र को हिंदी में प्रस्तुत करके नये कवियों का मार्ग दर्शन करने की बात विद्वान कवियों के समक्ष आयी-

"सुरबानी यातैं करी, नर बानी में ल्याय।
जाते मगु रसरीति को, सबतै समुझौ जाय।।"

हिंदी में काव्यशास्त्र लिखकर दरबारी सम्मान प्राप्त करने की आकांक्षा तीव्र हो गयी, अतः प्रत्येक विद्वान, चाहे उसके पास कवि-हृदय था या नहीं, पद्यमय काव्य-लक्षण-ग्रंथ की रचना में जुट गया। इस प्रकार का संकेत भिखारी दास की पंक्तियों मे मिलता है-

"आगे के कवि रीझि हैं तौ कविताई, न तौ
राधिका-कन्हाई सुमिरन को बहानौं है।"

रीतिबद्ध कवियों को काव्य कवि की संज्ञा दी जा सकती है। ऐसे साहित्यकारों अथवा कवियों ने अलंकारों तथा नायक-नायिका भेद आदि के लक्षण प्रस्तुत नहीं किये, पर अपने सरस एवं श्ं गारपरक मुक्तक काव्य में ऐसे उदाहरणों की रचना की जिनसे एक ओर तो उनके चमत्कार की धाक जमे तथा दूसरे उनकी कविता को श्ं गार रस की निष्पति के लिए पोषण भी मिले। ऐसे कवियों मे आचार्यत्व की पदवी प्राप्त करने की लालसा चाहे रही हो, पर वे लक्षण ग्रंथ नहीं लिख पाये। अतः ऐसे कवियों को केवल काव्य-कवि या रस-सिद्ध कवि कहा जा सकता है। ऐसे रससिद्ध कवियों में 'बिहारी' विशेष महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि बिहारी ने अपने दोहों के माध्यम से श्ं गार रस का ऐसा सुन्दर प्रतिपादन किया है कि नायक-नायिकाओं के लक्षण प्रस्तुत न करके भी दोहे के माध्यम से स्पष्ट संकेत मिल जाते है कि अमुक दोहे में वर्णित या चित्रित कौन-सी नायिका है।

रीतिसिद्ध कवियों ने काव्य के दोनों पक्षों अर्थात् कला पक्ष एवं भाव पक्ष पर एक समान बल दिया। भावाभिव्यक्ति हेतु इन्होंने आलंकारिक शैली को अपनाया, पर इनका मुख्य लक्ष्य तो रसानुभूति कराना था। रीतिसिद्ध कवियों को संस्कृत साहित्य का तथा संस्कृत साहित्यशास्त्र का सम्यक् ज्ञान था परन्तु उन्होंने संस्कृत जैसे लक्षण ग्रन्थ रचने का मोह नहीं रखा। उन्होंने अलंकारादि काव्यागों के लक्षण देकर उदाहरण नहीं लिखे। उन्होंने तो उस प्रकार के साहित्य की रचना की जिसके द्वारा प्रकारान्तर से तो कोई काव्यशास्त्रीय सिद्धान्त पुष्ट होता हो पर उसमें किसी सिद्धान्त विशेष का आग्रह नही हो। यद्यपि डा० नगेन्द्र आदि कुछ विद्वानों ने बिहारी को रीतिबद्ध कवि माना है परन्तु बिहारी तो रीति-सिद्ध कवि है। रीतिबद्ध कवियों को तो आचार्य की कोटि में रखा गया है परन्तु बिहारी आचार्य कवि नहीं है।

इस प्रकार सारांश मे कहा जा सकता है कि रीतिकाल में उस काव्यधारा को रीतिसिद्ध काव्यधारा का नाम दिया गया है जिसमे रीतिकाव्य की बँधी बँधाई परिपाटी में विश्वास रखते हुए भी उन कवियों ने लक्षण ग्रंथ नहीं लिखे, बल्कि कविता का मुख्य उद्देश्य रस-प्राप्ति समझते हुए केवल ऐसे उदारहण प्रस्तुत किये जिनसे काव्यांगों को समझा जा सकता है। 'रीतिसिद्ध' काव्य से अभिप्राय उस दरबारी काव्य से है जिसके अन्तर्गत कवियों ने परम्परागत काव्य शास्त्र का निर्वाह करने के साथ ही उसमें सिद्धता भी प्राप्त की थी।

रीतिमुक्त

रीतिकाल में जो तीसरी काव्यधारा बही उस पर विद्वानों का मतभेद नहीं है। वह तो 'रीतिमुक्त काव्यधारा' है। रीतिकाल में जिन कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा स्वच्छन्दतापूर्वक 'प्रेम की कसक' या 'प्रेम की पीर' को जनता तक पहुँचाने का प्रयास किया, ऐसे कवियों को रीतिमुक्त काव्यधारा में माना गया है। इन्होंने लक्ष्य तथा लक्षण ग्रंथ नहीं लिखे, केवल मुक्तक काव्य की शैली में श्ं गार, नीति, वीर तथा भक्ति की मुक्तक रचनाएँ रचीं। ऐसे कवियों में घनानन्द, बोधा, आलम, भूषण, ठाकुर, लाल, सूदन, ब न्द तथा गिरधर आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

रीतिमुक्त धारा के काव्य में भावपक्ष की प्रधानता है एवं कलापक्ष गौण है। रीतिमुक्त धारा के कवियों को स्वच्छंद धारा के रीतिवादी कवि भी कहा जा सकता है। ऐसे कवियों में घनानन्द, रसलीन, भूषण, पद्माकर आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय रहे हैं।

रीतिमुक्त काव्य को स्वच्छन्द काव्य-धारा भी कहते हैं। अभिव्यक्ति के क्षेत्र में स्वच्छन्दतावादी काव्य व्यंजनाप्रधान होता है। उसमें सांकेतिकता अधिक रहती है। इसीलिए थोड़ी बहुत मात्रा में रहस्यवाद की प्रव त्ति भी उसमें आ जाती है। इस काव्य में रूप-सज्जा की प्रधानता नहीं होती, व्यक्तिगत अनुभूतियों की यथार्थ अभिव्यक्ति पर द ष्टि रहती है। विक्टर ह्यूगो ने स्वछन्दतावादी काव्य को रूढ़ियों से मुक्त बताया है, डंटन उसमें चमत्कार और अनुभूति की प्रधानता मानते हैं तथा डा० हेज ने प्रेरणा (जीवन से) को इसका प्राण कहा है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस संदर्भ में कल्पना और भावावेग पर बल दिया है-"रोमांटिक साहित्य की उत्सभूमि वह मानसिक गठन है जिसमें कल्पना के आंतरिक प्रवाह और निविड आवेग में दो निरन्तर

घनीभूत मानसिक व त्तियाँ ही इस व्यक्तित्व प्रधान साहित्य रूप की प्रधान जननी हैं।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रकृति के मुक्त रूप और जीवन के सहज प्रवाह को स्वच्छन्दतावादी साहित्य का प्रमुख विषय समझते हैं। उनके अनुसार शिष्ट साहित्य के साथ-साथ लोक साहित्य की धारा बहती रहती है, जिसमें जीवन की सहज और निश्छल अभिव्यक्ति होती है। जब शिष्ट साहित्य पंडितों और आचार्यों की रूढ़ियों में आबद्ध हो जाता है, तो भाव की सजीवता और स्फूर्ति जीवनगत दूसरी प्राकृतिक भाव धारा से ही प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार के परिवर्तन को सच्ची नैसर्गिक स्वच्छन्दता कहना चाहिए।

रीतिकालीन काव्य की विशेषताएँ

रीतिकालीन हिंदी साहित्य की रचना, जिन सामन्तीय परिस्थितियों में हुई, उस साहित्य को साधारण लोगों के जीवन से तो सम्बद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह साहित्य तो मूलतः दरबारी या शाही साहित्य था। आश्रित कवियों तथा आचार्यों ने जिस साहित्य की स ष्टि की, उसमें तत्कालीन राजाओं या सामन्तों की श्ं गार वासना को त प्त करने के लिए सुरा, सुन्दरी, सुराही आदि के वर्णन के अतिरिक्त कवितारूपी कामिनी के अलंकरण एवं नायक-नायिका के नख-शिख वर्णन पर ही जोर दिया गया। इस प्रकार रीतिकालीन साहित्यकारों की समस्त शक्ति एवं श्रम नारी-शरीर के रूप मे ही लगी। ऐसे रीतिकालीन साहित्य में कृत्रिमता, अलंकरण एवं श्ं गारिकता की प्रधानता है। सारे रीतिकालीन हिंदी साहित्य में बहुत थोड़ा साहित्य ही ऐसा है जिसे उपयोगी तथा शक्ति का साहित्य कहा जा सकता है। वीररस-युक्त तथा नीति परक भी कुछ साहित्य रचा गया। समस्त रीतिकालीन काव्यधाराओं की विशेषताएँ इस प्रकार रही है।

1. **श्ं गारपरक भावों की प्रधानताः** समस्त रीति साहित्य में रतिभाव, कामभाव तथा वासना एवं भोगवादी द ष्टिकोण ही प्रधान है। जिस प्रेम की पीर तथा अलौकिक प्रेम की भावना भक्ति काल में देखी गई उसके विपरीत रीतिकाल में लौकिक प्रेम एवं श्ं गार भाव की ही प्रचुरता रीति साहित्य में व्याप्त है। भक्ति के माधुर्य भाव ने तो जैसे नग्न श्ं गारिकता की प्रव त्ति को खुली छूट ही दे दी थी। जीवन की सामान्य घटनाओं को भी नायक-नायिका के माध्यम से बड़े ही रसीले और श्ं गारपरक ढंग से प्रस्तुत किया जाता था। एक दोहा इस तथ्य के परिणाम के लिए पर्याप्त होगा जिसमें वर्षा ऋतु में फिसल जाने वाली घटना को भी श्ं गार एवं कामुक-भाव में प्रस्तुत किया गया है। एक सखी दूसरी सखियों से कह रही है।

   "हम सखी दाऊ ऐसे फिसले।
   वो भये ऊपर, मै भई नीचे।।"

   अर्थात् नायक के साथ फिसलते हुए भी काम-वासना की अभिव्यक्ति की गई है। रीतिकाल मे मुक्तक लिखने वाले कवियों ने उसी श्ं गार भावना की अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं में की जिसे उर्दू-फारसी के शायर, शीशे, मद (शराब) तथा पैमाने (चषक या प्याला) में ढालते रहे। एक रीतिकालीन कवि ने लिखा है -

   "सेज है सुराही है, सुरा और प्याला है,
   सुबाला है, दुशाला है, विशाला चित्रशाला है।

   ऐसे भाव वाली रचनाओं को ही देखकर उस समय की श्ं गार-प्रधान विलासी भावना का पता चलता है। श्ं गार रस के संयोग पक्ष का चित्रण अधिक हुआ है। वैसे वियोग का भी कुछ चित्रण हुआ है। इस सन्दर्भ में डा० नगेन्द्र लिखते है, "साँचा चाहे जैसा भी रहा हो इसमें ढली श्ं गारिकता ही।"

2. **अलंकरण की प्रव त्तिः** रीतिकालीन साहित्यकारों ने काव्य के क्षेत्र में आलंकारिकता, प्रदर्शन तथा चमत्कारपूर्ण उक्तियों को अपने काव्य का प्रतिपाद्य बनाया। उन्होंने अलंकारों को कविता रूपी कामिनी के लिए अनिवार्य घोषित किया। इसीलिए केशव ने तो यहाँ तक लिख दिया है-

   "जदपि सुजाति सुलच्छिनी, सुबरन सरस सुव त्त।
   भूषन बिनु न बिराजई कविता बनिता मित्त।।"

   अर्थात् कविता तथा बनिता चाहे कितनी ही उच्च जाति की क्यों न हो, अच्छे लक्षणों वाली सुवर्ण, रसीली तथा पुष्ट क्यों न हो परन्तु जब तक वे भूषण (अलंकार) धारण नहीं करती तब तक शोभा नहीं पा सकती।

   इसी कारण रीतिकाल के अधिकांश साहित्यकारों ने अलंकारों के सहारे ही अपनी रचनाएँ रचीं। अलंकार शास्त्र ही उस समय का साहित्यशास्त्र माना जाता था।

3. **भक्ति एवं लोक-जीवन का चित्रण**: रीतिकालीन रचनाकारों का मुख्य प्रतिपाद्य तो श्ृंगार रस ही रहा परन्तु उनकी रचनाओं में माधुर्य, भक्ति तथा लोक जीवन की नीति संबंधी भी कुछ रचनाएँ मिलती है। लेकिन उनकी संख्या है बहुत कम। राधा और कृष्ण को माध्यम बनाकर कुछ श्ृंगारपरक भक्ति काव्य भी रचा गया। उन्हें तो राधाकृष्ण को प्रसन्न करने के लिए श्ृंगारपरक मधुरा भाव की भक्ति ही अधिक उपयुक्त प्रतीत हुई। लोकाचार संबंधी जो मुक्तक अर्थात् नीतिपरक दोहे या कवित्त लिखे गए हैं उनमें भी श्ृंगारी भाव छिपा है।

4. **मुक्तक काव्य शैली का प्रयोग**: काव्यरूपों तथा काव्यशैलियों की द ष्टि से सोचा जाए तो रीतिकालीन रचनाकारों ने प्रबंध काव्य की अपेक्षा मुक्तक काव्यशैली को प्रमुखता प्रदान की। तत्कालीन आश्रयदाताओं को तुरंत प्रसन्न करने के लिए मुक्तक काव्यशैली की प्रव त्ति का खूब प्रसार हुआ क्योंकि मुक्तक काव्य चुने हुए फूलों का गुलदस्ता होता है जिससे दरबार को आसानी से मोहित एवं प्रसन्न किया जा सकता है।

5. **वीररस की ओजस्वी प्रव त्तिः** रीतिकाल में ही भूषण कवि हुए हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में वीर रस का ऐसा सुन्दर एवं सरस चित्रण किया है कि उनका नाम अद्वितीय है। रीतिकाल में रचे गये साहित्य में वीर रस का अजस्र प्रवाह प्रतीत होने लगता है। इनसे संबंधित रचनाएँ मध्यप्रदेश, पंजाब, राजस्थान, हरियाणा आदि प्रदेशों के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं

6. **नारी विषयक द ष्टिकोणः** रीतिकालीन साहित्य में नारी के प्रति यह द ष्टिकोण रहा है कि उसे केवल भोग्या एवं भोग-विलास का साधन ही माना जाए। राज्याश्रित कवि भी अपनी कविता का केन्द्र नारी का नाम-शिख वर्णन मानते रहे। वे नारी के अंगों विशेषतः कच और कुचों में ही उलझे रहे। सौंदर्य का नग्न चित्रण ही उन्हें प्रिय रहा। नारी के बाह्य रूप-रंग को ही महत्त्व दिया जाता रहा। नारी जीवन के प्रति रीति कवियों का ऐसा संकुचित एवं एकांगी द ष्टिकोण निश्चित रूप से मुगल शासक की विलासी प्रव त्ति का परिणाम कहना चाहिए।

7. **रीतिकाव्य में प्रकृति चित्रणः** रीतिकालीन काव्य में रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में प्रकृति का चित्रण विशेष रूप से आलम्बन रूप में ही किया है। संयोग-श्ृंगार में सुखद तथा वियोग श्ृंगार में दुःखद प्रकृति का चित्रण हुआ है। षड्ऋतु वर्णन तथा बारहमासा चित्रण भी किया गया है। वियोग की अवस्था में प्रकृति के सुखद उपादान भी दुःखद हो जाते हैं। ऐसे चित्रण बड़े ऊहात्मक भी हो गए हैं, क्योंकि चन्द्रमा की चांदनी वियोगिनी नायिका के लिए कसाई का काम करती हुई दिखाई गई है।

8. **कामशास्त्रीय चित्रण मनोवैज्ञानिक आधार परः** रीतिकालीन साहित्य में स्त्री-पुरुष के यौन-संबंधों को वात्स्यायन के कामसूत्र तथा कोका के कोकशास्त्रीय आधार पर चित्रित करते हुए जिस मनोवैज्ञानिक आधार की बात कही जाती है उसे ही आधुनिक युग में फ्रायडवादी द ष्टिकोण कह दिया जाता है। परन्तु रीतिकालीन रचनाकार तो संस्कृत की कामशास्त्रीय परम्परा से प्रेरित थें रीतिकालीन साहित्य में कामुकता तथा ऐन्द्रियता की बहुत अधिकता है। नायक-नायिका भेद भी कामुक द ष्टिकोण से ही किए गए है। पदिमनी, हंसिनी, हस्तिनी तथा चित्रणी आदि नायिकाएँ उनकी मानसिक तथा कामुक प्रव त्ति के आधार पर ही चित्रित की गई है।

9. **स्वतंत्र चिन्तन का अभावः** रीतिकालीन रचनाकारों ने अपनी आजीविका के लिए जो साहित्य रचा उसमें मौलिकता तथा स्वतंत्र चिन्तन की अत्यन्त कमी दिखती है। उन्हें तो अपने आश्रयदाताओं की रूचि के अनुसार नायक-नायिका भेद अथवा काम-क्रीड़ाओं का ही अधिक चित्रण करना था। संस्कृत साहित्य से विषय-वस्तु लेकर उसे लोकभाषा में रूपान्तरित करके ही उन्हें सन्तुष्ट होना पड़ता था।

10. **यथार्थ जीवन के प्रति विचारः** रीतिकालीन हिंदी साहित्य में सबसे महत्वपूर्ण प्रव त्ति यही है कि उसमें यथार्थ जीवन के प्रति गहरी अभिरूचि दिखाई गई है। रीतिकालीन कवियों एवं आचार्यों का जीवनदर्शन ही ऐसा था जिसमें जीवन तथा यौवन का पूर्ण उपयोग करना था। डा. भगीरथ मिश्र ने रीतिकालीन रचनाकारों को यौवन तथा बसन्त के कवि कहा है। उसे मस्ती से भरा मदमाता जीवन दर्शन कह सकते हैं। जहां जीवन को ऐसा विश्राम-स्थल समझा गया कि सब प्रकार की दौड़-धूप से शान्त होकर नारी के आंचल की मधुर छाया में, मदिरा के चषकों में उंडेल दिया हो। दुःखो एवं पराभावों को भूल कर जीवन को जीने की ही नहीं अपितु भोगने और ऐश करने की प्रव त्ति से जो आशावादी द ष्टिकोण विकसित हुआ उससे तत्कालीन समाज को यदि कुछ न मिला हो पर आश्रयदाताओं तथा आश्रित कवियों में तो कम से कम जीवित रहने की प्रबल इच्छा पनपी।

11. **रीतिकालीन संदर्भ काव्यभाषा:** प्रत्येक युग के साहित्यकार अपने परिवेश तथा मानसिक दबाव के करण अपने साहित्य में कुछ विशिष्ट शब्दों, मुहावरों, विशेषणों तथा लोकोक्तियों को अपनी अभिव्यंजना पद्धति में सम्मिलित करते हैं। रीतिकालीन कवियों ने भी ऐसा ही किया, 'राधा' और 'कृष्ण' शब्दों का प्रयोग साधारण नायक-नायिका के रूप में होने लगा। रीतिकालीन हिंदी काव्य में फारसी के प्रभाव के कारण ऐसी अभिव्यंजना शैली का विकास हुआ जो कृत्रिम तथा ऊहात्मक थी।
12. **रागात्मक प्रव त्तिः** भक्तिकाल में प्रकृति और निव त्ति दोनों ही जीवन मार्गों पर चलने वाले साहित्य की रचना हुई परन्तु रीतिकाल में तो रागात्मक व त्ति अथवा प्रव त्ति मार्ग को ही अपनाया गया है। स्वकीया तथा परकीया दोनों प्रकार की नायिकाओं के माध्यम से जिस लौकिक प्रेम अथवा रागात्मक व त्ति की कविता रची गई है, उनमें वैराग्य भाव या निव त्ति मार्ग तो नगण्य ही है।
13. **ब्रजभाषा की प्रधानता:** रीतिकालीन हिंदी साहित्य की अधिकांश काव्य भाषा तो ब्रज ही है पर कुछ नीतिसाहित्य पंजाबी, कन्नौज, हरियाणवी तथा अवधीभाषा में भी रचा गया है। भाषा की द ष्टि से रीतिकालीन हिंदी साहित्य में माधुर्य गुण की कोमलता अत्यन्त आकर्षक है। लोक ब्रज को साहित्य के उच्च स्तर तक ही नहीं बल्कि उच्च शिखर पर पहुंचाने का कार्य हिंदी के रीतिकालीन रचनाकारों ने किया।
14. **स्पर्धा की प्रव त्तिः** रीतिकालीन साहित्यकारों में प्रतिस्पर्धा एवं प्रतियोगिता की भावना भी मिलती है। इसी कारण प्रत्येक रचनाकार अपनी रचना की उत्कृष्टता की स्थापना के लिए अधिक से अधिक चमत्कारपूर्ण श ंगार साहित्य की रचना करता रहा। रीति कवियों में आचार्यत्व को प्राप्त करने की भी स्पर्धा रही। ऐसी स्पर्धा में गंभीरता संबंधी विचारों का अभाव था।
15. **साहित्य की अनेकानेक प्रव त्तिः** रीतिकाल को भारतीय संस्कृति और साहित्य का पुनरूत्थान काल कहा गया है। इस युग में ज्ञान का क्षेत्र अनेक दिशाओं में विस्त त हुआ। रीतिकालीन आचार्य एवं कवि को अनेक विषयों का विद्वान होना आवश्यक था। उसे ज्योतिष, हस्त, सामुद्रिक, कामशास्त्र, अंक विधा, संगीतशास्त्र, चित्रकला आदि का पूर्ण ज्ञाता होना चाहिए था। इस द ष्टि से तो रीतिकालीन हिंदी साहित्य में अनेक कलाओं को पुनः स्थापित किया गया है।

    रीतिकालीन साहित्य में भाव-पक्ष की अपेक्षा कला-पक्ष की प्रधानता है। भाव पक्ष में प्रव त्ति मार्ग को ही अपनाया गया है। साहित्यिक उपलब्धि की द ष्टि से रीतिकालीन हिंदी साहित्य इतना हेय नहीं जितना उसे समझा जाता रहा है।

गद्य साहित्य

आधुनिक काल में जो गद्य पूर्ण वैभव के साथ प्रारंभ हुआ उससे पहले रीतिकाल में गद्य को द ढ़ भित्ति पर खड़े होने का समय मिल गया था। इस समय में अनेक मौलिक रचनाएँ गद्य में हुईं। बहुत सी रचनाएँ अनुवाद करने के रूप में प्रकाश में आईं। संस्कृत के पुराने ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद करके सबको सुलभ कराने के प्रयास ने अनूदित गद्य का बड़ा विस्त त रूप प्रस्तुत किया। रामायण, महाभारत, पुराण, हितोपदेश आदि के अनुवाद गद्य में हुए। उनमें रामप्रसाद निरंजनी का 'भाषा योग वसिष्ठ' बड़ी प्रसिद्ध रचना है। एक और प्रव त्ति जो टीका-व्याख्या की चली उसने भी गद्य को बहुत आगे बढ़ाया। रीतिकाल के आचार्य-कवियों ने अनेक संस्कृत काव्यशास्त्र के ग्रंथों की टीकाएँ कीं। चिन्तामणि, भिखारीदास, सोमनाथ इस द ष्टि से जाने -माने आचार्य हैं। उन्होंने कवि कुल कल्पतरू, काव्यनिर्णय, रस पीयूषनिधि नामक ग्रंथों में काव्यशास्त्र की टीका परक गद्य प्रस्तुत किया। इसके साथ ही हिन्दी कविता के अनेक ग्रंथ, जैसे- विनयपत्रिका, रामचन्द्रिका, कविप्रिया, रसिकप्रिया (बिहारी) सतसई आदि पर टीका-परक गद्य निर्मित हुआ। और भी बहुत से ऐसे ग्रंथ लिखे गये जो कविता में थे पर उनको गद्य में सरलीकृत करके या उनकी टीका करके प्रस्तुत किया गया। हिंदी गद्य का यह पूरी तरह से विकासमान परिवेश बन गया। उसके अनेक रूप देखने में आते हैं।

भक्तिकाल और रीतिकाल में ब्रजभाषा का वर्चस्व रहा है। अपनी सरलता, कोमलता एवं काव्योचित विशेषताओं के कारण कवियों ने कविता के लिए ब्रज भाषा को बहुत अधिक अपनाया था। रीतिकाल से पूर्व भी और रीतिकाल में आकर तो ब्रजभाषा में गद्य-लेखन की प्रव त्ति वेग से देखने में आती है। काव्य के ग्रन्थों का रीतिकाल में चलन बढ़ा तो उसकी टीकाएँ भी सामने आई और वे प्रायः ब्रजभाषा में ही लिखी गईं। विद्वानों ने ब्रज भाषा गद्य के अनेक रूप गिनाये हैं, जैसे वार्ता, जीवनी, पत्र, संवाद वचनिका, टीका, ललित गद्य आदि। ब्रजभाषा गद्य में वर्णित विषय धर्म, दर्शन, इतिहास, भूगोल, ज्योतिष, चित्रकारी, काव्यशास्त्र आदि हैं। ब्रज भाषा गद्य में वार्ता-साहित्य बहुत महत्वपूर्ण है। उसमें अधिकतर वे रचनाएँ हैं जो धार्मिक हैं या किसी

धर्म-सम्प्रदाय के तत्वों को निरूपित करती हैं। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' इसी प्रकार की हैं। इनमें क्रमशः वल्लभाचार्य के शिष्यों और उनके पुत्र विट्ठलनाथ के शिष्यों के जीवन चरित्र हैं। बहुत सी वार्ताओं और वचनाम तों को संकलित और संपादित करने का श्रेय स्वामी हरिराम को है। उन्होंने स्वयं भी बहुत सी वार्ताएं लिखी हैं। उनके वचनाम त ऐसे हैं जिनमें उस समय के इतिहास की भी झांकी मिल जाती है। कुछ वचनाम तों के नाम ये हैं- चौरासी बैठक चरित्र, बन यात्रा, गिरिधर दास की बैठकन के चरित्र, नित्य सेवा प्रकार आदि।

अन्य विषयों की गद्य रचनाएँ भी ध्यान देने योग्य हैं- वैधक ग्रन्थ जैसे अश्वचिकित्सा, अध्यात्म ग्रंथ जैसे वेदान्त निर्णय, गरूड़ पुराण व पद्मपुराण अनुवाद, चाणक्य नीति अनुवाद, हितोपदेश अनुवाद, हितोपदेश अनुवाद, मानस की टीका, बिहारी सतसई की टीका, रसिक प्रिया टीका, हित चौरासी की गद्य पद्यमय टीका आदि अनेक ग्रंथ ब्रजभाषा के हैं।

खड़ी बोली में गद्य साहित्य

रीतिकाल में खड़ी बोली का स्वतंत्र रूप में गद्य-प्रयोग नहीं मिलता। जिस प्रकार आदिकालीन गद्य में कहीं-कहीं और भक्तिकालीन गद्य में कुछ अधिक प्रयोग खड़ी बोली के मिलते है उसी प्रकार नीतिकाल में भी मिलते हैं। इस काल में कुछ अधिक विस्तार हुआ है। खड़ी बोली का गद्य दूसरी भाषाओं के गद्य के साथ मिला हुआ दिखलाई देता है। अधिकतर ब्रजभाषा गद्य में खड़ी बोली का गद्य मिला हुआ है। पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी और पंजाबी में भी खड़ी बोली गद्य का मिश्रित रूप देखने में आता है। यह गद्य अधिकतर साहित्येतर विषयों से संबंध रखने वाला अधिक है। उसमें अध्यात्म दर्शन वैधक ज्योति इतिहास, भूगोल आदि विषय मिलते हैं। ब्रज, पंजाबी, उर्दू आदि के साथ मिश्रित रूप में लिखी गई खड़ी बोली गद्य की कुछ रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं- फर्सनाम, सुरासुर निर्णय, मोक्षमार्गप्रकाश, चिद्विलास रीतिकाल में खड़ी बोली गद्य का एक रूप टीका और अुनवादों में प्रयुक्त खड़ी बोली है। इनमें से कुछ रचनाएँ पंजाबी, फारसी मिश्रित ध्यान देने योग्य हैं;- भाषा योग वशिष्ठ, भाषा पद्य पुराण, आदिपुराण वचनिका, सूर्य सिद्धान्त आदि।

ब्रज भाषा मिश्रित खड़ी बोली टीकाओं में प्रमुख रूप से निम्नलिखित टीकाएँ ध्यान देने योग्य हैं-

प्रवचनसार टीका	-	पंडित हेमराज
भाषाम त गीता टीका-		भगवानदास
जपु टीका	-	आनन्द घन
बिहारी सतसई	-	इसवी खां
रानी केतकी की कहानी	-	इंशा अल्लाह खां

उपुर्यक्त गद्य रचनाएँ खड़ी बोली के मिश्रण का उदाहरण हैं। धीरे-धीरे खड़ी बोली अन्य भाषाओं के साथ मिलकर अपना स्थान बना रही थी। इनमें से कुछ रचनाएँ उर्दू फारसी के अधिक मिश्रण की हैं, कुछ ब्रज की हैं। कही तत्सम शब्दावली की प्रधानता है कहीं विदेशी शब्दों की।

दक्खिनी गद्य-साहित्य

रीतिकाल में दक्खिनी गद्य भक्तिकाल की तरह उर्दू फारसी मिश्रित रूप में मिलता है। सूफी संतों, साधुओं और धर्म सम्प्रदाय के अुनयायी व्यक्तियों के अनुवाद किये गये ग्रंथ इसमें अधिक हैं। साहित्येतर रचनाएं बैधक, इतिहास आदि की तथा पत्र हुकमनामे भी इसी गद्य में लिखे गये मिलते हैं। इस समय की कुछ दक्खिनी गद्य रचनाएँ निम्नलिखित हैं- रिसाले वजूदिया (शाहबुरहाद्दीन कादरी), मंजमखफी (मुहम्मद शरीफ) रिसाले तसव्वुफ (अब्दुल हमीद)। इस गद्य में बहुत सी रचनाएँ ऐसी भी मिलती हैं जिनके लेखकों के नाम ज्ञात नहीं हैं। इतिहास संबंधी ग्रंथ भी है और वधक भी हैं। ये सब रचनाएं उर्दू शैली की है और हिंदी की एक शैली के रूप में उर्दू की यह शैली हिंदी के अधिक निकट है।

राजस्थानी गद्य साहित्य

राजस्थानी गद्य साहित्य का विकास रीतिकाल में पर्याप्त मात्रा में हुआ। इस गद्य में वचनिका, दवावैत, पत्र, वंशावली, पदावली अनेक तरह का गद्य मिलता है। कहीं तुकमय गद्य मिलता हैं उसमें धर्म, दर्शन, अध्यात्म, इतिहास, ज्योतिष, वैधक, तंत्रमंत्र आदि विषयों को निरूपित किया गया है इस गद्य में वात जैसी विधा प्रसिद्ध है। वात में गद्य पद्य मिश्रित रचना होती है। ये 'वात' कई प्रकार की होती हैं। ये इतिहास सम्मत भी होती है और काल्पनिक भी। कुछ प्रसिद्ध 'वात' इस प्रकार हैं- राव राम सिंह

री वात, सिद्धराज जयसिंह री वात, रावरिणमल री वात, सयणी चारिणी री वात, गोरा बादल री वात। वचनिका के रूप में जो राजस्थानी गद्य मिलता है उसमें भी अनेक रचनाएं हैं।

राजस्थानी ललित गद्य की रचनाएं भी रीतिकाल में मिलती हैं, जैसे- दलपति विलास, बीतानेर री ख्यात, बांकीदास री ख्यात, सीसोदिया री वंसावली। पट्टे परवाने जन्म पत्रियाँ भी इसमें हैं।

भोजपुरी और अवधीमें गद्य साहित्य

रीतिकालीन गद्य साहित्य के कुछ नमूने भोजपुरी भाषा में भी मिलते हैं। फणीन्द्र मिश्र का 'पंचायत का न्यायपत्र' अवधीमिश्रित भोजपुरी का उदाहरण माना गया है। और भी कागज पत्र इस तरह की मिश्रित गद्य के विद्वानों ने खोज निकाले हैं। अवधी भाषा का गद्य प्रायः ब्रजभाषा के गद्य के मिश्रण के साथ मिलता है। उनमें से कुछ प्रमुख गद्य रचनाएँ इस प्रकार हैं-

मानसटीका	-	रामचरणदास
रसविनोद	-	भानु मिश्र
व्यवहारवाद	-	प्रियादास
कबीर बीजक	-	महाराज विश्वनाथसिंह

हिंदी साहित्य गद्य की उपभाषाओं में निहिति का कारण यह है कि जिस समय ब्रज भाषा में काव्य रचना का बोलबाला था। अवधीभोजपुरी की कविता अपने क्षेत्र में चल रही थी। धीरे-धीरे कविता की भाषा से जैसे ब्रज भाषा में गद्य को देखा गया, उसी तरह भोजपुरी और अवधी में भी पद्य से गद्य में भाव व्यक्त करने का चलन बना। आधुनिक काल में जो विकास हुआ, विभिन्न भाषाओं के गद्य-प्रयोग उस विकास के पूर्व सूचक हैं।

रीतिकाल में अनेक गद्य-विधाओं में साहित्य सर्जना हुई है अर्थात कहानी, वार्ता, चरित्र, प्रवचन, नाटक, टीका, भाव आदि अनेक रूपों में रीतिकालीन गद्य-साहित्य प्राप्त होता है। गद्य के इन विविध रूपों में धर्म, दर्शन, इतिहास, भूगोल, काव्यशास्त्र, व्याकरण आदि विषयों का वर्णन मिलता है।

रीतिकालीन गद्य साहित्य अपने पूर्ववर्ती गद्य साहित्य से पर्याप्त सम द्ध है। कवित्व के प्रति आसक्ति, दरबारी संस्कृति का दबाव, रसिकता आदि के कारण रीतिकालीन गद्य का समग्र विकास नहीं हो पाया, लेकिन रीतिकालीन गद्य ने आधुनिक गद्य की अनेक विधाओं में लेखन की ओर अग्रसर जरूर कर दिया।

प्रतिनिधि रचनाकार

बिहारी

जन्म : इनका जन्म ग्वालियर के पास बसुवा गोविंद पुर गाँव में संवत 1660 के लगभग माना जाता है। एक दोहे के मुताबिक इनकी बाल्यावस्था बुंदेलखण्ड में बीती और तरूणावस्था में ये अपनी ससुराल मथुरा में आकर रहने लगे थे।

साहित्यिक देन

श ंगार रस के ग्रंथों में जितनी ख्याति और मान-सम्मान 'बिहारी सतसई' का हुआ उतना किसी और रचना का नहीं। इसका एक-एक दोहा हिंदी-साहित्य में एक-एक रत्न माना जाता है। इसकी पचासों रचनाएं टीकाएं रची गई। बिहारी ने 'सतसई' के अतिरिक्त और कोई ग्रंथ नहीं लिखा। यही ग्रंथ उनकी इतनी बड़ी कीर्ति का आधार रहा है। यह बात साहित्य-क्षेत्र के इस तथ्य की स्पष्ट घोषणा कर रही है कि किसी कवि का यश उसकी रचनाओं के परिणाम के हिसाब से नहीं होता, गुण के हिसाब से होता है। मुक्तक कविता में जो गुण होना चाहिए वह बिहारी के दोहों में अपने चरम उत्कर्ष पर पहुंचा है, उसमें किसी प्रकार का कोई सन्देह नहीं किया जा सकता है। मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती जिसमें कथा-प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है।

भाव व्यंजना या रस व्यंजना के अतिरिक्त बिहारी ने वस्तु व्यंजना का सहारा भी बहुत लिया है। विशेषतः शोभा या कांति, सुकुमारता विरहताप, विरह की क्षीणता आदि के वर्णन में कहीं कहीं इनकी वस्तु-व्यंजना औचित्य की सीमा का उल्लंघन करके खिलवाड़ के रूप में हो गई है।

श्ंगार वर्णन

बिहारी ने श्ंगार को अपने काव्य में विशेष स्थान प्रस्तुत किया है। श्ंगार के संचारी भावों भी व्यंजना की ऐसी मर्मस्पर्शी है कि कुछ दोहे सहृदयों के मुंह से बार-बार सुने जाते हैं।

भाषा

बिहारी की भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य रचना व्यवस्थित है और शब्दों के रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है। यह बात बहुत कम कवियों में पाई जाती है। ब्रजभाषा के कवियों में शब्दों को तोड़-मरोड़कर विकृत करने की आदत बहुतों में पाई जाती है।

भूषण

भूषण का जन्म संवत् 1670 में हुआ था वीरस के कवि भूषण चिंतामणि और मतिराम के भाई थे। चित्रकूट के सोलकी राजा रूद्र ने इन्हें कवि भूषण की उपाधि दी थी तभी से ये भूषण नाम से ही प्रसिद्ध हो गए। उनका असली नाम क्या था इसका अभी तक कोई प्रमाण प्राप्त नहीं है। ये कई राजाओं के यहां पर अपने काव्य का सज न करते रहे थे।

साहित्य को भूषण की देन

भूषण की कविता कवि कीर्ति संबंधी एक अविचल सत्य का द ष्टांत है। जिसकी रचना को जनता का हृदय स्वीकर करेगा उस कवि की कीर्ति तब तक बराबर बनी रहेगी जब तक स्वीक ति बनी रहेगी। भूषण शिवाजी के दरबार में पहुंचने के पहले और राजाओं के पास भी रहे थे। उनके प्रताप आदि की प्रशंसा भी उन्हें अवश्य ही करनी पड़ी होगी पर वह झूठी थी, इसी से टिक न सकी। पीछे से भूषण को भी अपनी उन रचनाओं से विरक्ति ही हुई होगी। इनके 'शिवराज-भूषण'', 'शिवाबावनी' और छत्रसाल दसक' में ग्रंथ मिलते हैं। इनके अतिरिक्त 3 ग्रंथ और कहे जाते हैं। - 'भूषण उल्लास', 'दूषण उल्लास' और 'भूषण हजारा।'

भूषण वीर रस के कवि थे। इधर इनके दो-चार कवित्व है श्ंगार के भी मिलते हैं, पर वे गिनती के योग्य नहीं हैं। रीतिकाल के कवि होने के कारण, भूषण ने अपना प्रधान ग्रंथ 'शिवराज-भूषण' अलंकार के ग्रंथ के रूप में बनाया।

भाषा

भूषण की भाषा में ओज की मात्रा तो पूरी है पर वह अधिकतर अव्यवस्थित है। व्याकरण का उल्लंघन प्रायः है और वाक्य-रचना भी कहीं-कहीं गड़बड़ है। इसके अतिरिक्त शब्दों के रूप भी बहुत बिगड़ गए हैं। और कहीं-कहीं बिल्कुल गठंत के शब्द ही रखे गये हैं।

मतिराम

जन्म : ये रीतिकाल के मुख्य कवियों में है। इनका जन्म तिकवाँपुर (जिला कानपुर) में संव्त 1674 के लगभग हुआ था।

साहित्यिक अवदान

ये बूंदी के महाराजा भावसिंह के यहां बहुत समय तक रहे और उन्हीं के आश्रय में अना 'ललितललाम' नामक अलंकार का ग्रंथ संवत् 1716 और 1745, के बीच के समय में रचा। इनका 'छंदसार' नामक पिंगल का ग्रंथ महाराज शंभुनाथ सोलंकी को समर्पित है। इनका परम मनोहर ग्रंथ 'रसराज' किसी को समर्पित नहीं है। इनके अतिरिक्त इनके दो ग्रंथ और हैं- 'साहित्यसार' और 'लक्षण श्ंगार'। बिहारी सतसई के ढंग पर इन्होंने एक 'मतिराम सतसई' भी बनाई जो हिंदी पुस्तकों की खोज में मिली है। इसके दोहे सरसता में बिहारी के दोहों के समान ही हैं।

मतिराम की रचना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी भाषा अत्यंत स्वाभाविक है, न तो उसमें भावों की कृत्रिमता है, न भाषा की। भाषा शब्दांडबर से सर्वथा मुक्त है। इस प्रकार की स्वच्छ, चलती और स्वाभाविक भाषा रीति ग्रंथवाले कम कवियों में मिलती है। मतिराम की सी रसन्निग्ध और प्रसादपूर्ण भाषा रीति का अनुसरण करने वालों में बहुत ही कम मिलती है।

'रसराज' और 'ललितललाम' मतिराम के ये दो ग्रंथ बहुत ही प्रसिंद्ध रहे हैं। क्योंकि रस और अलंकार की शिक्षा में इनका उपयोग बराबर होता चला आया है। वास्तव में ये अपने समय के अनुपम ग्रंथ हैं। उदाहरणों की रमणीयता से अनानयास रसों और अलंकारों का अभ्यास होता चलता है। 'रसराज' का तो कहना ही क्या है। 'ललितललाम' में भी अलंकारों के उदाहरण बहुत

सरस और स्पष्ट है। इसी सरसता और स्पष्टता के कारण ये दोनों ग्रंथ इतने लोकप्रिय रहे हैं।

रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों में पद्म को छोड़ और किसी कवि में मतिराम की सी चलती भाषा और सरल व्यंजना नहीं मिलती।

देव

जन्म

इनका जन्म संवत् 1730 के लगभग हुआ था। ये इटावा के रहने वाले सनाढ्य ब्राह्मण थे। कुछ लोगों ने इन्हें कान्यकुब्ज सिद्ध करने का भी प्रयत्न किया है। इनका पूरा नाम देवदत्त था।

साहित्यिक अवदान

रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों में शायद सबसे अधिक ग्रंथ रचना देव ने की है। इनकी रची पुस्तकों की संख्या 52 है और कई विद्वान 72 तक बतलाते हैं। इनके प्रसिद्ध ग्रंथें में -भाव-विलास, अष्टयाम, भवानी-विलास, सुजान-विनोद, प्रेम-तरंग, कुशल-विलास, देवचरित्र, रस विलास, पावस-विलास, आत्म-दर्शन पचीसी, रसानंद, प्रेमदीपिका, सुमिल-विनोद, राधिका विलास आदि रहे हैं।

देव आचार्य और कवि दोनों रूपों में हमारे सामने आते हैं। यह पहले ही कहा जा चुका है कि आचार्यत्व के पद के अनुरूप कार्य करने में रीतिकाल के कवियों में पूर्ण रूप से कोई भी समर्थ नहीं हुआ।

कवित्व शक्ति और मौलिकता देव में खूब थी पर उनके सम्यक् स्फुरण में उनकी रूचि प्रायः बाधक हुई है। कभी-कभी वे कुछ बड़े और पेचीदे विषय का हौसला बांधते थे पर अनुप्रास के आडंबर की रूचि बीच ही में उसका अंग-भंग करके पद्य को कीचड़ में फंसा छकड़ा बना देती थी। अधिकतर इनकी भाषा में प्रवाह पाया जाता है। कहीं-कहीं शब्द व्यय बहुत अधिक है और अर्थ अल्परीतिकाल के कवियों में ये बड़े ही प्रगल्भ और प्रतिभा-संपन्न कवि थे, इसमें संदेह नहीं। इस काल के बड़े कवियों में इनका विशेष गौरव का स्थान है। कहीं-कहीं इनकी कल्पना बहुत सक्षम और दूरारूढ़ है। इनका सा नवोन्मेष विरले ही कवियों की रचनाओं में मिलता है।

दास (भिखारी दास)

जन्म

ये प्रतापगढ़ (अवध) के पास टयोंगा गाँव के श्रीवास्तव कायस्थ थे। इन्होंने अपना वंश-परिचय पूरा दिया है। इनके पिता कृपालदास, पितामह वीरभानु प्रपितामह राय रामदास और व द्ध प्रपितामह राय नरोत्तमदास थे। दास जी के पुत्र अवधेशलाल और पौत्र गौरीशंकर थे जिनके सपुत्र मर जाने से वंश परंपरा खंडित हो गई।

काव्य रचनाएं एवं अन्य ग्रंथ

दास के ग्रंथ-रससारांश छंदोर्ण पिंगल, काव्यनिर्णय, श ंगारनिर्णय, नामप्रकाश, विष्णु पुराण भाषा, छंद प्रकाश, शतरंज-शतिका, अमप्रकाश आदि रहे हैं।

साहित्यिक देन

काव्यांगों के निर्माण निरूपण में दास को सर्वप्रधान स्थान दिया जाता है, क्योंकि उन्होंने छंद, रस, अलंकार, रीति, गुण-दोष, शब्द शक्ति आदि सब विषयों का औरों से अधिक विस्त त प्रतिपादन किया है। इनकी विषय-प्रतिपादन शैली उत्तम है और आलोचना शक्ति भी इनमें कुछ पाई जती है। हिंदी काव्य क्षेत्र में इन्हें परकीया के प्रेम की प्रचुरता दिखाई पड़ी जो रस की द ष्टि से रसाभास के अन्तर्गत आता है। बहुत से स्थलों पर तो राधा-कृष्ण का नाम आने से देवकाव्य का आरोप हो जाता है और दोष का कुछ परिहार हो जाता है। पर सर्वत्र ऐसा नहीं हुआ है।

दास ने साहित्यिक और परिमार्पित भाषा का व्यवहार किया है। श ंगार ही उस समय का मुख्य विषय रहा है। इनका श ंगार-निर्णय अपने ढंग का अनूठा कार्य है। उदाहरण मनोहर और सरस हैं। भाषा में शब्दाडंबर नही है। न ये शब्द चमत्कार पर टूटे हैं, न दूर की सूझ के लिये व्याकुल हुए हैं।

इनकी रचना कलापक्ष में संयत और भावपक्ष में रंजनकारिणी है।

घनानन्द

जन्म

घनानन्द का जन्म 1673 के लगभग बुलन्दशहर जिले के कायस्थ परिवार में हुआ था।

जीवन-परिचय

घनानन्द दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह रंगीला के दरबार में मीर मुन्शी थे। ये उसी बादशाह के दरबार की सुजान नामक एक वेश्या से प्रेम करते थे। एक बार बादशाह के कहने पर भी घनानन्द ने गाकर नहीं सुनाया, परन्तु सुजान के कहने पर इन्होंने आत्म-विभोर गया। इस कारण बादशाह के कोप का शिकार होना पड़ा और दिल्ली छोड़नी पड़ी परन्तु सुजान, कहने पर भी उनके साथ नहीं गई। उसकी विरह-भावना को लेकर इन्होंने सरस-मुक्तकों की रचना की। इनका काव्य हृदयानुभूति से निकाला गया काव्य है।

प्रमुख रचनाएँ

इनकी प्रमुख रचनाओं में 'सुजान सागर', विरहलीला, 'कोकसागर', 'घन आनन्द कवित्त', 'सुजानहित प्रबन्ध', 'वियोग बेलि', ''प्रीति-पावस', एवं सुजान-विनोद' आदि है।

काव्यगत प्रमुख विशेषताएँ

सौंदर्य वर्णन- घनानंद का प्रेम रूप-जन्य है। कवि ने मुहम्मद शाह रंगीले के दरबार में रहकर सुजान-वेश्या से वस्तुतः प्रेम किया था और यह प्रेम इसलिए हुआ क्योंकि सुजान रूप का आगार थी। सुजान के अंग-प्रत्यंग में सौंदर्य की ऐसी तरंगे उठती थी मानो क्षणभर में ही चू पड़ेगी। सुजान का ऐसा रूप नित नवीन लगने वाला है।

संयोग में वियोग का आनन्द

घनानन्द के प्रेम की एक अभूतपूर्व विशेषता उनके संयोग में वियोग का वर्णन है। यदि प्रेमी भूले से स्वप्न में भी क्षणभर के लिए उन्हें दिखाई दे जाता है तो उन्हें यह चिन्ता हो जाती है कि कुछ समय पश्चात वह फिर चला जाएगा। ऐसी स्थिति केवल घनान्द के काव्य में ही मिलती है।

सात्विक प्रेम निरूपण

घनानन्द का प्रेम रूप जन्य है, नितान्त लौकिक है। इसलिए उनकी प्रेमानुभूति मिलन-सुख से सुवासित है। उसमें रति सुख है। उनके प्रेमकाव्य में आलिंगन, मिलन, परिरम्मण आदि हैं।

कला-पक्ष

कला-पक्ष की द ष्टि से घनानन्द की काव्य-भाषा ब्रज भाषा है। लेकिन अभिव्यंजना की द ष्टि से वह व्यावहारिक, सजीव, व्याकरण सम्मत एवं पूर्णतया साहित्यिक है।

आधुनिक कालः हिन्दी काव्य

1. आधुनिक हिंदी साहित्येतिहास : भूमिका

हिंदी साहित्य के इतिहास के हजार वर्षो के इतिहास को मुख्य रूप से आदिकाल, मध्यकाल एवं आधुनिक काल कालक्रमानुसार विभाजित किया गया है। मध्यकाल को पुनः पूर्व मध्यकाल एवं उत्तर मध्यकाल दो भागों में विभक्त किया गया है।

भक्तिकाल के अतिरिक्त तीनों कालों के एक से अधिक नामकरण एवं सीमा निर्धारण में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है फिर भी अधिकांश विद्वानों ने शुक्ल जी द्वारा प्रदत्त नाम एवं समय सीमा को स्वीकारा है-

(i) आदिकाल (वीरगाथा काल, संवत् 1050 - 1375 तक)

(ii) पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल, संवत् 1365-1700 तक)

(iii) उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल, संवत् 1700-1900 तक)

(iv) आधुनिक काल (गद्यकाल, संवत् 1900 - आज तक)

साहित्येतिहास का कालक्रमानुसार विभाजन तत्कालीन कृतियों की प्रव त्ति विशेष के अनुसार किया गया है। ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि एक निश्चित तिथि के पश्चात् एक विशिष्ट प्रकार के साहित्य का स जन समाप्त या प्रारम्भ हो जाता है क्योंकि साहित्य स जन में काल सीमा का कोई बंधन नहीं है। किसी विशिष्ट काल में भी अन्य प्रकार के साहित्य का भी स जन होता रहता है। आधुनिक काल में गद्य-पद्य साहित्य की रचना समानांतर रूप से चली आ रही है।

हिंदी साहित्येतिहास के आधुनिक काल की प्रमुख घटना गद्य का आविर्भाव है। इसी को द ष्टिगत रखते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल को गद्य काल नाम दिया है और इस काल का प्रारम्भ संवत् 1900 विक्रमी स्वीकारा है।

आधुनिक काल से पूर्व गद्य का विकास

संवत् 1900 वि. से पूर्व गद्य अपने विभिन्न रूपों में हिंदी साहित्य में पदार्पण कर चुका था। यद्यपि शुक्ल ने गद्य साहित्य का आविर्भाव संवत् 1913 में राजा शिव प्रसाद के शिक्षा विभाग में निरीक्षक पद पर नियुक्ति से माना है। राजा शिव प्रसाद ने स्वयं हिंदी रचना का बीड़ा उठाया तथा पंडित श्री लाल एवं पंडित वंशीधर आदि अपने इष्ट मित्रों को भी हिंदी में पुस्तक स जन की प्रेरणा दी। तत्कालीन साहित्य में 'राजा भोज का सपना', 'वीर सिंह का व त्तांत', 'आलसियों का कोड़ा' आदि उपयोगी कहानियों के अतिरिक्त "भारत वर्षीय इतिहास", "जीविका-परिपाटी" (अर्थशास्त्र) तथा "जगत व त्तांत" का विशेष महत्व है।

रीतिकाल की समाप्ति तक देश में आंग्ल राज्य पूर्ण रूपेण स्थापित हो चुका था जिसने अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार किया। चार्ल्स ग्रांट ने संवत 1858 वि. में ईस्ट इंडिया कंपनी के डायरेक्टरों के पास अंग्रेजी की शिक्षा द्वारा भारतीयों को शिक्षित करने हेतु प्रस्ताव प्रेषित किया था। कोलकात्ता में हिंदू कॉलेज की स्थापना उसी की एक कड़ी है। लार्ड मैकाले ने संवत् 1883 में अंग्रेजी के साथ-साथ देशभाषा द्वारा शिक्षा की संभावना को स्वीकारा। व्यावहारिक कठिनता के कारण सरकारी कार्यालयों में अंग्रेजी एवं देशी भाषा को फ़ारसी का स्थापन्न बनाया गया।

साहित्य की भाषा ब्रजभाषा ब्रज-मंडल के बाहर बोलचाल की भाषा नहीं थी। दिल्ली की खड़ी बोली शिष्ट-समुदाय की व्यावहारिक भाषा बन चुकी थी। खुसरो ने विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में ही ब्रजभाषा के साथ-साथ खड़ी बोली कुछ पद्य और पहेलियाँ बनाई थीं। फ़ारसी मिश्रित खड़ी बोली अर्थात् रेख़ता में शायरी का श्रीगणेश औरंगजेब के शासन काल में ही हो गया था। दिल्ली पतन के परिणामस्वरूप पूर्व में स्थित बड़े-बड़े शहरों के बाजार की व्यावहारिक भाषा का रूप में खड़ी

बोली ने ले लिया जो असली एवं स्वाभाविक भाषा थी। अकबर कालीन गंग कवि ने "चंद छंद बरनन की महिमा" की रचना खड़ी बोली में की। संवत् 1980 में जटमल ने 'गोराबादल की कथा' का स जन राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली में किया।

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने लिखा है-

"जिस समय अंग्रेजी राज्य भारत में प्रतिष्ठित हुआ, उस समय सारे उत्तरी भारत में खड़ी बोली व्यवहार की शिष्ट भाषा हो चुकी थी अंग्रेजों ने उर्दू को देश की स्वाभाविक भाषा और उसके साहित्य को देश का साहित्य नहीं स्वीकारा। इसीलिए देश की भाषा सीखने हेतु गद्य की खोज हुई। उर्दू के साथ-साथ हिंदी (शुद्ध खड़ी बोली) में गद्य रचना को प्रधानता दी गई क्योंकि उस समय तक वास्तव में गद्य की पुस्तकें न उर्दू में थीं न हिंदी में। कोलकात्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से पूर्व 'सुखसागर' (भागवत कथा का अनुवाद) - मुंशी सदासुख लाल, 'रानी केतकी की कहानी' - इंशा अल्ला खां की रचना हो चुकी थी। कुछ विद्वानों ने "रानी केतकी की कहानी" को हिंदी की प्रथम कहानी स्वीकारा है। इसलिए गद्य के प्रादुर्भाव को अंग्रेजी की प्रेरणा स्वरूप नहीं माना जा सकता है।

संवत् 1890 वि. में फोर्ट विलियम कॉलेज कोलकात्ता के अध्यक्ष जान गिलक्राइस्ट ने देशी भाषा (खड़ी बोली, गद्य की पुस्तकें तैयार कराने की व्यवस्था की जिसमें उर्दू-हिंदी दोनों का अलग-अलग प्रबंध किया। खड़ी बोली गद्य की नियमित प्रतिष्ठा करने का श्रेय - लल्लू लाल जी - प्रेम सागर, सदल मिश्र - नासिकेतोपाख्यान, मुंशी सदासुखलाल - सुखसागर तथा सैयद इंशा अल्ला खां - रानी केतकी की कहानी, चार महानुभावों को है।

फोर्ट विलियम कॉलेज से पूर्व हिंदी गद्य -

फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से पूर्व भी हिंदी गद्य अपना अस्तित्व स्थापित कर चुका था। संवत् 1400 वि. के ब्रज भाषा गद्य का रूप गोरखनाथ की वाणी, गोरखनाथ के पद तथा ज्ञान सिद्धांत जोग से मिलता है जिसे ब्रजभाषा गद्य का पुराना रूप कहा जा सकता है। गोसाईं गोकुल नाथ जी ने "चौरासी वैष्णवों की वार्ता" एवं "दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता" की रचना की। इनका रचना काल संवत् 1625-1650 वि. तक का है। इनकी भाषा बोलचाल की ब्रज भाषा है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- "भाषा-विप्लव नहीं संघटन हुआ और खड़ी बोली, जो कभी अलग और कभी ब्रजभाषा की गोद में दिखाई पड़ जाती थी, धीरे-धीरे व्यवहार की शिष्ट भाषा होकर गद्य के नए मैदान में दौड़ पड़ी।"

टीकाओं द्वारा गद्य की उन्नति की संभावना नहीं हुई। गद्य को एक साथ प्रतिष्ठापित करने वाले चारों लेखकों में आधुनिक हिंदी का पूर्ण आभास मुंशी सदासुख एवं सदलमिश्र की भाषा में उपलब्ध होता है। इनमें भी मुंशी सदासुख की भाषा अधिक महत्वपूर्ण है। आधुनिक गद्य के प्रतिष्ठापन का श्रेय मुंशी सदासुख लाल को है। किंतु यह परंपरा अपनी अखंडता नहीं बना पाई। यह परंपरा लगभग पचास वर्षों तक लुप्त रही। पुनः संवत् 1914 से हिंदी गद्य साहित्य की परंपरा का आरंभ हुआ। इससे पूर्व काल में ईसाई मत प्रचारकों ने विशुद्ध हिंदी का व्यवहार किया है। बाइबिल तथा नए धर्म नियम का अनुवाद केरे ने शुद्ध खड़ी बोली में किया है। इन्होंने सदासुख और लल्लू लाल की विशुद्ध भाषा को अपना आदर्श बनाया तथा उर्दूपन का पूर्ण बहिष्कार किया।

फोर्ट विलियम कॉलेज के पश्चात् हिंदी गद्य-

'सिरामपुर प्रेस' से संवत् 1893 में 'दाऊद के गीत' का प्रकाशन हआ। शिक्षा-संबंधी पुस्तकें छपने लगीं। अंग्रेजी शिक्षा हेतु स्कूल और कॉलेजों की स्थापना हुई जहां अंग्रेजी के साथ हिंदी-उर्दू की पढ़ाई की भी व्यवस्था की गई। संवत् 1900 से पूर्व ही ऐसी पुस्तकों की मांग हो चुकी थी जिसके परिणामस्वरूप संवत् 1890 में आगरा में पादरियों ने "स्कूल-बुक-सोसाइटी" की स्थापना की। जहां से "प्राचीन इतिहास" का अनुवाद "कथासार" के नाम से प्रकाशित हुआ। इसके अनुवादक पंडित रतन लाल थे।

आगरा 'स्कूल-सोसायटी' से संवत् 1897 में पंडित ओंकार भट्ट ने "भूगोलसार" तथा संवत् 1904 में पंडित बद्रीलाल शर्मा ने "रसायन प्रकाश" छापा।

कोलकाता की 'स्कूल-बुक-सोसायटी' ने संवत 1903 में 'पदार्थ विद्यासार' प्रकाशित किया। इलाहाबाद मिशन प्रेस से संवत् 1897 में 'आज़मगढ़ रीडर' प्रकाशित हुआ। संवत् 1912-1919 तक 'भूचरित्र दर्पण', 'भूगोल विद्या', 'मनोरंजक व त्तांत,' 'जंतु प्रबंध,' 'विद्यासार', 'विद्वान संग्रह' आदि का प्रकाशन शेरिंग ने किया। 'आसी' और 'जान' के भजन देशी ईसाइयों में बहुत प्रचलित हुए हैं। हिंदी-गद्य के प्रचार-प्रसार में ईसाइयों का अत्यधिक योगदान रहा है।

‘छापा खाना’ खुलने लगे जिसके परिणामस्वरूप लोगों का ध्यान सामयिक पत्रों की ओर आकृष्ट हुआ। कोलकाता से अंग्रेजी एवं बंगला के पत्रों का प्रकाशन आरंभ हुआ। देवनागरी लिपि में टूटी-फूटी चाल पर लिखी जाने वाली भाषा हिंदी कहलाई।

शिक्षा विभाग में नियुक्त होने से पूर्व राजा शिव प्रसाद सिंह का ध्यान हिंदी भाषा की ओर था। अन्य भाषाओं के समाचार पत्रों के प्रकाशन को द ष्टिगत रखते हुए उन्होंने संवत् 1902 में ‘बनारस अख़बार’ निकाला। संवत् 1907 में तारा मोहन मित्रादि ने “सुधाकर” नाम का दूसरा पत्र काशी से निकाला। संवत् 1909 में आगरा से किसी मुंशी सदासुखलाल ने “बुद्धि प्रकाश“ पत्र निकाला।

आधुनिक हिंदी साहित्येतिहास को गद्य काल भी कहा गया है। समय सीमा संवत 1900 से मानी गई है। जबकि गद्य का उद्भव और विकास इससे पूर्व हो चुका था। इसलिए यह विवेचन विषय से पूर्व अनिवार्य था।

2. आधुनिक हिंदी साहित्येतिहास के अध्ययन की पूर्व पीठिका:परिवेश

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की मुख्य घटना साहित्य में गद्य का आविर्भाव है। वीरगाथा काल, भक्ति काल एवं रीति काल के काव्य की भाषा क्रमशः डिंगल-पिंगल, अवधि-ब्रज थी जो पद्यात्मक थी। साहित्य की दो प्रमुख धाराएं पद्य एवं गद्य हैं। गद्य आधुनिक काल की देन है जो अपने साथ खड़ी बोली गद्य को साहित्यिक, परिनिष्ठित, मानक एवं सर्वसुलभ हिंदी के रूप में लेकर आया। आधुनिक काल में गद्य-पद्य का समानांतर विकास हुआ। यह काल उत्थान-पतन, विप्लव-क्रांति - स जन, युद्ध-शांति, विनाश-निर्माण प्रधान रहा है जिसके परिणामस्वरूप आधुनिक काल का साहित्य नव चेतना - नवीन द ष्टिकोण, संत्रास-कुंठा, शोषक-शोषित, पूंजीपति-श्रमहारा, ज्ञान-विज्ञान, आध्यात्मिकता-भौतिकता, धर्म-राजनीति का प्रतिनिधित्व करता है। साहित्यिक-वैविध्य की उत्तरदायी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक या धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियां हैं। इन परिस्थितियों की जन्मदात्री अंग्रेजों की तत्कालीन सत्ता थी जिसने स्वाभाविक रूप से भारतीयों में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष क्रांति एवं विद्रोह की भावना जाग त करके पुनर्जागरण की दिशा की ओर अग्रसर किया।

(क) **परिवेश**- साहित्य-परिवेश समाज का दर्पण है। समाज की परिवेशजन्य परिस्थितियां साहित्य स जन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं जिनसे प्रभावित होकर ही साहित्यकार साहित्यिक क्षेत्र में आधुनिक नवीन सोच एवं नव्य द ष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है। समाज का परिवेश निर्माण करने में राजनीति, समाज, अर्थ, संस्कृति या धर्म एवं साहित्य का विशेष योगदान होता है जो साहित्य स जन में पूर्व पीठिका स्वरूप उपस्थित होता है-

(i) **राजनीतिकः-** किसी काल के साहित्य में नवीन प्रव त्तियों का जन्म चमत्कारिक घटना के परिणामस्वरूप अचानक नहीं होता है अपितु कुछ समय पूर्व उसका बीजवपन हो जाता है जो अत्यधिक गहराई में पड़ा रहता है। अनुकूल वातावरण एवं प्राकृतिक संरक्षण में पोषण प्राप्त कर अंकुरित एवं पल्लवित होता है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में नवयुग की चेतना का विकास अति महत्वपूर्ण घटना है। इसका बीज इसी काल के राजनीतिक परिवेश की देन है।

प्रथम काल- प्लासी युद्ध ने अंग्रेजों की नींव भारत में सुद ढ़ कर दी। शनैः शनैः ईस्ट इंडिया कंपनी ने संपूर्ण भारत पर अपनी सत्ता जमा ली। कंपनी का प्रभुत्व बढ़ने के साथ-साथ उसके अधिकारी अपना अत्याचार उत्तरोत्तर बढ़ाने लगे। भारतीयों में असंतोष, क्षोभ, विद्रोह, संत्रास एवं कुंठा की लहर दौड़ गई। कंपनी के अधिकारियों ने देशी राजाओं को अपने में मिलाने हेतु कुटिल 'लैप्स नीति' को अपनाया जो बड़ी घातक सिद्ध हुई। सन् 1858 में झांसी को 'लैप्स नीति' के आधार पर कंपनी ने अपने शासन में मिला लिया जिसके परिणामस्वरूप देश में प्रजा एवं देशी राजा दोनों ही कंपनी के अत्याचारी शासन से घबरा गए। इंडियन नेशनल कांग्रेस ने भारतीयों के राजनीतिक परिवेश को और अधिक विकास प्रदान किया। कांग्रेस ने जनता के समक्ष कुछ निश्चित राजनीतिक सिद्धान्त प्रस्तुत किए जिनकी प्राप्ति के लिए भारतीयों में अपार उत्साह की भावना जग गई। इटली के 'स्वतन्त्रता युद्ध', आयरलैंड के 'होमरूल' आंदोलन तथा फ्रांस की 'राज्यक्रांति' के इतिहास ने जनता की विरोधी भावना को अत्यधिक भड़काया एवं अनेक उत्साही युवकों ने हिंसात्मक उपायों से अंग्रेजी राज्य को समाप्त करने की प्रबल इच्छाएं व्यक्त की। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में नवयुग की इस राजनीतिक चेतना का प्रभाव भारतेंदु-युग पर स्पष्ट रूपेण परिलक्षित होता है।

द्वितीय काल- यह काल सन् 1905 से आरम्भ होता है। कांग्रेस ने आवेदन एवं प्रार्थना की नरम नीति का परित्याग कर उसने "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है" की घोषणा कर दी। इसी समय कांग्रेस में गरम एवं नरम दो दल हो गए। कर्जन की बंगाल-विभाजन की भारत विरोधी नीति से राष्ट्रीय भावनाओं से आपूरित भारतीयों की आंखें खुल गई थीं और वे अंग्रेजों को अति संदेह की द ष्टि से देखने लगे थे। इस युग में भारतीय राजनीति का

आधार मानवतावाद कहा गया। देश के असंतोष को शांत करने के लिए अंग्रेजी शासकों ने समय-समय पर शासन-प्रणाली में सुधार किए। सन् 1909 ई. में मार्ले-मिंटो-सुधार कानून पास हुआ, इसने मुसलमानों को अलग प्रतिनिधित्व दिया जिससे हिंदु-मुस्लिम एकता को बड़ी ठेस पहुंची। अत्यधिक प्रयत्नोपरांत सन् 1926 में हिंदु-मुस्लिम समझौता हो सका और श्रीमती एनीबेसेंट के प्रयत्न से कांग्रेस के दोनों दलों में भी एकता स्थापित हो गई। किंतु इसी बीच यूरोप में प्रथम महायुद्ध छिड़ गया। भारतीयों ने तन-मन से अंग्रेजों की सहायता की किंतु युद्ध की समाप्ति के बाद अंग्रेज अपने वायदे से मुकर गए, उल्टे रौलट ऐक्ट (1919) के द्वारा भारतीय जनता से स्वतंत्रता के अधिकार छीन लिए। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के इतिहास में राजनीतिक परिवेश के द्वितीय उत्थान का यह समय द्विवेदी युग या सुधार काल के नाम से अभिहित है।

त तीय काल- त तीय काल प्रथम महायुद्ध की समाप्ति से आरंभ होता है। महायुद्ध के बाद भीषण जनसंहार के कारण मानवचित्त उद्वेलित हो रहा था तथा भारतीयों पर अंग्रेजों ने "रौलट एक्ट" की दमन नीति के द्वारा अति कठोर आघात किया। एक ओर सुधार का ढोंग था और दूसरी ओर घोर दमन की अत्याचारपूर्ण नीति, जिसका भारत की सभी जातियों ने विरोध किया। सन् 1920 ई. में तिलक के देहावसान से कांग्रेस का नेत त्व पूर्णरूपेण गांधी जी के हाथों में आ गया था। राजनीतिक चेतना का त तीय उत्थान ग्राम-उद्धार एवं मध्य वर्ग के विकास के रूप में देखा जा सकता है। गांधी जी ने अहिंसा को स्वतन्त्रता प्राप्ति का लक्ष्य बनाया जिसका मुख्य आधार असहयोग एवं ग्रामोद्धार था। गांधी की संपूर्ण शक्ति रचनात्मक कार्यो में लग रही थी। अन्य राजनीतिक अपने विचारों से बुद्धिजीवी वर्ग में देश भक्ति की भावना जाग त करने में लगे हुए थे। शनैः शनैः कांग्रेस पार्टी ने भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य के स्थान पर पूर्ण स्वराज्य की मांग की। कांग्रेस पार्टी के राजनीतिक कार्यो से जनता में राष्ट्रीयता की भावना का उत्तरोत्तर विकास हुआ। असहयोग के दो रूप थे, एक तो विदेशी शासकों के साथ असहयोग एवं विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार। मुख्य रूप से विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार हुआ। विदेशी वस्त्रों की होली जली। खादी राष्ट्रीय भावना का प्रतीक बन गई। गांधी जी ने स्वतंत्रता संग्राम में मानवतावाद को प्रमुख स्थान दिया। गांधी जी की मानवतावादी भावना के अहिंसा, सत्याग्रह, राजनीतिक समानता, अछूतोद्धार, हिंदू-मुस्लिम एकता, धार्मिक समन्वय, ग्रामोद्धार, जमींदारी उन्मूलन आदि अनेक रूप हैं। गांधी जी के उपर्युक्त कार्यो में निश्चित रूप से रचनात्मक आंदोलन का अति सुष्ठु स्वरूप द ष्टिगोचर होता है। इनमें से हरिजन आंदोलन, जमींदारी प्रथा का विरोध एवं अत्याचारों के विरुद्ध सत्याग्रह आदि राष्ट्रीय एकता एवं देशव्यापी राजनीतिक चेतना में विशेष सहायक सिद्ध हुए। इसी युग में रवींद्रनाथ टैगोर ने मानवतावाद का प्रचार अपने साहित्य द्वारा किया। उन्होंने अंतर्राष्ट्रीयता, विश्व संस्कृति, आध्यात्मिकता आदि का प्रचार किया। इस काल में गांधी एवं रवींद्रनाथ टैगोर का विशेष योगदान रहा, जिन्होंने युगीन विचारधारा को अति व्यापक रूप से प्रभावित किया।

चतुर्थ काल- चतुर्थ काल का आरंभ द्वितीय महायुद्ध से होता है। स्वतन्त्रता संग्राम अपने चरम रूप में था विश्व के अन्य राष्ट्रों का भी समर्थन मिल रहा था। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति पर पूर्ण स्वतन्त्रता मिलने की आशा बलवती होती जा रही थी। पूंजीवाद में व द्धि हो रही थी जिससे जनता अत्यधिक असंतुष्ट हो रही थी। स्वतन्त्रता आंदोलन के स्वरूप में पर्याप्त बदलाव आ गया था। राजनीतिक परिस्थितियां भी बदल गई थीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु हिंदु-मुसलमानों में समझौता होना था। सन् 1945 में ब्रिटेन में उदार दल की सरकार बनी जिसको भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन के साथ पूर्ण सहानुभूति थी। शनैः शनैः भौतिकता के विकास के साथ ही देश के जीवन में अति शुष्कता आ गई थी। इस काल की राजनीतिक चेतना का एक अति महत्वपूर्ण तथ्य समाजवादी विचारधारा का विकास है। पूंजीवाद वर्ग-संघर्ष को बढ़ावा दे रहा था। भारतवर्ष में आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न वर्ग-संघर्ष में मार्क्सवादी विचारधारा को विशेष बढ़ावा मिला। इसका मुख्य कारण स्वतन्त्रता आंदोलन के लिए विशेषकर राजनीतिक अन्यायों का विरोध करने के लिए अपनाए गए सत्याग्रह और हड़तालों द्वारा जाग त मजदूरों एवं कृषक वर्ग की चैतन्यता थी। उस काल की विचारधारा पर इन सबका अत्यधिक प्रभाव पड़ा। शनैः शनैः भारत स्वतन्त्र होकर गणतंत्र बन गया।

पंचम काल- गणतंत्रता प्राप्ति के साथ ही हमारे देश में राजनीतिक परिवेश का पंचम काल आ जाता है। राजनीतिक विद्रोही भावना समाप्त हो गई। राष्ट्रीय एकता का अंतर्राष्ट्रीयता में विकास हो गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति

ने भारतीयों के द ष्टिकोण को व्यापकता प्रदान की और उन्होंने विश्व के अन्य दासता में जकड़े हुए लोगों के प्रति सहानुभूति का द ष्टिकोण अपनाया। आंतरिक संघर्ष से अवकाश प्राप्त कर भारतीय राजनीतिज्ञों ने विश्व के अन्य राष्ट्रों से संपर्क बढ़ाया तथा सह अस्तित्व के सिद्धांत को विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया। इसलिए भारत का स्थान विश्व के अन्य राष्ट्रों में विशिष्टता में आ गया। विश्व शांति एवं पंचशील नीति के लिए प्रशंसा का पात्र बन गया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक काल के राजनीतिक परिवेश में कितना परिवर्तन आया है।

(ii) **सामाजिक**

देश सामाजिक क्षेत्र में लगभग पुनर्नवा रूप धारण करने हेतु प्रयत्नशील था। समाज में व्याप्त पाखंड, आडंबर एवं अंधविश्वासों को सुधारवादी नेता समाप्त करने के प्रति सजग हो गए थे। पुरातनवादी इसका विरोध कर रहे थे। ब्रह्म समाज, आर्य समाज जैसी संस्थाओं का बंगाल, महाराष्ट्र, पंजाब, गुजरात आदि में विरोध किया गया। किंतु पुनर्जागरण की चेतना तीव्रता के सम्मुख छोटे छोटे विरोध धराशायी होते गए। देश ने सामाजिक क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति की। हरिजनोद्धार, स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह आदि अनेक सामाजिक सुधार हुए। स्त्री शोषण, दहेज प्रथा का विरोध हुआ। जाति-प्रथा की कट्टरता में ढिलाई, अंतर्जातीय-विवाह आदि अनेक सामाजिक सुधार किए गए। शिक्षा का व्यापक प्रसार किया। निरक्षरता का साक्षरता में परिवर्तन हुआ। पश्चिमी सभ्यता, उच्च शिक्षा एवं भौतिकतावादी द ष्टिकोण ने समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं।

भारत में अंग्रेजी शासन एक महत्वपूर्ण घटना है। भारत के सामाजिक जीवन में आधुनिक काल में जो चेतना आई उसका मुख्य कारण भारतीय स्वतन्त्रता एवं आंग्ल-भारतीय संपर्क है। सामाजिक क्षेत्र की परंपराओं एवं रूढ़ियों पर आंग्ल संपर्क ने आघात किया और भारतीय द ष्टिकोण में व्यापकता आई। अंग्रेजी-शिक्षा का प्रभाव भारतीय द ष्टिकोण में परिवर्तन करने में सहायक हुआ है। नैतिकता का ह्रास हुआ है। मध्यकालीन हिंदू धर्म की कट्टरता शनैः शनैः दूर होने लगी है। वैसे ही मुगलों के पतन के साथ ही हिंदू धर्म की स्थिति द ढ़ एवं सुरक्षित हो रही थी। ऐसे समय में आर्य समाज की स्थापना करने वाले स्वामी दयानंद सरस्वती का आगमन हुआ उन्होंने हिन्दू धर्म की अनुदारता एवं कट्टरपन को दूर करने के लिए बहुत बड़ी क्रांति उपस्थित की। आर्य समाज के आंदोलन ने हिंदू समाज को जाग त किया। अन्यथा हिंदू समाज बहुत पिछड़ जाता और निश्चय ही दुर्बल हो जाता। पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण विदेशी सरकार की कृपा प्राप्त करने हेतु ईसाई धर्म को मानने से आर्य समाज ने भारतीयों को बचाया। आर्य समाज ईसाई धर्म आंदोलन के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप आया। पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव पश्चिमी बंगाल से होता हुआ संपूर्ण देश के जीवन को आच्छादित कर रहा था। अंग्रेजी शिक्षा इस विकास में विशेष सहयोगी सिद्ध हो रही थी। प्राचीन वैदिक प्रेरणा लेकर स्वामी दयानंद ने सामाजिक क्षेत्र में अपूर्व क्रांति की। सामाजिक रूढ़ियों का तिरस्कार करने के परिणामस्वरूप सामाजिक जीवन का मूल्य बदल गया। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के प्रथम उत्थान अर्थात् भारतेन्तु युग या पुनर्जागरण काल में सामाजिक द्वन्द्व का स्वरूप व्यक्त हुआ। एक ओर विधवा विवाह के पक्षपाती थे तो दूसरी ओर इसे 'अनहोनी' कहने वाले भी वर्तमान थे। इसी प्रकार एक ओर जाति-पांति के विरोधी थे दूसरी ओर इसे 'जगत विदित फुलवारी' को निर्मूल करने की प्रबल धारणा वाले पक्षपाती। इन दोनों धाराओं के मध्य एक धारा उन विचारकों की थी जो प्रत्येक कल्याणकारी सामाजिक आंदोलन की प्रशंसा करने से नहीं चूकते थे।

तत्कालीन सामाजिक दोषों जैसे धार्मिक विवाद, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, जाति-पांति, अंधविश्वास, समुद्रयात्रा निषेध, स्त्री शिक्षा-निषेध, जाति बहिष्कार आदि के प्रति इनकी आंखे खुली रहती थी और वे इन समस्याओं का समाधान प्राप्त करने हेतु प्रयत्नशील रहते थे। आर्य समाज के पक्षपाती विचारकों ने कुछ अति भी की और सभी प्राचीन परंपराओं एवं रूढ़ियों को 'पोप लीला' के अंतर्गत स्वीकारते हुए उनकी कटु आलोचना की जिसके शब्दाडंबर में उनकी सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप अति धूमिल हो गया। किंतु जब ये विचारक निष्फल वाद-विवाद को त्यागकर समाज-सुधार एवं देशोद्धार की सक्रिय योजना प्रस्तुत करते हैं तब इनके सदुद्देश्य की प्रशंसा करनी ही पड़ती है। भारतेंदु युग में सामाजिक क्षेत्र में अत्यधिक परिवर्तन उपस्थित हुआ। जिससे सामाजिक परिस्थिति में अत्यधिक अशांति आई।

सन् 1900-1918 तक हिंदी साहित्य आधुनिक काल के द्वितीय उत्थान अर्थात् द्विवेदी युग या जागरण-सुधार-काल में सामाजिक क्षेत्र की अशांति दूर हो गई और नवीन व्यापक द ष्टिकोण जीवन के नवीन-मूल्य के रूप में स्थापित हो गया। यही कारण है कि इस युग में पूर्व युग के वाद-विवाद, आलोचना-प्रत्यालोचना का प्रायः अभाव है। इस युग के विचारकों ने समाज सुधार की आवश्यकता को बहुत महत्व दिया और बड़े शांत चित्त से सामाजिक कुरीतियों के निराकरण के सुझाव प्रस्तुत किए। स्त्री-शिक्षा सामान्य हो गई। बालविधवाओं के प्रति व्यापक सहानुभूति द ष्टिगोचर होती है। बालविधवाओं के शाप में सामाजिक अद्यःपतन का कारण खोजना इस सहानुभूति पूर्ण द ष्टिकोण का परिचायक है। अछूतोद्धार के प्रति सद्व्यवहार हृदय की विशालता, दहेज की कुप्रथा को दूर करने का प्रयत्न इस युग के समाज सुधारकों में विशेष रूप से द ष्टिगोचर होता है। पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण का विरोध इस युग में भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसके साथ ही इस युग में नवीन प्रव त्ति के दर्शन होते हैं। यह प्रव त्ति मानवतावाद की है। पूंजीवाद की बढ़ोत्तरी से उत्पन्न वर्ग-संघर्ष तथा स्त्री-दुर्दशा, दहेज-प्रथा से उत्पन्न क्षोभ की परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया स्वरूप लोगों को जनवादी विचारों का महत्व ज्ञात हुआ। वास्तव में सामन्तशाही के विनाश एवं देशी राजाओं के पतन के कारण सामाजिक व्यवस्था बदल गई थी। इसके अतिरिक्त राजनीतिक क्षेत्र में भी मध्यवर्ग का सहयोग अति महत्वपूर्ण प्रतीत होता रहा था। इस कारण इस युग के विचारकों में मानवता के प्रति विस्त त द ष्टिकोण का प्रादुर्भाव हुआ। देश के महान विचारकों ने निर्धन और शोषित समाज के प्रति संवेदना और नारी स्थिति के प्रति करुणा व्यक्त की, उसके 'आंचल में दूध और आंखों में पानी' वाली स्थिति का चित्रण करके सहानुभूति एवं उच्च भावना की अभिव्यक्ति हुई है।

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के त तीय उत्थान अर्थात् छायावाद काल सन् 1918-1938 ई. तक सामाजिक क्षेत्र में और अधिक विकास हुआ और मानवतावादी द ष्टिकोण का महत्व बढ़ा। वस्तुतः राजनीति में मानवतावाद को आधार बनाया गया इसलिए इसकी मान्यता अधिक बढ़ गई। राजनीतिक स्वतन्त्रता - आंदोलन सामान्य जन समुदाय को साथ लेकर चला। इस समय तक अंग्रेजी-शिक्षा का प्रचार-प्रसार बहुत विस्त त एवं व्यापक हो चुका था। इसलिए महान विचारक व्यापक द ष्टिकोण से सामाजिक अवस्था पर चिंतन मनन करने लगे थे। गांधी जी की संपूर्ण क्रियात्मक योजनाएं सामाजिक उत्थान के लिए अत्यधिक शक्तिशाली सिद्ध हुई। गांधी जी की मानवतावादी भावना ने निम्न स्तर के लोगों की सामाजिक स्थिति में अत्यधिक परिवर्तन किया। उनकी मानवतावादी भावना के कई रूप मिलते हैं। शनैः शनैः पश्चिमी संस्कृति के विरोध में और भारतीय संस्कृति के प्रतीक स्वरूप खादी भी उच्च सामाजिक भावनाओं का प्रतीक बन गई। आर्य समाज के आधार पर वैदिक युग का पुनरुत्थान भी इस युग में द ष्टिगोचर होता है। वैदिक उत्थान काल में इसीलिए आध्यात्मिक भावना का भी विकास हुआ और मानवता की सेवा और उसके द्वारा ईश्वर प्राप्ति की भावना पर जोर दिया गया। इसीलिए औद्योगिकता का विरोध किया। यंत्र में वे मानव शोषण की झलक पाते हैं, किसानों की दीनता का उनके जीवन पर अति व्यापक प्रभाव पड़ा था तथा इस महान शाप का निराकरण करने हेतु वे कृषक-वर्ग की जाग ति के महान समर्थक थे। जाति-पांति तथा अछूतों के प्रति अत्याचार से उनका हृदय चूर-चूर हो रहा था तथा इन सब में अछूतों को भगवान के मंदिरों से दूर करने की प्रव त्ति उन्हें घोर नास्तिकता एवं मूढ़ता की प्रतीति कराती थी इसलिए उन्होंने आध्यात्मिकता के महत्व का प्रतिपादन किया है।

इस युग के दूसरे महान विचारक, समाज सुधारक एवं मानवतावाद के समर्थक विश्व कवि रवींद्रनाथ टैगोर हुए। इनकी कविता में मानवतावाद अति व्यापक रूप में व्यक्त हुआ है जिसने उन्हें विश्व कवि का स्थान दिलाया। उनकी मानवतावाद के प्रमुख रूप विश्व संस्कृति, आध्यात्मिकता, अंतर्राष्ट्रीयता, मानव दुख निवारण तथा जाति-पांति का भेद मिटाने की तत्परता आदि हैं। ब्रह्म समाज को स्थिरता प्रदान करने में उन्होंने अत्यधिक सहयोग दिया। उन पर पश्चिम के मानवतावाद के आदर्श का व्यापक प्रभाव था और उन्होंने मानव को समग्र मानव समाज के रूप में देखा। ब्रह्म समाज के द्वारा उन्होंने बंगाल के रूढ़िग्रस्त सामाजिक संगठन में स्वच्छता का संचार किया और सामाजिक व्यवस्था को नवयुग की चेतना से उचित रूप से आत्मसात करने योग्य बनाया। रवींद्रनाथ टैगोर पर विवेकानंद का गहरा प्रभाव था। उनकी मानवता की उपासना में विवेकानंद के दर्शन का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। उन्होंने दुख को मानवता की एकसूत्रता के मूलमंत्र के रूप में स्वीकारते हुए उसे साधनात्मक रूप दिया है। उनके हृदय की करुण भावनाएं सामाजिक जाग ति को द ष्टिगत रखते हुए व्यक्त हुई हैं। मानवता का विकास

इन सबका एकमात्र लक्ष्य है, आधार विश्व शांति है जिसे अंतर्राष्ट्रीयता की भावना के विकसित होने पर ही प्राप्त किया जा सकता है।

योगिराज अरविंद इस युग की विचारधारा को प्रभावित करने वाले तीसरे महान व्यक्ति हैं। श्री अरविंद मानव जाति के विकास के लिए ही योग साधना या विचार साधना करने में तत्पर थे। उनका जीवन मानव सेवा में समर्पित था। उनके मानवतावाद में अध्यात्मवाद की उच्च अनुभूति का सम्मिश्रण था और उनका साधनात्मक जीवन और इच्छा शक्ति की द ढ़ता मानव को पूर्ण मानव बनाने में संलग्न थी।

इस युग में सामाजिक व्यवस्था हेतु अति ठोस परिवर्तन हो रहे थे तथा उनका प्रभाव समाज के साथ-साथ साहित्य पर भी पड़ रहा था। उपर्युक्त सामाजिक अवस्था में और भारतेन्दु युग या द्विवेदी की सामाजिक अवस्था में पर्याप्त अंतर है। भारतेंदु युग में नवयुग की चेतना का विकास हुआ और सामाजिक अवस्था में परिवर्तन की पुकार से अत्यधिक अशांति का वातावरण उपस्थित हो गया, द्विवेदी युग में यह अशांति शांति में बदल गई। समाज सुधारक सामाजिक कुरीतियों और रूढ़ियों का खंडन करने के साथ-साथ सामाजिक समस्याओं का समाधान प्राप्त करने हेतु ठोस विचार एवं सुझाव प्रस्तुत करने लगे। शनैः शनैः मानवतावादी भावनाओं का विकास हो रहा था। किंतु हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के त तीय उत्थान अर्थात् छायावाद में सामाजिक अवस्था का मुख्य रूप मानवतावादी भावनाओं में केन्द्रित हो गया था और सामाजिक कुरीतियों के निवारण हेतु कुछ ठोस रूप द ष्टिगोचर हुए जैसे सन् 1929 में "शारदा ऐक्ट" द्वारा बाल-विवाह का निषेध हुआ, सन् 1935 में "गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट" द्वारा अछूतों को मताधिकार प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त विधवा-विवाह आदि के संबंध में भी कानून पारित किए गए। नर-नारी की समानता, एक विवाह, विधवा-विवाह आदि की भावना का विकास पश्चिमी विचारधारा का प्रभाव है। जनसंख्या निरोध के लिए 'हम दो हमारे दो' से 'हम दो हमारे एक' 'लड़का-लड़की एक समान' गर्भपात अवैध एवं लिंग पता लगाना दंडनीय अपराध घोषित हुए।

बेकारी की समस्या दिन प्रतिदिन गहन होती गई। आंतरिक परिस्थितियों के अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का प्रभाव स्वाभाविक रूप से समाज पर पड़ने लगा था। द्वितीय महायुद्ध की भयंकरता ने जीवन को अति कटु बना दिया। गहरी निराशा की भावना ने सामाजिक जनजीवन को आच्छादित कर लिया। सन् 1938-1946 तक का काल भयानक हलचल का समय था।

सन् 1946 से आज तक का समय स्वतंत्र्योत्तर काल है। इसमें सामाजिक सुधार हुआ। इस काल की सामाजिक अवस्था के विषय में संक्षेप में कह सकते हैं कि जाति-पांति के भेदभाव की भावना का कानून द्वारा निवारण किया गया। स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में सुधार किया गया। भारतीय शासन में उन्हें स्थान दिया गया। पंचायत चुनावों में आरक्षण प्राप्त हुआ। जमींदारी प्रथा का उन्मूलन कर कृषक वर्ग को शोषण से मुक्ति दिलाई गई। श्रमिक की अवस्था में सुधार तथा उनके जीवन की सुरक्षा को महत्व प्रदान किया गया। उद्योग में भागीदारी तथा सामूहिक बीमा की सुविधा प्रदान की गई।

अंतर्राष्ट्रीयता की भावना को प्रमुखता तथा विश्वबंधुत्व की स्थापना, विश्व शांति का प्रयास हुआ। नागरिक अधिकारों में सुधार किया। दोहरी नागरिकता की सुविधा मिली। समाजवादी शासन की स्थापना का प्रयत्न किया। पंच-वर्षीय योजनाआं के द्वारा देश निर्माण आदि की सामाजिक अवस्थाएं अस्तित्व में आई।

(iii) **आर्थिक**

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में देश की जनता में अंग्रेजी राज्य के प्रति राजभक्ति दिखाने और उनसे सुधार की प्रार्थना करने की प्रव त्ति थी। पर अंग्रेजी शासन में इससे कोई अंतर नहीं आया और उनकी अत्याचारपूर्ण नीति, में यंत्रों के विकास के साथ ही आर्थिक शोषण और टैक्सों का एक नया अध्याय और जोड़ दिया गया।

सामाजिक क्षेत्र में आर्थिक परिस्थिति का प्रभाव अधिक मुखरित हुआ। वर्ग संघर्ष की बढ़ती भावना ने मार्क्सवादी विचारधारा को बढ़ावा दिया। देश के आर्थिक शोषण से अनेक कठिनाईयां उपस्थित हुईं।

प्रथम उत्थान- राजनीतिक एवं सामाजिक परिवेश के मूल में देश-जनता की आर्थिक अवस्था विद्यमान रहती है। सन् 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध के बाद शासन में परिवर्तन हुआ तथा यह आशा जगी कि देश की आर्थिक

अवस्था सुधरेगी। प्रारंभ में अंग्रेजी सरकार ने भारतीय औद्योगिक विकास में रूचि नहीं दिखलाई जिसके परिणामस्वरूप भारतीय संपदा विदेश जाने लगी। प्रथम उत्थान के चिंतकों के लिए यह चिंता का विषय बन गया। अंग्रेजी माल की खपत हेतु सरकार ने कुछ कर भी निश्चित किए। भारतीय कपड़े पर कर का बोझ लादकर अपनी हित साधना में लग गए। शनैः शनैः भारत के बाजारों में विदेशी वस्तुएं भारी मात्रा में द ष्टिगोचर होने लगीं। विदेशी वस्तुओं का प्रचार-प्रसार बढ़ने लगा जिसके परिणामस्वरूप भारतीय उद्योग धंधों की स्थिति दिन प्रतिदिन गिरती चली गई। राष्ट्रीय चिंतक विदेशी वस्तुओं को ही अपनी आर्थिक अवनति का कारण समझ कर विदेशी वस्तुओं का विरोध करने लगे। परिणाम यह हुआ कि महंगाई, अकाल, टैक्स, एवं दरिद्रता आदि प्रथम युग की मुख्य आर्थिक समस्याएं बन गईं। राजनीतिक चेतना को जन्म देने वाली 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' ने भी अपने आदर्शों में आर्थिक स्वतन्त्रता की मांग को समाविष्ट किया।

द्वितीय उत्थान- द्वितीय उत्थान में आते-आते आर्थिक स्वतन्त्रता एवं आर्थिक राष्ट्रीयता का आदर्श राजनीति में महत्वपूर्ण आधार स्वरूप सम्मिलित किया गया। आर्थिक भावना ने कांग्रेस आंदोलन को अधिकाधिक प्रेरित किया। कृषकों की आर्थिक विपन्नता तथा जमींदारों के अत्याचारों ने आंदोलन के आर्थिक पक्ष को और भी अधिक द ढ़ता प्रदान की। भारत वर्ष कृषि प्रधान देश है। इसलिए कृषकों पर माल-गुजारी का भार डालकर और जमींदारों के अत्याचारों को बढ़ावा देकर अंग्रेज सरकार ने उनको अत्यधिक दरिद्रता के गर्त में धकेल दिया। कृषकों के ग ह उद्योग धंधों का विनाश कर दिया। प्रथम महायुद्ध तक भारतीय यह आशा लगाए बैठे थे कि अंग्रेज भारतीय उद्योग धंधों को नवीन रूप प्रदान करेंगे किंतु ऐसा नहीं हुआ। उनकी आशाओं पर पानी फिर गया। यह निश्चय हो गया कि सरकार भारत का औद्योगिक विकास नहीं करना चाहती है क्योंकि उसे कच्चा माल एवं तैयार माल के लिए भारत जैसा बाजार चाहिए। ऐसा निश्चय करते ही कांग्रेसी उग्रपंथियों ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का मार्ग अपनाया। भारतीय पूंजीपतियों का इसमें अपूर्व सहयोग मिला।

त तीय उत्थान- द्वितीय महायुद्ध के बाद अंग्रेजी अर्थ-नीति में परिवर्तन परिलक्षित होने लगा। इसका कारण यह था कि अंग्रेज इस तथ्य से पूर्ण अवगत हो गए थे कि भारत के प्राकृतिक साधनों का विकास करने में उनके साम्राज्यवादी हितों को बढ़ावा मिलता है। युद्ध काल में ही वे ऐसा अनुभव करने लगे थे। युद्ध काल एवं उसके बाद से ही भारत की औद्योगिक उन्नति की ओर सरकार का विशेष ध्यान गया। परिणाम यह हुआ कि शोषण की प्रक्रिया में भी तीव्र गति से बढ़ोत्तरी हुई। सरकार ने मात्र उन्हीं उद्योग-धंधों पर ध्यान दिया जिसमें उनकी पूंजी लगी थी। शनैः शनैः भारत में पूंजीवाद की जड़ें गहरी होती गई और भारतीय उद्योग धंधे चल पड़े। अंग्रेजों की व्यापार नीति से प्रभावित भारतीय पूंजीपतियों ने भी स्वतन्त्रता आंदोलन की अग्नि में घी डालना प्रारंभ कर दिया। यांत्रिक विकास प्रक्रिया ने बेकारी को जन्म दिया जो विकराल समस्या का रूप धारण कर उपस्थित हुई। वर्ग संघर्ष बढ़ने लगा क्योंकि मध्य वर्ग एवं मजदूरों में राजनीतिक चेतना का उदय हो चुका था। चतुर्थ उत्थान तक आते आते इस वर्ग-संघर्ष ने अपना प्रबल रूप प्रदर्शित कर दिया। परिणामस्वरूप बेरोजगारी, महंगाई, देशव्यापी दरिद्रता की समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया। कुछ लोगों के पास पूंजी का अंबार लगने लगा। आर्थिक ढांचा चरमरा गया। पूंजीवाद ने मानव समाज में शुद्ध आर्थिक संबंधों की स्थापना की जिससे श्रमिक वर्ग की चेतना का आधार भी शुद्ध आर्थिक अर्थात् स्वार्थमय हो गया वे अपने संगठन को द ढ़ता प्रदान करने हेतु एक जुट हो गए। शनैः शनैः युग विचारकों एवं चिंतकों का ध्यान यथार्थ की कठोर परिस्थितियों एवं निम्न वर्ग की करुण-दशा ने पूर्ण रूपेण अपने पर केन्द्रित कर लिया। वर्ग-संघर्ष से व्यापक जाग ति आई। दलित वर्ग विद्रोही बन गया। आर्थिक संबंधों में कल्पना और भावना का स्थान समाप्त हो गया। यथार्थ ने उनका स्थान ग्रहण कर लिया।

गणतंत्र भारत में आर्थिक परिस्थिति में पूर्ण परिवर्तन आया। श्रमिकों, कृषकों एवं दलितों की आर्थिक स्थिति में सुधार आया। सभी को रोटी, कपड़ा एवं मकान की सुविधा प्रदान की जाने लगी। पंचवर्षीय योजनाआं के द्वारा देश की आर्थिक स्थिति सुधारने के प्रशंसनीय प्रयत्न किए गए जो वर्तमान काल में भी चल रहे हैं। इनके परिणाम स्वरूप शिक्षा, यातायात के साधनों, परिवहन की सुविधा, पेय चल, प्रकाश, कृषि, स्वास्थ्य सेवा, परिवार नियोजन आदि सभी क्षेत्रों को उन्नतिशील बनाया गया। साथ ही कल-कारखानों तथा ग ह उद्योग-धंधों का विकास करके आर्थिक प्रगति के पथ पर भारतीय जन जीवन तन-मन-धन से तत्पर है। कानून द्वारा दलित और शोषित

वर्ग-कृषक एवं श्रमिक की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन किया गया है। समाजवादी व्यवस्था की स्थापना से पूंजीवादी व्यवस्था में न्यूनता आई है। पंचवर्षीय आयोजनों द्वारा देश के प्राकृतिक संसाधनों का अधिक से अधिक दोहन एवं उपयोग कर देश की आर्थिक स्थिति सुधारने हेतु निरंतर प्रयत्न चल रहे हैं। पर्वतीय नदियों पर बांध बांधकर जलाशय तैयार कर विद्युत उत्पादन के अनेक कार्य सम्पन्न हो गए हैं तथा अनेक महत्वपूर्ण कार्य चल रहे हैं। सिंचाई के लिए नहरों का निर्माण किया जा रहा है। पेय जल के लिए तालाबों का निर्माण कर वर्षा जल को एकत्रित किया जा रहा है, नल कूप की व्यवस्था गांव-गांव तक पहुंच गई है। गांव-गांव तक पक्की सड़कों का निर्माण हो चुका है।

(iv) **सांस्कृतिक - धार्मिक**

भारतीयों में प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति अपार श्रद्धा और वर्तमान परिस्थितियों के प्रति क्षोभ उत्पन्न हो रहा था। भारत के इतिहास में वास्तव में यह वह परिवर्तन काल है जहां से मध्यकालीन बोध का प्रभाव घटने लगा और उसके स्थान पर आधुनिक चिंतन एवं वैचारिक प्रधानता आई। इस परिवर्तन में पारलौकिक द ष्टिकोण के स्थान पर आधुनिक इहलौकिक द ष्टिकोण को महत्व प्रदान किया जिसके परिणामस्वरूप ईश्वर ने अपना परलोक त्याग कर इहलोक में सामान्य मानव का विकास किया। इसी द ष्टिकोण से स्वर्गीय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है -

मैं नहीं संदेश स्वर्ग का लाया,
भूतल को स्वर्ग बनाने आया।
- साकेत

मध्ययुगीन ईश्वर चिंतन आधुनिक काल में आकर मनुष्य चिंतन का रूप धारण कर लेता है। व्यक्तिगत उन्नति का स्थान सामाजिक उन्नति ने ले लिया। मानव चेतना व्यष्टि तक सीमित न रहकर समष्टि चिंता का रूप धारण कर गई जिससे राष्ट्रीयता को लांघकर विश्व बंधुत्व एवं विश्व संस्कृति की ओर अग्रसर होकर वैश्वीकरण की भावना से ओत-प्रोत हो गई। आधुनिक साहित्य का यही मुख्य द ष्टिकोण है जो किसी न किसी रूप में साहित्य में पल्लवित, पुष्पित होकर व्याप्त है।

इंग्लैंड से ईसाई मत के वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप विश्व स्तर पर प्रचार-प्रसार का आंदोलन चल पड़ा। इसका अभिप्राय यह नहीं था कि इससे पूर्व ईसाई मिशनरियां इस कार्य में कभी संलग्न नहीं हुई थीं वे निरंतर अपने कार्य में लगी हुई थीं किंतु ईसाई धर्मानुयायिओं ने उक्त आंदोलन को तीव्रता प्रदान की जिससे प्रचार की प्रक्रिया में तेजी आ गई। ईसाई मिशनरियों का यह आंदोलन इंग्लैंड से प्रेरित होकर भारत पहुंचा। वे अति उत्साह के साथ अपने आंदोलन काल में लग गए जिसकी प्रतिक्रिया भारतीय संस्कृति एवं धार्मिक क्षेत्र पर हुई। भारतीयों में यह धारणा प्रबल हो गई कि अंग्रेज पश्चिमी-शिक्षा पद्धति के नाम पर हमारी संस्कृति का विनाश करने पर तुले हुए हैं। क्योंकि उनका मानना था कि साहित्य और संस्कृति को विनष्ट कर देने से राष्ट्र स्वयं नष्ट हो जाता है। यही उनका परम उद्देश्य था।

दो संस्कृतियों का अंतरावलंबन परिवर्तन हेतु उतना प्रभावकारी नहीं होता है जितना सामाजिक ढांचे को बदलने वाला बुनियादी ढांचा। ढांचे में परिवर्तन का कारण आर्थिक एवं सांस्कृतिक होता है।

मुगलों की पराजय के साथ-साथ हिंदू जाति के कट्टरपंथी समुदाय का ह्रास होने लगा। नवयुग की चेतना का सबसे महत्वपूर्ण तथ्य धार्मिक द ष्टिकोण एवं संस्कृति में परिवर्तन है। इस युग में मध्यकालीन धार्मिक एवं सांस्कृतिक भावना का अति परिमार्जित एवं सुसंस्कृत रूप मिलता है। अन्य धर्मो की सहिष्णुता इस युग की धार्मिक परिस्थितियों की प्रमुख विशेषता है। भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता धर्मनिरपेक्षता है। भारतीयों की उपासना पद्धति में बदलाव आ गया।

द्वितीय उत्थान- द्वितीय उत्थान में धार्मिक भावना का प्रमुख आधार मानवतावादी विचारधारा बनी। मानवतावादी विचारधारा का शनैः शनैः विकास हुआ। तथा त तीय उत्थान में गांधी, रवीन्द्र एवं अरविंद द्वारा मानवतावाद ही विश्व

धर्म के रूप में स्थापित हुआ। यह मानवतावाद विश्व-मानवतावाद था। इसीलिए गांधी जी में धार्मिक समन्वय का रूप द ष्टिगोचर होता है। गांधी जी ने वैष्णव जन की सबसे बड़ी विशेषता "पीर पराई जानना" बतलाया है। उनके अनुसार वही वैष्णव जन है, वही भगवान का भक्त है, "जो पीर पराई जाने ना"।

भगवान एक है। उसके गुणों और कर्मों के अनुसार अनेक नाम हैं। विभिन्न नाम विभिन्न धर्मों के आधार हैं। शनैः शनैः आर्थिक प्रगति और औद्योगिक विकास के कारण मानवतावादी विचारों में निम्न एवं शोषित वर्ग को महत्व दिया जाने लगा। 'कर्म को पूजा' कहा गया। गांधी जी ने हरिजनों को हरीजन स्वीकारा जिन्हें आधुनिक काल से पूर्व अछूत माना जाता था।

शिक्षा में पिछड़ेपन के कारण उत्तर भारत के सांस्कृतिक विकास में गत्यावरोध आया जिसके निराकरण में पर्याप्त समय व्यतीत हो गया। ईसाई मिशनरियां अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से लोगों को ईसाई बनाकर पुण्य लूटने के चक्र में पड़ी थीं। उच्च शिक्षा के प्रभाव से एक प्रकार का धर्म निरपेक्ष द ष्टिकोण बना जो मध्यकालीन धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त होने के कारण तार्किक एवं इहलौकिक हो सका। आश्रमधर्मी घेरे से बाहर निकल कर व्यक्ति के अपने निर्णय को प्रमुखता मिली। मध्यकालीन धार्मिक कथाओं को विश्वसनीय बनाने और उन्हें आधुनिक युग की समस्याओं से जोड़ने के मूल में भी यही प्रव त्ति क्रियाशील द ष्टिगोचर होती है। पुराने संकीर्ण विचार भंग हुए।

त तीय उत्थान- सन् 1550 में पुर्तगालियों ने मुद्रण यंत्र मंगवाकर उनकी स्थापना करके धार्मिक पुस्तकें छापनी प्रारंभ की। राजा राममोहन राय ने सन् 1821 में 'संवाद कौमुदी' नामक साप्ताहिक बंगला पत्र निकाला जिसमें सती-प्रथा के विरुद्ध निरंतर लिखना प्रारंभ किया जिससे परंपरावादी हिंदू समाज उनके विरुद्ध हो गया और उस पत्र को भी क्षति पहुंचायी।

अंग्रेजी सरकार ने भारत की अर्थ नीति, शिक्षा पद्धति, यातायात एवं परिवहन के साधनों में मूल रूप से परिवर्तन किए जिसके परिणामस्वरूप समाज का आधुनिकीकरण प्रारंभ हो गया। जो पुराने धार्मिक संस्कारों, रीति-नीतियों एवं संघटनों से मेल नहीं खाता था। नवीन यथार्थ एवं पुराने संस्कारों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकतानुभूति की जाने लगी। इस सामंजस्य के साथ ही नव्य भारतीय समाज के निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। व्यक्ति स्वातंत्र्य का भारतीय पुनर्जागरण में विशेष महत्व है।

आधुनिक काल में ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज एवं आर्य समाज ने पुराने धर्म को नए समाज के अनुरूप परिवर्तित करने का अथक प्रयास किया है। ब्रह्म समाज एवं प्रार्थना समाज ने नवीन परिवर्तनों को स्पष्ट रूप से स्वीकारा है किन्तु आर्य समाज वैदिक धर्म के मूल स्वरूप को बनाए रखना चाहता था। उस समय की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विचारधारा पर आर्य समाज का विशेष प्रभाव पड़ा। मध्य काल में नए परिवेश के परिणामस्वरूप जाति-प्रथा, छुआछूत, बाृह्याडंबर आदि के विरोध में भक्ति आंदोलन खड़ा हो गया था किंतु नवीन युग में नवीन ढंग के सामंजस्य की आवश्यकता हुई। मध्यकाल का सामंजस्य भावनामूलक था, उस काल के अधिकांश भक्त एवं संत अंतर्विरोधों के शिकार थे किंतु अब भावना से काम नहीं चल सकता था। भावना का स्थान तर्क, विवेक एवं बुद्धि ने ले लिया। 'ब्रह्म समाज', 'प्रार्थना समाज', 'रामकृष्ण मिशन', 'आर्य समाज' एवं 'थियोसॉफ़िकल सोसायटी' की मान्यताएं अधिकांशतः बुद्धि विवेक एवं तर्क पर आधारित हैं।

ब्रह्म समाज- आधुनिक भारत की नींव का प्रथम पत्थर रखने का श्रेय राजा राममोहन राय को है। सन् 1828 में उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की। वाराणसी जाकर कुछ वर्षो तक उन्होंने गीता, उपनिषद् आदि का गहन अध्ययन किया। इस्लामी एकेश्वरवाद का उन पर स्पष्ट प्रभाव है। ईसाई धर्म से भी वे प्रभावित थे। 'तैत्तेरेय' एवं 'कौशीतकी' उपनिषद् दर्शन में उन्हें समस्त विचारधाराएं मिल गई। उपनिषद् के द्वारा कर्मकांड एवं अंधविश्वास का खंडन किया। मूर्ति पूजा को धर्म का बाह्याडंबर स्वीकारा। रूढ़ियों के विरुद्ध लड़ने में तर्क को आधार बनाया। जाति-प्रथा को अमानवीय एवं राष्ट्रीयता विरोधी कहा। सती-प्रथा का विरोध किया। विधवा-विवाह तथा स्त्री-पुरुष के समानाधिकार का समर्थन किया। ब्रह्म समाज को आगे बढ़ाने में देवेन्द्र नाथ टैगोर (1817-1905) तथा केशव चन्द्र सेन (1838 - 1884) का अपूर्व योगदान रहा है।

देवेन्द्र नाथ टैगोर - इन्होंने ब्रह्म धर्म के प्रसार हेतु सुदूर यात्राएं कीं। मद्रास में 'वेद समाज', मुंबई में 'प्रार्थना समाज' की स्थापना उन्हीं की प्रेरणा से हुई। वैष्णवों के भजन कीर्तन ने भी उन्हें अपनी ओर आकर्षित किया। ईसाई धर्म की ओर उनका झुकाव था। ब्रह्म समाज में फूट पड़ने के कारण 'साधारण ब्रह्म समाज' और 'नव वेदांत' नामक नवीन संस्थाओं की स्थापना की।

केशव चन्द्र सेन- 1864 में मुंबई और पूना में केशवचंद्र सेन का आगमन हुआ। सन् 1896 में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। उनके प्रमुख उन्नायक महादेव गोविंद रानाडे थे। सामाजिक रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के विरुद्ध निरंतर संघर्षरत रहे। धार्मिक और सामाजिक समस्याओं पर तर्कपूर्ण ढंग से विचार किया। भागवत धर्म के अनुयायी थे। संकीर्णता को कभी प्रश्रय नहीं दिया। प्रतिक्रिया एवं पूर्वाग्रह से मुक्त थे। अतीत के प्रति आदर होते हुए भी अतीत को पुनः उसी रूप में प्रतिष्ठित नहीं करना चाहते थे। पुनरुत्थानवादियों के वे विरोधी थे। क्योंकि उनका यह मानना था कि म त अतीत को कभी भी जीवित नहीं किया जा सकता हैं। वे समाज को जीवित अवयवों का संघटन मानते हैं जिसमें परिवर्तन की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। इस प्रक्रिया के रुक जाने पर समाज म त हो जाएगा।

रानाडे- मनुष्य की समानता पर रानाडे ने बार-बार बल दिया है। जाति पांति के विरोधी तथा अंतर्जातीय विवाह के पक्षधर थे। स्त्री-शिक्षा को महत्वपूर्ण माना है। उनका वस्तुनिष्ठ द ष्टिकोण, तर्क-पद्धति, सामाजिक परिष्कार के प्रति अभिरूचि आदि ये स्पष्ट कर देते हैं कि उन पर पाश्चात्य विचारधारा का पूर्ण प्रभाव था। पाश्चात्य मत को भी अपने तर्क पर कस करके स्वीकारा है। वे भारतीय संस्कृति को नवीन वैज्ञानिक विचार प्रणाली के अनुरूप ढालने हेतु प्रयत्नशील रहे हैं।

रामकृष्ण मिशन- राम कृष्ण परमहंस के स्वर्गवासी हो जाने पर विवेकानंद ने उन्हीं के नाम से 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की। परमहंस अपने संपूर्ण व्यक्तित्व से परमहंस थे। रामकृष्ण गरीब, अनपढ़, गंवार, रोगी, अर्धमूर्ति पूजक, मित्रहीन हिंदू भक्त थे जिन्होंने बंगाल को अपने व्यक्तित्व से पूर्णरूपेण प्रभावित किया। उनकी छाप पश्चिमी बंगाल पर अब भी वर्तमान है। उनके योग्य शिष्य विवेकानंद ने उन्हें बाहर से भक्त और भीतर से ज्ञानी कहा है जबकि विवेकानन्द बाहर से ज्ञानी और भीतर से भक्त अपने गुरुवर के बिलकुल विपरीत थे।

सन् 1893 में विवेकानंद विश्व धर्म संसद में सम्मिलित होने हेतु शिकागो गए। इतना सुंदर प्रवचन दिया कि समूची सभा मंत्र मुग्ध हो गई। उनके विषय में 'न्यूयार्क हेराल्ड ट्रिब्यून' ने लिखा था-

"विश्व धर्म संसद में विवेकानंद सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे। उनको सुनने के बाद ऐसा लगता थ कि उस महान देश में धार्मिक मिशनों को भेजना कितनी बड़ी मूर्खता थी।" उनका मुख्य उद्देश्य रामकृष्ण परमहंस के उपदेशों का प्रचार करना था। सामाजिक कार्यो में विशेष रूचि थी। अपने गुरु के कष्टों को साक्षात देख चुके थे इसलिए उनकी प्रबल इच्छा जनता की सेवा थी जिससे समाज का कोई भी व्यक्ति गरीबी या ग्राम में रहते हुए भी रुग्णता के कष्ट से दुखी न रहे। इसी द ष्टि से स्थान-स्थान पर चिकित्सालयों तथा सेवा आश्रमों की स्थापना हुई। मानवीय समता के विश्वासी स्वामी विवेकानंद ने जाति-पांति, संप्रदाय, छुआछूत आदि का प्रबल विरोध किया। गरीबों के प्रति उनकी अत्यधिक सहानुभूति थी। शिक्षित वर्ग तथा उच्च वर्ग को हेय द ष्टि से देखते थे उनकी भर्त्सना करते हुए उन्होंने लिखा है-

"तब तक देश के हजारों लोग भूखे हैं अज्ञानी हैं - मैं प्रत्येक शिक्षित वर्ग को धोखेबाज कहूंगा। गरीबों के पैसे से पढ़कर भी उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते।.... उच्च वर्ग शारीरिक और नैतिक द ष्टि से मर चुका है।"

उन्होंने शारीरिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करने वाले कृत्य को धर्म की संज्ञा दी है। इससे आत्म गौरव एवं राष्ट्रीय गौरव प्रदान करने में सहयोग मिलता है। हीनता की भावना से ग्रस्त देश को विवेकानंद ने यह आश्वासन दिया कि भारत की संस्कृति अब भी अपनी श्रेष्ठता में अद्वितीय है तथा इस देश का आध्यात्मिक चिंतन असमानांतर है। आध्यात्मिक स्तर पर मनुष्य-मनुष्य की क्षमता, एकता, बंधुत्व और स्वतन्त्रता की ओर भी उन्होंने भारतीयों का ध्यानाकर्षण किया। भारतीय पाश्चात्य भौतिकता से अभिभूत हो गया था उसे यह प्रथम बार अनुभव हुआ कि हमारी परंपरा में कुछ ऐसी वस्तुएं अभी भी अवशिष्ट हैं जिन्हें गौरवपूर्ण ढंग से विश्व के समक्ष रखा जा सकता है। यह अनुभव कराने का एक मात्र श्रेय विवेकानंद को है।

आर्य समाज-

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में आर्य समाज पूरे भारतवर्ष में फैल चुका है। गुजरात, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में आर्य समाज का विशेष प्रभाव है। इन प्रदेशवासियों का स्वभाव बंगालियों से भिन्न है। बंगाली दुबले-पतले होकर भी अपने पौरुष पर गर्व करते हैं तथा अक्खड़ होते हैं। उनमें भावुकता का अभाव होता हैं। बंगाल एवं महाराष्ट्र के पुनर्जागरण में मध्ययुगीन संतों की वाणी का विशेष योगदान रहा है। आर्य समाज में संतों का कोई स्थान नहीं है।

सन् 1897 में दयानंद सरस्वती ने मुंबई में 'आर्य समाज' की स्थापना की। दयानंद का व्यक्तित्व असाधारण था। वे संस्कृत भाषा के उद्भट विद्वान, प्रवक्ता एवं अत्यंत मेधावी प्रतिभा संपन्न महान व्यक्ति थे। वे किसी से समझौता नहीं करते थे। द ढ़ संकल्पी थे। उनके विचार अति स्पष्ट होते थे उनमें कहीं रंचमात्र भी अस्पष्टता अथवा रहस्यवादिता नहीं थी। वे वेदों को आर्य समाज का आधार मानते थे। उनके अनुसार वेद अपौरुषेय हैं। वैदिक धर्म ही सत्य एवं सार्वभौम है। अन्य धर्म अधूरे हैं। आर्य समाज की आचार-संहिता में सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों पर विशेष बल दिया गया है। आर्य समाज में जाति-पांति, छुआछूत, स्त्री-पुरुष असमानता आदि का कोई स्थान नहीं है। इसे लोकतांत्रिक व्यवस्था कह सकते हैं। आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ भौतिक उन्नति को भी स्वामी जी ने अनिवार्य माना है। इसी द ष्टिकोण से पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान को द ष्टिगत रखते हुए सन् 1886 में 'दयानंद एंग्लो वैदिक कॉलेज' की स्थापना हुई तथा स्थान-स्थान पर 'दयानंद स्कूल' एवं 'कॉलेज' खोले गए। आर्य समाज हिंदूवादी द ष्टिकोण का पक्षपाती है जिसने राष्ट्रीय विचारधारा को उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर करने में आश्चर्यजनक योगदान किया है। अंग्रेज सरकार ने आर्य समाजी संस्थाओं को बम बनाने का कारखाना मानकर उन्हें दबाने के अनेक बार अनेक स्थानों पर असफल प्रयत्न किए। उत्तर भारत के आचार-विचार, रहन-सहन, एवं साहित्य-संस्कृति पर आर्य समाज का गहरा प्रभाव द ष्टिगोचर होता है। आर्य समाज के आंदोलन ने गद्य की भाषा को परिष्कृत एवं परिमार्जित किया है। अस्प श्यता पर जितना प्रबल आघात इस आंदोलन ने किया उतना अन्य किसी ने नहीं किया। मध्य वर्ग में आर्यसमाज ने क्रांतिकारी कार्य किया। इसकी कार्य पद्धति प्रगतिशील एवं प्रतिक्रियावादी है।

थियोसॉफ़िकल सोसायटी-

सन् 1875 में मदाम ब्लावस्तू और ओल्कार्ट ने न्यूयार्क में 'थियोसॉफ़िकल सोसायटी' की स्थापना की। यह आंदोलन भारतीय धार्मिक परंपरा पर आधारित था। सोसायटी के संस्थापक सन् 1879 में भारत आए। सन् 1882 में उन्होंने अडयार (चेन्नई) में इसकी शाखा खोली। श्रीमती एनी बेसेंट इंग्लैंड में इस शाखा से जुड़ी हुई थीं जो सन् 1893 में भारत आई तथा सोसायटी को विकसित करने हेतु अपना तन-मन-धन सब समर्पित कर दिया। उनका व्यक्तित्व अति गतिमान था। उनकी भाषण कला की अनुपम रोचकता एवं आकर्षण शक्ति ने अनेक शिक्षित भारतीयों को आकृष्ट कर लिया। समस्त भारत का भ्रमण करते हुए उन्होंने हिन्दू धर्म की आध्यात्मिकता के पक्ष में अनेक ओजस्वी भाषण दिए। थियोसॉफ़ी के आदर्शो को व्यावहारिक जामा पहनाने के लिए उन्होंने अनेक शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना की। वाराणसी का 'सेन्ट्रल हिंदू कॉलेज' उसी की एक कड़ी है।

धर्म सभा-

उत्तर भारत, बंगाल एवं महाराष्ट्र आदि में अनेक नए धार्मिक-सांस्कृतिक आंदोलन चले जिन्होंने समाज में अनेक सुधार किए किन्तु नवीन धार्मिक आन्दोलनों का विरोध पुनरुत्थानवादी प्रतिक्रियाएं करने लगीं। बंगाल में राजा राममोहन राय के ब्रह्म समाज का विरोध करने के लिए सन् 1830 में राधाकान्त देव ने 'धर्म सभा' की स्थापना की किन्तु धर्म सभा सन् 1857 तक किसी भी प्रकार ब्रह्म समाज का प्रभाव कम करने में सफलता प्राप्त नहीं कर सकी।

सन् 1857 में स्वतंत्रता का प्रथम आंदोलन प्रारंभ हो गया। इस आंदोलन ने सुधारवादी द ष्टिकोण को कमजोर बना दिया जिसके परिणामस्वरूप पुरातनवादी प्रव त्तियां पुनः सिर उठा कर खड़ी हो गईं। बंगाल में राष्ट्रीयतावादी एवं स्वच्छंदतावादी दो प्रव त्तियां उभरकर सामने आई। दोनों के मूल से वैयक्तिकता, अतीत की गौरवगाथा, अंग्रेजी सत्ता के प्रति आक्रोश, ग्रामीण बढ़ती हुई गरीबी के प्रति सहानुभूति, स्वतन्त्रता एवं समानता के प्रति आग्रह आदि की

प्रव त्तियां प्रमुख रूप से क्रियाशील थीं। पुरातत्ववेत्ताओं और पुरालेखविदों ने विस्म ति के गर्भ में खोई हुई विरासत - भारतीय साहित्य, कला, ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, वास्तु कला आदि का पुनरुद्धार करके विश्व में भारत का गौरव बढ़ाया तथा भारतीयों में आत्म सम्मान का भाव जाग त किया। नवीन हिंदुवाद जन्मा। दो दल उभर कर सामने जाए - प्रथम सुधार विरोधी थी। द्वितीय यथास्थान नवीन विचारों के सन्निवेश का पक्षपाती होते हुए भी मुख्य धारा में किसी प्रकार के परिवर्तन की आकांक्षा नहीं करता था। ऐसे विचारकों में बंकिम चन्द्र चटर्जी का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है, जो गीता के निष्काम कर्म के पक्षधर थे। उन्होंने कृष्ण से संबंधित 'कृष्ण चरित्र' की रचना की। धर्म-सुधारकों की तरह वे आंशिक समाज सुधार में विश्वास नहीं रखते थे। उनकी मान्यता थी कि धर्म और नैतिकता के समग्र पुनर्जागरण में ही समाज सुधार समाहित होता है। अपने उपन्यासों में देश-प्रेम को उच्च स्थान दिया है। देश-प्रेम एवं धर्म दोनों को एक ही मानते थे, दोनों में कोई अंतर नहीं स्वीकारा।

महाराष्ट्र की स्थिति बंगाल से अलग थी क्योंकि बंगाल पर अधिकार करने के पूरे आठ वर्ष बाद महाराष्ट्र अंग्रेजी शासन में आया। पेशवा राज्य की समाप्ति की पीड़ा अभी भुला नहीं पाया था। अपनी परंपराओं के प्रति विशेष अनुराग था। महाराष्ट्र ने देशव्यापी गरीबी, भुखमरी आदि का पूर्ण भांडा अंग्रेजी राज्य के सिर पर फोड़ दिया। चिपलूणकर के निबंधों में देश के पराभव का एक मात्र उत्तरदायी विदेशी शासन को ठहराया गया है। तिलक ने रानाडे के सुधारों का विरोध किया है। उनका कहना है कि सुधार समाज को बांटने वाले तथा राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने में बाधक हैं। जनता को एकत्रित करने के लिए गणेश की पूजा का श्रीगणेश किया जो वर्तमान में भी बड़े धूमधाम से 'गणेश वापा मौर्या' के नाम से मनायी जाती है। उत्तरी भारत में सनातन धर्मावलंबियों ने आर्य समाज के विरोध में अपना नारा लगाया। इन विरोधों के परिणामस्वरूप सामाजिक सुधार कार्य की गति धीमी पड़ गई किन्तु राष्ट्रीयता की भावना प्रबलतम रूप में उभरकर सामने आई।

इससे पूर्व धर्म एवं संस्कृति मुख्यतः आकांक्षाओं से संबद्ध थी किन्तु आधुनिक काल में वह इहलौकिक आकांक्षाओं का भी वाहक बनी।

धर्म एवं संस्कृति विषयक डॉ. नगेन्द्र का कथन अक्षरशः सत्य है-

"भारतीय धर्म एवं संस्कृति के संबंध में अंग्रेज प्रशासकों और ईसाई मिशनरियों के आक्रामक रुख के कारण धर्म-सुधारकों के लिए धारदार मार्ग से गुजरना आवश्यक हो गया। एक ओर उन्हें विदेशियों के समक्ष अपने धर्म और संस्कृति की वकालत करनी पड़ी और दूसरी ओर देशवासियों के सामने धर्म का नया अर्थापन करना पड़ा। इस प्रकार हर बात को तर्क संगत बनाने की दिशा में जो पहल की गई वह बहुत फलदायक सिद्ध हुई। इस संक्रांति काल में धर्म का पल्ला पकड़ना बहुत आवश्यक था क्योंकि धर्म अनिवार्यतः समाज सुधार के साथ जुड़ा हुआ था। पुराणपंथी और सुधारक दोनों ने अपने मत के प्रचारार्थ धर्मशास्त्रों की शरण ली।"

राजा राममोहन राय ही एक मात्र ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें शुद्धि-बुद्धि वादी स्वीकारा जा सकता है। सती-प्रथा की समाप्ति करने के लिए उन्हें भी धर्मशास्त्रों के साक्ष्य की आवश्यकता हुई। विद्यासागर ने यह प्रमाणित कर दिया कि धर्म शास्त्रों में वैधव्य का कहीं विधान नहीं है। दयानंद सरस्वती ने सामाजिक सुधारों को वैध बनाने के लिए वेदों को आधार बनाया तथा अपने मत की पुष्टि हेतु वेदों को नवीन अर्थ भी प्रदान किया "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" जिसका उदाहरण है। तर्क संगति को महत्व मिला, रूढ़ियों का निराकरण आसान हो गया जिसके परिणामस्वरूप परंपरावादी और धर्म-सुधारक दोनों ही अतीत के गौरव को जाग त करने में सफल हुए। भारतीयों को आत्म सम्मान का बोध हुआ। बराबर के स्तर पर पाश्चात्य का सामना करने एवं स्वतन्त्रता की मांग करने का आत्मविश्वास मिला। राष्ट्रीयता में सभी सुधारों की समाविष्टि स्वीकारते हुए राष्ट्रीयता पर अधिक बल दिया जाने लगा।

परंपरावादी एवं सुधारवादी दोनों ने पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली में विश्वास व्यक्त किया तथा नवीन शिक्षा संस्थाएं खोलीं। यद्यपि शिक्षा संस्थाएं तो पहले भी थीं किन्तु अब इनका रूप पूर्ण रूपेण बदल गया।

पश्चिमीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। इसे अधिकांश लोग पश्चिमीकरण न कहकर आधुनिकीकरण की संज्ञा देना श्रेयस्कर समझने लगे। नवीन मानवतावाद का आविर्भाव हुआ। आधुनिक युग में मनुष्य-मनुष्य की समता, स्वतन्त्रता आदि का सामाजिक न्याय के आधार पर समर्थन किया गया।

अधिकांश आंदोलनों में अंतर्विरोध द ष्टिगोचर होता है। ब्रह्म समाज में मूर्तिपूजा के लिए स्थान नहीं है किन्तु ऐसा कौन सा बंगाली है जो दुर्गा पूजा न करता हो?

आर्य समाज में वर्ण व्यवस्था जन्मना नहीं कर्मणा मानी गई है किन्तु कौन सा आर्य समाजी है जो अपनी जाति में लड़का-लड़की मिलते हुए अन्य जाति वालों को लड़का-लड़की देने को तत्पर है?

समाज में एक ओर संस्कृतीकरण की व द्धि हो रही है तो दूसरी और लौकिकीकरण की।

(v) **साहित्यिक**

साहित्य पर युग को बनाने वाले सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक-सांस्कृतिक आदि सभी परिवेशों का प्रभाव पड़ता है। इन परिवेशों के अलावा साहित्यिक प ष्ठ भूमि तथा अन्य साहित्यों का प्रभाव भी महत्वपूर्ण होता है। आधुनिक काल की प ष्ठभूमि में हिन्दी साहित्य का श ंगार काल है। श ंगार काल में साहित्य का विकास राजदरबारों में हुआ। रीतिकालीन कवि आश्रय दाता के आश्रय में रहते थे। क्योंकि उन्हें अपने भरण-पोषण के लिए उच्च वर्ग के लोगों का आश्रय खोजना पड़ता था। श ंगार काल का साहित्य मध्यकालीन दरबारी संस्कृति का प्रतीक है। राज्याश्रय में पले श ंगारी काव्य में रीति और अलंकार का प्राधान्य द ष्टिगोचर होता है। जो कवि दरबारी संस्कृति से दूर रहे उनमें 'प्रेम की पुकार' का स्वरूप रीति से मुक्त है। लेकिन बहुमत आचार्यो का ही है जो रीति निरूपण को लक्ष्य बनाकर चला।

श ंगार कालीन काव्य की प्रमुख प्रव त्तियां निम्नलिखित थीं-

श ंगार रस की प्रधानता।

अलंकार की प्रधानता।

रीति की प्रधानता।

मुक्तक शैली की प्रधानता।

ब्रजभाषा की प्रधानता।

लक्षण ग्रन्थों की प्रधानता।

नारी के प्रेम स्वरूप की प्रधानता।

प्रकृति के उद्दीपक रूप की प्रधानता।

वीर रस-काव्य।

नवीन परिवेश के परिणामस्वरूप साहित्य को भी संकट का सामना करना पड़ा क्योंकि आश्रयदाता केन्द्र अति शीघ्रता से छिन्न भिन्न होने लगे।

सामान्यतः रीति कालीन साहित्य भाव, भाषा एवं शैली की द ष्टि से रूढ़िबद्ध था। बंधी-बंधाई रीति पर काव्य स जन होता था इसीलिए श ंगार काल के आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीति काल नामकरण करना उचित समझा। काल का उपविभाजन भी इसी आधार पर रीतिबद्ध, रीतिमुक्त और रीतिसिद्ध रूपों में हुआ। रीतिबद्ध - जो लक्षण लिखने के बाद उदाहरण स्वरूप काव्य स जन करते थे, रीति मुक्त - जो रीति का पालन न करके स्वच्छंद रूप से काव्य स जन करते थे। इन कवियों के काव्य में 'प्रेम की पीड़' का प्राधान्य है। कुछ वीर रस का काव्य भी लिखा गया। रीति सिद्ध - इन्हें लक्षण का पूरा ज्ञान था। लक्षण सामने रखकर काव्य करते थे किंतु लक्षण लिखकर रीतिबद्ध जैसे उदाहरण स्वरूप नहीं अपितु लक्षणों के आधार पर ही स्वतन्त्र रूप से काव्य रचना करना इनका उद्देश्य था। रीति कालीन काव्य परंपरा आधुनिक परिवेश के अनुकूल अपना समायोग स्थापित कर पाने में असमर्थ थी जिसके परिणामस्वरूप साहित्य ने स्वयं को युगीन परिवेश के अनुकूल नवीन प्रारूप में जन्म देकर महत्वपूर्ण क्रांति प्रस्तुत की। ऐसे कवियों में भारतेन्दु का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिन्होंने रीति कालीन परंपराओं की रक्षा करते हुए भी साहित्य-क्षेत्र में नवीन दिशाओं का आविष्कार किया। ब्रजभाषा गद्य के साथ-साथ काव्य में खड़ी बोली गद्य के प्रयोग का प्रारंभ हुआ। पद्य के साथ गद्य भी चल पड़ा जिसने चम्पू काव्य को जन्म दिया। इसके पश्चात् गद्य

की अन्य विधाएं उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, निबंध एवं आलोचना प्रमुख गद्य-विधाओं के साथ-साथ आधुनिक अन्य अनेक विधाओं में साहित्य स जन होने लगा। पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगीं। छापे खाने खुलने लगे। पत्र-पत्रिकाएं इसी युग की देन हैं।

भारतेंदु युग में हिंदी का प्रचार-प्रसार हुआ। द्विवेदी युग में भाषा का संस्कार एवं परिमार्जन हुआ जिसके परिणामस्वरूप 'छायावाद' हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का 'स्वर्ण युग' कहलाया। इस युग में विशुद्ध खड़ी बोली अर्थात् हिन्दी को साहित्य भाषा का माध्यम बनाया गया। छायावादोत्तर युग में पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव बढ़ने के परिणामस्वरूप साहित्य जगत में काव्यांदोलन चल पड़े जो प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, नई कविता के रूप में निखर कर सामने आए। नवलेखन, गद्य गीत, अकविता, क्षणिकाएं, लघु कथा, संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, यात्रा व त्तांत, आत्मकथा, रेडियो रूपक, डायरी, पत्रात्मक शैली आदि अनेक रूपों में साहित्याभिव्यक्ति होने लगी। साहित्य धारा गद्य-पद्य दोनों रूपों में समानांतर रूप से प्रवाहित होने लगी।

वर्तमान समय तक आते-आते आधुनिक हिंदी साहित्य ने विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय, आंचलिक, अंतर्राष्ट्रीय तथा अनेक प्रकार की वाद ग्रस्त प्रव त्तियों से प्रभावित हो, विकास की ओर बढ़ता हुआ पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होकर विशाल साहित्य-कानन-भंडार खड़ा कर दिया है। विभिन्न प्रव त्तियों एवं परिवेशों में आकर, उनसे प्रभावित होकर साहित्य ने अपनी गति, दिशा में ही परिवर्तन नहीं किया है अपितु स्वरूप परिवर्तन के साथ-साथ मूल्यों में भी परिवर्तन किया है। आयाम बदल रहा है। यह स्वस्थ परंपरा का परिचायक होते हुए नवीनता का प्रतीक है।

3. 1857 ई० की राज्य क्रांति और पुनर्जागरण

सन् 1857 ई0 भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का श्री गणेश इसी वर्ष हुआ।

ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन विस्तार के साथ-साथ उसके अत्याचार भी बढ़ते गए जिनमें "लैप्स-नीति" विशेष घातक, कुटिल एवं कठोर प्रमाणित हुई। 'लैप्स' का अर्थ समाप्ति से लिया गया। किसी भी राज्य वंश में संतान विहीनता को इसका शिकार बनाया गया। संतान विहीन राजा अथवा रानी की संपूर्ण चल-अचल संपत्ति एवं राज्य छीन कर कंपनी के शासन में मिला लेना इस नीति का मुख्य उद्देश्य था जिसका प्रयोग झांसी की रानी लक्ष्मी बाई पर किया गया। उनके गोद लिए पुत्र को वैध नहीं माना गया। उन्हें संतानविहीन घोषित किया गया।

सन् 1858 ई. में झांसी को "लैप्स की नीति" के द्वारा कंपनी ने अपने शासन में ले लिया। जिससे राजा, प्रजा, सामान्य जनता, सेना, सिपाही आदि सभी में विद्रोह की सोई हुई भावना जाग त हो उठी जिसे पुनर्जागरण की संज्ञा दी गई। सभी घबराए हुए थे।

इसी बीच सेना में आश्चर्यजनक घटना का विस्फोट हुआ। कारतूस का प्रयोग भारतीय सैनिक बहुत पहले से करते आ रहे थे। चलाते समय उसकी टोपी दांत से अलग करते थे। नए कारतूस आने पर मेरठ छावनी में यह समाचार आग की लपटों के समान फैल गया कि कारतूसों की टोपी चमड़े की बनी है जिसको दांत से निकालना पड़ता है। कंपनी की सेना में भर्ती भारतीय सैनिकों की धार्मिक भावना को अत्यधिक ठेस पहुंची। शाकाहारी किस प्रकार दांत से मांस को पकड़ कर मांसाहारी का रूप धारण कर सकता है।

सन् 1857 ई. में मंगल पांडेय के नेत त्व में भारतीय सैनिकों ने अंग्रेजों के विरुद्ध यह कहकर कि 'हम बंदूक नहीं चलाएंगे, कारतूस में चमड़ा लगा है' मेरठ छावनी में प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम छेड़ दिया। यह संग्राम पूर्व प्रचारित एवं सुनियोजित नहीं था। समय से पूर्व छेड़ दिया गया था। झांसी की रानी लक्ष्मी बाई इस संग्राम में कूद पड़ी, बहादुरी से लड़ती रही। कानपुर के बिठूर राजाओं ने भी संग्राम में योगदान किया। घोड़े के जख्मी हो जाने के परिणामस्वरूप रानी ने जौहर दिखाकर मात भूमि पर अपने को बलिदान कर दिया। मेरठ, झांसी, कानपुर आदि क्षेत्रों में संग्राम चला। दक्षिण में तात्या टोपी ने भी इस संग्राम में अपूर्व योगदान किया।

एक वर्ष तक विद्रोह चलता रहा। पूरा वर्ष भी नहीं हो पाया था कि दासता के प्रति किया गया विद्रोह दबा दिया गया। ईस्ट इंडिया का शासन समाप्त करके ब्रिटेन सरकार ने भारत का शासन अपने हाथों में ले लिया। महारानी विक्टोरिया ने अपनी घोषणा में भारतीयों को बड़े मधुर आश्वासन दिए। आश्वासन पाकर भारतीयों में नवीन चेतना एवं आशा का संचार हुआ। क्योंकि कंपनी के अत्याचारों एवं डलहौजी की नीति से भारतीयों में त्राहि-त्राहि मची हुई थी। विक्टोरिया की घोषणा घाव पर मरहम का काम करने लगी। भारतीयों का दुर्भाग्य महारानी विक्टोरिया का देहावसान हो गया। भारतीयों को अति दुख हुआ।

सन् 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के पश्चात् सत्ता हस्तांतरण में आशा बंधी थी कि देश की आर्थिक व्यवस्था में सुधार होगा। व्यापारी कंपनी ईस्ट इंडिया से ऐसी आशा करना औचित्यपूर्ण नहीं था। किंतु ब्रिटिश सरकार ने भी भारतीय औद्योगिक विकास में अपनी रूचि नहीं दिखलाई।

सन् 1857 के संग्राम में फ्रांस की क्रांति एवं नैपोलियन की विस्तारवादी नीतियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इस विद्रोह के अवसर पर भारतवासियों ने जिस प्रकार अपनी भावनाओं का प्रदर्शन किया उसे देखते हुए भारतीय इतिहासकारों ने इस वर्ष को 'परिवर्तन वर्ष' कहा।

सन् 1857 के विद्रोह के कारण

कोई भी कार्य बिना कारण के नहीं होता है। सन् 1857 के विद्रोह के भी राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक अनेक कारण थे।

(i) **राजनीतिक**- सन् 1757 तथा सन् 1764 ई. के प्लासी और बक्सर युद्धों के पश्चात् अंग्रेजों का उत्साह अत्यधिक बढ़ गया जिसके परिणामस्वरूप राज्य विस्तार को अपनी महत्वाकांक्षा बना लिया। इस कार्य को युद्ध, नीति, कूटनीति के द्वारा पूर्ण करने का निश्चय कर लिया। अभिप्राय यह कि साम, दाम, दंड एवं भेद किसी भी मार्ग से राज्य विस्तार का लक्ष्य बना लिया जिसके परिणामस्वरूप सरकार ने अवध, हैदराबाद, मैसूर, कर्नाटक, नागपुर, भोपाल, इंदौर, ग्वालियर, जयपुर, जोधपुर एवं सिंध आदि को अपनी सत्ता में ले लिया। फिर भी उनकी राज्य विस्तार की भूख सुरसा की भूख हो गई जो संपूर्ण भारत को निगल जाना चाहती थी। अंग्रेज सरकार की अन्यायपूर्ण साम्राज्यवादी नीति के विरुद्ध अनेक भारतीय राजाओं तथा जनता में घ णा की भावना बढ़ने लगी। डलहौजी की 'लैप्स नीति' ने आग में घी का कार्य किया। जिसने निःसंतान राजाओं से बच्चा गोद लेने का अधिकार छीन लिया तथा ऐसे राजाओं की म त्यु के बाद उनके राज्य को ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित किया जाने लगा। रानी झांसी लक्ष्मी बाई का राज्य इसी आधार पर छीना गया। इस प्रकार अंग्रेजी सरकार ने अनेक राज्यों को अपने आधिपत्य में ले लिया। इस नीति के द्वारा ही अंग्रेजों ने पेशवा बाजी राव (द्वितीय) के दत्तक पुत्र नाना साहिब की पेंशन बंद कर दी, जिससे नाना साहिब भी अंग्रेजी सरकार का विरोध करने लगे। अंग्रेजों ने बलात् वाजिद अली शाह को बंदी बनाकर अवध राज्य को अपने अधिकार में ले लिया। मुगल सम्राट का निरादर तथा असंख्य बेकार किए गए सैनिकों का रोष राजनीतिक कारण थे जिन्होंने सन् 1857 के विद्रोह को जन्म देने में विशेष भूमिका निभाई है। अंग्रेजों द्वारा भारतवासियों से दुर्व्यवहार, भारतीयों की उच्च पदों पर नियुक्ति न करना तथा उनकी दोषपूर्ण न्याय प्रणाली ने लोगों में विद्रोह की भावना जाग त की।

(ii) **सामाजिक**- अंग्रेजों में वर्ण व्यवस्था रंग-भेद की नीति अत्यधिक बढ़ गई थी। अंग्रेज भारतीय जनता के ग ह कार्यों एवं उत्सवों में अनाधिकार अपनी टांग अड़ाते थे। ईसाई मत का प्रचार धुआंधार हो रहा था। अछूतों-गरीबों को ईसाई धर्म में दीक्षित करके उन्हें ईसाई बनाया जाता था। अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार भारतीयों को सह्य न था। इतना ही नहीं अंग्रेजी प्रशासकों द्वारा किए गए अनेक सुधार भी उनके विरुद्ध विद्रोह करने में सहायक सिद्ध हुए। रेल डाक, तार सेवा ने काल-स्थान का अंतराल कम कर दिया। एक प्रांत की जनता को दूसरे प्रांत की जनता के सन्निकट लाकर खड़ा कर दिया जिससे वैचारिक आदान-प्रदान होने लगा जिसके परिणामस्वरूप सामान्य जनता की मानसिकता में विद्रोह की भावना गहराई में पैठ गई। समाज की अर्थव्यवस्था चरमरा गई जो विद्रोह का कारण बनी। क्योंकि देश का अधिकांश कच्चा माल सस्ते दामों पर विदेश जा रहा था तथा वहां से महंगा तैयार माल भारत के बाजारों में बिक रहा था इस प्रकार दोनों तरफ की लुटाई जनता को विद्रोही बना रही थी।

(iii) **धार्मिक**- भारतीय सनातनी धर्मभीरू एवं धर्मावलंबी रहे हैं। धर्म के विरुद्ध उन्हें कुछ भी सह्य नहीं है। इंग्लैंड के ईसाई पादरी या मिशनरी भारत आकर हिंदुओं को धन एवं नौकरी का लोभ दिलाकर ईसाई बना रहे थे यह भारतीयों को विद्रोही बना रहा था। सती प्रथा, कन्या हत्या, विधवा विवाह तथा मनुष्य बलि संबंधी कानून बनने लगे। हिन्दुओं ने इसे अपने धर्म के विपरीत समझा क्योंकि ये सब कट्टरपंथी हिंदू अपने गले से नीचे नहीं उतार सके। उन्होंने ऐसा समझा कि ऐसा करके अंग्रेज हिन्दुओं की संस्कृति और धर्म को नष्ट करना चाहते हैं।

भारतीय शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों हैं किंतु सवर्ण हिन्दू गाय और सुअर का मांस नहीं खाते हैं। शाकाहारी के लिए मांस अभक्ष्य है।

नए आगत कारतूसों की टोपी में गाय-सुअर का मांस प्रयुक्त किया गया है ऐसा उन्हें ज्ञात हुआ इसलिए उसे दांत से अलग करना धर्म भ्रष्टता माना। इन समस्त कारणों से तत्कालीन घटनाओं ने विद्रोह का रूप धारण कर लिया।

1857 के विद्रोह के परिणाम

सन् 1857 के विद्रोह को अंग्रेजों ने असफल कर दिया। असफलता में भी भारतीयों को अनेक लाभ हुए-

(i) विद्रोह अंग्रेजों द्वारा असफल बना दिया गया किंतु इस विद्रोह ने देश के लोगों की उन भावनाओं को निश्चित रूप से अभिव्यक्ति प्रदान की है जो अंग्रेजों के प्रति घ णा और क्रोध की भावना से ओत-प्रोत थी।

(ii) लोगों की स्वतन्त्रता की प्रबल भावना को विद्रोह ने देश के कोने-कोने तक प्रसारित एवं प्रचारित कर दिया।

(iii) स्वतंत्रता आंदोलन की भावना ने राष्ट्रीय स्तर प्राप्त किया तथा उसमें तीव्रता आ गई।

(iv) विद्रोह ने 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' तथा अन्य क्रांतिकारी संगठनों को जन्म दिया।

(v) भारतीयों को अपनी कमियों का ज्ञान हो गया जिनके कारण अंग्रेजों को विद्रोह दबा देने में सफलता मिली।

(vi) महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना के पश्चात् भारतवासियों ने स्वयं को सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक क्षेत्रों में भी नए विचारों से सम्पन्न करने के लिए द ढ़ संकल्प एवं प्रण किया जिसमें नवीन शिक्षा प्रणाली अत्यधिक सहायक एवं सार्थक प्रमाणित हुई।

(vii) नई शिक्षा-प्रणाली का निर्माण एवं संचालन अंग्रेजों ने अपने हित एवं लाभ के लिए किया था जिससे उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। अंग्रेजों के लिए विकसित शिक्षा प्रणाली उनका उतना हित न कर सकी जितना इसने भारतीयों का कल्याण किया। यह शिक्षा प्रणाली भारतीयों में नवीन-चिंतन एवं नए द ष्टिकोण को विकसित करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई है।

(viii) इससे प्रभावित होकर भारतीय समाज में विभिन्न स्तरों पर अनेक नए आंदोलनों ने जन्म लिया।

4. भारतेन्दु युग : नामकरण एवं काल सीमांकन

आधुनिक काल के हिंदी साहित्य का अंतर्विभाजन प्रायः सभी विद्वानों ने एक जैसा किया है किन्तु नामकरण एवं सीमा निर्धारण के विषय में मतैक्य नहीं है। विशिष्ट काल में विशेष साहित्यकार के प्रमुख योगदान को देखते हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाम पर उनके युग को भारतेन्दु कहा गया है।

नामकरण-

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक काल का अंतर्विभाजन साहित्यिक विधा गद्य-पद्य के आधार पर मुख्य रूप से गद्य और काव्य रचना (पद्य) दो भागों में विभक्त किया है। पुनः इन दोनों उप विभागों के चार-चार प्रकरण किए हैं। प्रकरणों का पुनर्विभाजन उत्थानों में किया गया है। भारतेन्दु युग से गद्य के प्रकरण 2 के प्रथम उत्थान तथा काव्य रचना के प्रकरण 2 के नई धारा (प्रथम उत्थान) को अभिहित किया है। आचार्य शुक्ल ने भारतेन्दु के महत्व को गद्य-पद्य दोनों में बराबर रूप से स्वीकारा है।

डॉ. नगेन्द्र को युग विशेष को व्यक्तिगत नाम देना रूचिकर नहीं लगा इसलिए उन्होंने लिखा है-

"शुक्ल जी के परवर्ती इतिहासकारों ने प्रायः शुक्ल जी का अनुगमन किया। कुछ लोगों ने आधुनिक काल के विकास के प्रथम दो चरणों को भारतेंदु युग और द्विवेदी युग कहना अधिक संगत समझा। किंतु, इन नामों की ग्राह्यता को संदेह की द ष्टि से देखा जाता है।[1]"

अंतिम वाक्य को संदर्भित करते हुए पाद टिप्पणी में लिखा है -

"1. भारतेंदु-युग और द्विवेदी युग की परिकल्पना कर लेने पर युगों की बाढ़ आ गई। भारतीय हिंदी-परिषद्, प्रयाग से प्रकाशित 'हिंदी साहित्य' (त तीय खंड) में उपन्यासों के संदर्भ में 'प्रेमचन्द युग' और नाटकों के संदर्भ में 'प्रसाद युग' की कल्पना की गई है। पता नहीं, समीक्षा के संदर्भ में शुक्ल युग क्यों नहीं लिखा गया? जितने संदर्भ उतने युग!"

डॉ. नगेंद्र भारतेंदु या द्विवेदी पर नाक-भौं चढ़ाते हैं तथा कहते हैं कि शुक्ल युग कहना औचित्यपूर्ण नहीं है। क्यों नहीं है क्या नई दिल्ली में दिवंगत प्रधानमंत्रियों के नाम पर स्थलों की क्या बाढ़ नहीं आ गई है? आधुनिक काल में विश्वविद्यालय का नाम स्थल के आधार न रखकर व्यक्ति विशेष के नाम पर नामकरण करने से कौन भी बाढ़ आ गई है? यथा, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, इंदिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय, राजर्षि टंडन मुक्त विद्यालय, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, हेमवती नंदन बहुगुणा विश्वविद्यालय आदि। नगरों, सड़कों के नाम भी व्यक्तिगत रखे जाते हैं और वर्तमान में भी वही स्थिति है।

डॉ. नगेन्द्र इस युग को पुनर्जागरण काल (भारतेंदु काल) कहना श्रेयस्कर समझते हैं। नाम की कोई समस्या नहीं युग विशेष को कोई भी नाम दिया जा सकता है।

काल सीमांकन

नाम से अधिक इतिहासकारों ने काल सीमा में मतभेद स्थापित किए हैं।

(i) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850-1885) के रचना काल को द ष्टिगत रखते संवत 1925-1950 विक्रमी की अवधि नई धारा अथवा प्रथम उत्थान की संज्ञा दी है तथा इस काल को हरिश्चन्द्र तथा उनके सहयोगी लेखकों के कृतित्व से सम द्ध माना है। किंतु शुक्ल जी द्वारा निर्धारित कालावधि से कुछ अन्य इतिहासकारों का वैमत्य है।

(ii) मिश्रबंधु - संवत् 1926 - 1945 वि. तक।

(iii) डॉ. राम कुमार वर्मा - संवत 1927 - 1957 वि. तक।

(iv) **डॉ. केशरी नारायण शुक्ल - संवत्** 1922 - 1957 **वि. तक।**

(v) **डॉ. नाम विलास शर्मा - संवत** 1925 - 1957 **वि. तक।**

(vi) **डॉ. नगेन्द्र - सन्** 1868 (1925 **वि.**) - 1900 **ई. तक।**

इतिहासकारों ने भारतेन्द्र युग का प्रारंभ संवत 1922-1927 **वि. तक माना है। समाप्ति संवत** 1945-1957 **वि. तक माना है।**

मेरी द ष्टि से भारतेंदु युग संवत 1925-1957 **वि. तक मानना श्रेयस्कर है।**

5. भारतेन्दु युगीन काव्य की प्रमुख प्रव त्तियाँ

आधुनिक काल का प्रारंभ भारतेन्दु के समय में हुआ है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपने युग के प्रमुख साहित्यकार थे। उनकी बहुआयामी साहित्य सेवा के आधार पर इस युग का नाम उनके ही नाम पर किया गया। भारतेन्दु युगीन कवियों की हिन्दी काव्य रचनाओं का फलक अत्यन्त विस्त त है। इस युग में ही गद्य साहित्य का अनूठा विकास हुआ है। गद्य की विविध विद्याएँ भारतेन्दु युग में अपने अनूठे और प्रेरक रूप में विकसित हुई हैं। इस काल की रचनाओं में एक तरफ मध्य युगीन रीति और भक्ति की प्रव त्तियाँ दिखाई देती हैं तो दूसरी ओर समकालीन परिवेश के प्रति अनूठी जागरूकता दिखाई देती है। इस काल का कवि समकालीन परिस्थितियों का मार्मिक और ह्रदयस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करने में अनूठी सफलता प्राप्त कर चुका है। भारतेन्दु युग की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1. **राष्ट्रीयता-**

भारतेन्दु युग की राजनीति में देशभक्ति की प्रबल धारा दिखाई देती है। ऐसी ही भावधारा इस काल के काव्य में मिलती है। इस काल की कविता में यदि विदेशी शासन के प्रति रोष है तो प्राचीन भारतीय आदर्श पर गर्व है। भारतेन्दु की पंक्तियाँ उद्धरणीय हैं-

"अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी

पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।"

इस काल का कवि भारतीय, राजनीति, धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक भावनाओं में अनुकूल उत्कर्ष देखना चाहता है। अतीत के प्रेरक प्रसंगों को प्रस्तुत कर कवि नवयुवकों में नव भाव संचार करना चाहता है। भारतेन्दु, प्रेमधन, मैथिलीशरण गुप्त आदि की कविताओं में देशभक्ति की प्रबल भावना अभिव्यंजित हुई है।

2. **सामाजिक चेतना-**

रीतिकालीन काव्य सुरा-सुन्दरी के चित्रण तक सीमित हो गया था। भारतेन्दु युग के साहित्य ने समाज की विभिन्न समस्याओं को व्यापक रूप में प्रस्तुत करने की सराहनीय भूमिका निभाई है। नारी शिक्षा, अस्प श्यता और विधवा विवाह का मार्मिक चित्रण भारतेन्दु युग की कविताओं में मिलता है। इस काल की कविता में एक तरफ मध्य वर्गीय समाज की विषमताओं को रूपायित किया गया है तो दूसरी तरफ समाज की रूढ़ियों और अंधविश्वासों का मुखर स्वर से विरोध किया गया है। इस काल की कविता में ब्रह्म समाज और आर्य समाज की नवीन सामाजिक चेतना उभरी है। सुधारवादी द ष्टिकोण इस काल की कविता की प्रमुख विशेषता है। भारतेन्दु ने 'अंधेर नगरी', 'भारत दुर्दशा' नाटक में वर्ण व्यवस्था और सामाजिक अंधेर के संकीर्ण विचारों का खुलकर विरोध किया है-

"बहुत हमने फैलाए धर्म।

बढ़ाया छुआछूत का कर्म।"

इस काल के काव्य में भारतीय समाज और स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेरक अनुराग दिखाई देता है। सामाजिक विषमता और निर्धनता को देखकर कवि का ह्रदय चीत्कार कर उठता है। यहाँ के जनजीवन के शिथिल विचारों अकाल और महंगाई में पिसते हुए मध्यम वर्ग को देखकर उनकी वाणी करुणा भाव से भीग उठती है-

"रोवहु सब मिलि, आवहु भारत भाई

हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।"

3. **भक्ति भावना**

भारतेन्दु युग में भक्ति भावना का सीमित और सामान्य रूप सामने आता है। इस काल की भक्ति भावना सम्बन्धी रचनाएँ भक्तिकाल की रचनाओं से बहुत भिन्न हैं। ऐसी रचनाओं में भक्ति और देश प्रेम को एक ही धरातल पर प्रस्तुत किया

गया है। जिसमें संवेदना का प्रबल रूप दिखाई देता है। इस काल की भक्ति में निर्गुण, वैष्णव और स्वदेशानुराग समन्वित तीन धाराएँ मिलती हैं। भक्ति भावना में उपदेशात्मक रूप है। ऐसी भक्ति भावना में माधुर्य भक्ति के साथ रीति पद्धति भी उभर आई है। यत्र तत्र राम और कृष्ण पर आधारित रचनाएं मिलती हैं। 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' ने निर्गुण भक्ति का पुट प्रस्तुत किया है-

"सांझ-सवेरे पंछी सब क्या करते हैं कुछ तेरा है
हम सब इक दिन उड़ जायेंगे यह दिन चार बसेरा है।"

ऐसी भक्ति भावना पर श ृंगार पद्धति का प्रभाव दिखाई देता है-

"सुखद सेज सोवत रघुनन्दन जनक लली संग कोरे
प्रीतम अंक लगी महाराणी, शापित सुनि खग सोरे।"

राम काव्य की अपेक्षा कृष्ण काव्य अधिक विस्त त रूप पा सका है। यत्र तत्र उर्दू शैली का भी रूप मिला है। अनेक रचनाओं में ईश्वर भक्ति और देश भक्ति का अनुपम समन्वय मिलता है। 'प्रताप नारायण मिश्र' की पंक्तियाँ उद्धरणीय है-

"हम आरत-भारत वासिनी पै अब दीन दयाल दया करिये।"

4. **श ृंगारिकता-**

भारतेन्दु काल में रस को काव्य की आत्मा मानकर रचना की जाती रही है। श ृंगार रस विविध रंगों के साथ सर्वत्र अल्पाधिक रूप में प्रयुक्त हुआ है। कृष्ण सन्दर्भ में तो सौन्दर्य और श ृंगार का वर्णन अत्यन्त प्रभावोत्पादक हो गया है। इस काल की श ृंगार भावना में संक्षिप्त नखशिख वर्णन है और षड़ ऋतु वर्णन और नायिका भेद के साथ उर्दू और अंग्रेजी की संवेदना और अभिव्यंजना भी प्रकट हुई है। भारतेन्दु की प्रेम सरोवर, प्रेम माधुरी, प्रेम तरंग, प्रेम फुलवारी में भक्ति और श ृंगार दोनों ही भावों का समावेश हुआ है। भारतेन्दु के प्रेम वर्णन की सरसता अवलोकनीय है-

"आजु लौं न मिले तो कहा हम तो तुमरे सव भांति कहावैं
मेरे उराहनों कहु नाहिं सबै फल आपुने भाग को पावैं
.... प्यारे जू है जग की यह रीति विदा की समे सब कण्ठ लगावै।"

5. **जनजीवन चित्रण-**

रीतिकालीन साहित्य राज दरबार के परिवेश में रचा गया और उसमें जनसामान्य के चित्रण का प्रायः अभाव ही रहा। भारतेन्दु युग का काव्य जन सामान्य के मध्य रखा गया है। उसमें जन सामान्य की समस्याओं का विशद और विस्त त चित्रण मिलता है। इस युग का प्रत्येक कवि रूढ़ियों कुरीतियों और अत्याचार आदि को समाप्त करने का प्रेरक स्वर प्रस्तुत करता है। क्योंकि रीतिकाल का कवि राजा को प्रसन्न देखना चाहता था तो भारतेन्दु युग का कवि जनसामान्य को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता था। वह स्वस्थ समाज और प्रसन्न मनुष्यों को देखने की इच्छा रखता है। यही कारण है कि इस युग की कविता में युगीन यथार्थ के साथ प्राचीन संस्कृति का अनुपम गौरव गान मिलता है।

6. **प्रकृति चित्रण-**

भारतेन्दु युग के कवियों ने उत्तर मध्य युग की उसी कमी को पूरा किया जिसमें प्रकृति के स्वतन्त्र और प्रेरक चित्रण का अभाव था। इस युग की कविता में प्रकृति-सौन्दर्य का स्वच्छन्द रूप मिलता है। प्रकृति के माध्यम से नायक नायिकाओं की मनोदशा का सुन्दर चित्रण किया गया है। प्रकृति के विभिन्न द श्यों के चित्रण में इस काल का कवि सराहनीय रूप में सफल हुआ है। प्रकृति का हरा भरा रूप, वीरान रूप, उत्प्रेरक रूप विभिन्न कविताओं में अपनी विशेषताओं के साथ प्रस्तुत हुआ है। प्रकृति का बिम्बात्मक और चित्रात्मक रूप निश्चय ही अवलोकनीय है।

"पहार अपार कैलास से कोटिन ऊँची शिखा लगी अम्बर चूमै
निहारत दीहि भ्रमैं पगिया गिरिजात उत्तंगता ऊपर झूमै।"

7. **काव्य रूप-**

भारतेन्दु युग की प्रायः सभी रचनाएँ मुक्तक काव्य पर आधारित हैं। 'हरिनाथ पाठक' की 'श्री ललित रामायण' और 'प्रेमधन' की 'जीर्ण जनपद' आदि कुछ एक प्रबन्धात्मक रचनाएँ अपवाद स्वरूप हैं। इस काल के अधिकांश कवियों ने गीत, लोक संगीत और विनोद से सम्बन्धित रचनाओं को मुक्तक में ही प्रस्तुत किया है। भारतेन्दु जैसे कुछ कवियों ने ग़ज़ल के रूप में भी रचनाएं प्रस्तुत की हैं। इनकी हिन्दी रचनाओं में उर्दू का भावात्मक रूप स्पष्ट दिखाई देता है। इस युग का काव्य परम्परागत मुक्तकों के साथ नवीन प्रयोग भी सामने आया है। इस काल में काव्य के साथ गद्य की निबन्ध, समीक्षा, उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, प्रहसन आदि विधाओं का सुन्दर विकास हुआ है।

8. **भाषायी चेतना-**

भारतेन्दु युग में राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रति प्रबल प्रेम दिखाई देता है। इस काल का कवि सहज, सुगम और उर्दू मिश्रित हिन्दी भाषा का प्रयोग करता था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की भाषा में भी उर्दू ही नहीं अनेक क्षेत्रीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग मिलता है। सरलता और सहजता के साथ भाषा में प्रभावोत्पादक रूप लाने के लिए लोकोक्ति और मुहावरों का भी अनुकरणीय प्रयोग इस काल की कविता की प्रमुख विशेषता है। इस काल की कविता में विभिन्न अलंकारों का सहज प्रयोग विशेष प्रभावोत्पादक बन गया है। सभी रसों का सुन्दर परिपाक भी मिलता है। हिन्दी के प्रति अनुपम अनुराग इस युग की कविता की प्रमुख विशेषता है।

"निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को सूल।"

भारतेन्दु युग की प्रव त्तियों पर विशद चिन्तन करने के पश्चात् यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि यह हिन्दी साहित्य का नवजागरण काल है जिसमें राष्ट्रीयता, सामाजिकता और भाषायी प्रेम की अनुपम त्रिवेणी बहती है।

6. भारतेन्दु युगीन प्रतिनिधि रचनाकार

भारतेन्दु युग के मूर्धन्य रचनाकार भारतेंदु हरिश्चन्द्र हैं उन्होंने अपने सहयोगियों का एक संगठन बनाया था जो 'भारतेंदु मंडल' के नाम से जाना जाता है जिसमें अनेक प्रमुख रचनाकार थे। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य गौण रचनाकारों का योगदान भारतेन्दु युग को प्राप्त था।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र -

भारतेंदु युग का नाम प्रमुख रचनाकार के नाम पर रखा गया। भारतेंदु ने युग में जन-जागरण ला दिया। इसीलिए इस युग को पुनर्जागरण काल भी कहा गया। भारतेंदु ने साहित्य को नवीन दिशा प्रदान की।

व्यक्तित्व -

कविवर भारतेंदु हरिश्चन्द्र का (सन् 1850-1885 ई0) इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीचंद की वंश परंपरा में जन्म हुआ था। उनके पिता बाबू गोपाल चंद्र 'गिरिधरदास' भी अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे। भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने पांच वर्ष की अवस्था अर्थात् बाल्यकाल में काव्य स जन प्रारंभ कर दिया था। पांच वर्ष की आयु में मां का स्वर्गवास हो गया, 10 वर्ष की अवस्था में पिता का। भारतेन्दु का मूल नाम हरिश्चन्द्र है। अल्पायु में ही हरिश्चन्द्र ने कवित्व प्रतिभा एवं सर्वतोमुखी रचना क्षमता का ऐसा परिचय दिया कि तत्कालीन साहित्यकारों तथा पत्रकारों ने सन् 1880 ई. में उन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया। भारतेंदु, कवि, साहित्यकार, पत्रकार सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी थे। 'कवि वचन सुधा' तथा 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' भारतेंदु के संपादन में प्रकाशित होने वाली प्रसिद्ध पत्रिकाएं थीं। साहित्य में नाटक, निबंध आदि की रचना द्वारा उन्होंने खड़ी बोली की गद्य शैली के निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान किया। उनकी कविताएं विविध-विषय-विभूषित हैं जिनमें भक्ति, श ंगारिकता, देश प्रेम, सामाजिक परिवेश तथा प्रकृति के विभिन्न संदर्भो को लेकर उन्होंने विपुल परिमाण में काव्य रचना की।

कृतित्व-

भारतेंदु ने काव्य, नाटक, स्त्री शिक्षा तथा इतिहास आदि पर लेखनी उठाई। 'भारतेंदु ग्रंथावली' उनके समग्र साहित्य का संकलन है।

काव्य

'प्रेम मालिका', 'सतसई श ंगार', 'भारत वीणा', 'प्रेम तरंग', 'भक्त सर्वस्व', 'प्रेम सरोवर', 'गीत गोविंद', वर्षा विनोद', 'विनय प्रेम-पचासा', 'प्रेम फुलवारी', 'वेणुगीत', 'दशरथ विलाप', 'फूलों का गुच्छा', 'विजयिनी-विजय-वैजयंती' आदि प्रमुख काव्य रचनाएं हैं।

नाटक

'नील देवी', 'भारत जननी', 'भारत दुर्दशा', 'प्रेम योगिनी', 'चन्द्रावली नाटिका', 'वैदिकी', 'हिंसा, हिंसा न भवति', 'सती प्रताप', दुर्लभ बंधु एवं 'अंधेर नगरी' आदि नाट्य कृतियां हैं। अन्य पुस्तक 'काल चक्र' है।

स्त्री शिक्षा - 'बालाबोधिनी'।

संपादन - 'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका'।

इतिहास - 'काश्मीर कुसुम', 'बादशाह दर्पण', 'अग्रवालों की उत्पत्ति', 'दिल्ली दरबार दर्पण', 'महाराष्ट्र देश का इतिहास'।

अनूदित - बंगला से हिंदी अनुवाद - 'विद्या सुंदर नाटक' 'मुद्राराक्षस', 'पाखंड विडंबन', 'धनंजय विजय'।

निबंध - 'सुलोचना', 'मदालसा', 'लीलावती', 'परिहास वंचक', 'कर्पूर मंजरी', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'कर्पूर मंजरी', 'सत्य हरिश्चन्द्र'।।

साहित्यिक विशेषताएंः

इनकी प्रमुख विशेषता यह है कि अपनी अनेक रचनाओं में जहां वे प्राचीन प्रव त्तियों का अनुगमन करते रहे हैं वहीं नवीन काव्य धारा के प्रवर्तन का श्रेय भी इन्हीं को है। राजभक्त होते हुए भी देश भक्त हैं, दास्य भक्ति के साथ साथ माधुर्य भक्ति का निर्वाह किया है। एक ओर उन्होंने नायक-नायिकाओं के सौंदर्य का चित्रण किया है तो दूसरी ओर उनके लिए नए कर्तव्य क्षेत्र भी निर्देशित किए हैं। शैली इतिव त्तात्मक होते हुए हास्य-व्यंग्य का तीखा प्रहार करने वाली भी है। अभिव्यंजना क्षेत्र में भी उन्होंने परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली प्रव त्तियों को स्वीकारा है। यह उनकी प्रयोगधर्मी मनोव त्ति का प्रमाण है। प्रबल हिंदीवादी होते हुए भी उन्होंने उर्दू शैली को कविता के लिए चुना है। काव्य भाषा हेतु ब्रजभाषा को अपनाया है किन्तु खड़ी बोली में 'दशरथ विलाप' तथा 'फूलों का गुच्छा' की रचना की है। काव्य रूपों की विविधता उनकी अनन्य विशेषता है। छंदोबद्धता का निर्वाह करते हुए भी गेय पद शैली को अपनाया है। भारतेंदु काव्य क्षेत्र के नवयुग में वे अग्रदूत थे। अपनी ओजस्विता, सरलता, भाव-व्यंजना, एवं प्रभ विष्णुता में उनका काव्य इतना सशक्त एवं प्राणवान हो गया है कि तत्कालीन सभी कवियों को अत्यधिक प्रभावित किया है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का भाषा और साहित्य दोनों पर अत्यधिक गहन प्रभाव पड़ा है। उन्होंने जिस प्रकार गद्य भाषा को परिमार्जित करके उसे अति मधुर, चलता एवं स्वच्छ स्वरूप प्रदान किया है उसी प्रकार हिंदी साहित्य को भी नए मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया है। भाषा को संस्कारित किया है। भारतेंदु को वर्तमान गद्य का प्रवर्तक माना गया। भाषा का शिष्ट सामान्य निखरा हुआ रूप भारतेंदु की कला ने उपस्थित किया। पुराने पड़े हुए शब्दों का स्थानांतरण करके काव्य भाषा में भी वे चलतापन एवं सफाई लाने में सफल हुए हैं।

साहित्य को नवीन मार्ग पर लाकर उसे शिक्षित जनता का सहचर बनाया। भारतेंदु ने पुराने रास्ते पर पड़े हुए साहित्य को दूसरी ओर मोड़कर जन-जन के साथ जोड़ दिया। जनता एवं साहित्य के बीच बढ़ती हुई खाईं को उन्होंने पाट दिया। साहित्य को नवीन प्रव त्ति एवं नई दिशा देने का श्रेय भारतेन्दु को है। हरिश्चन्द्र की भाषा को हरिश्चन्द्री हिंदी' नाम दिया गया। इसके आविर्भाव के साथ नए-नए लेखक तैयार होने लगे।

भारतेन्दु ने दो शैलियों को व्यवहृत किया है - भावावेश की शैली तथा तथ्य निरूपण की शैली। भावावेश में उनकी भाषा में वाक्य प्रायः लघुतर होते जाते हैं तथा पदावली सरल आम बोल-चाल की होती है जिसमें बहु प्रचलित आम बोल चाल में प्रयोग में आने वाले अरबी फारसी शब्दों का भी समावेश कभी कभी हो जाता है।

जहां चित्त के किसी स्थायी क्षोभ की व्यंजना है तथा चिंतन हेतु अवकाश मिलते ही उनकी भाषा में साधुता एवं गंभीरता आने के साथ साथ वाक्यों का आयाम विस्त त होने लगता है किन्तु अन्वय में जटिलता नहीं आने पाती है।

तथ्य निरूपण अथवा वस्तु वर्णन के अवसर पर उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ, तत्सम शब्दावली प्रधान हो जाती है किन्तु इसे भारतेन्दु की वास्तविक भाषा नहीं कहा जा सकता। उनकी वास्तविक भाषा संस्कृतनिष्ठ नहीं थी। भाषा चाहे जैसी हो उनके वाक्यों के अन्वय में जटिलता को स्थान न मिलकर सरलता विद्यमान थी। वाग्वैदंग्ध्य या चमत्कार के स्थान पर उनके भावों में हृदय स्पर्शिता एवं मार्मिकता विद्यमान है।

पंडित प्रताप नारायण मिश्र-

भारतेंदु मंडल में भारतेंदु के पश्चात् प्रतापनारायण मिश्र (सन् 1856 - 1894 ई.) का प्रमुख स्थान है।

व्यक्तित्व -

प्रतापनारायण मिश्र प्रतिभा सम्पन्न निबंधकार थे। इनमें रचना क्षमता की अद्वितीयता विद्यमान थी।

किसी भी सामान्य से सामान्य विषय पर निबंध लिख देना इनके बाएं हाथ का काम था। लेखन कला में भारतेंदु हरिश्चन्द्र को अपना आदर्श स्वीकारा। फिर भी मिश्र की शैली में भारतेंदु की शैली से अत्यधिक भिन्नता द ष्टिगोचर होती है। ये विनोदी स्वभाव के थे। वाग्वैग्ध्य इनकी वाणी की प्रमुख विशेषता थी।

कृतित्व-

अनेक निबंध लिखे जिनमें प्रमुख निबंध - 'नाखून क्यों बढ़ते हैं'? 'मूंछ', 'भौं', 'दांत', 'पेट' आदि शारीरिक अंगों पर लिखे गए निबंध। 'ट', 'त' जैसे वर्णमाला के अक्षरों पर लिखे गए निबंध। 'बेगार', 'रिश्वत', 'देशोन्नति', 'बाल-शिक्षा', 'धर्म और मत', 'उन्नति

की धूम', 'गोरक्षा', 'बाल विवाह', 'विलायत यात्रा', 'अपव्यय' आदि विषयों से संबंधित विचार प्रधान निबंध। 'न्याय', 'ममता', 'सत्य', 'स्वतन्त्रता' आदि वैचारिक निबंध। 'घूरे क लत्ता बिनै', 'कनातन का डौल बांधै', 'समझदार की मौत है', 'बात', 'मनोयोग', 'व द्ध', आदि कहावतों लोकोक्तियों, सूक्तियों को शीर्षक बनाकर लिखे गए निबंध।

नाटक-

'कलि कौतुक रूपक', 'कलि प्रभाव', 'हठी हमीर', 'गौ संकट', 'जुवारी खुवारी'।

साहित्यिक विशेषताएं

मिश्र की प्रमुख विशेषताएं किसी भी सामान्य से सामान्य विषय को शीर्षक बना कर निबंध लिख देना थी। विचार प्रधान विषयों का प्रतिपादन अपेक्षाकृत संयमित ढंग से किया है अन्यथा उनका विनोदी स्वभाव ही द ष्टिगोचर होता है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता पाठकों के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाना है। उस स्तर पर वे अद्वितीय हैं। जीवन के प्रति उनका द ष्टिकोण सदैव सुधारात्मक रहा है। रूढ़ियों का उन्होंने कहीं समर्थन नहीं किया है अपितु उनका विरोध किया है। निबंधों में इनका सच्चा देशभक्त, समाज सुधारक, एवं हिंदी प्रेमी रूप ही परिलक्षित होता है। उन्होंने भारतेंदु के आदर्श को अपना आदर्श बनाया तथा आजीवन इन्हीं को प्रशस्त करने में लगे रहे।

मिश्र के निबंधों में उनकी स्वच्छंदता, आत्म व्यंजकता, हास्यप्रियता, सरलता, वाग्वैदग्ध्य, लोकोन्मुखता, व्यंग्य-क्षमता, चपलता तथा सहजता सर्वत्र द ष्टिगोचर होती है। यद्यपि उनकी प्रव त्ति हास्य विनोद प्रधान थी किंतु जब गंभीर विषयों पर वे निबंध लिखते थे तब संयत एवं साधु भाषा का व्यवहार करते थे।

पंडित बालकृष्ण भट्ट-

पंडित बाल कृष्ण भट्ट (सन् 1844 - 1914 ई0) भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों में प्रमुख रहे हैं।

व्यक्तित्व -

संवत् 1933 वि. में पंडित बाल कृष्ण भट्ट ने गद्य साहित्य का मार्ग प्रशस्त करने हेतु 'हिन्दी प्रदीप' का संपादन प्रारंभ किया। सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक एवं नैतिक आदि विभिन्न विषयों पर लिखे गए लघु निबंधों - जिनकी संख्या लगभग 50 से भी अधिक रही होगी - बत्तीस वर्षो तक प्रकाशित करते रहे। भट्ट संस्कृत के पंडित थे। अंग्रेजी साहित्य का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। तत्कालीन वैज्ञानिक प्रगति से वे पूर्णरूपेण अवगत थे। वे अपने युग के सर्वाधिक प्रगतिशील व्यक्ति थे। भट्ट अपने विचारात्मक निबंधों के लिए प्रसिद्ध हैं।

कृतित्व-

उन्होंने छोटे-छोटे अनेक निबंध लिखे। वे कहा करते थे कि न जाने कैसे लोग बड़े-बड़े लेख लिख डालते हैं।

निबंध-

(i) वैज्ञानिक - 'वायु', 'प्रकाश', 'धूम केतु', 'पेड़', 'सीसा', 'वनस्पति', 'विज्ञान', 'भूगर्भ निरूपण', 'पदार्थवाद' आदि।

(ii) शारीरिक अंग - 'आंख', 'कान', 'नाक', आदि पर निबंध लिखे। साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है, प्रमुख निबंध हैं। 'प्रेम और भक्ति', 'तर्क और विश्वास', 'ज्ञान और भक्ति', 'विश्वास, प्रीति', 'अभिलाषा', 'आशा', 'स्पर्धा', 'धैर्य', 'माधुर्य', 'आत्म त्याग', 'सुख क्या है?' आदि प्रमुख वैचारिक निबंध हैं। 'सच्ची कविता', 'भाषा कैसी होनी चाहिए', 'उपमा', उपयुक्त विशेषण और विशेष्य, 'खड़ी और पड़ी बोली का विचार', 'हिंदी की पुकार', आदि साहित्यिक चिंतन प्रधान निबंध हैं।

उपन्यास- 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान और एक सुजान' आदि।

संपादन एवं प्रकाशन - 'हिन्दी प्रदीप'।

साहित्यिक विशेषताएंः-

उनके विचारात्मक निबंधों में उनकी खीझ, आक्रोश, भावावेश तथा झुंझलाहट स्पष्ट द ष्टिगोचर होती है। साथ ही उनका खरापन भी उभरकर आ जाता है। देशभक्ति पर सबसे अधिक बल दिया है। अंग्रेजों द्वारा लगाए जाने वाले टैक्स, पुलिस अत्याचार,

कृषि की दुर्गति, हिंदी की उपेक्षा, हिंदुओं और मुसलमानों में फूट डालने वाली नीति आदि का भट्ट ने निर्भय होकर विरोध किया है। राजनीतिक विचारधारा संबंधी उनके प्रेरणा-स्रोत बाल गंगाधर तिलक थे। भट्ट तिलक के समर्थक थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नीतियों के विरोधी थे। वे निर्भ्रांत रूप से यह स्वीकारते थे कि कांग्रेस अंग्रेजी सरकार को द ढ़ और पुष्ट करने हेतु स्थापित की गई है। सामाजिक चेतना की द ष्टि से भट्ट ने अपने युग का अतिक्रमण किया था। वे सभी प्रकार के बाह्याडंबरों का विरोध करते थे। विधवा-विवाह का समर्थन किया। अंध-विश्वास, बाल-विवाह, छुआछूत, पर्दा प्रथा, अनमेल विवाह, जाति पांति के भेद भाव आदि का प्रबल विरोध किया। उनकी यह प्रबल धारणा एवं मान्यता थी कि सुखमय दाम्पत्य जीवन हेतु नारी का शिक्षित होना, विवेकी होना तथा आधुनिक होना अनिवार्यता है।

भट्ट की भाषा एवं साहित्यिक निबंधों का विशेष महत्व है। भट्ट द्वारा लिखित निबंध, 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' आज भी साहित्य चिंतन के क्षेत्र में भट्ट की क्रांति दर्शिता का परिचायक बना हुआ है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भट्ट ने शारीरिक अंगों, प्रकृति, विज्ञान, साहित्य, भाषा और साहित्य चिंतन, एवं मनोविज्ञान आदि अनेक विषयों पर निबंध लिखकर अपने को बहुत आयामी बना दिया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से पूर्व ही मनोवैज्ञानिक विषयों पर गंभीर चिंतन का कार्य प्रारंभ हो चुका था जिसका श्रेय पं. बाल कृष्ण भट्ट को है। इनका उद्देश्य मनोव त्तियों को समक्ष प्रस्तुत करके उनके नैतिक प्रयोजन को उकेरना था। समाज कल्याण की द ष्टि से उसका आकलन किया है। वैज्ञानिक विषयों का प्रतिपादन अति सहजता से किया है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से पूर्व ही भट्ट ने ज्ञान कांड के प्रथम अध्याय का प्रारंभ कर दिया था।

शैली की द ष्टि से भट्ट के निबंधों का अत्यधिक महत्व है। निबंधकार का व्यक्तित्व निबंधों में पूर्ण रूपेण व्यंजित हुआ है। मानसिक द ढ़ता, देश-प्रेम, आत्म विश्वास, विवेक, खरापन, त्याग, निडरता, कष्ट सहिष्णुता, उदारता एवं निष्ठा से सम द्ध उनके व्यक्तित्व की आभा से उनके निबंध दीप्त हैं। निबंधों में प्रचलित वर्गीकरण की द ष्टि से उनके अधिकांश निबंध विचारात्मक कोटि के हैं। किन्तु उन्होंने वर्णात्मक, वर्णनात्मक, भावात्मक, कथात्मक एवं हास्य व्यंग्य प्रधान विविध प्रकार के निबंधों की रचना की है। भट्ट के सभी निबंध लोक हितकारी होने के परिणामस्वरूप कहीं न कहीं भावना से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं।

भाषा जीवंत भाव दीप्त एवं व्यावहारिक है। यत्र-तत्र समास गर्भित पदों का प्रयोग मिल जाता है। भाषा परिष्कृत एवं परिमार्जित नहीं है। भारतेंदु मंडल के अन्य रचनाकारों की भांति इसका-इस्के, उसके-उस्के, ले-लै, दे-दै, करना-किया आदि बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है। अन्यत्र आकर-आय, जाकर-जाय आदि के प्रयोग भी हुए हैं। इस द ष्टि से इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि भट्ट की भाषा भारतेन्दु युगीन भाषा का पूरी तरह अतिक्रमण नहीं कर सकी है। अपनी मौज में आकर भट्ट ने अरबी-फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। स्थान-स्थान पर कोष्ठकों में 'एजूकेशन', 'सोसायटी', 'नेशनल विगर एण्ड स्ट्रेन्थ', 'स्टैंडर्ड', 'करेक्टर' आदि आंग्ल भाषा के शब्दों का रोमन लिपि में प्रयोग किया गया है। यह भट्ट की शैली एवं भाषा का निरालापन है। पदविन्यास अत्यधिक रोचक एवं अनूठापन लिए हुए है। हास्य विनोद के साथ साथ कहीं कहीं उनका चिड़-चिड़ा स्वभाव भी झलकता है।

मुहावरों की उनकी सूझ बहुत अच्छी थी। शारीरिक अंगों से संबंधित मुहावरों की झड़ी लगा दी है। आंख को लेकर आंख आना, -जाना, -उठना -बैठना, -लड़ना, -लगना, -मारना आदि।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भट्ट के विषय में लिखा है-

"हिन्दी प्रदीप" द्वारा भट्ट जी संस्कृत साहित्य और संस्कृत के कवियों का परिचय अपने पाठकों को समय-समय पर कराते रहे। पंडित प्रताप नारायण मिश्र और पंडित बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी गद्य साहित्य में वही काम किया है जो अंग्रेजी गद्य साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया था।"

'आत्म निर्भरता' नामक निबंध में भट्ट ने भारतवर्ष की जनसंख्या पर करारा व्यग्य किया है और कूकर-सूकर की भांति पराश्रित दास दस संतानों से एक संतान को श्रेयस्कर माना है।

उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी प्रेमधन

व्यक्तित्व - बदरीनारायण चौधरी का उपनाम 'प्रेमधन' था। नाम से पूर्व उपाध्याय भी लगाते थे। पंडित शब्द का प्रयोग नाम से पूर्व प्रायः सभी हिंदी रचनाकार करते थे। इनका जन्म सन् 1855 ई. में हुआ था। 68 वर्ष की अवस्था में इनकी सन् 1823 ई. में म त्यु हो गई। गद्य और पद्य दोनों विधाओं में रचना की।

कृतित्व - निबंध, कविता तथा नाटक को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

नाटक - 'भारत सौभाग्य', 'वारांगना-रहस्य', 'प्रयाग रामागमन', 'व द्ध विलाप'।

समालोचना - बाबू गदाधर सिंह के अनुवाद 'वंग विजेता' तथा लाला श्रीनिवास दास के 'संयोगिता स्वयंवर' की विशद एवं कठोर समालोचना लिखकर हिंदी साहित्य में हिंदी समालोचना का सूत्रपात किया।

संपादन - 'नागरी नीरद' साप्ताहिक पत्र एवं 'आनंद कादंबिनी' का संपादन किया।

साहित्यिक विशेषताएं -

इनकी शैली विलक्षण थी। वे गद्य रचना को कला तथा कलम की कारीगरी स्वीकारने वाले लेखक थे। कभी-कभी ऐसे लंबे पेचीदे गद्य का स जन करते थे कि पाठक एक डेढ़ प्रघटक के लंबे वाक्यों में उलझ जाता था। ये वाक्य नहीं वाक्यातीत महाकाव्य या प्रोक्तियां होती थीं। अनुप्रास एवं अनूठे पद-विन्यास की ओर इनका विशेष ध्यान होता था। किसी बात को साधारण ढंग से कह जाने को ही वे लिखना नहीं कहते थे। लेख लिखने के पश्चात् कई बार उसको पढ़कर उसका परिष्कार एवं परिमार्जन कर लेने के बाद ही प्रकाशन हेतु देते थे। भारतेंदु के घनिष्ठ होकर भी उनके उतावलेपन की आलोचना करने से नहीं चूकते थे। उनका कहना था कि बाबू हरिश्चन्द्र अपनी उमंग में जो कुछ लिख जाते थे उसे यदि एक बार और देखकर परिमार्जित कर लिया करते तो वह और भी सुडौल एवं सुंदर हो जाता। एक बार उन्होंने रामचन्द्र शुक्ल से कांग्रेस के विभाजन पर नोट लिखने के लिए कहा। शुक्ल द्वारा लिखे गए वाक्य को देखकर कहा कि इसको यों कर दीजिए -

"दोनों दलों की दलादली में दलपति का विचार भी दलदल में फंसा रहा।" भाषा अनुप्रासमयी और चुह-चुहाती हुई होने पर भी उनका पद विन्यास व्यर्थ के आडंबर के रूप में नहीं होता था। उनके लेखों में अर्थ गांभीर्य एवं वैचारित सूक्ष्मता विद्यमान रहती थी। अनेक कविताएं तथा नाटक भी लिखे।

'आनंद कादंबिनी' का संपादन अपने वैचारिक भावों के अंकन हेतु ही किया। उसमें अन्यों को छपने का अवसर यदा-कदा ही मिलता था। इसी को द ष्टिगत रखते हुए भारतेंदु ने कहा था यह पुस्तक नहीं, पत्र है अपने अलावा अन्यों के लेख का प्रकाशन अनिवार्य है। यह आवश्यक नहीं कि सभी लेखक एक जैसे हों। 'कादंबिनी' के समाचारों में भी कभी-कभी भाषा की रंगीनी द ष्टिगोचर होती थी। 'नागरीनीरद' के संपादकीय की भाषा संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक होती थी।

समालोचना का सूत्रपात हिंदी में बदरीनारायण चौधरी ने किया।

भारतेंदु मंडल के प्रमुख साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट तथा बदरीनारायण चौधरी थे।

अन्य साहित्यकारों में लाला श्री निवास दास, राजकुमार ठाकुर जगमोहन सिंह, बाबू तोता राम, केशवराम भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, अंबिका दत्त व्यास, मोहन लाल विष्णु लाल पंड्या, भीम सेन शर्मा, कार्तिक प्रसाद खत्री, दुर्गा प्रसाद मिश्र, सदानंद मिश्र, छोटे लाल मिश्र, जगन्नाथ खन्ना, गोपी नाथ, राम पाले सिंह, राम कृष्ण वर्मा, श्रीनिवास दास, राधा कृष्ण दास, गदाधर सिंह, राधाकृष्ण दास, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, विश्वनाथ सिंह, गोपाल चंद, लक्ष्मी शंकर मिश्र, रामदीन सिंह, रविदत्त शुक्ल, गौरी दत्त आदि रचनाकारों ने आधुनिक हिंदी साहित्य के भारतेंदु युग का सहयोग करके हिंदी साहित्य के विकास में योगदान किया। इसी युग में काशी में 'नागरी प्रचारिनी सभा' की स्थापना हुई जिसने पुस्तक प्रकाशन एवं पत्रिका प्रकाशन का कार्य किया।

भारतेंदु मंडल के भारतेंदु हरिश्चन्द्र, पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पंडित बालकृष्ण भट्ट एवं उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' प्रमुख साहित्यकार हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक रचनाकारों तथा संस्थाओं ने भारतेंदु युग के विभिन्न क्रियाकलापों में योगदान किया। वे निम्नलिखित हैं-

लाला श्रीनिवास दास- इन्होंने नाटक और उपन्यास लिखे। संसार को ऊँचा नीचा समझने वाले पुरुष थे। इनका जन्म सन् 1851 एवं म त्यु 1886 में हुई।

क तित्व -

नाटक - 'तप्तासंवरण', 'संयोगिता स्वयंवर' तथा 'रणधीर-प्रेम मोहिनी'।

उपन्यास - 'परीक्षा गुरु'।

साहित्यिक विशेषताएं -

श्रीनिवास दास व्यावहारिक साहित्यकार थे। भाषा संयत तथा साफ सुथरी एवं रचना अति उद्देश्यपूर्ण है। अति भोजन, अत्यधिक परोपकार, अधर्मियों की सहायता, कुपात्र में भक्ति, न्यायपरता की अधिकता, अत्यंत बुद्धि व त्ति, आदि पर करारा व्यंग्य करते हुए अति की वर्जना की है। आनुषंगिकता का समर्थन किया है।

राजकुमार ठाकुर जगमोहन सिंह- ठाकुर जगमोहन सिंह (सन् 1857-1899 ई0) मध्य प्रदेश की विजय राघवगढ़ रियासत के राजकुमार थे। शिक्षा प्राप्त करने काशी चले गये। जहां संस्कृत एवं अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की। अध्ययन काल में भारतेंदु हरिश्चन्द्र से उनका संपर्क हो गया किंतु भारतेंदु की रचना शैली का प्रभाव उन पर वैसा नहीं पड़ा जैसा भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों पर पड़ा। वे संस्कृत साहित्य और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता तथा हिंदी के एक प्रेम पथिक कवि एवं माधुर्यपूर्ण गद्य लेखक थे। प्राचीन संस्कृत साहित्य के अभ्यासी तथा विंध्याटवी के रमणीय प्रदेश के निवासी होने के परिणामस्वरूप विविध भावमयी प्रकृति के रूप माधुर्य की जैसी सच्ची परख, जैसी सच्ची अनुभूति इनमें थी वैसी उस काल के किसी अन्य हिन्दी कवि या लेखक में नहीं देखी जाती है।

कृतित्व

काव्य कृतियां - 'प्रेम संपत्ति लता', 'श्याम लता', 'श्यामा सरोजिनी', एवं 'देवयानी'।

उपन्यास - 'श्यामा स्वप्न'।

अनूदित - 'ऋतु संहार' एवं 'मेघदूत' (ब्रजभाषा)।

साहित्यिक विशेषताएं - श ंगार वर्णन एवं प्रकृति सौंदर्य की अवधारणा उनकी मुख्य काव्य प्रव त्तियां हैं जो उनकी काव्य कृतियों में विद्यमान है। उपन्यास में प्रसंगवसात कुछ कविताओं का समावेश सुंदर बन पड़ा है। जगमोहन सिंह में काव्य रचना की स्वाभाविक प्रतिभा थी। वे भावुक मनोव त्ति के कवि थे। कल्पना लालित्य, भावुकता, चित्र शैली, और ब्रजभाषा की सरसता एवं मधुरता उनकी रचनाओं की अन्यतम विशेषताएं हैं। अलंकारों का अयत्नज सुंदर समावेश है जो काव्य को मनोरंजकता प्रदान करने में सहयोगी है। अपने हृदय पर अंकित भारतीय ग्राम्य जीवन के माधुर्य का जो संस्कार ठाकुर साहब ने 'श्यामा स्वप्न' में व्यक्त किया है उसकी सरसता निराली है। ठाकुर जगमोहन सिंह ने नरक्षेत्र के सौंदर्य को प्रकृति के अन्य क्षेत्रों के सौंदर्य के मेल में देखा है। प्राचीन संस्कृत के साथ भारतभूमि की प्यारी रूपरेखा को मन में बसाने वाले ये पहले हिंदी रचनाकार हैं।

कवियों के पुराने प्यार की बोली में देश की द श्यावली को समक्ष रखने का मूक समर्थन तो इन्होंने किया ही है साथ ही भावप्रबलता से प्रेरित कल्पना के विप्लव एवं विक्षेपण को अंकित करने वाली एक प्रकार की प्रलापशैली भी इन्होंनें निकाली है जिसमें रूप विधान की विलक्षणता विद्यमान थी न कि शब्द विधान।

बाबू तोता राम - ये हरिश्चन्द्र चंद्रिका के लेखकों में से हैं। आजीवन हिंदी के प्रचार एवं प्रसार में तत्पर रहे। साहित्य स जन कर सभा के लिए अर्पित कर दिया।

सभा की स्थापना - 'भाषा संवद्र्धिनी' सभा की स्थापना की।

क तित्व

पत्र - 'भारत बंधु' साप्ताहिक पत्र।

अनूदित - 'केटो कृतांत नाटक', 'स्त्री सुबोधिनी'।

साहित्यिक विशेषताएं : भाषा साधारण अर्थात् विशेषता रहित है।

पंडित केशव राम भट्ट - इन्होंने बिहार प्रांत में हिन्दी प्रचार-प्रसार हेतु अनेक यत्न किए।

कृतित्व

नाटक - 'शमशाद सौसन' तथा 'सज्जाद संबुल'।

पत्र - 'बिहार बंधु' साप्ताहिक पत्र।

साहित्यिक विशेषताएं - भाषा - उर्दू में लेखन।

पंडित राधाचरण गोस्वामी - 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' के प्रभाव से समाज सुधार एवं देशभक्ति का भाव जाग त हुआ।

कृतित्व - 'विदेश यात्रा विचार' तथा 'विधवा विवाह विवरण' नामक दो पुस्तकें लिखीं।

पत्र संपादन - भारतेंदु नामक पत्र निकाला।

अंबिका दत्त व्यास - कविवर दुर्गा दत्त व्यास के पुत्र अंबिका दत्त व्यास (सन् 1858-1900 ई) काशी निवासी सुकवि थे। वे संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान थे तथा दोनों भाषाओं में साहित्य स जन का कार्य करते थे।

कृतित्व -

काव्य - 'पावस पचासा', 'सुकवि सतसई' तथा 'हो हो होरी' काव्य कृतियां हैं।

प्रबंध काव्य - 'कंस वध' (अपूर्ण)। खड़ी बोली। 'ललिता नाटिका', 'पावस पचासा', 'गद्य मीमांसा'।

नाटक - 'भारत सौभाग्य', 'गो संकट नाटक', 'मरहेट्टा नाटक'।

संपादन - पीयूष - 'प्रवाह'।

कुंडलिया - समस्यापूर्ति - 'बिहारी विहार', 'अवतार मीमांसा'।

साहित्यिक विशेषताएं - अधिकांश रचनाएं ललित ब्रज भाषा में की गई। खड़ी बोली में 'कंस वध' प्रबंध काव्य की रचना प्रारंभ की थी किंतु इसके मात्र तीन सर्ग ही लिखे गए हैं। प्रसिद्ध रचना 'बिहारी विहार' है जिसमें महाकवि बिहारी के दोहों का कुडलिया छंद में भाव विस्तार किया गया है। उनके द्वारा लिखित समस्या पूर्तियां भी उपलब्ध होती हैं। नाटकों में कुछ गेय पदों को सम्मिलित किया गया है। व्यास की प्राचीन भारतीय संस्कृति में विशेष आस्था थी जिसे प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त करने की अपेक्षा उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता के दोषों को अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है। उन्होंनें सरल एवं कोमल कांत पदावली को वरीयता दी है। इन्होंने - इनने, उन्होंने - उनने का प्रयोग किया है।

पंडित मोहन लाल विष्णु लाल पंड्या - पंडित मोहन लाल विष्णुलाल पंड्या (सन् 1850-1912 ई) ने गिरती दशा में 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' को सहारा दिया था तथा उसमें अपना नाम भी जोड़ा था। लोग इनकी वेशभूषा, बोल चाल से इन्हें इतिहासवेत्ता समझते थे। कविराज श्यामल दान जी ने जब अपने 'प थ्वीराज चरित्र' ग्रंथ के द्वारा चंदवरदायी कृत 'प थ्वीराज रासो' को जाली ग्रंथ प्रमाणित किया था उस समय इन्होंने 'रासो संरक्षा' की रचना कर उसे प्रामाणित महाकाव्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया था।

कृतित्व - 'रासो - संरक्षा'।

पंडित भीमसेन शर्मा - पहले ये स्वामी दयानंद सरस्वती के दायें हाथ थे। संवत् 1940 - 1942 वि. के मध्य इन्होंने धर्म संबंधी अनेक पुस्तकें हिंदी में लिखी एवं संस्कृत ग्रंथों के हिंदी भाष्य भी प्रकाशित किए।

कृतित्व - 'आर्य - सिद्धान्त' नामक मासिक पत्र।

'संस्कृत भाषा की अद्भुत शक्ति' निबन्ध।

साहित्यिक विशेषताएं - आर्य भाषा के संबंध में इनका मत विलक्षण था। निबंध को आधार मानकर इन्होंने अरबी-फारसी के शब्दों को संस्कृत का बना दिया जिसके लिए अेनेक तर्क उपस्थित किए - दुशमन - दुःशमन, सिफारिश - क्षिप्राशिष, चश्मा - चक्ष्मा, शिकायत - शिक्षायत्न आदि।

भारतेंदु के आविर्भाव के साथ-साथ साहित्यकारों का एक मंडल 'भारतेंदु मंडल' के नाम से खड़ा हो गया था। जिसके अतिरिक्त अन्य साहित्यकार भी हिंदी की सेवा में उतर पड़े थे उसी प्रकार पत्र-पत्रिकाएं भी देश के कोने-कोने में प्रकाशित होकर हिंदी सेवा में संलग्न हो गई थीं।

बाबू कार्तिका प्रसाद खत्री-

कोलकाता से हिंदी का एक अच्छा पत्र और पत्रिका निकालने का सर्वप्रथम प्रयत्न करने वाले बाबू कार्तिका प्रसाद खत्री थे। उन्होंने हिन्दी में पाठक पैदा करने हेतु दौड़ धूप की। घर जा-जाकर पत्र सुनाकर आते थे।

कृतित्व - सन् 1928 ई. में 'हिन्दी दीप्ति प्रकाश' नाम का संवाद पत्र तथा 'प्रेम विलासिनी' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया।

पंडित दुर्गा प्रसाद मिश्र, पंडित छोटू लाल मिश्र, पंडित सदानंद मिश्र, बाबू जगन्नाथ खन्ना - संवत् 1934 वि. में इन सभी के प्रयास से कोलकाता में 'भारत मित्र कमेटी' की स्थापना हुई तथा 'भारत मित्र' पत्र निकला। इसका बहुत दिनों तक हिंदी संवाद पत्रों में उच्च स्थान रहा। इसका प्रसार-प्रचार वर्तमान काल में भी धूमधाम से चल रहा है।

पंडित गोपी नाथ- 'कवि वचन सुधा' की मनोहर लेखन शैली से प्रभावित, भाषा पर मुग्ध होकर गोपीनाथ ने पत्रिका संचालन किया।

कृतित्व-पत्रिका- संवत 1934 - 'मित्र विलास'।

साहित्यिक विशेषताएं- भाषा अति सुष्ठु एवं ओजस्विनी।

पंडित दुर्गा प्रसाद मिश्र-

कृतित्व पत्र- संवत् 135 - 'उचित वक्ता' - कोलकाता।

सदानंद मिश्र-

कृतित्व पत्र- संवत् 1935 - 'सार सुधा निधि' कोलकाता।

राजा रामपाल सिंह- काला कांकर निवासी मनस्वी एवं देशभक्त।

कृतित्व पत्र- संवत् 1940 - 'हिंदोस्थान'- इंग्लैंड। भारतेंदु के स्वर्गवासी हो जाने पर संवत् 1942 में इस पत्र ने हिंदी दैनिक का रूप धारण कर लिया और इसके संपादक - पं. मदन मोहन मालवीय, पंडित प्रताप नारायण मिश्र एवं बाल मुकुंद गुप्त रहे।

बाबू रामकृष्ण वर्मा-

कृतित्व पत्र- सन् 1884 - 'भारत जीवन' काशी।

अनूदित नाटक - वीर नारी, पद्मावती, कृष्ण कुमारी।

श्रीनिवास दास-

कृतित्व - उपन्यास - परीक्षा गुरु।

बाबू गदाधर सिंह

कृतित्व

अनूदित उपन्यास- 'बंगविजेता', 'दुर्गेशनंदिनी' बंगला से हिंदी।

राधाकृष्ण दास- भारतेंदु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई राधाकृष्ण दास (सन् 1865 - 1907 ई.) बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार थे। कविता के अलावा नाटक, उपन्यास एवं आलोचना के क्षेत्रों में सराहनीय साहित्य रचना की।

कृतित्व-

कविताएं- 'भारत बारह मासा', 'देश दशा'।

नाटक- 'दुःखिनी बाला', 'महाराणा प्रताप'।

साहित्यिक विशेषताएं- उनकी कविताओं में भक्ति, श्ृंगार एवं समकालीन सामाजिक-राजनीतिक चेतना को विशेष महत्व दिया गया है। समसामयिकता की प्रधानता है। प्रकृति के सुंदर चित्र भी दर्शनीय हैं। राधा कृष्ण के प्रेम निरूपण में भक्ति एवं रीति कालीन वर्णन परंपरा का उन पर समान रूप से प्रभाव द ष्टिगोचर होता है। अंबिका दत्त व्यास की परंपरा का अनुगमन करते हुए उन्होंने रहीम के दोहों को विस्तार देते हुए कुंडलिया की रचना की। ब्रजभाषा की कविताओं में मधुरता एवं खड़ी बोली की रचनाओं में प्रसाद गुण पर महत्व दिया गया है।

सन् 1884 ई. में हिंदी एवं नागरी के प्रचार प्रसार हेतु प्रयाग में 'हिंदी-उद्धारिणी प्रतिनिधि मध्य सभा' की स्थापना हुई।

बाबू श्याम सुंदर दास, पंडित राम नारायण मिश्र, ठाकुर शिव कुमार सिंह- जैसे उत्साही छात्रों ने संवत् 1950 में 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना की। आदि से अंत तक बाबू श्याम सुंदर दास प्राण स्वरूप स्थित होकर तत्पर रहे। इसके प्रथम सभापति बाबू राधा कृष्ण दास हुए। इसके सहायकों में रायबहादुर पंडित लक्ष्मी शंकर मिश्र, स्वामी बाबू राम दीन सिंह, बाबू राम कृष्ण वर्मा, बाबू गदाधर सिंह तथा बाबू कार्तिका प्रसाद के नाम प्रमुख हैं।

इस सभा का मूल उद्देश्य नागरी अक्षरों का प्रचार तथा हिंदी साहित्य की सम द्धि रहा है।

पंडित रविदत्त शुक्ल- 'देवाक्षर चरित्र' - प्रहसन।

पंडित गौरी दत्त- मेरठ निवासी सारस्वत ब्राह्मण अध्यापक थे। 40 वर्ष की अवस्था में अपनी संपूर्ण सम्पत्ति नागरी प्रचारिणी सभा काशी के नाम लिख दी। सन्यासी हो, नागरी प्रचार का झंडा उठा लिया। इनके व्याख्यानों के प्रभाव स्वरूप मेरठ में अनेक देवनागरी स्कूल खुल गए। इनका अविवादन "जय नागरी की" था।

कृतित्व- 'गौरी नागरी कोश'।

पंडित मदन मोहन मालवीय-

'अदालती लिपि और प्राइमरी शिक्षा' पुस्तक।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा-

कृतित्व-

'सभा की ग्रंथ माला' में कई पुराने कवियों के अच्छे-अच्छे अप्रकाशित ग्रंथों की सूची छपी।

कोश- 'वैज्ञानिक कोश', 'हिंदी शब्दसागर'।

पत्रिका- 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'।

संपादन-

ऐतिहासिक काव्य- 'छत्र प्रकाश', 'सुजान चरित्र', 'जंगनामा', 'प थ्वीराज रासो', 'परमाल रासो' आदि।

ग्रंथावली- 'तुलसी', 'जायसी', 'भूषण', 'देव'।

मनोरंजन पुस्तक माला- विभिन्न विषयों पर सैकड़ों उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

भारतेंदु युग के अन्य कवि- भारतेंदु युग में तत्कालीन विभिन्न परिवेश के प्रति जैसी जागरूकता का आविर्भाव हुआ उसका निर्वाह उस युग के गौण कवियों से नहीं हो सका। उन्होंने भक्ति-भावना एवं श्ृंगार वर्णन को ही अपनी रचना का विषय बनाया-

नवनीत चतुर्वेदी - 'कुब्जा पचीसी', (रीति पद्धति की सरस रचना); **गोविंद गिल्ला भाई -** 'श्ृंगार-सरोजिनी', 'पावस पयोनिधि', 'राधा मुख षोडसी' तथा 'षड्ऋतु' (भक्ति एवं प्रेम वर्णन विषयक रचनाएं); **दिवाकर भट्ट -** 'नखशिख' एवं 'नवोढ़ारत्न'

(रीति-पद्धति की रचनाएं); **राम कृष्ण वर्मा 'बलबीर'** - 'बलबीर पचासा'; **सूर्यपुराधीश राजेश्वरी प्रसाद सिंह 'प्यारे'** - 'प्यारे प्रमोद'; **गुलाब सिंह** - 'प्रेम सतसई' एवं **राव कृष्ण देव शरण सिंह 'गोप'** - 'प्रेम-संदेशा' (श ंगार रस की कृति) आदि।

इनके अनेक छंदों में नायक-नायिका की मनोदशाओं का सरस प्रस्तुतीकरण किया गया है। श ंगार परंपरा के कवियों में बेनी द्विज, हनुमान, ब्रजचन्द्र, वल्लभीय एवं नकछेदी त्रिपाठी आदि भी ऐसे ही कवि हैं। श ंगार से इतर विषयों पर स्फुट छंद रचना इन सभी कवियों ने की है।

भारतेंदु युग पुरातन और नवीन के संधि स्थल पर अवस्थित है जिसके परिणामस्वरूप कवियों में मध्यकालीन वैयक्तिकता के साथ-साथ समाज और राष्ट्र उद्बोधनकारी, लोकमंगलकारी द ष्टि अर्थात् समष्टि या सामाजिकता की ओर आकर्षण पैदा हुआ है। विचार-दर्शन में या तो एक प्रकार की उलझन है अथवा समकालीन परिवेश में उन्हें परस्पर विरोधी द ष्टिकोण अपनाने हेतु बाध्य कर दिया है। इस युग में (i) प्रव त्ति मूलक प्रेम काव्य, (ii) दास्य भक्ति या माधुर्य भक्ति की रचनाएं, एवं (iii) सुधारवादी जीवन द ष्टि वाली रचनाएं तीन काव्य प्रव त्तियां द ष्टिगोचर होती हैं।

7. द्विवेदी युग : नामकरण एवं काल सीमांकन

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में एक नवीन मोड़ आया। साहित्यकारों का चिंतन व्यष्टि से समष्टि, वैयक्तिक से सामाजिक, जड़ता से चेतना, स्थायित्व से प्रगति, श्ंगार से देशभक्ति, रूढ़ि से स्वच्छंदता की ओर अग्रसर हुआ। भारतेंदु युग के कवियों में भावबोध आधुनिकता से प्रभावित होते हुए भी रीतिकालीन पंरपरा से सर्वथा मुक्त नहीं हो पाया था। भारतेंदु युग में साहित्यगत विषयों में नवीनता आने पर भी अभिव्यक्ति के माध्यम एवं उपादानों में पूर्ण परिवर्तन नहीं आया। राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावना के साथ-साथ राज्य भक्ति भी विद्यमान थी क्योंकि अंग्रेजी सरकार के प्रति आस्था उत्पन्न होती जा रही थी कि सुधारों के द्वारा वह भारतवासियों का कल्याण कर रही है किंतु वास्तव में विदेशी सरकार सुधार, भारतवासियों के लिए नहीं अपितु स्वहिताय कर रही थी, सड़क, रेल, डाक-तार आदि संबंधी सुधार भारतीयों से अधिक उनके दोहन में सहायक सिद्ध हो रहे थे फिर भी भारतीय साहित्यकार उनकी चाटुकारिता में अपना समय व्यर्थ कर रहे थे। आवेदन, निवेदन अथवा प्रशंसा से उसकी नीति में, कुटिलता, कठोरता में व द्धि हो रही थी। उनके अत्याचारों में कमी नहीं आ रही थी।

बीसवीं शताब्दी में राजनीतिक परिवर्तन आया। सन् 1885 ई. में 'राष्ट्रीय नेशनल कांग्रेस' की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य अंग्रेजी सरकार को जनता के हित के लिए ठोस सुझाव देना था किंतु वह अंग्रेजी सरकार को सुद ढ़ता प्रदान करने में संलग्न हो गई। सुधार का आश्वासन अंग्रेजी सरकार निरंतर देती रही किंतु उनका क्रियान्वयन नहीं हुआ। भारतीय जनता महारानी विक्टोरिया के जयकारे लगा रही थी। भारतीय इतिहास में अंग्रेजों का शासन काल दमन नीति एवं कूटनीति का काल था। सन् 1858 की महारानी विक्टोरिया की सह्रदयतापूर्ण घोषणा पत्र का आंशिक रूप भी कार्य में परिवर्तन नहीं हुआ। जनता की अंग्रेजी सरकार के प्रति लगी बड़ी-बड़ी आशाएं अधूरी क्या पूरी की पूरी अछूती रह गई। जनता को दमन-नीति में निर्दयता से पीसने हेतु अनेक प्रतिगामी काले कानून पास होते रहे जिससे जनता में असंतोष एवं क्षोभ की अग्नि भड़कने लगी।

तत्कालीन सरकार शक्ति स्त्रोतों तथा प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करने में तत्पर थी। उसकी आर्थिक नीति उसके लिए हितकारी तथा भारतीयों के लिए अहितकारी थी। भारतीय कच्चा माल विदेशी कारखाने पी रहे थे तथा अपना तैयार माल मंहगे दामों पर भारतीय बाजारों में भरते जा रहे थे जिससे यहां के कल-कारखानों की स्थिति बिगड़ती ही नहीं जा रही थी अपितु ग्रामीण कुटीर उद्योग धंधे बंद होते जा रहे थे। भारतीयों की निर्धनता घटने के स्थान पर बढ़ती जा रही थी। दुर्भिक्षों ने भारतीयों की रही-सही कमर तोड़ दी। जनता एवं साहित्य-चिंतकों की समझ में यह स्पष्ट भासित होने लगा था कि सुधार के सर्वतोमुखी कार्यों की विफलता तथा उनके अत्याचारों का और कोई कारण नहीं, मात्र परतंत्रता है। दासता से मुक्ति हेतु जनता ने पूर्ण स्वतंत्रता की मांग की। गोपाल कृष्ण गोखले तथा बाल गंगाधर तिलक जैसे मेधावी, कर्मठ, द ढ़ प्रतिज्ञ नेता जनता के समक्ष आए जिन्होंने आते ही 'स्वराज्य' एवं 'स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' के नारों से आसमान गुंजा दिया। भारतेंदुकालीन साहित्यकार भारत दुर्दशा के दुखों में डूबे रहे। इस युग का श्रीगणेश होने से पूर्व साहित्यकारों में अपूर्व चेतना आई और उसने करवट बदली।

नामकरण-

आचार्य रामचन्द्र शुक्त ने इस युग को प्रकरण 3 गद्य साहित्य का प्रसार द्वितीय उत्थान नाम दिया है। जिसमें गद्य विद्या का विवेचन किया है एवं प्रकरण 3 नई धारा द्वितीय के अंतर्गत पद्य विद्या का विवेचन करते हुए लिखा है-

"इस द्वितीय उत्थान के आरंभ काल में हम पंडित महावीर प्रसाद जी द्विवेदी ही को पद्य रचना की एक प्रणाली के प्रवर्तक के रूप में पाते हैं। गद्य पर जो शुभ प्रभाव द्विवेदी जी का पड़ा है उसका उल्लेख गद्य के प्रकरण में हो चुका है।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस युग के गद्य-पद्य दोनों विधाओं में द्विवेदी जी का प्रमुख स्थान था। 'द्विवेदी युग' को शुक्ल ने द्वितीय उत्थान नाम दिया है क्योंकि आधुनिक काल का अंतर्विभाजन उन्होंने प्रकरण तथा उत्थानों के आधार पर किया है।

डॉ. नगेन्द्र ने इस काल खंड को नया नाम 'जागरण-सुधार काल' देना चाहकर भी द्विवेदी युग नाम को उचित कहा है। उनकी

मनसा की अभिव्यक्ति इसी से स्पष्ट हो जाती है कि हिंदी साहित्य का इतिहास के अध्याय 11 के शीर्षक 'द्विवेदी युग'के नीचे लघु कोष्ठक के मध्य (जागरण सुधार काल) भी लिखा है।

डॉ. नगेन्द्र ने 'द्विवेदी युग' का औचित्य प्रतिपादन करते हुए लिखा है-

"इस काल खंड के पथ-प्रदर्शक, विचारक और सर्वस्वीकृत साहित्य नेता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर इसका नाम 'द्विवेदी युग' उचित ही है।

स्पष्ट हो गया कि इस काल खंड का सर्वमान्य नाम "द्विवेदी युग" है।

काल सीमांकन-

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने द्विवेदी युग की काल सीमा संवत 1957-1977 वि. अर्थात् 20 वर्षों की कालावधि स्वीकारी है।

डॉ. नगेन्द्र ने इस काल खंड का प्रारंभ 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन काल से माना है। सौभाग्य की बात है कि जनता की रूचि एवं आकांक्षाओं के पारखी तथा साहित्य के दिशा-निदेशक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रादुर्भाव के फलस्वरूप सन् 1900 ई. में 'सरस्वती' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। कालावधि 18 वर्ष मानते हुए सन् 1900-1918 ई. तक 'द्विवेदी युग' की सीमा स्वीकारी है।

डॉ. लाल चंद गुप्त 'मंगल' ने द्विवेदी युग की काल सीमा सन् 1900-1918 ई. तक मानी है।

प्रव त्ति लगभग बीस वर्षो तक चलती रही है इसलिए सन् 1900-1920 तक मानना उचित है। इस युग की मुख्य प्रव त्तियों में राष्ट्रीयता, मानवता, नीति एवं आदर्श, वर्ण्य विषय का क्षेत्र विस्तार हास्य-व्यंग्य काव्य, विविध काव्य रूपों का प्रयोग, छंछ वैविध्य, देशभक्ति, प्रकृति चित्रण, काव्य में खड़ी बोली की प्रधानता आदि प्रमुख है।

8. द्विवेदी युगीन काव्य की प्रमुख प्रव त्तियाँ

हिंदी साहित्य में द्विवेदी जी का विशेष महत्त्व है क्योंकि उन्होंने तत्कालीन साहित्य में प्रचलित रूढ़ियों का संगठित और खुलकर विरोध किया। उस समय साहित्य में तीन तरह की रूढ़ियां और शिथिल परंपराएँ प्रभावी हो रही हैं।

1. कवियों और आलोचकों का एक बहुत बड़ा वर्ग इस बात की वकालत करने में लगा हुआ था कि खड़ी बोली में कविता हो ही नहीं सकती, क्योंकि उसमें वह लालित्य और माधुर्य नहीं है, जो ब्रजभाषा में है।
2. श ंगाररस, नायिकाभेद, उक्तिवैचित्र्य के साहित्य में सर्वाधिक महत्व दिया जाता रहा था।
3. उस समय कविता में समस्यापूर्ति की ऐसी धूम मची हुई थी कि बहुतेरे कवि किसी न किसी समस्या का सहारा लिए बिना कविता लिख ही नहीं सकते थे।

द्विवेदी जी ने पूरी शक्ति के साथ इन शिथिल परंपराओं और रूढ़ियों का विरोध किया। आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माताओं में भारतेंदु के पश्चात् दूसरा महत्वपूर्ण नाम द्विवेदी जी का है। इसलिए भारतेंदु युग के पश्चात् हिंदी साहित्य में जिस नवीन युग का आविर्भाव हुआ, उसे द्विवेदी युग कहा गया।

इस युग में श्रीधर पाठक ने खड़ी बोली में काव्य-रचना करते हुए प्रकृति को आलंबन रूप में ग्रहण करने का आग्रह किया। छंद संबंधी नये-नये प्रयोग किये और कविताओं में रहस्य संकेत दिये। पाठक जी की कविता अपने युग से आगे थी। मैथिलीशरण गुप्त ने आदर्श चरित्रों की स ष्टि की और उन्हें अलौकिकता के आकाश से उतार कर मानवीयता की भूमि पर खड़ा किया। व्याकरण सम्मत और स्वाभाविक भाषा के प्रयोग में जितनी महारत गुप्त जी को प्राप्त थी, उतनी उस काल के किसी अन्य कवि को नहीं। रामनरेश त्रिपाठी ने कल्पित कथानकों के माध्यम से देश-प्रेम की भावना जगायी। उनकी 'पथिक' और 'मिलन' काव्य कृतियाँ क्रमशः स्वतंत्रता प्राप्ति और हिंसात्मक क्रांति की कहानियाँ हैं। खड़ी बोली में सर्वप्रथम महाकाव्य की रचना करने वाले हरिऔध जी रीतिकालीन नायिका के स्थान पर पति, परिवार, लोक और विश्व सेविका की प्रतिष्ठा करने में क त्कार्य हुए। इस युग के हिंदी काव्य की उल्लेखनीय प्रमुख प्रव त्तियाँ इस प्रकार हैं-

1. **देशभक्ति-** उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतेंदु, प्रेमधन, प्रतापनारायण मिश्र आदि कवियों के काव्य में देशभक्ति का जो स्वर सुनाई पड़ा था, द्विवेदीयुगीन हिन्दी काव्य में उसका उत्तरोत्तर विकास होता गया और उसका चरमोत्कर्ष मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' में द ष्टिगोचर हुआ। द्विवेदीयुगीन कवियों की राष्ट्रीय भावना भारतेन्दुयुगीन कवियों की राष्ट्रीय भावना से किंचित् भिन्न और अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट एवं मुखर है। भारतेंदुयुगीन काव्य में देशभक्ति के साथ-साथ राजभक्ति का स्वर भी सुनाई पड़ता है, किन्तु द्विवेदीयुगीन काल शुद्ध राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावना से अनुप्राणित है। उनमें अंग्रेजी शासन के प्रति आक्रोश एवं विद्रोह की भावना तथा भारतीय जनता को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उद्बुद्ध और प्रेरित करने वाला क्रांतिकारी स्वर सुनाई पड़ता है। कवि शंकर की 'बलिदान गान' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

   देशभक्त वीरों मरने से नेक नहीं डरना होगा।
   प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।

   सामान्य जनता में राष्ट्र के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिए भारत के गौरवपूर्ण अतीत और उसकी प्राकृतिक छटा की भावपूर्ण छवि अंकित की गई है। गुप्त जी ने 'भारत-भारती' में भारत की श्रेष्ठता का उद्घोष इस प्रकार किया है-

   भूलोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लीलास्थल कहाँ?
   फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
   सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है।

उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है।

समाज में व्याप्त अन्धविश्वासों, कुरीतियों, ईर्ष्या-द्वेष, आदि का हृदयस्पर्शी चित्र प्रस्तुत कर कवियों ने भारतीय जनमानस को उसकी कमियों से अलग कराते हुए परस्पर संगठित होकर देश की उन्नति करने के लिए ओजस्वी स्वर में प्रेरित किया। रामनरेश त्रिपाठी की 'जन्मभूमि भारत' शीर्षक कविता में देशवासियों को द्वेष का परित्याग कर देश की उन्नति में योग देने के लिए प्रेरित किया गया है-

उठो त्याग दे द्वेष एक ही सबके मत हों।
सीऊ ज्ञान-विज्ञान कला-कौशल उन्नत हों।।
सुख सुधार सम्पत्ति शान्ति भारत में भर दें।
अपना जीवन इसे सहर्ष समर्पित कर दें।।

2. **नैतिकता का प्राधान्य-** भारतेन्दु युग के कवियों ने अपनी कविताओं में यद्यपि नए-नए विषयों का समावेश किया फिर भी वे रीतिकालीन श ंगारी भावना का परित्याग न कर सके। द्विवेदीयुग में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नेत त्व में रीतिकालीन श्र ंगारिकता का स्पष्ट विरोध किया गया और कविता के भीतर आदर्श एवं नैतिकता की प्रतिष्ठा हुई। मात्र मनोरंजन की भावना से दूर हटकर कविता में उचित उपदेशात्मक का समावेश करने पर बल दिया गया-

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।।
क्यों आज 'रामचरितमानस' सब कहीं सम्मान्य है।
सत्काव्यगत उसमें परम आदर्श का प्राधान्य है।।

-मैथिलीशरण गुप्त

वासनात्मक प्रेम के स्थान पर प्रेम के उस स्वर्गिक रूप की झाँकी प्रस्तुत की गई जो ईश्वर का प्रतिरूप है और इसलिए यह प्रेम हृदय को आलोकित करने वाला है

गन्ध विहिन फूल हैं जैसे चन्द्र चन्द्रिका हीन।
यों ही फीका है मनुष्य का जीवन प्रेम विहीन।।
प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक अशोक।
ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है प्रेम हृदय आलोक।।

-रामनरेश त्रिपाठी

कविता के माध्यम से मनुष्य के हृदय में स्वार्थत्याग, कर्त्तव्यपालन, आत्मगौरव आदि उच्चादर्शों की स्थापना का प्रयास किया गया। इसके लिए कहीं तो सद्गुण और सत्संग की महिमा का वर्णन हुआ और कहीं दुर्गुण और कुसंग की बुराईयों पर सीधी-सरल भाषा में प्रकाश डाला गया। कुसंग के संबंध में रामचरित उपाध्याय की निम्नलिखित पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं-

अति खल की संगति करने से जग में मान नहीं रहता है।
लोहे के संग में पड़ने से घन की मार अनल सहता है।।
सबसे नीतिशास्त्र कहता है, दुष्ट संग दुख का दाता है।
जिस पय में पानी रहता है, वही खूब औटा जाता है।

3. **मानवतावादी द ष्टिकोण-** आधुनिककाल से पूर्व भारतीय समाज में जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि आधारों पर भेद-भाव की अनेक दीवारें खड़ी की गई थीं। पुरुषों द्वारा स्त्रियों को मात्र वासनापूर्ति का साधन समझकर उनका निरंतर शोषण हो रहा था। आधुनिककाल में बौद्धिक और वैज्ञानिक द ष्टिकोण के प्रभाव से मानव-मात्र की समानता का भाव विकसित

हुआ। स्त्रियों को भी पुरुषों के समान अधिकार देने की बात सोची जाने लगी। धीरे-धीरे परम्परागत धर्म का स्थान मानवता ने ले लिया। द्विवेदीयुगीन कवियों ने धर्म के इस आभ्यंतर स्वरूप को अच्छी तरह पहचाना और मानव के प्रति प्रेम तथा दीन-दुखियों की सेवा को सच्चा धर्म बताया-

जग की सेवा करना ही बस है सब सारों का सार।
विश्व प्रेम के बन्धन ही में मुझको मिला मुक्ति का द्वार।।
-गोपालशरण सिंह

खोज मैं हुआ व था हैरान, यहाँ ही था तू हे भगवान्।
दीन-हीन के अश्रु नीर में, पतितों के परिताप पीर में।
सरल स्वभाव कृषक के हल में, श्रमसीकर से सिंचित घन में।
तेरा मिला प्रमाण।।
- मुकुटधर पाण्डेय

राम और कृष्ण को अवतारी सिद्ध करते हुए उन्हें मानवता का प्रतिनिधित्व करने वाले आदर्श पुरुष के रूप में कल्पित किया गया है गुप्त जी ने 'साकेत' में राम के मुँह से स्पष्ट कहलवाया है-

मैं आर्यो का आदर्श बताने आया।
जन सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।।
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।

नारी को समाज में उचित प्रतिष्ठा दिलाने के लिए पाठकों का ध्यान ऐसे नारी पात्रों की ओर आकृष्ट किया गया जिनको प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय महाकाव्यों में कोई स्थान नहीं दिया गया था। मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्यासिंह उपाध्याय ने इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयत्न किये। गुप्त जी ने 'साकेत' के माध्यम से उपेक्षित उर्मिला की मर्मव्यथा का चित्रांकन किया। 'हरिऔध जी' ने 'प्रियप्रवास' में राधा को लोक सेविका के रूप में लोगों के सम्मुख रखा और अपने प्रसिद्ध रीतिग्रंथ 'रसकलश' में परंपरागत नायिका-भेद से किंचित दूर हटकर पति, प्रेमिका, परिवार प्रेमिका, लोकसेविका आदि नायिकाओं की नई कोटियाँ निर्धारित कीं।

4. **आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण-** भारतेंदु युग के कवियों की द ष्टि प्रकृति के स्वतंत्र रूप की ओर गयी थी, किन्तु वे अपने को परम्परागत रीतिकालीन प्रकृति चित्रण से सर्वथा मुक्त नहीं कर सके थे। भारतेन्दु ने 'चन्द्रावली' और 'सत्यहरिश्चन्द' में क्रमशः यमुना और गंगा की प्राकृतिक सुषमा का स्वतन्त्र वर्णन करने का प्रयास किया, किन्तु अलंकारप्रियता और शब्दचमत्कार के लोभ में उसका नैसर्गिक सौन्दर्य दब सा गया। द्विवेदीयुगीन कवियों ने प्रकृति को निकट से देखा और उसे पूर्णतः आलम्बन रूप में स्वीकार किया। श्रीधर पाठक, बालमुकुन्द गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, जगमोहन सिंह, रामचन्द्र शुक्ल की कविताओं में प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य के श्लिष्ट चित्र देखने को मिलते हैं। रामचन्द्र शुक्ल की ग्राम-सौन्दर्य से संबंधित कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

गया उसी देवल के पास है ग्राम-पथ
श्वेतधारियों में कई घास को विभक्त कर
थूहरों से सटे हुए पेड़ और झाड़ हरे
गोरज से धूमिल जो खड़े हैं किनारे पर।

रामनरेश त्रिपाठी के खण्डकाव्यों में प्रकृति के मोहक चित्र भरे पड़े हैं। 'स्वप्न' नामक खण्डकाव्य में वर्णित वेगवती पहाड़ी नदी का यह चित्र दर्शनीय है-

पर्वत शिखरों पर हिम गलकर, जल बनकर नालों में आकर।

छोटे बड़े चीकने अगणित शिला समूहों से टकरा कर।।

गिरता उठता फेन बहाता अति कोलाहल हर हर।

वीरवाहिनी की गति से कहता रहता निसिवासर।।

5. **इतिव त्तात्मकता-** भारतेंदुयुग के कवियों ने काव्यशैली के क्षेत्र में नवीन प्रयोग न अपनाकर रीतिकालीन शब्द-चमत्कार प्रधान तथा प्रवाहपूर्ण शैली में काव्य रचनाएँ की थीं। द्विवेदी युग में कविता कथात्मक प्रवाह के साथ चलती थी। 'साकेत', 'यशोधरा' आदि रचनाओं में यह प्रव त्ति स्पष्ट है। द्विवेदी युग में ब्रजभाषा कवियों को छोड़ शेष सब ने रीतिकालीन अभिव्यक्ति-प्रणाली का विरोध किया। उनकी कविताओं में संस्कृति साहित्य के नये-नये छंदों और तथ्य प्रधान सीधी-सपाट भाषा का प्रयोग देखने को मिलता है। कल्पना की लम्बी उड़ानों के सहारे रचे गये संश्लिष्ट बिम्बों की हृदयस्पर्शी छटा द्विवेदीयुगीन कवियों में देखने को नहीं मिलती है। 1907 की 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित एक कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में इतिव त्तात्मक शैली का स्वरूप स्पष्ट हो जाएगा-

विद्या तथा बुद्धिनिधि प्रधान, न ग्रंथ होते यदि विद्यमान।

तो जानते क्योंकर आज मित्र, स्वपूर्वजों के हम सच्चरित्र।

हे ग्रंथ! द्रव्यादि न एक लेते, तो भी सुशिक्षा तुम नित्य देते।

खड़ी बोली के पूर्णतः सम द्ध हो जाने के उपरान्त उसमें सूक्ष्म अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देने वाली चित्रमयी लाक्षणिक शैली का विकास हुआ; जिसका चरम उत्कर्ष आगे चलकर छायावादी कवियों की कविता में देखने को मिलता है।

6. **खड़ी बोली की प्रतिष्ठा-** द्विवेदी युग में गद्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने के साथ-साथ पद्य के क्षेत्र में भी खड़ी बोली की व्यापक प्रतिष्ठा सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। आचार्य महावीर द्विवेदी के महत्प्रयत्नों से उनके समय में खड़ी बोली के प्रतिनिष्ठित स्वरूप की स्थापना हुई और पहले से चली आने वाली व्याकरणिक असमानताएँ समाप्त हो गईं। द्विवेदी जी ने स्वयं अपनी कविताओं में संस्कृतनिष्ठ समासप्रधान पदावली का प्रयोग किया और दूसरों को भी इस दिशा में आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान की।

द्विवेदीयुग की कविता में खड़ी बोली के दो स्पष्ट स्वरूप दिखाई पड़ते हैं - एक उसका वह स्वरूप है जिसमें बोलचाल के सीधे सरल शब्दों का प्रयोग हुआ है और दूसरा उसका वह रूप है जिसमें संस्कृतनिष्ठ समासप्रधान शब्दावली देखने को मिलती है। महावीरप्रसाद द्विवेदी और 'हरिऔध जी' की कविताओं में भाषा के इन दोनों रूपों के नमूने एक साथ देखने को मिल जाते हैं -

यदि कोई पीड़ित होता है, उसे देख सब घर रोता है।

देश दशा पर प्यारे भाई-आई कितनी बार रुलाई।

सुरम्यरूपे रसराशिरंजिते,

विचिवर्णाभरणे कहाँ गयी।

अलौकिकानन्द विधायिनी महा,

कवीन्द्र कान्ते कविते अहो कहाँ।

-महावीर प्रसाद द्विवेदी

रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना।

तन्वंगी तनहासिनी सुरसिका क्रीड़ाकलापुत्तली।।

-हरिऔध

द्विवेदी युगीन कविता की समग्र काव्य चेतना को रूपनारायण पाण्डेय की निम्नलिखित पंक्तियों से भावित किया गया है -

जैन बौद्ध पारसी यहूदी मुसलमान सिख-ईसाई।

कोटि कंठ से मिलकर कह दो हम सब हैं भाई-भाई।
पुण्यभूमि है, स्वर्णभूमि है, जन्मभूमि है देश यही।
इससे बढ़कर या ऐसी ही दुनिया भर में जगह नहीं।।

द्विवेदीयुगीन हिन्दी कविता खड़ी बोली के आधार पर गंभीर भावों से अनुप्राणित है। उसमें मात्र मनोरंजन ही नहीं है, वरन् उसमें गहरा उपदेश समाहित है जो उस युग की अपेक्षा थी। बहुविधा स्वातंत्र्य भावना की द ष्टि से, नये-नये विषयों की उद्भावना की द ष्टि से, नयी चेतना की व्याख्या की द ष्टि से, भाषा-संस्कार की द ष्टि से द्विवेदीयुगीन कविता बड़ी विशिष्ट-विशेष है।

9. द्विवेदी युगीन प्रतिनिधि रचनाकार

प्रतिनिधि रचनाकारों में प्रमुख कवि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिली शरण गुप्त, पं. रामचरित उपाध्याय, पं. लोचन प्रसाद पांडेय, राय देवी प्रसाद 'पूर्ण', पं. नाथू राम शर्मा, पं. गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', पं. राम नरेश त्रिपाठी, लाला भगवानदीन 'दीन' पं. रूप नारायण पांडेय, पं. सत्य नारायण 'कविरत्न', वियोगी हरि, अयोध्या सिंह उपाध्याय, गिरिधर शर्मा 'नवरत्न', सैयद अमीर अली 'मीर', कामता प्रसाद गुरु, बाल मुकुंद गुप्त, श्रीधर पाठक, मुकुटधर पांडेय तथा ठाकुर गोपालशरण सिंह आदि हैं।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

डॉ. नगेंद्र के शब्दों में "इस काल-खंड के पथ-प्रदर्शक, विचारक और सर्वस्वीकृत साहित्य नेता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर इसका नाम 'द्विवेदी युग' उचित ही है। द्विवेदी इस युग के प्रवर्तक आचार्य हैं।

व्यक्तित्व- महावीर प्रसाद द्विवेदी (सन् 1864 - 1938 ई.) का जन्म ग्राम दौलतपुर जनपद रायबरेली, उत्तर प्रदेश में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा दौलत पुर की पाठशाला में पूरी कर जनपद के स्कूल में प्रवेश लिया। स्कूली शिक्षा के लिए जनपद उन्नाव के रनजीत पुरवा, फतेहपुर तथा उन्नाव के स्कूलों में प्रविष्ट हुए। स्कूली शिक्षा पूरी करके अपने पिता के पास मुंबई चले गए। मिडिल कक्षाओं में वैकल्पिक विषय के रूप में फारसी का अध्ययन किया। मुंबई में इन्होंने बंगला भाषा सीखने हेतु पर्याप्त अभ्यास किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने मुंबई में संस्कृत, गुजराती, मराठी एवं अंग्रेजी का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। प्रारंभ में आजीविका हेतु रेलवे की नौकरी की। नौकरी के साथ-साथ साहित्य सेवा को अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। सेवा मुक्त होकर पूर्ण रूपेण हिंदी भाषा और साहित्य में लग गए मानो इसीलिए सेवा से त्यागपत्र दिया हो। उच्चाधिकारी से कुछ कहासुनी हो जाने के परिणामस्वरूप त्याग पत्र दे दिया था। सन् 1903 ई. में 'सरस्वती' के संपादक नियुक्त हुए। सन् 1920 ई. तक अति परिश्रम एवं लगन से कार्य करके पद की प्रतिष्ठा बढ़ाई। इनके प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन में कवि एवं लेखकों की सेना खड़ी हो गई। खड़ी बोली को स्थिरता प्रदान करने तथा उसका परिष्कार करने का श्रेय इन्हीं को है। ये कवि, लेखक, आलोचक, निबंधकार, अनुवादक एवं संपादक सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार थे। इनके मौलिक एवं अनूदित गद्य-पद्य ग्रंथों की संख्या लगभग 80 है। मौलिक काव्य रचना में रूचि नहीं थी। अनूदित काव्य कृतियां अधिक सरस हैं।

कृतित्वः

काव्य- 'काव्य मंजूषा', 'सुमन', 'कान्यकुब्ज अबला विलाप', 'अयोध्या का विलाप'।

अनूदित - 'कवि कर्त्तव्य', 'ऋतु तरंगिनी', 'कुमारसंभव सार'।

संपादन- सरस्वती साहित्यिक पत्र।

साहित्यिक विशेषताएं- खड़ी बोली का परिष्कार करके उसको स्थिरता प्रदान की। कविता में सहजता, सरलता तथा उपदेशात्मकता के गुण विद्यमान थे। इनके काव्य में दो प्रकार की भाषा प्रयुक्त हुई है -' तत्सम प्रधान समस्त भाषा तथा प्रचलित शब्दावलीयुक्त सरल भाषा। पहले ब्रजभाषा में काव्य स जन किया। बाद में ब्रजभाषा एकदम ही छोड़कर खड़ी बोली में काव्य स जन करने लगे। कविताओं के बीच-बीच में सानुप्रास कोमल पदावली का व्यवहार द्विवेदी ने किया है। इस तथ्य पर सदैव बल दिया कि कविता की भाषा बोल चाल की भाषा होनी चाहिए। बोलचाल से उनका अभिप्राय ठेठ या हिंदुस्तानी भाषा नहीं था अपितु गद्य की व्यावहारिक भाषा को बोल-चाल की भाषा मानते थे। परिणामतः उनकी भाषा गद्यवत हो गई। अधिकांश कविताएं इतिव त्तात्मक हैं जिनमें लाक्षणिकता, मूर्तिमत्तता तथा वक्रता का अभाव है। 'यथा', 'सर्वथा' तथा 'तथैव' आदि शब्दों के प्रयोग ने उनकी भाषा को और अधिक गद्य का स्वरूप प्रदान कर दिया।

संस्कृत व त्तों का व्यवहार अधिक किया है। हिंदी के कुछ चलते छंदों में भी उन्होंने बहुत सी कविताएं रची हैं जिनमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग कम किया गया है। अनुवाद में इनको पूर्ण सफलता मिली है। द्विवेदी के प्रभाव एवं प्रोत्साहन ने हिंदी के कई अच्छे कवियों को जन्म दिया।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त

व्यक्तित्व- मैथिलीशरण गुप्त (सन् 1886 - 1964 ई.) का जन्म चिरगांव झांसी में हुआ था। वे द्विवेदी युग के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि थे। इनकी आरंभिक रचनाएं कोलकाता से निकलने वाले 'वैश्योपकारक' में प्रकाशित होती थीं। बाद में आचार्य महावीर द्विवेदी से परिचय हो जाने पर 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगीं। द्विवेदी के आदेश, उपदेश तथा स्नेहमय प्रोत्साहन ने गुप्त की काव्य कला को निखार दिया। मैथिलीशरण गुप्त प्रसिद्ध राम भक्त कवि थे। इन्होंने भारतीय जीवन को समग्रता में समझने तथा प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। 'मानस' के पश्चात् हिंदी में रामकाव्य का द्वितीय स्तंभ मैथिलीशरण गुप्त कृत 'साकेत' ही है। इन्होंने दो महाकाव्यों तथा उन्नीस खंड काव्यों का प्रणयन किया है।

कृतित्वः

काव्य- 'रंग में भंग', 'भारत भारती', 'साकेत', 'जयद्रथ वध', 'पंचवटी', 'झंकार', 'यशोधरा', 'द्वापर', 'जय भारत', 'विष्णु प्रिया'।

अनूदित- 'प्लासी का युद्ध', 'मेघनाथ वध' तथा 'व त्र संहार'।

नाटक- 'तिलोत्तमा', 'चन्द्रहास' तथा 'अनाथ'।

साहित्यिक विशेषताएं-

इनका चरित्र-चित्रण कौशल भी उत्कृष्ट प्रबंध कला का प्रमाण है। खड़ी बोली के स्वरूप निर्धारण और विकास में इनका अन्यतम योगदान है। खड़ी बोली को काव्योपयुक्त रूप प्रदान करने वालों में गुप्त अग्रगण्य हैं। आरंभिक रचना 'जयद्रथ वध' में खड़ी बोली का सरस-मधुर एवं प्रांजल रूप मिलता है। ये भारतीय संस्कृति के अनन्य प्रस्तोता थे। सांस्कृतिक परंपराओं में पूर्ण आस्था रखने वाले गुप्त ने कभी युग धर्म की उपेक्षा नहीं की है। भारतीय संस्कृति के प्रवक्ता होने के साथ साथ ये स्वतन्त्र भारत के राष्ट्रीय कवि भी थे। इनका काव्य राष्ट्रीय भावना से भरपूर है।

पंडित रामचरित उपाध्याय

व्यक्तित्व- संस्कृत के अच्छे ज्ञाता हैं। खड़ी बोली कविता से आकर्षित हुए। फुटकर रचनाएं की। रामचरित उपाध्याय (सन् 1872-1938 ई.) गाजीपुर के रहने वाले थे। इनकी आरंभिक शिक्षा संस्कृत में हुई। बाद में ब्रजभाषा और खड़ी बोली पर भी अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया। पहले ये प्राचीन विषयों पर ही काव्य स जन करते थे किन्तु आचार्य द्विवेदी के संपर्क में आने पर खड़ी बोली तथा नवीन विषयों को अपनाया।

कृतित्व- 'रामचरित चिंतामणि' - प्रबंध काव्य सूक्ति 'मुक्तावली' तथा 'राष्ट्रभारती', 'देवदूत', 'देवसभा', 'विचित्र विवाह' आदि काव्य।

साहित्यिक विशेषताएं- विविध छंदों का प्रयोग प्रबंध काव्य में किया है। भाषा की सफाई तथा वाग्वैदग्ध्य है।

पंडित लोचन प्रसाद पांडेय

व्यक्तित्व- द्विवेदी युगीन कवियों में लोचन प्रसाद पांडेय (1886-1959 ई.) को विशेष प्रसिद्धि मिली थी। इनका जन्म ग्राम बालापुर जनपद - बिलासपुर (मध्य प्रदेश) में हुआ था। हिंदी, उड़िया, संस्कृत तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं के ज्ञाता थे। साहित्य सेवा के लिए 'काव्य विनोद' तथा 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि मिली थी।

कृतित्च- 'प्रवासी', 'मेवाड़ गाथा', 'महानदी' तथा 'पद्य पुष्पांजलि'।

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

व्यक्तित्व- राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' (सन् 1868-1915 ई.) का जन्म जबलपुर में हुआ था। वहीं पर बी.ए. एल.एल.बी. तक की शिक्षा प्राप्त कर कुछ दिनों तक वकालत की और बाद में कानपुर चले गए। वकालत के साथ-साथ ये सार्वजनिक कार्यो में अति उत्साह के साथ सम्मिलित होते थे। ये संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। वेदांत में विशेष रूचि थी। व्यावसायिक तथा सामाजिक क्रियाकलापों की व्यस्तता में रहते हुए भी साहित्याध्ययन एवं प्रणयन में सदैव दत्त-चित्त थे।

कृतित्व-

काव्य- 'स्वदेशी कुंडल' - (देशभक्ति पूर्ण 52 कुंडलियों का संग्रह), 'म त्युंजय', 'राम-रावण विरोध', तथा 'वसंत-वियोग' संग्रह।

अनूदित- 'धाराधर धावन' (कालिदास के मेघदूत का अनुवाद)।

साहित्यिक विशेषता- काव्य में उपदेशात्मकता विद्यमान है-

चींटी, मक्खी शहद की, सभी खोजकर अन्न।
करते हैं लघु जन्तु तक, निज ग ह को सम्पन्न।।
निज ग ह को सम्पन्न करो, स्वच्छंद मनुष्यों।
तजो तजो आलस्य अरे मतिमंद मनुष्यों।।
चेत न अब तक हुआ, मुसीबत इतनी चक्खी;
भारत की संतान! बनै हो चींटी, मक्खी!

पंडित नाथूराम शर्मा 'शंकर'

व्यक्तित्व- पंडित नाथूराम शर्मा 'शंकर' (सन् 1859-1932 ई.) का जन्म हरदुआ गंज जनपद अलीगढ़ में हुआ था। ये हिंदी, उर्दू, फारसी तथा संस्कृत भाषाओं के ज्ञाता थे। शंकर आरंभ से ही साहित्यानुरागी थे। 13 वर्ष की छोटी सी आयु में ही इन्होंने अपने एक साथी पर एक दोहा लिखा था। कानपुर में भारतेंदुमंडल के प्रसिद्ध कवि प्रतापनारायण मिश्र के संपर्क में आते ही 'ब्राह्मण' नामक पत्रिका में इनकी रचनाएं प्रकाशित होने लगीं। बाद में इनको आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित 'सरस्वती' के मुख्य कवियों में स्थान मिल गया। प्रारंभ में ये ब्रज भाषा के कवि रहे किंतु शीघ्र ही खड़ी बोली की ओर झुक गए। उर्दू में भी काव्य स जन का अच्छा कार्य कर लेते थे। शंकर पर आर्य समाज तथा तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलनों का गहरा प्रभाव पड़ा था। ये 'कविता-कामिनी कांत', 'भारतेंदु प्रज्ञेंदु' तथा 'साहित्य सुधाकर' आदि उपाधियों से अलंकृत थे।

कृतित्व- 'अनुराग रत्न', 'शंकर सरोज', 'गर्भरंडा-रहस्य' (विधवाओं की बुरी स्थिति, तथा देव मंदिरों के अनाचार से संबंधित प्रबंध काव्य) तथा 'शंकर सर्वस्व'।

साहित्यिक विशेषताएं- इनके काव्य में सभी प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है। अतिशयोक्तिपूर्ण कविता लिखते थे। इनकी अतिशयोक्तियां आकाश-पाताल को एक कर देती थीं। समस्यापूर्ति में अति कुशल तथा सिद्धहस्त थे। छंद शास्त्र के मर्मज्ञ थे। रीतिकालीन पद्धति में इन्होंनें श्र ंगारमयी रचनाएं भी कीं। सामाजिक कुरीतियां, बाह्याडंबरों, अंधविश्वासों तथा बाल-विवाह आदि पर करारा व्यंग्य किया है। देश-प्रेम, स्वदेशी प्रयोग, समाज-सुधार, हिंदी अनुराग, विधवा-विडंबना तथा अछूतों का दारुण दुख आदि इनकी कविता के प्रमुख विषय थे। भाषा मनोरंजक है।

पंडित गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'

व्यक्तित्व- कविवर गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' (सन् 1883-1972 ई.) का जन्म ग्राम हड़हा जनपद उन्नाव में हुआ था। उर्दू के अधिकारी विद्वान होने के फलस्वरूप ये हिंदी-उर्दू दोनों भाषाओं में समान रूप से काव्य स जन करते थे। प्राचीन एवं नवीन दोनों प्रकार की शैलियों में अभिरूचि थी। श ंगार आदि परंपरागत विषयों पर काव्य स जन 'सनेही' उपनाम से तथा राष्ट्रीय भावनाओं संबंधित कविता का स जन 'त्रिशूल' उपनाम से किया है।

कृतित्व-

काव्य- 'कृषक-क्रंदन', 'प्रेम पचीसी', 'राष्ट्रीय वीणा', 'त्रिशूल तरंग', 'करुणा कादंबिनी' आदि।

काव्य पत्रिका- 'सुकवि' नामक काव्य पत्रिका के संपादक थे।

साहित्यिक विशेषताएं- खड़ी बोली में कवित्व और सवैया छंद प्रयोग में इन्हें सिद्ध-हस्तता प्राप्त थी। उर्दू बहरों के कुशल प्रयोगकर्ता रहे हैं। सामयिक आंदोलनों से संबंधित अनेक प्रयाण एवं बलिदान गीतों की रचना की। परतंत्र भारत की दुर्दशा,

आर्थिक वैषम्य, छुआछूत आदि विषयों पर लिखी गई कविताएं मार्मिक एवं प्रभावकारी हैं। कवि सम्मेलनों में अति उत्साह से कविता पाठ करते थे। वाग्वैदग्ध्य, उक्ति वैचित्र्य, ऊहापोह तथा शब्द का चमत्कारिक प्रयोग इनके काव्य की विशेषता थी। भावुक एवं सरस हृदय कवि 'सनेही' की कविताओं का प्रकाशन 'रसिकमित्र', 'काव्य सुधानिधि' तथा 'साहित्य सरोवर' आदि पत्रिकाओं में होता था। खड़ी बोली में काव्य स जन में उनको पूर्ण सफलता मिली।

पंडित राम नरेश त्रिपाठी

व्यक्तित्व- राम नरेश त्रिपाठी (सन् 1889 - 1962 ई.द्ध का जन्म ग्राम कोईरी पुर, जनपद जौनपुर में हुआ था। सुलतानपुर रेलवे स्टेशन के पश्चिम में ही आवास था। रेलवे के द्वारा भूमि का अधिग्रहण कर लिए जाने पर कोईरी पुर पैत्रिक स्थान पर चले गए। रुद्रपुर, सुलतानपुर में स्थित प्रेस अब भी चल रहा है जिसकी देखभाल इनके सुपुत्र कर रहे हैं। इनकी प्रारंभिक शिक्षा ग्राम की पाठशाला में ही हुई। अंग्रेजी पढ़ने हेतु जौनपुर के स्कूल में प्रवेश ले लिया किंतु अध्ययन क्रम नौंवी कक्षा से आगे नहीं चल सका। कविता के प्रति बचपन से ही रूचि थी। ग्राम के प्रधानाचार्य ब्रजभाषा में कविता लिखते थे।

कृतित्व - 'ग्राम्यगीत', (संग्रह), 'मिलन', 'पथिक', 'मानसी' तथा 'स्वप्न', 'मिलन', 'पथिक', 'स्वप्न' काल्पनिक कथाश्रित प्रेमाख्यानक खंड काव्य हैं। मानसी मुक्त कविता संग्रह है।

संपादन - 'कविता कौमुदी' (आठ भाग)

साहित्यिक विशेषताएं - मुक्त कविताओं में देश भक्ति, प्रकृति चित्रण तथा नीति निरूपण की प्रधानता है। खंड काव्यों में उपदेशात्मकता प्रधान है। व्यक्तिगत सुख तथा स्वार्थ को त्याग कर देश को सर्वस्व समर्पित करने की प्रेरणा दी गई है। खंड काव्यों में प्रकृति के मनोरम चित्र भी उपलब्ध हैं। कवि होने के साथ-साथ वे सहृदय संपादक भी थे। 'कविता कौमुदी' के आठ भागों में इन्होंने अति योग्यता तथा कुशलता से हिंदी, उर्दू, बंगला तथा संस्कृत की कविताओं का संकलन एवं संपादन किया है। लोकगीतों के संग्रह हेतु इन्हें यायावर बनना पड़ा। संग्रह में इनकी लगन, कष्ट साध्यता एवं श्रमशीलता परिलक्षित होती है।

लाला भगवानदीन 'दीन'

व्यक्तित्व - लाला भगवानदीन 'दीन' (सन् 1866-1930 ई.) का जन्म ग्राम बरबर जनपद फतहपुर में हुआ था। काव्य शास्त्र के पंडित थे। हिंदी उर्दू तथा फारसी के ज्ञाता थे।

कृतित्वः

काव्य- 'वीर क्षत्राणी', 'वीर बालक', 'वीर पंचरत्न' तथा 'नवीन बीन' अन्य कविता संग्रह हैं। 'नदीमें दीन' फुटकल काव्य संग्रह है।

संपादन- लक्ष्मी के संपादक।

साहित्यिक विशेषताएं- युवावस्था में पुराने ढंग की कविताएं लिखीं। संपादक बनकर खड़ी बोली की ओर मुंह मोड़ा तथा फड़कती कविताएं लिखने लगे किंतु तर्ज मुंशियाना ही बनाए रखा। उर्दू की बहरों में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग करते थे। खड़ी बोली की कविताएं वीर रस से संबंधित होने के फलस्वरूप जोशीले भाषण का रूप धारण कर लेती हैं। वीर काव्यों में पौराणिक एवं ऐतिहासिक बहादुरों के चरित्र-चित्रण में ओजस्वी भाषा का प्रयोग किया है। प्राचीन काव्यों की टीकाएं लिखकर हिंदी साहित्य का अत्यधिक उपकार किया है। पुराने ढंग की कविताओं में उक्ति वैचित्र्य द ष्टिगोचर होता है। लेखन में उर्दू की तर्ज को नहीं छोड़ा है।

पंडित रूपनारायण पांडेय

व्यक्तित्व - रूपनारायण पांडेय का जन्म सन् १८८४ ई. में लखनऊ में हुआ। प्रारंभ में ब्रजभाषा में कविता करते थे किंतु आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभावस्वरूप खड़ी बोउी में काव्य स जन करने लगे।

कृतित्वः

काव्य- 'पराग' तथा 'वन-वैभव' मौलिक कविताओं के संकलन हैं।

संपादन- 'नागरी-प्रचारकं', 'इंदु' तथा 'माधुरी' आदि पत्रिकाओं का सफलतापूर्वक संपादन किया।

साहित्यिक विशेषताएं- इनका काव्य अति सरल एवं भावुकतामय है। इनकी सहानुभूति पशु पक्षियों तक पहु जाती है। संस्कृत तथा बंगला - काव्यों का अनुवाद कार्य भी किया।

पंडित सत्यनारायण 'कविरत्न'

व्यक्तित्व- पंडित सत्यनारायण 'कविरत्न' (सन् 1880-1918 ई.) का जन्म ग्राम सराय, जनपद अलीगढ़ में हुआ था। बाल्यावस्था में ही माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। ताजगंज, आगरा के बाबा रघुबरदास ने इनको पाला। सन् 1910 में सेंट जौंस कॉलेज आगरा की बी.ए. परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गए। क्रमिक शिक्षा का अंत हो गया। छात्र काल में काव्य स जन करने लगे थे। आरंभ में विनय के पद तथा समस्यापूर्ति लिखते थे। पंडित सत्यनारायण 'कविरत्न' खड़ी बोली की खड़खड़ाहट के मध्य अपना मधुर आलाप सुनाते रहे और लोग अत्यधिक ध्यान एवं रूचि से उनको सुनते रहे। ये रसिक जीव थे। ब्रज की एकांत भूमि में अकेले बैठे ब्रज की सरस पदावली की रस मग्नता में खोए रहते थे। नंददास आदि कवियों की प्रणाली में पदों की रचना की। वेशभूषा सरल थी। काव्यमय जीवन था।

कृतित्व- 'प्रेमकली' एवं 'भ्रमर दूत' कविताएं 'हृदय तरंग', (संग्रह)

अनूदित- होरेशस का अनुवाद।

साहित्यिक विशेषताएं: इनकी रचनाओं में देश की नई पुकार भी कहीं-कहीं सुनाई पड़ती है। ब्रज भाषा के सवैया पढ़ने का इनका ढंग ऐसा आकर्षक था कि श्रोता मंत्र मुग्ध हो जाते थे। इनके कुछ पदों में गहरी खिन्नता द ष्टिगोचर होती है। नारी-शिक्षा के पक्षधर थे। उदाहरण द्रष्टव्य है-

नारी-शिक्षा अनादरत जे लोग अनारी।
ते स्वदेश-अवनति-प्रचंड-पातक-अधिकारी।।
निरखि हाल मेरो प्रथम लेहु समुझि सब कोइ।
विद्या बल लहि मति परम अबला सबला होइ।।

वियोगी हरि

वियोगी हरि ब्रजभूमि, ब्रजभाषा तथा ब्रजपति के अनन्य उपासक हैं। उन्होंने अधिकतर पुराने कृष्णोपासक भक्त कवियों की प्रणाली पर अनेक रसमय पदों की स जना की है। कभी-कभी अनन्य प्रेमधारा से हटकर देश की दशा पर लेखनी चला दी है।

कृतित्व- 'वीर सतसई'

साहित्यिक विशेषताएं- अधिकांश भक्तिपरक एवं प्रेम प्रधान रचनाएं की। देशभक्ति का वर्णन भी किया है। 'वीर सतसई' में प्रसिद्ध बहादुरों की प्रशंसाएं हैं जो दोहा छंद में लिखी गई हैं। इनके पदों को पढ़कर या सुनकर रसिक भक्त बलिहारी जाते हैं।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

व्यक्तित्व- अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरि औध' (सन् 1865-1947 ई.) का जन्म ग्राम निजामाबाद जनपद आजमगढ़ में हुआ था। ये द्विवेदी युग की महान विभूति तथा खड़ी बोली को काव्य भाषा पद पर प्रतिष्ठित करने वाले महान कवि थे। हिन्दुस्तानी मिडिल परीक्षा पास करने के पश्चात क्वींस कॉलेज वाराणसी में अंग्रेजी पढ़ने लगे। किंतु अस्वस्थ होने के कारण कॉलेज छोड़ दिया तथा घर पर ही संस्कृत, अंग्रेजी, और उर्दू पढ़ने लगे। ये सर्वप्रथम - निजामाबाद के मिडिल स्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए फिर सरकारी कानूनगों पद पर नियुक्त हो गए। वहां से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी में हिंदी के अवैतनिक प्राध्यापक हो गए। व द्धावस्था के कारण विश्वविद्यालय की सेवा छोड़कर घर पर रहकर ही साहित्य साधना करने लगे।

कृतित्व

काव्य- 'प्रिय प्रवास', 'पद्य प्रसून', 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदें', 'वैदेही वनवास', 'पद्-प्रमोद', 'पारिजात', 'बोल-चाल', 'ऋतु मुकुर', 'काव्योपवन', 'प्रेम पुष्पोपहार', 'प्रेम प्रपंच', 'प्रेमांबु प्रस्रवण', 'प्रेमांबु-वारिधि' आदि।

रीतिग्रंथ- 'रस कलस'।

गद्य- 'ठेठ हिंदी का ठाट', 'अधखिला फूल', 'प्रेमकांता', 'वेनिस का बांका', एवं 'हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास'।

साहित्यिक विशेषताएं-

हरिऔध द्विवेदी युग के ख्यातिप्राप्त कवि, उपन्यासकार, आलोचक, इतिहासकार तथा भाषा विज्ञान वेत्ता हैं। इन्होंने पुरातन संस्कृति का पुनरुद्धार, देश के युवकों का औचित्यपूर्ण पथ प्रदर्शन तथा कविता में उपदेशात्मक रूप का ग्रहण आदि को आरंभ से जीवन का उद्देश्य बनाया है। साहित्य सेवा के प्रति समर्पित। 'प्रिय प्रवास' खड़ी बोली में लिखा गया हिंदी का प्रथम महाकाव्य है। जिसमें राधा कृष्ण को सामान्य नायिका-नायक के स्तर से उठाकर विश्व सेवी तथा विश्व प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है। 'रस कलस' में रस-स्वरूप, प्रकार का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। नायिका भेद वर्णन तथा ऋतु वर्णन में मौलिक उद्भावनाएं की हैं। पति प्रेमिका, परिवार प्रेमिका, लोक सेविका आदि प्रमुख हैं। 'वैदेही वनवास' करुण सरलता का अद्वितीय प्रबंध काव्य है।

काव्य में सरलता, प्रांजलता एवं सौंदर्य की प्रधानता है। एक ओर निरलंकार सौंदर्य है तो दूसरी ओर संस्कृत की आलंकारिक समस्त पदावली की छटा विद्यमान है। कहीं बोलचाल के शब्दों तथा मुहावरों की झड़ी लगी है तो कहीं इनका नामोनिशान तक नहीं है। भाषा की कर्कशता में सरसता का संचार किया है। खड़ी बोली को काव्योपयुक्त भाषा का रूप दिया है। दोहा, कविता, सवैया आदि के साथ साथ संस्कृत वर्णिक छंदों का समावेश किया है। भाषा छंदानुसारिनी एवं भावानुसारिणी है। इन्हें 'कवि सम्राट' के रूप में जाना जाता है। दो बाद हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के वार्षिक अधिवेशन में सभापति पद पर सम्मानित किया है। 'प्रिय प्रवास' पर हिंदी का सर्वोत्तम पुरस्कार - 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' प्रदान किया गया।

काव्य शैली अत्यन्त मार्मिक एवं भावपूर्ण है। संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग है। प्रकृति चित्रण अति सजीव तथा परिस्थितियों से प्रभावित है। अयोध्या सिंह उपाध्याय कठिन से कठिन तथा सरल से सरल भाषा प्रयोग में सिद्धहस्त हैं। 'प्रिय प्रवास' संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली प्रधान भाषा का प्रतिनिधित्व करता है तो 'ठेठ हिंदी का ठाठ' ठेठ हिंदी का। आवश्यकतानुसार अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों का सुंदर समायोजन किया गया है। करुण तथा शांत अंगी रूप तथा शेष सभी रस अंग रूप में विद्यमान हैं।

हरिऔध सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी, प्रबुद्ध साहित्यकार हैं।

गिरिधर शर्मा - 'नवरत्न'

व्यक्तित्व- गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' (सन् 1881-1961 ई.) का जन्म झालरापाटन, जयपुर में हुआ था। इनकी अधिकांश शिक्षा काशी में हुई। 'सरस्वती' तथा अन्य पत्रिकाओं में इनकी कविताएं प्रकाशित होती रहती थीं।

कृतित्व- 'मात वंदना' - मौलिक काव्य।

साहित्यिक विशेषताएं - इनकी कविताओं का मुख्य विषय स्वदेश-प्रेम था। हिंदी के अतिरिक्त संस्कृत के भी कवि थे। संस्कृत बंगला से हिंदी में पद्यानुवाद भी किए।

सैयद अमीर अली 'मीर'

व्यक्तित्व- सैयद अमीर अली 'मीर' (सन् 1873-1937 ई.) का जन्म सागर, मध्य प्रदेश में हुआ था। शैशव में ही पिता का स्वर्गवास हो गया जिसके परिणामस्वरूप चाचा के पास देवरी ग्राम सागर में रहे।

कृतित्व- 'उलाहना पंचक' तथा 'अन्योक्ति शतक' मुख्य काव्य कृतियां हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश समस्यापूर्ति के द्वारा हुआ। इन्होंने देवरी में 'मीर मंडल' कवि समाज की स्थापना की। हिंदी प्रेमी एवं राष्ट्रभाषा समर्थक थे। 'रामचरितमानस' के प्रति विशेष लगाव था। ईश्वर भक्ति और देश प्रेम इनकी कविता का मुख्य विषय था।

कामता प्रसाद गुरु

व्यक्तित्व- कामता प्रसाद गुरु का जन्म सागर, मध्य प्रदेश में हुआ।

कृतित्वः

पद्य ग्रंथ- 'भौमासुर वध' तथा 'विनय पचासा' ब्रजभाषा में लिखे गये पद्य ग्रंथ हैं।

कविता संग्रह- 'पद्य पुष्पावली'।

कविताएं- 'शिवाजी' तथा 'दासी रानी'।

व्याकरण ग्रंथ- 'हिंदी व्याकरण।

साहित्यिक विशेषताएं- कई भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। इनकी कविताएं सरल एवं भावपूर्ण हैं। ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली दोनों में रचनाएं कीं। 'शिवाजी' एवं 'दासी रानी' कविताओं को अच्छी ख्याति मिली'। गुरु की ख्याति का मुख्य श्रेय उनके 'हिंदी व्याकरण' को है जिसे वर्तमान समय में भी हिंदी का आदर्श व्याकरण स्वीकारा जाता है।

बाल मुकुंद गुप्त

व्यक्तित्व- बाल मुकुंद गुप्त (सन् 1865-1907 ई.) का जन्म ग्राम गुड़ियाना, जनपद रोहतक, हरियाणा प्रदेश में हुआ था। ये भारतेंदुयुग एवं द्विवेदीयुग को जोड़ने वाली कड़ी हैं।

कृतित्व- 'स्फुट कविता', इनकी कविताओं का संकलन है।

साहित्यिक विशेषताएं- ये अच्छे कवि, अनुवादक और अपने समय के कुशल संपादक थे। हिंदी प्रेम इनकी कविताओं का विषय रहा है। ये अच्छे जीवट एवं हास्य-व्यंग्य प्रधान व्यक्ति थे। समसामयिक साहित्यकारों से इनकी नोक-झोंक चलती रहती थी।

श्रीधर पाठक

व्यक्तित्व- श्रीधर पाठक (सन् 1859-1928 ई.) का जन्म ग्राम जोंधारी जनपद आगरा में हुआ था। हिंदी के अलावा अंग्रेजी एवं संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। आजीविका चलाने हेतु पाठक ने सरकारी सेवा कार्य अपनाया था। सेवा काल में ही इन्हें सरकारी कार्य से कश्मीर एवं नैनीताल भी जाना पड़ा था जहां इन्हें प्राकृतिक छटा देखने का भव्य अवसर मिला था।

कृतित्व

काव्य- 'वनाष्टक', 'काश्मीर सुषमा', 'देहरादून' तथा 'भारत गीत'।

कविताएं- 'भारतोत्थान', 'भारत-प्रशंसा', 'जार्ज-प्रशंसा' तथा 'बाल-विधवा' आदि।

अनुवाद- कालिदास कृत 'ऋतुसंहार' - गोल्ड स्मिथ कृत 'हरमिट' - 'एकांतवासी योगी', डेजर्टेड 'विलेज'-'उजाड़ गांव', तथा 'द ट्रैवेलर' - 'श्रांत पथिक' नाम से काव्यानुवाद किया।

साहित्यिक विशेषताएं- ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में अच्छी कविताएं स जी। ब्रजभाषा का स्वरूप सहज एवं बाह्याडंबर विहीन है। परंपरागत रूढ़ शब्दावली का प्रयोग इनकी कविताओं में नहीं हुआ है। खड़ी बोली के श्रीधर प्रथम समर्थ कवि हैं। खड़ी बोली में भी उन्होंने कहीं-कहीं ब्रजभाषा के क्रियापदों का प्रयोग किया है किन्तु यह कम महत्व का विषय नहीं है कि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के 'सरस्वती' का संपादकत्व संभालने से पूर्व ही इन्होंने खड़ी बोली में कविताएं लिखकर अपनी स्वच्छंद व त्ति का परिचय दिया। इनकी कविता के मुख्य विषय देश प्रेम, समाज सुधार तथा प्रकृति चित्रण हैं। देश का गौरवगान इन्होंने अति मनोयोग से किया किन्तु भारतेंदु युगीन कवियों की तरह श्रीधर पाठक में भी देशभक्ति के साथ साथ राजभक्ति भी मिलती है। एक ओर इन्होंने 'भारतोत्थान' तथा 'भारत प्रशंसा' आदि जैसी देशभक्तिपूर्ण कविताएं लिखीं तो दूसरी ओर 'जार्ज

वंदना' जैसी कविताओं में राजभक्ति का भी प्रदर्शन किया गया है। समाज सुधार की ओर इनका विशेष ध्यान रहा है। विधवाओं की स्थिति तथा उनकी व्यथा का कारुणिक चित्र उपस्थित किया गया है। इनको सर्वाधिक सफलता प्रकृति चित्रण में मिली है। रूढ़ि का परित्याग करके प्रकृति का स्वतंत्र रूप से मनोरंजक स्वरूप प्रस्तुत किया है। इनके मन में मात भाषा की उन्नति की प्रबल कामना है। यथा-

निज भाषा बोलहु लिखहु पढ़हु गुनहु सब लोग।
करहु सकल विषयन विषै निज भाषा उपजोग।।

ठाकुर गोपाल शरण सिंह

व्यक्तित्व- ठाकुर गोपाल शरण सिंह (सन् 1891-1960 ई.) नई गढ़ी, रीवां में जन्मे थे।

कृतित्वः

काव्य- 'माधवी', 'मानवी', 'संचिता' तथा 'ज्योतिष्मती' इनकी प्रमुख काव्यकृतियां हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- इन्होंने खड़ी बोली को परिमार्जित करने तथा उसे माधुर्यपूर्ण रूप प्रदान करने में विशेष योगदान किया। ब्रजभाषा के समान ही खड़ी बोली में सरस-मधुर कवित्त-सवैया आदि का स जन किया। इनके काव्य में जीवन की विविध दशाओं के चित्र द ष्टिगोचर होते हैं।

मुकुटधर पांडेय

व्यक्तित्व- लोचन प्रसाद पांडेय के छोटे भाई मुकुटधर पांडेय का जन्म सन् 1895 ई. में हुआ।

कृतित्व- 'पूजा-फूल' तथा 'कानन-कुसुम' काव्य संकलन हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- ये अच्छे कवि थे। प्रकृति की उपासना करने वाले थे। इनके काव्य में भावात्मकता आंतरिक संवेदना तथा रहस्यात्मक अनुभूति द ष्टिगोचर होती है। इन्हें द्विवेदी युग का सर्वश्रेष्ठ प्रगीतकार माना गया है। इनका काव्य छायावादाभास देता है।

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त द्विवेदी युग के सहयोगियों में लोकमणि, सत्य शरण रतूड़ी, मन्नन द्विवेदी, पदुम लाल पुन्ना लाल बख्शी, शिव कुमार त्रिपाठी, पार्वती देवी, तोष कुमारी आदि भी उल्लेखनीय हैं जिन्होंने तत्कालीन साहित्य की श्रीव द्धि की है। द्विवेदी युगीन काव्य में राष्ट्रीय भावना एवं सांस्कृतिक चेतना की प्रधानता है। यह राष्ट्रीयता सांप्रदायिकता तथा प्रांतीयता से बहुत ऊपर उदार एवं व्यापक राष्ट्रीय स्वरूप है। द्विवेदी युगीन कविताओं ने संकीर्णता की भावना समाप्त की। वैमनस्य को दूर करने का प्रयत्न किया। बलिदान और स्वार्थ त्याग की प्रेरणा दी। राष्ट्रीय आंदोलन और शक्तिशाली एवं बलवान हो गया। इस सब का श्रेय द्विवेदी युगीन कविता को है। इस युग के कवियों ने जीवन की अति मार्मिक एवं रचनात्मक आलोचना की। हितकारी तत्वों को प्रोत्साहित करके अहितकारी तत्वों का निराकरण किया। सामाजिक कुरीतियों, अंध विश्वासों, रूढ़ियों, बाह्याडंबरों, आदि को अपना निशाना बनाया तथा परंपरावादी उपयोगी तत्वों, भारतीय संस्कृति का पूर्ण समर्थन किया।

सांस्कृतिक शक्ति की महत्ता का प्रतिपादन किया। नवीन मानवतावादी द ष्टिकोण की स्थापना की। सामान्य मानव को गौरव तथा प्रतिष्ठा दिलाने का प्रथम बार प्रयास किया गया। देश भक्ति, कृषक मजदूर, प्रकृति, देश की कारुणिक स्थिति को कविता का विषय बनाया गया। काव्य भूमि का विस्तार हुआ। महान कथाओं तथा महान चरित्रों के साथ-साथ अनजाने, छोटे-छोटे नगण्य, अपरिचित प्रसंगों को काव्य का विषय बनाया गया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अथक प्रयासों तथा सफल दिशा निर्देशन के परिणामस्वरूप गद्य-पद्य की भाषा का एकीकरण इसी युग में हुआ। ब्रजभाषा के स्थान पर बोलचाल की भाषा अर्थात् व्यवहार में आने वाली खड़ी बोली का स्वरूप अनगढ़, शुष्क तथा अस्थिर था किंतु शनैः शनैः खड़ी बोली सुगढ़, मधुर एवं स्थिर रूप ग्रहण करती चली गई। खड़ी बोली का परिमार्जन एवं संस्कार हुआ। वह सुष्ठु साहित्यिक भाषा बन गई। द्विवेदी युग के प्रारंभ में तुतलाने वाली खड़ी बोली इसके अंत अर्थात् लगभग बीस वर्षों में मानक, साहित्यिक, सर्व सुलभ भाषा के रूप में उपस्थित हो गई।

द्विवेदी युगीन कवियों में छंद का वैविध्य द ष्टिगोचर होता है। संस्कृत, हिंदी तथा उर्दू के छंदों का प्रयोग किया गया। भाव, भाषा, छंद में ही नहीं अपितु काव्य रूप तथा काव्य विषय में भी वैविध्य आया। महाकाव्य, खंड काव्य, लंबी कविता, कविता, मुक्तक, प्रबंध मुक्तक आदि अनेक काव्य विधाओं में स जन को सफलता मिली। प्रारंभ में द्विवेदी युगीन काव्य में जो नीरसता, इतिव त्तात्मकता, तथा उपदेशात्मकता थी वह शनैः शनैः समाप्त होती गई। इसका स्थान सरसता, मधुरता तथा भावपूर्णता ने ग्रहण किया।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि द्विवेदी युगीन काव्य सांस्कृतिक पुनरुत्थान, उदार राष्ट्रीयता जागरण, सुधारवादी एवं उच्चादर्शो का काव्य है, जिसमें विषयगत वैविध्य एवं व्यापकता तथा आयाम विस्तार मिलता है। सभी काव्य रूपों का सफल प्रयोग किया गया है। खड़ी बोली के स्वरूप निर्धारण तथा विकास का एक मात्र श्रेय इसी युग को है। द्विवेदी युग में छंद का जो वैविध्य मिलता है वह अन्य युगों में दुर्लभ है। युगीन काव्य में अपेक्षित गहनता का अभाव है। वास्तविक कलात्मकता की सम द्धि नहीं हो पाई है। किंतु राष्ट्रीय उद्बोधन, जागरण, सुधार, सांस्कृतिक पुनरुत्थान के अद्भुत सामर्थ्य, खड़ी बोली के स्वरूप निर्धारण एवं संस्कार के परिणामस्वरूप हिंदी काव्य के इतिहास में द्विवेदी युग का अत्यधिक महत्व है।

10. छायावाद : नामकरण एवं काल सीमांकन

'छायावाद' हिंदी-साहित्य की एक अत्यंत सम द्ध, सौंदर्य शालिनी एवं सशक्त कलात्मक धारा है जो द्विवेदी युग के बाद आई। आधुनिक काल का जीवन मात्र एक ही काल में अनेकमुखी प्रसार का जीवन नहीं है। वह समय की गति के साथ-साथ विकसनशील है। वैज्ञानिक आविष्कारों तथा उनसे उत्पन्न प्रभावों के कारण जीवन में निरंतर गति का परिवर्तन द ष्टिगोचर हो रहा है। प्राचीन काल में जीवन की प्रगति पहले वैचारिक स्तर पर होती थी जिसे आध्यात्मिक आंदोलनों के रूप में देखा जाता है। किंतु वर्तमान में जीवन का विकास पहले भौतिक आधार पर होता है पुनः इस भौतिक विकास युग को आध्यात्मिक विकास के लिए आंदोलित करता है। ज्ञान का स्वरूप आध्यात्मिक तथा विज्ञान का वैज्ञानिक या भौतिक है। आधुनिक चिंतकों के समक्ष सांस्कृतिक विकास आध्यात्मिक और भौतिक दोनों पक्षों के विकास की समस्या ने गंभीर एवं जटिल रूप धारण कर लिया है। छायावाद में आधुनिक युग की इस सांस्कृतिक समस्या का प्रारंभिक रूप मिलता है।

हिंदी के साधारण सहृदय के मन में इस धारा के प्रति प्रारंभ में एक विचित्र सा उदासीनतापूर्ण भाव रहा है। इसका प्रमुख कारण यह था कि छायावाद को हिंदी के प्रारंभिक आलोचकों द्वारा लांछन एवं तिरस्कार सहने पड़े। पुराने रूढ़िवादी आलोचक जो साहित्य के पथ-प्रदर्शन का मानो एक मात्र ठेका लिए हुए बैठे थे, इस नवीन विद्रोही विचारधारा का हृदय से स्वागत नहीं कर सके। उन्होंने तथा कुछ अधकचरे छायावादी कवियों ने छायावाद की ऐसी व्याख्याएं प्रस्तुत कीं जिससे हिंदी विश्व प्रारंभ में इसका मुक्त हृदय से आदर न कर सकने के कारण इसे आत्मसात करने में समर्थ सिद्ध नहीं हुआ। किंतु शक्तिशाली, प्राणवान के मार्ग का अवरोधक कोई नहीं बन सकता है। छायावाद निरंतर संघर्ष करता हुआ प्रगति एवं विकास-पथ का अग्रगामी बना। अंत में हिंदी विश्व को उसका लोहा मानकर उसके सामने नतमस्तक होना पड़ा। क्योंकि इस धारा को अपने प्राणों का संबल देकर अग्रसर करने वाले साहित्यकार उच्च कोटि के प्रतिभा सम्पन्न कलाकार, भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शनों एवं काव्य सिद्धान्तों के मर्मज्ञ, तथा विरोध के समक्ष आत्म समर्पण न करने वाले, उससे निरंतर संघर्ष करने वाले मेधावी, नैसर्गिक प्रतिभा सम्पन्न कवि मनीषी थे।

नामकरण- छायावाद की मूल धारणा, मूल प्रव त्ति, मूल भावना, मूल अवधारणा तथा तत्संबंधित कवियों - आलोचकों की मनोदशा, जनता पर प्रभाव आदि का विवेचन किए बिना नामकरण संभव एवं औचित्यपूर्ण न होगा। छायावादी काव्य के उद्‌भव-विकास में मतैक्य नहीं है। उसकी पौढ़ता भी तर्कभेद के दायरे से नहीं निकल सकी है। वास्तव में बहुत समय तक समीक्षकों में मतैक्य न होने से इसके साथ पूर्ण न्याय नहीं किया जा सका। किसी ने 'दर्शन विशेष की अभिव्यक्ति का काव्य' कहा, किसी ने 'चित्र भाषा काव्य', 'घुमाकर नाक पकड़ने' की शैली वाला काव्य कहा। किसी ने उसमें 'नूतन दार्शनिक चेतना का आविर्भाव माना।' किसी ने 'वस्तु की छाया' देखने को छाया माना। छायावाद को 'दार्शनिक आत्मवाद' के रूप में स्वीकारा गया तथा उसमें वस्तुओं को आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित करने का प्रयत्न किया गया। प्राकृतिक प्रधानता को देखते हुए 'प्रकृति काव्य' कहा गया। महादेवी वर्मा ने छायावाद को 'प्रकृति में जीवन का उद्‌गीथ' स्वीकारा। स्वानुभूतियों की प्रधानता के आधार पर 'आत्मनिष्ठ काव्य' कहा। कुछ विचारकों ने इसे 'स्वच्छंदता वाद' अर्थात् 'रोमानी काव्य का भारतीय प्रारूप' माना।

पुरानी पीढ़ी के समर्थन-प्रतिष्ठापन के साथ-साथ प्रारंभ से ही, इस काव्य का पुरातनवादी समीक्षकों ने विरोध ही किया है। रीतिवादी आलोचकों ने इसे 'कविता के नाम पर बकवास', 'नवीनता का फैशन', 'रवींद्र का जूठन', 'अंगेजी के रोमानी पुनरुत्थान युग' के वड्‌र्स वर्थ, शेली, एवं कीट्स आदि कवियों की अनुकृति' घोषित करने में किंचित संकोच नहीं किया। 'छायावाद' नाम से निकली पत्रिका की भी 'ठहर तू नानी' कहकर खिल्ली उड़ाई गई। उन्हें 'अनंत का राही' कहा गया। छायावाद में प्रयुक्त 'छाया' शब्द को लेकर उसे अंग्रेजी 'छाया', रवीन्द्र 'छाया', अस्पष्टता-'छाया' माना गया। विरोधियों के लिए छायावाद, 'फैशन', 'नकल' तथा 'जूठन' के अतिरिक्त और कुछ नहीं था तथा समर्थकों की द ष्टि में यह एक नवीन दर्शन - आत्मा-परमात्मा-मूलक भारतीय दर्शन 'प्रतिबिंब वाद', 'प्रकृति-दर्शन', 'प्रकृति पूजा' आदि पाश्चात्य दर्शन की दिशा में - था। इसे 'प्रतिबिंबवाद' कहना लोगों को अधिक रूचा। 'स्थूल' के प्रति 'सूक्ष्म' ने विद्रोह किया। 'बाह्य' की अत्यधिक अभिव्यक्ति को देखकर मानव अंतरात्मा

स्वाभिव्यक्ति हेतु तड़प उठी। महादेवी ने इसमें औपनिषदिक दर्शन की छाया देखी और प्रसाद ने भारतीय 'आत्मवाद' का मुखरित स्वर सुना।

छायावाद का निरंतर विरोध करने वालों ने इस काव्य की एकाध प्रव त्तियों या अतिरेकों को मूल लक्षण मानकर उसे पूर्णतः अस्वीकारा, समग्रता की ओर उनका ध्यान नहीं गया। यही स्थिति समर्थकों की भी रही। उन्होंने एकाध प्रव त्तियों को ही निर्धारक तत्व मान लिया जिसके परिणामस्वरूप समग्रता को बहिष्कृत कर एकाध प्रव त्ति को अतिशय महत्व मिल गया। समग्रता का आंकलन-मूल्यांकन नहीं हुआ।

छायावाद को 'रहस्य', 'दर्शन' के कठघरे से मुक्त करके तत्कालीन परिवेश के आधार पर मूल्यांकन कर इस युग का नामकरण करना सार्थक एवं उचित होगा।

पत्र-पत्रिकाओं के आधिक्य को देखते हुए कवियों में 'छपास' की भावना जागी। साहित्य के सामाजिक उद्देश्य की व्यापक स्वीकृति के कारण अनेक सजग, सचेतन एवं संवेदनशील व्यक्तियों ने काव्य रचना की। एक ओर इस युग में प्रसाद, पंत, निराला तथा महादेवी जैसी कवयित्री आई जिनका मुख्य लक्ष्य साहित्य साधना था तो दूसरी ओर राम कुमार वर्मा, माखन लाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी तथा बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि साहित्यकार आए जो तत्कालीन आंदोलनों में सक्रिय भाग लेते थे तथा काव्य स जन भी करते थे। इनका एकमात्र लक्ष्य काव्य रचना नहीं था। इनकी साधना में जीवन-केन्द्र प्रमुख था। ब्रजभाषा में भी ऐसे काव्यों का निर्माण हुआ जो नवीन जीवन की भावनाओं-आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति देने हेतु प्रयासरत द ष्टिगोचर हो रहे थे। इनके अतिरिक्त प्रणय की लौकिक-मांसल अनुभूति को काव्य का विषय बनाकर रचना धर्मिता निभाने वाले कवियों में बच्चन, नरेंद्र शर्मा तथा रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' आदि प्रमुख हैं जो काव्य रचना में तत्पर थे। रचना परिमाण की द ष्टि से यह काल अत्यंत सम द्ध है यह स्वीकार किया जाता है कि परिमाण में छायावादी पद्धति की रचनाएं राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा की रचनाओं से अधिक नहीं हैं। इसलिए यह जिज्ञासा स्वाभाविक ही है फिर इस काल को 'छायावाद-काल' कहना कहां तक समीचीन है? यद्यपि परिमाण की द ष्टि से इन काव्यधाराओं में छायावादी रचनाएं सबसे अधिक नहीं हैं, फिर भी वे निश्चित रूप से इस युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि हैं। इसलिए 'छायावाद' नाम सार्थक एवं उचित है क्योंकि अनुभूति की तीव्रता, सूक्ष्मता तथा अभिव्यंजना शिल्प की द ष्टि से यह काव्य राशि सर्वश्रेष्ठ है। छायावादी काव्य में प्राचीन भारतीय परंपरा के जीवंत तत्वों का ही समावेश नहीं हुआ है अपितु उसने परवर्ती काव्यों के विकास को भी पर्याप्त दूर तक प्रभावित किया है। छायावादोत्तर युग के कवियों हेतु छायावादी काव्य-राशि ही प्रतिस्पर्धा और प्रतिक्रिया का का आधार बनी। छायावादी काव्य में ही अपने युग के जन-जीवन की समग्रता की अभिव्यक्ति मिलती है - यह काव्यपूर्ण और सर्वागीण जीवन के उच्चतम आदर्श को व्यक्त करने का प्रयास करता है। 'कामायनी' को इस काव्य की चरम परिणति के रूप में स्वीकारा जा सकता है। इसलिए इस काल का नाम 'छायावाद' ही उचित है।

आचार्य रामचन्द्र ने वीरगाथा काल में प्रव त्तियों को नामकरण में प्रधानता दी है। यह प्रधानता आधुनिक काल के अंतर्विभाजन में नहीं दिखाई है इसलिए इस काल को प्रकरण 4 नई धारा 'त तीय उत्थान' नाम दिया है। आधुनिक काल का अंतर्विभाजन उत्थान के आधार पर किया है जो औचित्यपूर्ण नहीं है। स्वाभाविक वाग्धारा का अच्छी तरह खपने के योग्य हो जाना ही उसका मंजना कहा जाएगा। मंजने की संभावना छायावाद में ही है।

काल सीमांकन

रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद की काल सीमा के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा है। छायावादी काव्य का बीजवपन समय से पूर्व हो चुका था। इस बीजवपन का श्रेय 'जूही की कली' है। पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी की प्रमुख रचना 'जूही की कली' का प्रकाशन वर्ष सन् 1916 है तथा सुमित्रा नन्दन पंत के 'पल्लव' का प्रकाशन वर्ष सन् 1920 है। 'कामायनी' का प्रकाशन वर्ष सन् 1936 ई. है।

'जूही की कली' एवं 'पल्लव' यदि छायावाद के बीजवपन स्वरूप हैं तो 'कामायनी' छायावाद के चरमोत्कर्ष का प्रतीक है। इसी के आधार पर छायावाद की काल सीमा सन् 1918-1938 ई. तक मानी गई है। छायावाद को आधुनिक हिंदी कविता का त तीय उत्थान के रूप में स्वीकारा गया है। आचार्य महावीर प्रसाद के प्रभाव से सन् 1920 ई. के आस पास पत्र-पत्रिकाओं में निरपेक्ष स्वतंत्र कविताओं का प्रकाशन प्रारंभ हो गया था। इसी को आचार्यो ने छायावाद नाम दिया था। किसी विशिष्ट प्रव त्ति का

प्रारंभ या समाप्ति एक निश्चित तिथि को नहीं हो जाता है अपितु उस प्रव त्ति का बीजवपन, विकास की एक सतत परिवेश पर आधारित प्रक्रिया है जो समयानुकूल अपनी अस्मिता प्रकट करती है अथवा उसकी अस्मिता का पराभव होने लगता है। इसी के आधार पर निश्चित तिथि का निर्धारण किया जाता है। विद्वानों ने अलग-अलग काल सीमाएं निश्चित की हैं।

प्रव त्ति का अर्थ परंपरा या परिपाटी से है। जब परंपरा में मोड़ आ जाता है तो उसे परिवर्तन को प्रव त्ति की नवीनता की संज्ञा दी जाती है। सन् 1918 ई. से पूर्व साहित्य में एक नए मोड़ का प्रारंभ हो गया था जो पुरानी परंपरा या काव्य-पद्धति के स्थान पर नवीन परंपरा या पद्धति के निर्माण का द्योतन करता था। यह विशिष्ट काव्य पद्धति सन् 1938 ई. तक चलती रही। सन् 1936 ई. में 'प्रांतीय कांग्रेस मंडलों' की स्थापना हुई किंतु अंग्रेजी सरकार की घोषणा के पश्चात् सन् 1939 ई. में मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिया। इससे स्पष्ट है कि सन् 1936-1939 ई. का समय आधुनिक भारतीय इतिहास में एक नए मोड़ का सूचक है। कांग्रेस में मंत्रिमंडलों में सम्मिलित होने की विभिन्न प्रक्रियाएं हुई जो जीवन में नवीन चेतना के आने के प्रतीक स्वरूप हैं। तत्कालीन छायावादी कवि स्वयं भी अपने छायावादी भाव बोध को लांघने का प्रयत्न कर रहे थे। जिसका प्रमाण पंत के 'युगांत' तथा निराला की 'अनामिका' में प्रकाशित अनेक कविताएं हैं जो छायावादी संसार को पार कर एक नए मोड़ पर आ खड़ी ही नहीं हुई थी अपितु ठोस यथार्थ के निकट आने के लिए प्रयत्नरत थीं। पंत का संकलन तथा उसका नामकरण स्पष्ट कर रहा है कि एक युग का अंत हो गया। 'युगांत' उनकी कविता में छायावाद से प्रगतिवाद की ओर जाने का संकेत देता है। छायावादी कवि पंत सन् 1938 ई. तक प्रगतिवाद की ओर अग्रसर हो चुका था। इसलिए सन् 1938 ई. को छायावाद का अंत माना जाना उचित है। यद्यपि कुछ विद्वान दशमलव प्रणाली का आधार लेते हुए बीसवीं सदी के चौथे दशक अर्थात् सन् 1940 ई. तक छायावाद को मानना चाहते हैं जो उचित नहीं प्रतीत होता है क्योंकि काव्य प्रणाली में 1940 ई. से पूर्व ही निश्चित मोड़ आ चुका था। समाज और राजनीति का घनिष्ठ एवं अन्योन्याश्रय संबंध है। तत्कालीन राजनीतिक परिवर्तन एवं साहित्यिक परिवर्तन में घनिष्ठ संबंध है जिसने परिवर्तन के परिणामस्वरूप समाज एवं साहित्य को नवीन सामूहिक चेतना प्रदान की। सन् 1938 के आस-पास छायावादी काव्यधारा की क्षीणता एवं नवीन काव्यधारा का आगम उसी चेतना का परिणाम है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि छायावाद का प्रारंभ सन् 1918 ई. में हो चुका था। लगभग बीस वर्षो तक अर्थात सन् 1938 ई. तक छायावादी काव्य प्रणाली चलती रही।

11. छायावादी काव्य की प्रमुख प्रव त्तियाँ

हिंदी साहित्य की आधुनिक धाराओं में छायावाद एक प्रमुख धारा है। इस काव्यधारा में अनेक महान कवियों का महत्वपूर्ण योगदान है। छायावाद साहित्य के कला और भाव क्षेत्र में एक अनूठे आन्दोलन के रूप में सामने आया है। इसमें आधुनिक औद्योगिकता से प्रेरित अनूठा व्यक्तिवाद दिखाई देता है। इस काव्यधारा में जीवन दर्शन और सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों का सुंदर आंकलन (विवेचन) किया गया है। यह काव्यधारा स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा से कुछ न कुछ प्रभावित अवश्य है। इस पर अंग्रेजी साहित्य का भी कुछ न कुछ प्रभाव दिखाई देता है।

छाया शब्द विशेष संदर्भ से लिया गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार बंगला साहित्य में छाया शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ। जयशंकर प्रसाद के मन्तव्य से छाया और छायावाद का अर्थ स्पष्ट होता है-

"मोती के भीतर छाया जैसी तरलता होती है वैसी ही कान्ति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है......

छाया भारतीय द ष्टि से अनुभूति व अभिव्यक्ति की भंगिमा पर निर्भर करती है।

........अपने भीतर से पानी की तरह अन्तःस्पर्श करके भाव समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति छाया.......... कान्तिमय होती है।"

परिभाषा- विभिन्न विद्वानों ने इस प्रमुख काव्यधारा को विभिन्न द ष्टिकोणों से परिभाषित किया है। जिसमें कुछ इस प्रकार हैं-

1. प्रसिद्ध समालोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन।"
2. डॉ. रामकुमार वर्मा ने रहस्य के संदर्भ से कहा है - "परमात्मा की छाया आत्मा पर पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा में, यही छायावाद है।"
3. डॉ. नगेन्द्र के अनुसार - स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह बताते हुए कहा गया है - "छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव पद्धति है। जीवन के प्रति एक विशेष भाव द ष्टिकोण है।"
4. महान कवयित्री महादेवी वर्मा ने - "छायावाद को आत्माभिव्यक्ति के लिए मनुष्य के हृदय की अकुलाहट का परिणाम माना है।"

इन विभिन्न परिभाषाओं को द ष्टिगत कर यह कह सकते हैं कि छायावाद द्विवेदी युग की इतिव त्तात्मक कविता की प्रतिक्रिया है। जिसमें मानवीकरण की प्रधानता के साथ प्रकृति में चेतना का आरोप किया गया है और परमात्मा के प्रति प्रकृति के माध्यम से प्रणय भाव प्रकट किया गया है।

छायावादी काव्य अपनी विशेषताओं के कारण साहित्य में विशिष्ट महत्वपूर्ण स्थान बना चुका है। कुछ महत्वपूर्ण रेखांकन योग्य विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1. **प्रकृति चित्रण**

   छायावादी काव्य में प्रकृति के सर्वाधिक आकर्षक लौकिक तथा अलौकिक रूपों का चित्रण किया गया है। इस धारा के समस्त कवि प्रकृति के पुजारी हैं। पंत, प्रसाद, निराला, दिनकर आदि ने प्रकृति को परम रूपसी नारी के रूप में चित्रित किया है।

   "पगली हाँ सम्भाल ले कैसे छूट पड़ा तेरा आँचल

   देख बिखरती है मणिराणी अरी उठा बेसुध चंचल।"

   प्रातः और सान्ध्यकालीन द श्यों का चित्रण इन कवियों की लेखनी से अत्यन्त अनूठे रूप में हुआ है। संध्या सुंदरी का अनूठा चित्रण निराला के शब्दों में-

"दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या सुन्दरी परी - सी
धीरे - धीरे - धीरे।"

इस काव्यधारा के कवियों के प्रकृति चित्रण में कहीं भी वासनात्मक और ऐन्द्रिक चित्रण नहीं है। विषाद और दुख में भी आदर्श चित्रण द ष्टिगोचर होता है। छायावादी काव्य का प्रत्येक चित्र विस्मय कार्य है। प्रकृति का रहस्यात्मक रूप मन को बांध लेने वाला होता है।

2. **व्यक्तिवाद की प्रधानता**

द्विवेदी युगीन इतिव त्तात्मक विचारधारा के कारण छायावाद में व्यक्तिवादी भाव उभर आया है। इस काव्यधारा में जहाँ आध्यात्मिक पक्ष सामने आया है वहीं व्यक्तिवादी भाव भी उभरा है। हिन्दी कविता जाति विशेष के सुख दुख तक ही सीमित न रहकर समस्त मानव के सुख दुख की कहानी बन गई है। इस काव्यधारा का कवि विभिन्न समस्याओं और बाधाओं के समाधान को बाह्य जगत में न खोजकर मानव मन में खोजता है। यही कारण है कि छायावाद में वैयक्तिक सुख दुख की अभिव्यक्ति खुलकर हुई है।

जयशंकर प्रसाद की 'आँसू' और पंत की 'उच्छवास' कविता में व्यक्तिवादी अभिव्यक्ति को अत्यंत आकर्षक रूप मिला है। छायावादी काव्य में यह व्यक्तिवाद 'मैं' के रूप में उभरकर सामने आया है। यह 'मैं' प्रतीकात्मक रूप है जिसमें लाक्षणिक भाषा और अप्रस्तुत योजना अपनायी गयी है। भावात्मक केन्द्र होने के बाद भी इसमें प्रेषणीयता और अभिव्यक्ति प्रबल होती है।

"मैंने 'मैं' शैली अपनायी, देखा एक दुखी निज भाई।
दुख की छाया पड़ी ह्रदय में, झट उमड़ वेदना आयी।।"

इस प्रकार कह सकते हैं कि छायावादी काव्य में व्यक्तिगत सुख-दुख की अपेक्षा मानव सुख-दुख की अनुभूति और अभिव्यक्ति को महत्व दिया गया है।

3. **रहस्यानुभूति और देश प्रेम**

छायावादी काव्य में रहस्यात्मक भावना का प्रबल रूप है। इसमें राष्ट्रीय जागरण के साथ रहस्यात्मक भाव का विलक्षण योग दिखाई देता है। इसी राष्ट्रीय जागरण भाव ने छायावाद को असामाजिक पदों पर भटकने से बचा लिया है।

छायावादी कवि अलौकिक आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति में युगीन सन्दर्भो को देखता चलता है। यह छायावादी काव्य की आदर्श प्रव त्ति है। प्रसाद देश और युग पर द ष्टि रखकर ही कहते हैं-

"अरुण यह मधुमय देश हमारा।"

माखनलाल चतुर्वेदी 'पुष्प की अभिलाषा' के संदर्भ से राष्ट्रीय भाव दर्शाते हुए अनूठी भावना सामने रखते हैं-

"मुझे तोड़ लेना वन माली,
उस पथ पर देना तुम फेंक,
मात भूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक।"

इस प्रकार छायावादी काव्य में देशकाल को ध्यान में रखकर प्रबल राष्ट्रीय भाव को अभिव्यक्ति दी गई है।

4. **नारी भावना**

छायावादी कवियों ने युग-युग से कारा में बन्द नारी को मुक्त करने और समाज में महत्व दिलाने के लिए उद्घोष किया है। उनकी लेखनी से नारी को श्रद्धा पात्र कहा गया है। नारी को सर्वाधिक आदर छायावादी काव्य में मिला है। प्रसाद ने 'कामायनी' में नारी को महत्व देते हुए लिखा है-

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पगतल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुंदर समतल में।"

उक्त काव्य में नारी चित्रण अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म और शील है। इसमें नग्नता और अश्लीलता को स्थान नहीं मिला। प्रसाद ने श्रद्धा के सौन्दर्य का अनूठा रूप प्रस्तुत किया है-

"नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा म दुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघवन बीच गुलाबी रंग।"

नारी सौंदर्य के चित्रण में उसकी अनूठी लेखनी बहुरंगी रंग भरती हुई सामने आती है। नारी जीवन प्रणय गाथा आशा, निराशा से आप्लावित दिखाई देता है। मिलन और विरह की अनुभूतियाँ अत्यन्त प्रभावशाली बन पड़ी हैं। नारी स्वयं को ही नहीं पुरुष को भी समरसता के मार्ग तक पहुँचाती है।

"तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में, कुछ सत्ता है नारी की
समरसता है सम्बन्ध बनी, अधिकार और अधिकारी की।"

5. **मानवतावाद-**

छायावाद भारतीय सर्वात्मवाद और अद्वैतवाद से प्रभावित हुआ है। इतना ही नहीं भारतीय दार्शनिकों के दर्शन से भी प्रभावित हुआ है। इसमें भावनाओं की संकीर्णता नहीं वरन् विस्त त रूप पाकर विश्व मानवतावाद स्थापित हुआ है। उक्त काव्य में नारी के अंग प्रत्यंगों का वर्णन न होकर उसके मानसिक सौन्दर्य का अनूठा रूप प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार छायावादी काव्य में श ंगार का आदर्श रसात्मक रूप है। जिसमें विलासिता नहीं सात्विकता है। छायावादी कवि युगीन अबला को मुक्त कर मानवतावाद लाना चाहता है।

"खोलो हे मेखला युगों की, कटि प्रदेश से तन से
अमर प्रेम हो उसका बन्धन, वह पवित्र हो मन से।"

या

"शक्ति के विद्युतकण जो व्यस्त, विकल बिखरे हैं निरूपाय।
समन्वय उनका करे समस्त, विजयिनी मानवता हो जाये।।"
{मानव तुम सबसे सुन्दरतम्}

इस धारा की कविता में जाति, धर्म प्रदेश और देश की सीमाएं नहीं हैं। वरन् विश्व के समस्त मानव की उन्नति का स्वर है। प्रसाद ने 'कामायनी' में वह मानवतावाद स्थापित करने के लिए कहा है-

"औरों को हँसते देखे मनु हंसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्त त कर दो, जीवन सुखी बनाओ।"

6. **आदर्शवाद-**

छायावाद में बाह्य सौन्दर्य के साथ आन्तरिक सौन्दर्य का प्रबल रूप मिलता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि छायावादी कवियों की आदर्शवादी शैली अन्तर्मुखी प्रव त्ति के आधार पर विकसित हुई है। यथार्थ के साथ आदर्श तथ्यों के चित्रण में कल्पनात्मक द ष्टिकोण अत्यंत अनूठा बन पड़ा है। आदर्श विचार अथवा कल्पना के कारण छायावादी कविता भाव और कला दोनों ही पक्षों में अनुकरणात्मक विशेषता प्राप्त कर सकती है।

"नरवत की आशा किरण समान, हृदय के कोमल कवि की कान्त
कल्पना की लघु लहरी दिव्य, कर रही मानस हलचल शान्त।"

7. **वेदना का चरित्र-**

छायावादी काव्य में वेदना का प्रभावी चित्रण मिलता है।

"वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान।

उमड़कर आँखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।।"

इस प्रकार आदर्श तथ्यों के समावेश से छायावाद के लौकिक धरातल पर अनुकरणीय और प्रेरक भाव पक्ष का अनुपमेय उदय हुआ है।

छायावाद में उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त गेयता, चित्रात्मकता, बिम्ब विधान और प्रतीक योजना और वेदना चित्रण आदि के सन्दर्भो से अपने अनूठे भावात्मक और कलात्मक पक्षों को महत्वपूर्ण रूप में सामने प्रस्तुत करता है। निश्चय ही छायावाद हिन्दी साहित्य में विभिन्न वादों में सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक वाद है।

12. छायावादी प्रतिनिधि रचनाकार

छायावादी कवियों के जीवन चरित्र तथा उनके काव्यों के विवेचन से इनकी चार कोटियाँ सामने आती हैं-

(i) **साहित्य साधक -** इनका एक मात्र लक्ष्य साहित्य साधना करना था। आजीवन साहित्य साधना में लगे रहे।

(ii) **जीवन केन्द्रित -** ये कवि तत्कालीन सामाजिक - राजनीतिक आंदोलनों में सक्रिय भाग लेते थे। साथ-साथ काव्य स जन का कार्य भी करते थे। इनका मुख्य लक्ष्य आंदोलन एवं साहित्य स जन दोनों न होकर जीवन में सफलता प्राप्त करना था। इसलिए जीवन केन्द्रित कहा जा सकता है।

(iii) **प्रणयी-** ये कवि प्रेमी थे इनके जीवन का मुख्य लक्ष्य प्रणय था। इन्होंने लौकिक प्रेम को प्रधानता दी है तथा नारी के लौकिक, मांसल सौन्दर्य का चित्रण किया है। लौकिक सौन्दर्य का अनुभूतिपरक वर्णन सराहनीय है।

(iv) **हास्य व्यंग्य**

1. साहित्य साधक

"स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा-

भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति।।" के कहने वाले महाकवि, भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास वास्तविक साहित्य साधक थे। जीवन से दुखी, किसी से मोह माया नहीं रह गई थी अगर रही भी होगी तो स्म ति संचारी भाव में। यही स्थिति छायावादी मनीषियों तथा मनीषिणी की थी चारों वैयक्तिक जीवन के दुख से संतप्त होकर उसे विस्म त कर साहित्य साधना में लग गए थे। प्रसाद की पत्नियां मरती गईं, प्रेमिकाओं से सच्चा प्रेम न मिला। पंत आजीवन कुंवारे रहे। प्रेमिका मिली तो प्रकृति। निराला की पत्नी एवं सरोज की म त्यु ने उनकी कमर तोड़ दी। केवल स्म तियों में संजोए रहे। महादेवी वर्मा का विवाह डॉ. एस.एन. वर्मा से हुआ किंतु आजीवन बिना तलाक के रहीं जीवन का सुख नहीं भोगा। रत्नावली का परित्याग कर ही तुलसी गोस्वामी तुलसीदास बने। साहित्य साधना का आनन्द सच्चा साहित्यकार ही जानता है। छायावाद की चतुष्टयी के जयशंकर प्रसाद, सुमित्रा नंदन पंत, पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी निराला तथा महादेवी वर्मा चारों साहित्यकार सच्चे साहित्य साधक थे।

जयशंकर प्रसाद-

व्यक्तित्व- कविवर जयशंकर प्रसाद (सन् 1890-1937 ई.) का जन्म माघ शुक्ल दशमी, संवत् 1946 वि. को वाराणसी के प्रसिद्ध तंबाकू के भारी व्यापारी 'सुंघनी साहू' के पुत्र रूप में हुआ। प्रसाद के पितामह शिवरतन साहू काशी के अति प्रतिष्ठित नागरिक थे। अवधि में 'सुंघनी' सूंघने वाली तंबाकू को कहते हैं। यह परिवार अति उत्तम कोटि की तम्बाकू का निर्माण करता था इसीलिए नाम ही 'सुंघनी साहू' पड़ गया। भरा-पूरा परिवार था। कोई भी धार्मिक अथवा विद्वान काशी में आता तो साहू जी उसकी अत्यधिक सेवा करते थे। दानी परिवार था। कवियों, गायकों तथा कलाकारों की गोष्ठियां उनके घर पर चलती रहती थीं। 'महादेव' नाम से प्रसिद्ध थे। शैशवावस्था में ही खेलने की अनेक वस्तुओं में से लेखनी का चयन किया था। नौ वर्ष की अवस्था में 'कलाधर' उपनाम से कविता रचकर अपने गुरू 'रसमय सिद्ध' को दिखलाई। इनका परिवार शैव था। घर पर ही संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी तथा फारसी आदि भाषाओं के पढ़ने की व्यवस्था थी।

बारह वर्ष की अवस्था में उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। अग्रज शंभुरतन का ध्यान व्यवसाय की ओर अधिक न था। देवी प्रसाद की म त्यु के बाद ग हकलह ने जन्म लिया। मकान बिक गया। कॉलेज की पढ़ाई छूट गई। आठवीं कक्षा तक ही पढ़ सके। उपनिषद्, पुराण, वेद एवं भारतीय दर्शन का अध्ययन घर पर चलता रहा। प्रसाद जी कसरत किया करते थे। दुकान बही पर बैठे-बैठे कविता लिखा करते थे। माता की म त्यु के दो वर्ष बाद अनुज भी चल बसे।

सत्रह वर्ष की अवस्था में उत्तरदायित्व का भार आ गया। स्वयं विवाह करना पड़ा। तीन विवाह किए। साहित्य साधना रात्रि में होती थी। प्रसाद की कविता का आरंभ ब्रजभाषा से हुआ।

कृतित्व

काव्य- 'उर्वशी' (चम्पू) 'प्रेम राज्य' (चम्पू), 'वन मिलन', 'अयोध्या का उद्धार', 'शोकोच्छवास', 'बभ्रवाहन', 'कानन कुसुम', 'प्रेम पथिक', 'करुणालय', 'महाराणा का महत्व', 'झरना', 'आंसू', 'लहर' एवं 'कामायनी' (महाकाव्य)।

संकलन- 'चित्राधार'

कविताएं- 'प्रभो', 'रजनीगंधा', 'देव मंदिर', 'दलित कुमुदिनी', 'प्रभात', 'चूक हमारी', 'प्रेमोपालंभ', 'विदाई', 'नमस्कार', 'पतितपावन', 'रमणी हृदय', 'खोलो द्वार', 'श्रीकृष्ण जयंती', 'विनोद बिंदु', 'मकरंद बिंदु', 'गंगा सागर', 'विरह, मोहन', 'मिलन', 'प्रियतम', 'मेरी कचाई', 'तेरा प्रेम', 'तुम्हारी स्मरण', 'हमारा हृदय', 'मिल जाओ गले', 'अनुनय', 'तेरा रूप', 'सागर संगम', 'आत्म कथा', आदि समय समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

कथाएं- 'मर्म कथा', 'सत्यव्रत' तथा 'भरत'।

चतुर्दशपदी- 'स्वभाव', 'विनय', 'दर्शन', 'भुखमरी', 'नींद'।

गद्य काव्य- 'प्रबोधिनी'।

कहानी - 'आकाश द्वीप', 'इन्द्रजाल', 'आंधी', 'प्रतिध्वनि'।

उपन्यास- 'कंकाल', 'तितली', 'ईरावती'।

निबंध- काव्य और कला तथा अन्य निबंध।

साहित्यिक विशेषताएं- 'प्रेम पथिक' की रचना पहले ब्रजभाषा में की गई थी बाद में उसे खड़ी बोली में रूपांतरित कर दिया गया। 'झरना' के पूर्व की सभी रचनाएं द्विवेदी युग में लिखी गई थीं। प्रसाद जी की आरंभिक शैली संस्कृत गर्भित है। 'झरना' में कवि ने आंतरिक कल्पना द्वारा सूक्ष्म भावनाओं को व्यक्त किया है। बाह्य सौंदर्य का चित्रण करते समय भी उन्होंने सूक्ष्म और मानसिक पक्ष को व्यक्त करने की ओर ध्यान दिया है। 'आंसू' का आरंभ कवि की विरह-वेदना से हुआ है। अंत में 'आंसू' को विश्व-कल्याण की भावना से संबंधित कर दिया है। अंत तक आते-आते कवि अपने व्यक्तिगत जीवन की निराशा और विषाद से ऊपर उठकर अपनी पीड़ा को करुणा का रूप देकर विश्व प्रेम में बदल देता है। 'लहर' गीत कला का सुंदर उदाहरण है। कल्पना की मनोरमता, भावुकता तथा भाषा शैली की प्रौढ़ता सर्वत्र द ष्टिगोचर होती है। 'कामायनी' अंतिम कृति है। इसके द्वारा मानव सभ्यता दिखलाई गई है। संक्षिप्त कथानक में मानव जीवन के अनेक पक्षों को समन्वित करके मानव जीवन हेतु व्यापक आदर्श व्यवस्था का प्रयत्न किया है। पात्रों के चरित्रांकन में मनुष्य की अनुभूतियों, कामनाओं और आकांक्षाओं की अनेक रूपता वर्णित है। यह कामायनी की चेतना का मनोवैज्ञानिक पक्ष है। मनु श्रद्धा, इड़ा एवं मानव के द्वारा मानव मात्र के मनोजगत के विविध पक्षों का चित्रण चिंता, आशा, वासना, ईर्ष्या, संघर्ष एवं आनंद आदि सर्गो में किया गया है। इतिहास में रूपक का भी अद्भुत सम्मिश्रण हो गया है। पात्रों के ऐतिहासिक महत्व के साथ-साथ सांकेतिक अर्थ भी है। मनु-मन, श्रद्धा-हृदय तथा इड़ा-मस्तिष्क का प्रतीक है। बुद्धिवाद के विरोध में हृदय पक्ष की प्रधानता दिखलाई गई है। शैव दर्शन के आनंदवाद को जीवन के पूर्ण उत्कर्ष का साधन स्वीकारा गया है। 'कामायनी' गौरवशाली उपलब्धि है।

सुमित्रा नंदन पंत

व्यक्तित्व- कविवर सुमित्रा नंदन पंत जन्म (सन् 1900 - 1977 ई.) ग्राम कौसानी, जनपद अल्मोड़ा, वर्तमान उत्तरराखंड (पुराने उत्तर प्रदेश) में हुआ था। इनके पिता का नाम गंगा दत्त पंत तथा माता का नाम श्रीमती सरस्वती देवी था। सबसे छोटी संतान थे। जन्म देते ही इनकी माता कुछ घंटे बाद ही इनको छोड़कर चल बसीं। जिसके परिणामस्वरूप अल्मोड़ा की प्राकृतिक सुषमा की गोद में पलने लगे तथा प्रकृति के उस मनोरंजक परिवेश का इनके व्यक्तित्व पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। पंत की प्रारंभिक शिक्षा गांव की पाठशाला में हुई। इसके पश्चात् अल्मोड़ा गवर्नमेंट हाईस्कूल में प्रविष्ट हुए। काशी के जय नारायण हाई स्कूल से स्कूल लीविंग की परीक्षा पास की। सन् 1916 ई. में क्योर सेन्ट्रल कॉलेज प्रयाग से एफ.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। संस्कृत, अंग्रेजी तथा बंगला का अध्ययन किया। सन् 1950 में आल इंडिया रेडियो के परामर्शदाता नियुक्त हुए। सन् 1957 तक रेडियो से संबद्ध रहे। 'कला और बूढ़ा चांद' काव्य ग्रंथ पर साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा 'लोकायतन' पर सोवियत भूमि पुरस्कार, 'चिदंबरा' पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला। भारत सरकार ने पंत को 'पद्म भूषण' की उपाधि से विभूषित किया। पंत में

यथार्थ के विषम एवं दारुण रूप के अभाव का कारण भी कुछ सीमा तक प्रकृति के उस प्रभाव को ही स्वीकारा जा सकता है। प्रकृति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम ने इन्हें जीवन की नैसर्गिक व्यापकता तथा अनेक रूपता से पूर्ण रूपेण वंचित कर दिया।

"छोड़ द्रुमों की म दु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूं लीचन?
छोड़ अभी से उस जग को।"

इस पद्यांश के विवेचन से ऐसा लगता है कि पंत नारी सौंदर्य की अपेक्षा प्राकृतिक सौंदर्य को अधिक महत्व देते हैं। नारी सौंदर्य की यह उपेक्षा जीवन की उपेक्षा के भाव को व्यक्त करती है। बालिका भी नारी का लघु रूप है। इस विश्व के प्रति कवि का मोह अभी समाप्त नहीं हुआ है।

कृतित्व- 'गिरजे का घंटा', 'ग्रंथि', 'वीणा', 'पल्लव', 'गुंजन', 'युगांत', 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'उत्तरा', 'स्वर्ण किरण, 'स्वर्ण धूलि', 'अंतिमा', 'किरण, 'पतझर', 'एक भाव क्रांति', 'लोकायतन', 'कला और बूढ़ा चांद', 'चिदंबरा', 'गीत हंस' तथा 'रजत शिखर' आदि काव्य रचनाएं हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- पंत के काव्य विकास के प्रथम सोपान में 'वीणा', 'ग्रंथि', 'पल्लव' और 'गुंजन' काव्य आते हैं। ये छायावादी प्रव त्ति की प्रमुख रचनाएं हैं। 'वीणा' में प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति कवि का अनन्य अनुराग है। 'ग्रंथि' से वह प्रेम की भूमिका में प्रवेश करता है तथा उसे नारी-सौंदर्य आकृष्ट करने लगता है। 'पल्लव' छायावादी पंत का चरम बिंदु है। अब कवि अपने ही सुख-दुख में केंद्रित था किंतु 'गुंजन' से वह अपने में केंद्रित न रहकर विस्त त मानव जीवन अर्थात् मानवतावाद की ओर उन्मुख होता है।

द्वितीय सोपान में पंत की तीन रचनाएं 'युगांत', 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' आती हैं। इस काल में कवि पहले गांधीवाद से प्रभावित है। बाद में मार्क्सवाद अपनी ओर आकर्षित कर लेता है तथा अंत में वह प्रगतिवादी बन जाता है।

मार्क्सवाद की भौतिक स्थूलता कवि के मूल संस्कारी कोमल स्वभाव के विपरीत होने के कारण वह पुनः अंतर्जगत की ओर मुड़ जाता है। इस काल की प्रमुख रचनाएं 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि', 'उत्तरा', 'अतिमा', 'कला और बूढ़ा चाँद', 'किरण', 'पतझर', 'एक भाव क्रांति' तथा 'गीत हंस' है। इस काल में कवि पहले विवेकानंद और रामतीर्थ से प्रभावित होकर बाद में अरविंद दर्शन से प्रभावित होता है।

सन् 1955 ई. के बाद की पंत की कुछ रचनाओं 'कौवे', 'मेंढक' आदि पर प्रयोगवादी कविता का प्रभाव द ष्टिगोचर होता है। परंतु कवि को यह रूप सहज नहीं लगता और वह पुनः उसे छोड़कर अपने प्रकृत अर्थात् वास्तविक रूप पर लौट आता है।

पंत छायावादी चार उन्नायकों में से एक हैं। वे अति सुकुमार एवं संवेदनशील कवि हैं। उन्हें 'प्रकृति का मंजुल-मस ण कवि' कहा जाता है। वे निरंतर प्रगतिशील रहे हैं। वातावरण तथा अध्ययनशीलता उनकी प्रगतिशीलता के प्रमुख कारण रहे हैं। वातावरण संबंधी प्रभाव उन पर उनकी जन्मभूमि कौसानी का सबसे अधिक पड़ा है जिसकी प्राकृतिक सुषमा में वे पले, बड़े हुए हैं उसने इन्हें मुग्ध कर लिया है। इसके अतिरिक्त वातावरण संबंधी द्वितीय प्रभाव उन पर सन् 1930 ई. के बाद देश में दिखलाई पड़ने वाली विकट राजनीतिक परिवेश तथा जनसाधारण के कष्टों की विभीषिका का पड़ा, जिसने उन्हें गांधीवाद से मार्क्सवाद की ओर मोड़ दिया। दर्शन की द ष्टि से वे सबसे अधिक स्वामी विवेकानंद एवं स्वामी रामतीर्थ के वेदांत संबंधी विचारों से प्रभावित हुए तथा अंत में उन पर अरविंद दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है। पंत काव्य में प्रकृति के मनोरम रूपों का मधुर एवं सरस चित्रण मिलता है। 'आंसू की बालिका' तथा 'पर्वत प्रदेश में पावस' आदि कविताओं में प्रकृति के मनोहर चित्र विद्यमान हैं जिनमें कवि की जन्मभूमि के प्राकृतिक सौंदर्य का अपूर्व वैभव द ष्टिगोचर होता है। कवि पंत आदर्श प्रेमी रहे हैं। कवि की आदर्शवादी भावना निरंतर प्रबल होती गई है। यह आदर्शवादी भावना ही 'परिवर्तन' कविता में 'सर्ववाद' का रूप ग्रहण कर लेती है। कवि 'तिमिर त्रास' का निवारण करना चाहता है किन्तु प्रकृति प्रेम को - जो एक तरह से ठोस यथार्थ जीवन के प्रति आसक्ति की सीमा बन जाता है - त्यागना भी नहीं चाहता है। 'गुंजन' तक की रचनाओं में पंत ने विचार को सजीव सरस रूप में ही प्रस्तुत किया है। पंत की सौंदर्य भावना और कल्पना का प्रसार प्रकृति और जीवन के सुकुमार रूपों

की ओर अधिक रहा है।

'पल्लव' की भूमिका में पंत ने भाषा, अलंकार, छंद, शब्द और भाव के सामंजस्य पर विचार व्यक्त किए हैं जिससे यह स्पष्ट होता है कि कवि भाषा प्रयोग के संबंध में कितना जागरूक है। पंत की शैली में लाक्षणिक वैचित्र्य, विशेषण विपर्यय, विरोध चमत्कार, मानवीकरण, प्रतीक विधान तथा अन्योक्ति विधान विद्यमान हैं। भावों और विचारों की सरलता एवं स्पष्टता के अनुरूप ही शैली प्रायः प्रसादगुण युक्त है। सजगता भाषा के मंथर गंभीर प्रभाव और अलंकार विधान के रूप मं द ष्टिगोचर होती है। अनुभूति के प्रवाह एवं वेग के अनुरूप ही भाषा में प्रवाह एवं आवेश है।। 'ग्राम्य' आदि में उनकी भाषा शैली एवं भाव बोध प्रगतिवादी चेतना से प्रभावित हैं। जहां कविता की भाषा में वक्ता, सांकेतिकता आदि के स्थान पर सरलता तथा सपाट बयानी परिलक्षित होती है आध्यात्मिक सत्य पर कवि की आस्था बनी हुई है किन्तु वह भौतिक सम द्धि की अनिवार्यता को भी स्वीकारता है। नई शैली में छायावादी कविता की सांकेतिकता, उपचार वक्रता तथा बौद्धिकता आदि का समावेश है।

पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

व्यक्तित्व- पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी निराला (1897 - 1962 ई.) का जन्म संवत 1953 वि. वसंत पंचमी के दिन ग्राम गढ़कोला जनपद उन्नाव में हुआ था। इनके पिता का नाम पं. राम सहाय त्रिपाठी था। वे मेदिनीपुर के महिषदल राज्य में नौकरी करते थे। इनकी मां सूर्य का व्रत रखती थी, इनका जन्म भी रविवार को हुआ था इसीलिए इनका नामकरण सूर्य के आधार पर सूर्यकांत किया गया। साहित्य क्षेत्र में अपनी निराली प्रकृति के कारणस्वरूप उपनाम 'निराला' हो गया।

निराला की शिक्षा बंगाल में ही हुई। ये आरंभ से स्वच्छंद प्रकृति के थे। अतः स्कूली शिक्षा में इनका मन न रमा। स्कूल छोड़कर घर पर ही अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त किया। साहित्य, संगीत और कला के अतिरिक्त कुश्ती एवं घुड़सवारी का भी इन्हें अत्यधिक शौक था। हिंदी, अंग्रेजी, बंगला तथा संस्कृत का गहन अध्ययन किया। इनके काव्य पर बंगला का स्पष्ट प्रभाव द ष्टिगोचर होता है।

तेरह वर्ष की अवस्था में ही इनका विवाह हो गया था। इनकी दो संताने एक पुत्र एक पुत्री थी। पिता की म त्यु के पश्चात् इन्होंने स्वयं महिषादल राज्य में नौकरी कर ली किंतु बाइस वर्ष की आयु में पत्नी का देहांत हो जाने पर इन्होंने नौकरी छोड़ दी और स्वतंत्र रूप से साहित्य साधना करने लगे।

निराला के विराट वपु में कोमल एवं भावुक हृदय विद्यमान था। वे उदार एवं दानी प्रकृति के थे। असहाय गरीबों के प्रति उनके मन में अपार प्रेम था। ठंड से सिकुड़ते दरिद्रों को देखकर वे उन्हें अपने पहने हुए वस्त्र तक उतारकर दे देते थे। छायावादी चार स्तंभों में प्रमुख होने पर भी वे छायावादी कवियों में सर्वाधिक विद्रोही एवं क्रांतिकारी प्रकृति के थे। वस्तुतः वे स्वच्छंदतावादी थे।

पुत्र छोटी आयु में चल बसा। पत्नी की म त्यु हो जाने पर बालिका सरोज ननिहाल में पली। विवाह योग्य होने पर अपने घर लाकर उसका विवाह बड़ी कठिनाई से किया। एक वर्ष के अंदर ही विधवा होकर बीमार पड़ गई। औषधि के अभाव में नानी के यहां वह चल बसी। निराला की कमर टूट गई। उसकी स्म ति में मानों श्राद्ध स्वरूप 'सरोज स्म ति' की रचना की।

निराला का जीवन अभावों तथा दुखों से परिपूर्ण था किंतु इन्होंने कभी किसी विपत्ति के समक्ष सिर नहीं झुकाया। अभावों एवं पीड़ाओं की तीव्र एवं मर्मांतक व्यथा को झेलते हुए भी ये साहित्य साधना में तल्लीन रहे। मगर कब तक कोई इस प्रकार जी सकता है? निराला मन और बुद्धि से तो संघर्षों की उपेक्षा करते हुए अविचलित रहे किंतु उनकी चेतना के भीतर जैसे कुछ टूट रहा था, घुल रहा था। उनके जीवन के अंतिम वर्ष जहां उनकी चेतना के अथक-अविचल संघर्ष की कहानी कहते हैं, वहां उनके जीवन की विपत्तियों और व्यथाओं की दुर्निवार शक्ति को भी व्यंजित करते हैं।

कृतित्व- ***काव्य-*** 'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'तुलसीदास', 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'बेला', 'अपरा', 'नए पत्ते', 'अर्चना', 'आराधना', 'गीत कुंज', 'सांध्य काकली', 'राम की शक्ति पूजा', 'सरोज स्म ति', (शोक गीत)।

काव्य ग्रंथों के अतिरिक्त इन्होंने उपन्यास, कहानी, आलोचना एवं निबंध आदि के क्षेत्र में अपनी लेखनी चलाई है।

साहित्यिक विशेषताएं- निराला ने क्रांति एवं विरोध का स्वर मुखरित करते हुए समाज की व्यथा एवं वेदना को वाणी दी तथा विषमता से पीड़ित मानवता की छटपटाहट को अंकित किया है। विधवा के प्रति हिंदू समाज जिस प्रकार असहनशील होकर उस दुखों की मारी पर भीषण अत्याचार करता है उससे कवि का भावुक हृदय तड़प उठता है। उन्होंने 'विधवा' कविता में उसके

हाहाकार तथा वेदना को मुखरित किया है। 'रानी और कानी' कविता द्वारा समाज पर करारा व्यंग्य किया है जहां कन्या के विवाह के समय उसके आंतरिक सौंदर्य को न देखकर बाह्य सौंदर्य एवं धन को प्रमुखता दी जाती है।

प्रयोगवाद के जन्मदाताओं में निराला का प्रमुख स्थान है। वे दीन दुखियों की दुर्दशा, पूंजीपतियों द्वारा गरीबों का शोषण, अछूतों का उत्पीड़न आदि देख सिहर उठे हैं जिसके परिणामस्वरूप उनके काव्य में नव जागरण का संदेश सुनाई पड़ता है। आर्थिक विषमता पर तीव्र प्रहार किया है। जिस व्यवस्था में कुछ लोग सुख भोगते रहे एवं विलासिता में निमग्न रहे तथा अन्य जी तोड़ श्रम करके भी पेट भर अन्न के लिए तरसते रहे वह व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट करने की कामना करते हुए कवि बादल से आग्रह करते हुए कहता है -

छिन्न भिन्न कर पत्र, पुष्प, वन, उपवन,
वज्रघोष से ए प्रचंड! आतंक जमाने वाले।

यहां पत्र, पुष्प, पादप उन धनिकों के प्रतीक हैं जो समाज को लूट-लूटकर अपनी तिजोरियां भरने में लगे हुए हैं। कवि कहता है कि हे बादल इन शोषकों को छिन्न-भिन्न करके अपने प्रचंड निर्घोष से उन्हें आतंकित कर दे। कवि का अत्यधिक संवेदनशील एवं परदुख कातर हृदय दीन दुखी, असहायों के प्रति गहरी करुणा से भरा है। इन शोषितों के प्रतिनिधि के रूप में कवि ने मजदूर, किसान और भिक्षुक के चित्र उपस्थित किए हैं। 'भिक्षुक' कविता में कवि ने भिखारी की विपन्नावस्था का चित्रण किया है। 'बादल राग' कविता में_कृषकों की विपन्नता का चित्र उपस्थित किया है।

स्वदेशाभिमान एवं राष्ट्र प्रेम की भावना अति ज्वलंत थी। वे भारत माता के साकार रूप की वंदना करते हैं। देश की परतंत्रता से वे इतना व्यथित एवं क्षुब्ध थे कि उन्होंने देशभक्तिपरक अनेक गीत लिखे हैं। उनके अपने उद्‌बोधन गीत में 'भारतीय वंदना', 'तुलसीदास', 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' आदि कविताओं में उनके देशभक्ति के भाव मुखरित हुए हैं। निराला का प्रेम एवं सौंदर्य चित्रण अनुपम है। उनकी द ष्टि प्रकृति एवं मानव दोनों के सौंदर्य से अभिभूत है। उन्होंने निश्छल पुनीत प्रेम के अनेक गीत लिखे हैं जिनमें कहीं प्रेयसी के मादक एवं पुनीत प्रेम का चित्रांकन किया है, कहीं प्रिया के नूपुरों की कर्णप्रिय झंकार एवं उसकी अलकों की मोहक गंध की संभार है तो कहीं प्रेम की प्रेरणादायक भक्ति का निरूपण।

निराला छायावाद के प्रमुख चार स्तंभों में थे। अतः उनके काव्य में छायावादी प्रव त्ति का मिलना स्वाभाविक है। प्रकृति पर चेतना का आरोप अर्थात् प्रकृति का नर-नारी के रूप में चित्रण निराला काव्य में हुआ है। 'जूही की कली' ऐसी ही कविता है। दर्शन तथा रहस्य भावना निराला में रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानंद के दार्शनिक विचारों से आई। प्रकृति के अनेक रम्य एवं मनोहारी चित्र अंकित किए हैं। श ंगार, वीर, रौद्र, करुण आदि विभिन्न रसों का सुंदर परिपाक मिलता है। करुण रस का सुंदर स्वरूप 'सरोज स्म ति' में विद्यमान है।

भाषा बंगला से प्रभावित संस्कृतिनिष्ठ एवं समास बहुला है। भाषा भाव, विषय एवं विचारानुसार परिवर्तित होती रहती है। शैली वैविध्यपूर्ण है। छंदों के क्षेत्र में क्रांतिकारी प्रयोग किए हैं। मुक्त छंद के जन्मदाता ही नहीं सफल प्रयोक्ता भी है। अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, संदेह आदि अलंकारों का सक्षम प्रयोग किया गया है। मानवीकरण तथा ध्वन्यार्थ योजना आदि की सार्थक योजना की है। निराला बहुमुखी प्रतिभा के कवि हैं। काव्य में उन्होंने भाव, भाषा तथा छंद की द ष्टि से नवीन प्रयोग किए हैं। मुक्त छंद और संगीतात्मकता उनकी विशेष देन है। निराला की देन अविस्मरणीय है तथा आधुनिक काल के साहित्य में उनका स्थान अप्रतिम है।

महादेवी वर्मा-

व्यक्तित्व- महादेवी (सन् 1907 - 1987 ई.) का जन्म फर्रुखाबाद में हुआ। पिता का नाम गोविंद प्रसाद तथा माता का नाम श्रीमती हेमरानी था। पति का नाम रूपनारायण वर्मा था जिन्होंने इस शर्त पर अलगाव कर लिया था कि दोनो पुनः विवाह नहीं करेंगे। महादेवी वर्मा का मुख्य क्षेत्र काव्य है। उनकी गणना छायावादी कवियों की व हत् चतुष्टयी में की जाती है। उनके काव्य में वेदना की प्रधानता है। काव्य के अतिरिक्त उनकी गद्य की श्रेष्ठ रचनाएं भी हैं। प्रयाग में साहित्यकार संसद की स्थापना करके साहित्यकारों का मार्ग दर्शन किया। आरंभिक शिक्षा घर पर ही ग्रहण की। इसके बाद इनकी विधिवत शिक्षा प्रयाग में हुई जहां इन्होंने सन् 1933 ई. में दर्शनशास्त्र में एम.ए. किया। ये कुशल चित्रकार भी थीं। नारी को अपनी स्वतंत्रता तथा अधिकारों के प्रति सजग किया। उनके रेखाचित्रों में गद्य का चित्रात्मक, भावमय एवं कवित्वपूर्ण रूप विद्यमान है। पीड़ित पशुओं,

मानवों तथा पालतू जानवरों के प्रति विशेष लगाव था। इन्होंने मार्मिक शब्द चित्र उपस्थित किए हैं। साहित्य सेवाओं के लिए राष्ट्रपति ने इन्हें 'पद्मभूषण' उपाधि से विभूषित किया। 'नीरजा' पर 'सेक्सरिया पुरस्कार' तथा 'यामा' पर 'मंगला प्रसाद पुरस्कार' डेढ़ लाख रुपये के पश्चात् 'ज्ञान पीठ पुरस्कार' से सम्मानित किया जा चुका है। 18 मई, सन् 1983 ई. में इन्हें उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान ने सर्वश्रेष्ठ कवयित्री के रूप में 'भारत भारती' पुरस्कार से सम्मानित किया और 'भागीरथी की प्रतिमा' भेंट की।

कृतित्वः

काव्य- 'नीरजा', 'नीहार', 'रश्मि', 'सांध्यगीत', 'दीप शिखा' एवं 'यामा'।

गद्य- 'अतीत के चलचित्र', 'स्म ति की रेखाएं', 'पथ के साथी', 'मेरा परिवार', तथा 'श ंखला की कड़ियां'।

अनूदित- 'सप्तपर्णा'।

साहित्यिक विशेषताएं- महादेवी को आधुनिक मीरा कहा जाता है। महादेवी वेदन की कवयित्री हैं। उनके काव्य में करुणा, सहानुभूति, नारी की करुण दशा तथा उसके प्रति संवेदना विद्यमान है। सामाजिक जीवन की विकृतियों पर असंतोष व्यक्त किया है। इनकी कविताओं में आरंभ से ही विस्मय, जिज्ञासा, व्यथा और आध्यात्मिकता के भाव मिलते हैं जो निरंतर प्रौढ़ एवं परिमार्जित होते गए हैं। महादेवी के सभी गीतों में अनुभूति और विचार के धरातल पर एकान्विति मिलती है। इनकी भावभूमि गीतिकाव्य के उपयुक्त हैं क्योंकि ये स्वानुभूति की प्रत्यक्ष विव ति करती हैं। इनके गीतों में सफल संयमित भावातिरेक की व्यंजना हुई है। इनके गीत भाव प्रधान हैं। इनके गीतों में व्यथा, पीड़ा, आशा, अज्ञात प्रिय के प्रति प्रणय निवेदन तथा साधना की विविध अनुभूतियों की प्रधानता है। अनुभूति विचार से समन्वित करने का प्रयत्न किया है। हृदय और बुद्धि के विरोध का निराकरण किया है तथा काव्य में दोनों की अखंड स्थिति का समर्थन किया है।

इनका प्रणय निवेदन नहीं अपितु प्रणय वेदना है क्योंकि प्रणय में दुख की प्रधानता है। प्रिय से मिलन की कामना नहीं है क्योंकि मिलन व्यक्तित्व विनाशी है इसीलिए वे कहती हैं -

"मिलन का मत नाम लो, मैं विरह में चिर हूं।"

महादेवी का दुखवाद नैराश्य या कर्महीनता का प्रतिपादन नहीं करता है। महादेवी ने दुख की महत्ता मात्र वैयक्तिक जीवन के संदर्भ में स्वीकारी है। समष्टिगत जीवन के प्रसंग में वे अथक और अमर साधना में विश्वास करती हैं। वे अमरों के लोक की कामना नहीं करती हैं वे तो मात्र 'मिटने के अधिकार' को स्थायित्व प्रदान करने की आकांक्षिणी हैं। उनका दुखवाद एक सीमा तक समाज-कल्याण की भावना से भी संप क्त है। वे जब अपने जीवन की तुलना "नीर भरी दुख की बदली" या "मंदिर के नीरव दीपक" से करती हैं तब वहां आध्यात्मिक साधना के साथ-साथ लोक कल्याण की भावना भी विद्यमान रहती है। जिस प्रकार बादल स्वयं को गलाकर धरती की प्यास बुझाकर सुख एवं शीतलता प्रदान करता है, परिवेश को आलोक प्रदान करने वाला दीपक स्नेह और बत्ती की समाप्ति पर जलकर राख हो जाता है, उसी प्रकार महादेवी स्वयं साधना की आग में जलकर सामाजिक जीवन को अधिक सुखद एवं मंगलमय बनाने की कामना करती हुई लिखती हैं-

"दुख प्रति निर्माण उन्मद
ये अमरता नापते पद
बांध देंगे अंक संस ति से तिमिर में स्वर्ण बेला।"

महादेवी बौद्ध-दर्शन के प्रभाव को मात्र अपनी लोकमंगल विधायिनी पीड़ा की स्वीकृति तक सीमित स्वीकारती हैं। अन्यथा जहां तक सत्य के पारमार्थिक स्वरूप का संबंध है वे उपनिषदों की परंपरा को ही स्वीकारती हैं। उनके अनुसार स ष्टि उस असीम सत्य की ही सौंदर्यमयी अभिव्यक्ति है-

"मैं कण कण में ढाल रही अलि,
आंसू के मिस प्यास किसी का।"

'दीपशिखा', 'बादल', 'निशा', 'मंदिर', 'दिव' आदि उनके प्रिय बिंब हैं। वे लोकोत्तर सत्ता को स्वीकारती हैं। यह उनकी रहस्यात्मक अनुभूति है जो व्यष्टि तक सीमित न होकर समष्टि तक व्याप्त है। लोक कल्याण की यही भावना उनकी द ढ़ आस्था,

अचल साधना, तथा आत्मबलिदान के रूप में गीतों में बिखरी हुई द ष्टिगोचर होती है। महादेवी ने मध्यकालीन रहस्य साधना की परंपरा को स्वीकारते हुए उसे लोक-कल्याण के साथ संप क्त करके अपने युगबोध के अनुरूप रूप प्रदान करने का प्रयास किया है। रहस्यवाद के इस नए आयाम का उद्घाटन करने का श्रेय महादेवी वर्मा को है। इसके लिए उन्होंने अभिव्यक्ति की सांकेतिकता और सूक्ष्मता के अलावा प्रतीक विधान और आलंकारिता का आश्रय लेकर उसे पूर्ण सफलता प्रदान करने के लिए विभिन्न योजनाएं की हैं।

2. जीवन केंद्रित

साहित्य साधक छायावादी चतुष्टयी के अतिरिक्त कुछ अन्य कवि भी हैं जिन्होंने छायावाद के विकास में योगदान किया। ये कवि सेवा कार्य करते थे अथवा सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों में मुख्य रूप से सक्रिय भाग लेते थे तथा अवकाश में साहित्य सेवा भी करते थे। साहित्य सेवा या आंदोलनों में सम्मिलित होना इनका मुख्य उद्देश्य नहीं था अपितु मुख्य उद्देश्य जीवन का विकास करना था। इनकी विचारधारा जीवन बिंदु पर केन्द्रित थी।

इसके अलावा इनमें कवियों का ऐसा समूह भी था जिनका छायावाद युग से इतर युगों से संबंध था तथा उसी से संबंधित काव्य स जन कार्य करते थे। छायावाद के उत्कर्ष को देखकर इसकी ओर आकर्षित हुए तथा छायावादी कविता भी करने लगे। छायावाद की कुछ प्रव त्तियां और विशेषताएं उनके काव्य में परिलक्षित होती हैं। इस प्रकार जीवन केंद्रित कवियों के प्रथम एवं द्वितीय दो वर्ग हैं।

प्रथम वर्ग- इस वर्ग के कवि आंदोलनकारी कवि थे जिनमें माखन लाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, बाल कृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्रा कुमारी चौहान, सियाराम सरण गुप्त तथा भगवती चरण वर्मा आदि प्रमुख हैं। इसमें राम नरेश त्रिपाठी भारतेंदु युग से संबंधित थे। प्रथम वर्ग को 'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा' नाम भी दिया गया है।

माखन लाल चतुर्वेदी

व्यक्तित्व- माखन लाल चतुर्वेदी (सन् 1889-1968 ई.) का जन्म ग्राम बाबई, जनपद होशंगाबाद, मध्य प्रदेश में हुआ था। इनके पिता गांव में स्कूल के अध्यापक थे इसलिए इनकी आरंभिक शिक्षा वहीं हुई। ये सजग, उत्साही एवं संवेदनशील थे। देश की दशा के प्रति आरंभ से ही जागरूक थे। इन पर सैयद अमीर अली 'मीर' स्वामी रामतीर्थ तथा माधव राव सप्रे का विशेष प्रभाव पड़ा था। वैष्णव-संस्कार तो इन्हें अपने परिवार से ही मिले थे। जीवन के आरंभिक काल में अध्यापन कार्य करते थे। इनका उपनाम 'एक भारतीय आत्मा' था। आरंभ में क्रांति-दर्शन से प्रभावित हुए थे किंतु बाद में इनकी आस्था गांधीवाद की ओर हो गई। राजनीतिक सक्रियता के कारण कई बार जेल की यात्राएं की।

कृतित्व- 'हिम किरीटिनी', 'हिमतरंगिनी', 'माता', 'युग चरण', 'समर्पण', 'वेणु लो गूंजे धरा' आदि कविता संग्रह।

पत्रिका- '-कर्मवीर' का संपादन।

साहित्यिक विशेषताएं- जेल में रहते हुए अनेक कविताओं का स जन किया। देश के प्रति गंभीर प्रेम और देश के लिए कल्याणकारी भावना हेतु आत्मोत्सर्ग की उत्कट भावना के दर्शन होते हैं। इस मार्ग पर चलने वाले पथिक को तभी सफलता मिल सकती है जब यह जीवन के सुख और वैभव को ठुकराकर संघर्ष और साधना का मार्ग अपनाएं। इन्होंने भारतवासियों को संघर्ष और साधना के मार्ग का पथिक बनने हेतु प्रेरित किया है। इनकी कई रचनाओं विशेषकर आरंभिक रचनाओं में आध्यात्मिकता को अभिव्यक्ति मिली है। इनकी आध्यात्मिक भावना पर निर्गुण भक्ति, सगुण भक्ति एवं रहस्यवादी भावना का प्रभाव परिलक्षित होता है। इनकी कविताओं की प्रमुख विशेषता राष्ट्रप्रेम तथा आत्मोत्सर्ग है।

रामनरेश त्रिपाठी

व्यक्तित्व- द्विवेदी युगीन राम नरेश त्रिपाठी (सन् 1889-1962 ई.) का जन्म ग्राम कोइरीपुर, जनपद जौनपुर में हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा गांव की पाठशाला में ही हुई। अंग्रेजी अध्ययन हेतु जौनपुर के स्कूल में प्रवेश लिया किंतु नौवीं कक्षा तक ही पढ़ पाए। कविता के प्रति इनकी रूचि बचपन से ही थी। गांव के प्रधानाचार्य ब्रजभाषा में काव्य स जन करते थे। उनसे प्रभावित होकर ये भी समस्यापूर्ति करने में लाए गए। 'सरस्वती' पत्रिका के प्रभावस्वरूप खड़ी बोली में लिखने लगे। छायावाद के उत्कर्ष से प्रभावित होकर छायावादी कविता लिखने लगे।

कृतित्व- 'मानसी', 'पथिक', 'स्वप्न' (खंड काव्य)।

साहित्यिक विशेषताएं - अपने खंड काव्यों में परोक्ष रूप से परतंत्रता के बंधन काटने का संदेश दिया है। अनेक कविताओं में पशुबलि की अवहेलना करते हुए निडर होकर स्वतंत्रता के मार्ग का अनुगामी बनने हेतु प्रेरित किया गया है। देशभक्ति की कविताएं भी लिखी हैं। काल्पनिक कथाओं के माध्यम से देशोद्धार हेतु आत्मोत्सर्ग की भावना की अभिव्यक्ति की गई है। इन खंड काव्यों के नायक सामान्य जनता के प्रतिनिधि हैं। 'पथिक' का नायक जनता की विषमता का निवारण करने हेतु राजतंत्र का डटकर सामना करता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अंत में उसे अपने परिवार सहित बलिदान देना पड़ता है। 'स्वप्न' में कवि ने संवेदनशील नायक का चयन किया है जो पहले स्वार्थ - लोकसेवा अथवा वैयक्तिक सुख - लोकहित को एक दूसरे का विरोधी मानता था किंतु कर्त्तव्य का बोध हो जाने पर देश कल्याण हेतु तन-मन-धन से दत्त-चित्त होकर लग जाता है। 'पथिक' के विपरीत यह सुखांत काव्य है। इन दोनों काव्यों के द्वारा कवि ने राष्ट्र सेवा के आदर्श की स्थापना की है तथा समाज का विरोध करने वाली शक्तियों के प्रति विद्रोही प्रव त्ति को बढ़ावा दिया है। इस प्रकार ये कल्पित कथानक भी सहज ही कवि के यथार्थ से संबद्ध होकर अधिक सार्थक बन गए हैं।

सुभद्रा कुमारी चौहान-

व्यक्तित्व- सुभद्रा कुमारी चौहान (सन् 1905-1948 ई) का जन्म ग्राम, निहालपुर जनपद प्रयाग में हुआ था। इन्होंने प्रयाग में शिक्षा प्राप्त की। सन् 1921 ई. के असहयोग आंदोलन के परिणामस्वरूप शिक्षा अधूरी छोड़ दी तथा राजनीति में कूदकर सक्रिय कार्य कर्त्ती बन गई। अपने राजनीतिक कारणों से अनेक बाद जेल की हवा खानी पड़ी। काव्य रचना की प्रव त्ति विद्यार्थी जीवन से ही थी।

कृतित्व- 'त्रिधारा', 'मुकुल', 'झांसी की रानी'।

साहित्यिक विशेषताएं- भाव की द ष्टि से इनकी कविताओं के दो वर्ग किए जा सकते हैं-

(i) **राष्ट्रप्रेम-** जिनमें इन्होंने असहयोग आंदोलन या स्वतंत्रता संग्राम में सम्मिलित होने वाले वीरों को अपनी कविता का विषय बनाया है। 'झांसी की रानी' कविता को सामान्य जनता में अत्यधिक ख्याति मिली है।

(ii) **पारिवारिक-** इस वर्ग में वे कविताएं आती हैं जिनके स जन की प्रेरणा इन्हें अपने परिवार से प्राप्त हुई है। ऐसी कविताओं में कुछ कविताएं पति-प्रेम की पारिवारिक भावना से अनुप्राणित हैं एवं कुछ का संबंध संतान प्रेम से है। संतान के प्रति नैसर्गिक वात्सल्य की सहज एवं मार्मिक अभिव्यक्ति इनके काव्य में मिलती है। भाषा शैली भावानुरूप सरल एवं गत्यात्मक है।

सियाराम शरण गुप्त-

व्यक्तित्व- स्वर्गीय राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त के अनुज सियाराम शरण गुप्त (सन् 1895-1963 ई) का जन्म ग्राम चिरगांव, जनपद झांसी, उत्तर प्रदेश में हुआ था। शारीरिक रुग्नता एवं पारिवारिक दुखों ने इनके जीवन को अति दुखमय बना दिया था। सरसता एवं नम्रता इनमें कूट कूट कर भरी हुई थी।

कृतित्वः

काव्य- 'मौर्य विजय', 'नकुल', 'अनाथ', 'दूर्वादल', 'विषाद', 'आर्द्रा', 'आत्मोत्सर्ग', 'पाथेय', 'म णमयी', 'बापू', 'उन्मुक्त', 'दैनिकी', 'नोआखाली', 'जयहिंद', 'गोपिका' आदि काव्य कृतियां।

कविताएं- 'इन्दु' एवं 'सरस्वती' में प्रकाशित।

अनूदित- 'गीता संवाद' गीता का अनुवाद।

साहित्यिक विशेषताएं- गांधी की विचारधारा में अत्यधिक आस्था थी। जिसके परिणामस्वरूप इनकी प्रायः सभी रचनाओं में सत्य, अहिंसा, प्रेम के साथ-साथ करुणा, शांति तथा विश्व बंधुत्व की भावना का समावेश द ष्टिगोचर होता है। गांधीवादी मूल्यों एवं विचारधारा से इनका सम्पूर्ण काव्य अनुप्राणित है। प्राचीन भारतीय आख्यानों से संबंधित रचनाओं में भी इन्हीं मूल्यों की प्रतिष्ठा करने के प्रयास द ष्टिगोचर होते हैं। विषय प्रतिपादन एवं अभिव्यंजना शैली की द ष्टि से इनकी रचनाओं पर द्विवेदी युगीन रचना पद्धति का प्रभाव परिलक्षित होता है क्योंकि ये उसी युग से संबंधित थे बाद में छायावादी बन गए। इसलिए

छायावाद की कुछ प्रव त्तियों एवं विशेषताओं के साथ शैली भी छायावादी हो गई है। भाषा शैली में सरलता एवं स्पष्टता है। मुक्त छंदों के प्रयोग में इनको पूर्ण सफलता मिली है।

द्वितीय वर्ग- इस वर्ग के कवि छायावाद से इतर युग के कवि हैं जो छायावाद के उत्कर्ष से आकर्षित होकर छायावादी रचना में संलग्न हो गए उनमें कुछ छायावादी विशेषताएं मिलती हैं। इन कवियों में जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिंद', रामधारी सिंह दिनकर तथा उदय शंकर भट्ट ऐसी विचारधारा के कवि हैं।

जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिंद'-

जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद का जन्म सन् 1907 ई. में हुआ। इनकी रचना सन् 1922-1936 के मध्य हुई थी।

कृतित्व- *कविता संकलन-* 'जीवन-संगीत' - में भारत के सांस्कृतिक गौरव, राष्ट्रीय चेतना तथा बलिदान की भावना व्यक्त करने वाली कविताओं का संकलन।

रामधारी सिंह दिनकर-

कृतित्व- *कविता संग्रह* - रामधारी सिंह दिनकर का इसी शैली का कविता संग्रह 'रेणुका' है।

उदय शंकर भट्ट-

व्यक्तित्व- उदय शंकर भट्ट (सन् 1898-1966 ई.) का जन्म सन् 1898 में हुआ था।

कृतित्व- 'तक्ष शिला' - आख्यान काव्य की गणना भी इसी काव्यधारा के अंतर्गत की जाती है। इस रचना का मुख्य अभीष्ट सांस्कृतिक सौंदर्य गुण गाथा की अभिव्यक्ति है।

प्रणय

इस वर्ग के कवियों का मुख्य विषय प्रणय था जो सूक्ष्म या आंतरिक सौंदर्य के प्रति कम बाह्य सौंदर्य की मांसलता के प्रति अधिक था। इन कवियों के काव्य को प्रेम और मस्ती का काव्य भी कहा जा सकता है। पूरी तरह से छायावाद के अंतर्गत न आने वाले कवियों की अपेक्षा हो जाती यदि प्रणय की कल्पना न की जाए। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', भगवती चरण वर्मा, हरिवंश राय बच्चन, नरेंद्र शर्मा आदि कवि इसी कोटि में आते हैं। इन्हीं के संदर्भ में प्रणय मूलक कविताओं का अध्ययन अपेक्षित है। प्रेम और यौवन की प्रखरता तथा आवेश को व्यक्त करने वाली इनकी रचनाओं का प्रकाशन छायावादोत्तर काल में हुआ है किन्तु इनका आरंभिक कृतित्व छायावाद युग में ही प्रकाश में आ चुका था। नवीन की राष्ट्रीय कविताओं के साथ-साथ प्रणय संबंधी रचनाएं भी महत्वपूर्ण हैं।

आलोचकों का कहना है कि प्रणय एवं यौवन का वर्णन, 'आंसू', 'कामायनी', 'पंत के 'पल्लव' तथा निराला के 'तुलसी दास' में मांसल हो गया किन्तु उसका प्रारंभिक रूप ऐसा है कि शीघ्र उसका रूप आध्यात्मिक हो गया है या उसका उदात्तीकरण होकर जन कल्याणकारी हो गया है। इसलिए उसकी मांसलता समाप्त हो जाती है किन्तु इन कवियों की रचनाओं में अंत तक मांसलता विद्यमान रहती है। इसलिए इनकी अलग कोटि बनानी आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

प्रणयवादी इन कवियों की साधना वैयक्तिक है इसका सामाजिक रूप नहीं बन पाया है। जबकि छायावादी व्यक्ति चेतना शरीर से उठकर मन और पुनः आत्मा का स्पर्श करने लगती है। प्रणयवादी कवियों की वैयक्तिक चेतना प्रधान रूप से शरीर और मन के धरातल पर ही व्यक्त होती रही है। इन्होंने प्रणय को ही अपना साध्य बना लिया है। प्रणय का यह काव्य या तो यथार्थ से विमुख होकर प्रणय में तल्लीन द ष्टिगोचर होता है या फिर जीवन की व्यापकता को प्रणय की सीमाओं में ही खींच लाता है। नवीन की 'साकी' की पंक्तियां द्रष्टव्य हैं-

"हो जाने दे ग़र्क नशे में, मत पड़ने दे फ़र्क नशे में
ज्ञान ध्यान पूजा पोथी के फट जाने दे वर्क नशे में
ऐसी पिला कि विश्व हो उठे एक बार तो मतवाला
साक़ी अब कैसा विलंब भर भर ला तंमयता - लाक्ष्मा।"

प्रणय काव्य में जीवन के विषय में किसी व्यापक परिकल्पना या सिद्धांत का अभाव है। मात्र प्रणय में तल्लीन होने की कामना है - **"वह मादकता ही क्या जिसमें बाकी रह जाए जग का भय।"** प्रणय का यह रूप छायावादी उदात्त प्रेम भावना और अर्वाचीन नई कविता की यौन भावना के मध्य की कड़ी है। छायावादी कवियों ने भी नैतिकता के बोझ से आक्रांत प्रणय को मुक्त करने का प्रयास किया किंतु वे उसे पूरी तरह मुक्त न कर सके उनकी प्रणय भावना आध्यात्मिकता से संप क्त हो गई। प्रणय के साथ-साथ मादकता, शराब, साकी, मैखाना ही नहीं आए अपितु बच्चन की 'मधुशाला' सजकर आ गई।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'-

व्यक्तित्व- बालकृष्ण शर्मा नवीन (सन् 1897-1960 ई.) का जन्म ग्राम भयाना जनपद ग्वालियर में हुआ था। इनकी पढ़ाई ग्यारह वर्ष की अवस्था में शुरू हुई। सन् 1917 ई. में हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण कर कानपुर चले गए। जहां गणेश-शंकर ने इन्हें कॉलेज में प्रविष्ट करा दिया। किंतु सन् 1920 ई. में गांधी के आह्वान पर कॉलेज का अध्ययन त्याग कर राजनीति के सक्रिय कार्यकर्त्ता बन गए। अपने लंबे राजनीतिक जीवनकाल में अनेक बार जेल का सफर करना पड़ा। देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् पहले लोक सभा फिर राज्य सभा के सदस्य हो गए।

कृतित्वः

पत्रिकाएं- 'प्रभा', 'प्रताप' का संपादन।

कविता संग्रह- 'कुंकुम'।

काव्य- 'उर्मिला', 'अपलक', 'रश्मिरेखा', 'क्वासि', 'विनोबा स्तवन', तथा 'हम विषपायी जनम के'।

साहित्यिक विशेषताएं- 'उर्मिला' में नवीन ने उर्मिला के चरित्र के माध्यम से भारतवर्ष की प्राचीन आर्य संस्कृति के उज्जवल रूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कथानक को अपने परिवेश के यथार्थ से - भारतीय संस्कृति और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के संघर्ष से संबद्ध करने के लिए नवीन ने कुछ प्रसंगों की अत्यंत कौशल पूर्वक संयोजना की है। नवीन की रचनाओं में प्रणय और राष्ट्रप्रेम दोनों भावों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। प्रणय संबंधी रचनाओं में छायावादी प्रणय के समान स्वच्छंदता तथा प्रेम और मस्ती के काव्य - जैसी मार्मिकता द ष्टिगोचर होती है। इस रूप में नवीन को परवर्ती प्रेम और मस्ती के काव्य के अग्रदूत के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इनकी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताओं में अनुभूतियों का सीधा संबंध इनके जीवन के साथ है। देश की स्वतंत्रता तथा समाज की नवीन संरचना हेतु इन्होंने जो प्रबल साधना की थी वही साधना निश्छल और सहज शक्ति के साथ इनकी राष्ट्रीय रचनाओं में भी द ष्टिगोचर होती है। कविता का विषय अतीत की महिमा का गौरवगान, तत्कालीन भारतीय समाज की रुग्णावस्था के प्रति व्यथा एवं आक्रोश, भविष्य को अवतरित करने की कामना आदि हैं।

कहीं तो नवीन अपना फक्कड़पन दिखाते और मस्ती की अभिव्यक्ति करते हैं, कहीं नशे में गर्क हो जाना चाहते हैं। यथा

"हम अनिकेतन, हम अनिकेतन,
हम तो रमते राम हमारा क्या घर
क्या दर, कैसा वेतन?"

X X X

"हो जाने दो ग़र्क नशे में, मत पड़ने दो फ़र्क नशे में।"

जिस ललक और उत्साह के साथ कर्म और साधना की ओर अग्रसर होते हैं उसी आवेश और आसक्ति के साथ प्रणय में डूब जाना चाहते हैं। फलस्वरूप पहली अवस्था का संघर्ष और तनाव और दूसरी स्थिति की मदहोशी दोनों कार्य कारण भाव से संबद्ध होकर परस्पर पूरक से प्रतीत होते हैं।

भगवती चरण वर्मा-

व्यक्तित्व- भगवती चरण वर्मा का जन्म सन् 1903 ई. में हुआ। इनकी कविताएं सन् 1917 से 'प्रताप' में प्रकाशित होने लगीं थी। स्पष्ट हो जाता है कि चौदह वर्ष की आयु से ही काव्य स जन प्रारंभ कर दिया था।

साहित्यिक विशेषताएं- इनकी अनुभूति दो रूपों में अभिव्यक्त हुई है-

(i) जहां ये अपनी मस्ती एवं फक्कड़पने में अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं-

"हम दीवानों की क्या हस्ती,
हैं आज यहां कल कहां चले।"

ऐसी अनुभूतियां इन्हें नवीन के साथ खड़ा कर देती हैं। किन्तु ऐसी रचनाएं परिमाण में बहुत कम हैं।

(ii) मुख्य रूप से इन्होंने समाज की विषमताओं से पराजित और संघर्ष से विरत एकाकी व्यक्ति की अनुभूतियों को ही अभिव्यक्ति प्रदान की है।

इस प्रकार की रचनाओं में जो बेबसी और कर्म की विमुखता लक्षित होती है वह स्पष्ट ही महान काव्य की रचना में सहायक नहीं हो सकती। छायावादी कवियों में भी इस प्रकार के उद्गार मिलते हैं जहां कवि यथार्थ के विषम संघर्ष से विमुख होकर कहीं दूर चला जाना चाहता है। वर्मा की भाषा शैली सरल और स्पष्ट है। छायावादी शैली की तरह तत्सम शब्दों की प्रधानता, सूक्ष्मता या वक्रता के दर्शन नहीं होते हैं। खड़ी बोली कविता के एक नए मोड़ की सूचना देती है।

हरिवंश राय बच्चन-

व्यक्तित्व- हरिवंश राय बच्चन (सन् 1907-2003 ई.) का आरंभिक जीवन कष्टों एवं अभावों में बीता। एम.ए. तक की शिक्षा इलाहाबाद से प्राप्त करके पी.एच.डी. हेतु लंदन चले गए। उससे पूर्व पहली पत्नी की म त्यु हो चुकी थी। दूसरी पत्नी तेजी से विवाह किया। लंदन से वापस आकर विदेश मंत्रालय में सेवारत हो गए। दिल्ली विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर महाविद्यालयों की हिंदी की सभाओं, गोष्ठियों एवं कवि सम्मेलनों में खूब जाते थे। जहां 'मधुशाला' सुनाए बिना छुट्टी नहीं पाते थे। सेवा मुक्त होकर पुत्र अमिताभ बच्चन के साथ मुंबई में रहने लगे वहीं देहावसान हो गया।

असहयोग आंदोलन में सम्मिलित होने के कारण कई बार जेल गए। जिसके परिणामस्वरूप इनकी कविता पूर्णरूपेण जीवन से मुंह नहीं मोड़ सकी। जहां ये 'मधुशाला' में पूरी तरह ग़र्क द ष्टिगोचर होते हैं वहां भी इन्हें यह भान रहा है कि मधुशाला धार्मिक - साम्प्रदायिक अंतराल का निवारण कर अनुभूति के धरातल - चाहे वह अनुभूति कर्महीन मस्ती की की क्यों न हो - एकता की स्थापना करती है -

"भेद कराते मन्दिर मस्जिद,
मेल कराती मधुशाला।"

कृतित्व- 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'मधु कलश'।

साहित्यिक विशेषताएं- इनके काव्य संग्रहों में उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का प्रभाव परिलक्षित होता है। किंतु मधुशाला में डूबा हुआ कवि सामाजिक विषमता से अनजान नहीं है। इसमें एक ओर तो उद्दाम यौवन की लालसा को स्वीकारा है दूसरी ओर उसी स्तर पर सामाजिक संवेदना को भी मुखर करने का सफल प्रयास किया है। परिणामस्वरूप कवि ठोस यथार्थ को पूर्ण रूपेण ग्रहण करने में सफल नहीं हो सका। जीवन की विषमताओं को सामान्य अनुभूति के स्तर पर समाधानित करने का यत्न उसके द्वारा अवश्य किया गया। भाषा की द ष्टि से बच्चन का महत्वपूर्ण योगदान है। उनके काव्य में सीधी और स्पष्ट अभिव्यक्ति का स्वरूप मिलता है। कह सकते हैं सरलता एवं स्पष्टता का जो रूप भगवती चरण वर्मा की भाषा का है उसी का विकसित रूप बच्चन की भाषा का है।

नरेंद्र नाथ शर्मा-

नरेंद्र नाथ शर्मा का जन्म सन् 1913 ई. में हुआ।

कृतित्व- 'प्रभात फेरी', 'प्रवासी गीत' तथा 'पलाशवन'।

साहित्यिक विशेषताएं- प्रणयी शर्मा को प्रेम और मस्ती ने प्रभावित तो किया किंतु संयम और निष्ठा ने उन्हें प्रणय के उच्छवास में लड़खड़ाने नहीं दिया। क्योंकि उन्होंने देश के राजनीतिक जीवन में अत्यंत द ढ़ता एवं सक्रियता से भाग लिया तथा वे प्रणय को अधिक सहजता के साथ खुलकर व्यक्त कर सके। इनके कविता संकलन भाव प्रधान हैं जिनमें प्रणय के संयोग-वियोग मूलक प्रसंगों का सरल एवं प्रवाहमयी भाषा में चित्रांकन हुआ है।

इस काव्य धारा के अन्य कवियों में गोपाल सिंह नेपाली (जन्म सन् 1902 ई.), ह्रदय नारायण 'ह्रदयेश' (जन्म सन् 1905 ई.), हरिकृष्ण प्रेमी (जन्म सन् 1908 ई.) तथा रामेश्वर शुक्ल अंचल (जन्म सन् 1915 ई.) आदि के काव्यों में प्रणय और यौवन की मधुर अनुभूतियों के अनेक मोहक और सरस चित्र मिलते हैं। कवि सम्मेलनों में रंग जमा देते थे। बाद में चलचित्रों के लिए गीत लिखने लगे। इनके गीत भाषा एवं भावभूमि की सरलता के कारण सामान्य जनता को तल्लीन एवं विभोर करने में समर्थ हैं। इनकी कविताओं में प्रणय के अतिरिक्त करुणा एवं हालावाद की अभिव्यक्ति भी मिलती है। हरिकृष्ण प्रेमी की कविताओं में देश प्रेम के साथ साथ प्रणय की तीव्रता एवं यौवन के उल्लास द ष्टिगोचर होते हैं। ह्रदयेश की रचनाओं में विविधता के दर्शन होते हैं। भाषा शैली सरलता के साथ छायावादी वक्रता का पुट भी प्रस्तुत कर देती है। अंचल की कविताओं में मांसल प्रणय की आवेशमयी अभिव्यक्ति मिलती है।

4. हास्य व्यंग्य

छायावाद युग में पर्याप्त मात्रा में हास्य व्यंग्यात्मक काव्य का स जन हुआ है। 'मनोरंजन' के संवादक ईश्वरी प्रसाद इस युग के प्रमुख व्यंग्यकार हैं। तत्कालीन रचित हास्य कविताएं 'मतवाला', 'गोलमाल', 'भूत', 'मौजी', 'मनोरंजन' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं।

ईश्वरी प्रसाद शर्मा-

खड़ी बोली एवं ब्रजभाषा दोनों में रचनाएं उपलब्ध हैं।

कृतित्व - 'चना चबेना'।

साहित्यिक विशेषताएं- शर्मा ने उस युग के साहित्यिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दोषों का अन्वेषण किया और उनकी रचना हेतु अपनी पसंद की शैली का व्यवहार किया।

हरिशंकर शर्मा-

इस धारा के वरिष्ठ कवि हैं।

कृतित्व- कोई कविता संकलन प्रकाशित नहीं हुआ है 'पिंजरापोल' तथा 'चिड़ियाघर' नामक गद्य रचनाओं में कुछ हास्य-व्यंग्यात्मक कविताएं एवं पैरोडियों को उसी में सम्मिलित कर लिया है।

साहित्यिक विशेषताएं- सामाजिक, धार्मिक क्षेत्रों में व्याप्त पाखंड तथा भ्रष्टाचार पर इन्होंने करारा व्यंग्य किया है।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' -

छायावाद युग के व्यंग्यकारों में पांडेय बेचन शर्मा का अलग स्थान है।

साहित्यिक विशेषताएं- व्यंग्य कविताओं एवं पैरोडियों में अत्यधिक नवीनता एवं निडरता विद्यमान है। वर्तमान काल में भी वह प्रभावोत्पादक हैं।

कृष्ण प्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी'-

छायावाद युग में ही नहीं अपितु उसके पश्चात् भी तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक आचार - व्यवहार से संबंधित बुराइयों के प्रति व्यंग्य - विनोद किए हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- उस समय व्यंग्य-विनोद की जो धारा प्रवाहित की वह अपनी व्यावहारिक भाषा-शैली के कारण और भी अधिक महत्व की है। हास्य पुट बद्र्धन करने हेतु इन्होंने अंग्रेजी एवं उर्दू की शब्दावली का अधिक एवं बेधड़क प्रयोग किया है। उपमा तथा वक्रोक्ति के माध्यम से व्यंग्य को प्रखर बनाने में इनको सिद्धहस्तता प्राप्त थी।

हास्य-व्यंग्य की रचना करने वाले अन्य कवियों में अन्नपूर्णानंद (महाकवि चच्चा), कांतानाथ पांडेय, 'चोंच' तथा शिवरत्न शुक्ल आदि भी उल्लेखनीय हैं।

अन्नपूर्णानंद-

साहित्यिक विशेषताएं- अन्नपूर्णानंद ने पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के भौंडे अनुकरण, समाज की कुरीतियों, रूढ़ियों की दासता, मानव स्वार्थ आदि विषयों को व्यंग्य का विषय बनाया तथा उच्च कोटि के व्यंग्य काव्यों की रचनाएं की हैं।

कांतानाथ पांडेय 'चोंच'-

कृतित्व- 'चोंच चालीसा', 'पानी पांडे' तथा 'महाकवि सांड'।

साहित्यिक विशेषताएं- 'पानी पांडे' एवं 'महाकवि सांड़' में इनकी कुछ हास्य रसात्मक कहानियों का भी समावेश किया गया है। सामाजिक कुरीतियों को लक्ष्य करके इन्होंने शिक्षाप्रद व्यंग्य लेखन की नवीन पद्धति का प्रयोग किया है। बेढब बनारसी की तरह अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग द्वारा हास्य की स ष्टि करने में इनको अपूर्व सफलता मिली है।

शिवरत्न शुक्ल-

कृतित्व- 'परिहास प्रमोद'

साहित्यिक विशेषताएं- शिव रत्न शुक्ल की विनोदपूर्ण रचनाएं भी अनायास मनमोह लेती थीं। छायावाद में इनकी रचनाएं इनके उपनाम 'बलई' नाम से प्रकाशित होती थीं। समाज में फैले हुए अभिशापों पर व्यंग्य करने के साथ ही इन्होंने पथभ्रष्ट राजनीतिज्ञों को भी नहीं छोड़ा है। उन पर भी करारा प्रहार किया है।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरि औध'-

कृतित्व - 'चोखे चौपदे', 'चुभते चौपदे'।

चतुर्भुज 'चतुरेश' -

कृतित्व - 'हंसी का फव्वारा'।

ज्वालाराम नागर 'विलक्षण'-

कृतित्व- 'छायापद'

इसके अतिरिक्त स्फुट व्यंग्य कविता लिखने वालों में जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, मोहन लाल गुप्त तथा श्रीनाथ सिंह आदि हैं। छायावाद युग में समाज, धर्म, राजनीति आदि विभिन्न क्षेत्रों से संबद्ध ऐसी अनेक हास-परिहासात्मक रचनाएं लिखी गईं, जिनमें हास्य की मुखरता और व्यंग्य की तीव्रता स्वाभाविक रूप में विद्यमान है। इन हास्य-व्यंग्यों में छायावादी प्रव त्तियां और विशेषताएं नहीं मिलती हैं क्योंकि विषय की सामान्य सहजता के कारण ये रचनाएं शैली, विचार संरचना आदि की द ष्टि से सामान्य ही स्वीकारी जानी चाहिए।

13. उत्तर छायावादी कवि और उनका काव्य

उत्तर छायावादी काव्य की अनेक प्रव त्तियाँ हैं क्योंकि इसे अनेक वादों एवं धाराओं को पार करना पड़ा है जिसके परिणामस्वरूप अनेक जीवन द ष्टियां तथा काव्य की वस्तु और शिल्प संबंधी मान्यताएं द ष्टिगोचर हुई। वैयक्तिक अनुभूति की प्रधानता हुई। रोमानी द ष्टिकोण आया। बुद्धिवादी यथार्थ द ष्टि का प्राधान्य हुआ। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उत्तर छायावादी काव्य धारा में उत्तर छायावाद, वैयक्तिक गीति काव्य, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, नवगीति तथा समकालीन कविता आदि अनेक काव्य धाराओं का आविर्भाव हुआ जिसमें राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य एवं उत्तर छायावाद धाराएं नवीन नहीं हैं। छायावादी काव्यधारा छायावाद में अपना चरम विकास करने के पश्चात् परंपरा का निर्वाह करती हुई परवर्ती काल तक आई। इन कृतियों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है-

राष्ट्रीय सांस्कृतिक- 'नहुष', 'अजित', 'जयभारत', 'कुणालगीत', 'हिमतरंगिनी', 'हिमकिरीटिनी', 'माता', 'समर्पण', 'युगचरण', 'अपलक', 'क्वासि', 'हम विषपायी जनम के', 'विनाबा स्तवन', 'नकुल', 'नोआखाली', 'जयहिंद', 'आत्मोत्सर्ग', 'उन्मुक्त', 'गोपिका', 'हुंकार', 'द्वंद्व गीता', 'इतिहास के आंसू', 'कुरुक्षेत्र', 'दिल्ली', 'रश्मिरथी', 'धूप और धुंआ', 'कुणाल', 'वासव-दत्ता', 'भैरवी, चित्रा', 'युगाधार', 'सूत की माला', 'हल्दी घाटी', 'जौहर', 'विक्रमादित्य', 'मानसी', 'विसर्जन', 'अम त और विष', 'यथार्थ और कल्पना', 'युगदीप', 'विजय पथ', 'एकला चलो रे', 'तप्त ग ह', 'काल दहन', 'कैकेयी', 'दानवीर कर्ण' आदि।

इनमें 'गोपिका', 'क्वासि', 'अपलक एवं चित्रा' आदि में राष्ट्रीय स्वर गौण है तथा प्रेम का स्वर प्रधान है।

उत्तर छायावाद- 'तुलसीदास', 'अर्चना', 'अणिमा', 'आराधना', 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'मधु ज्वाल', 'युग पथ', 'उत्तरा', 'रजत शिखर', 'शिल्पी', 'अतिमा', 'कला और बूढ़ा चांद', 'लोकायतन', 'दीपशिखा, रूप अरूप', 'शिप्रा', 'अवन्तिका', 'गेघगीत आदि। अणिमा में कुछ कविताएं राष्ट्रीय और सांस्कृतिक व्यक्तियों पर आधारित हैं। पंत की इस काल की सभी उत्तर छायावादी कृतियों में सांस्कृतिक स्वर सुनाई पड़ता है। भौतिकवाद एवं अध्यात्मकवाद के समन्वय की एक बेचैनी इनमें बराबर लक्षित होती है। इस तरह इन कृतियों का मूल स्वर छायावाद है किन्तु विषय की द ष्टि से इन्हें अन्याय धाराओं से भी जोड़ा जा सकता है।

वैयक्तिक गीति काव्य- निशा- 'निमंत्रण', 'आकुल अंतर', 'सतरंगिनी', 'मिलन', 'यामिनी', 'रसवंती', 'प्रभात फेरी', 'प्रवासी के गीत', 'पलाशवन', 'मिट्टी और फूल', 'कदली वन', 'मधुलिका', 'अपराजिता', 'लाल चूनर', 'किरण बेला', 'संचयिता', 'कलापी', 'जीवन और यौवन', 'पांचजन्य', 'रूपरश्मि', 'छायालोक', 'उदयाचल', 'मन्वंतर', 'दिवालोक', 'पंछी', 'पंचमी', 'रागिनी', 'नवीन', 'नींद के बादल', 'मंजीर तथा छवि के बंधन आदि। वैयक्तिक गीति काव्य की रोमानी धारा में आने वाली कृतियां छायावाद से अलग हैं। ये कृतियां नई प्रव त्ति की सूचक हैं।

प्रगतिवादी धारा- 'युगवाणी', 'ग्राम्या', 'कुकुरमुत्ता', 'युग की गंगा', 'युगधारा', 'जीवन के गान', 'प्रलय स जन', 'अजेय खंडहर', 'पिघलते पत्थर', 'मेधावी', 'मुक्ति मार्ग', 'जागते रहो आदि क तियों के अतिरिक्त नरेंद्र शर्मा', 'अंचल', 'आरसी प्रसाद सिंह तथ शंभूनाथ सिंह की उपर्युक्त कृतियों की अनेक कविताएं इसी धारा के अंतर्गत आती हैं। प्रगतिवादी और वैयक्तिक धारा की कविताओं का श्रीगणेश सन् 1935 ई. के आस पास हो गया था।

प्रयोगवादी धारा- तार सप्तक (प्रथम)', 'इत्यलम्', 'हरी घास पर क्षण भर', 'नाश और निर्माण', 'ठंडा लोहा', 'तार सप्तह (द्वितीय)। प्रगतिवादी और वैयक्तिक कविता धारा की कृतियों के साथ-साथ कुछ ऐसी भी सामने आई जिन्हें प्रयोगवादी कहा गया। प्रयोगवादी कविताओं का श्री गणेश सन् 1943 ई. के आस-पास हुआ। फिर भी दोनों धाराएं साथ साथ चलती रहीं।

नई कविता- 'तारसप्तक' (द्वितीय) कुछ कविताएं', 'तार सप्तक (त तीय)', 'बावरा अहेरी', 'अरी ओ करुणा प्रभामय', 'इंद्रधनुष रौंदे हुए', 'कितनी नावों में कितनी बार', 'आंगन के पार द्वार', 'शिलापंख चमकीले', 'धूप के धान', 'अनागता की आंखे', 'अर्द्ध शती', 'माध्यम मैं', 'कुछ और कविताएं', 'कुछ कविताएं', 'खंडित सेतु', 'गीत फ़रोश', 'बुनी हुई रस्सी', 'चकित है दुख', 'स्वप्न भंग', 'अनुक्षण कोपल', 'चांद का मुंह टेढ़ा', 'ओ अप्रस्तुत मन', 'वन पाखी सुनो', 'संशय की एक रात', 'सात गीत वर्ष', 'अंधा युग',

'कनुप्रिया', 'म ग और त ष्णा', 'मछलीकर', 'काठ की घंटियां', 'बांस के पुल', 'एक सूनी नाव', 'चक्रव्यूह', 'आत्मजयी', 'परिवेश हम तुम', 'सीढ़ियों पर धूप में', 'आत्म हत्या के विरुद्ध', 'वंशी और मादल', 'नाव के पांव', 'हिम विद्य', 'माया दर्पण', 'इतिहास पुरुष', 'अकेले कंठ की पुकार', 'एक कंठ विषपायी', 'मुक्ति प्रसंग', 'अतुकांत', 'आत्म निर्वासन तथा अन्य कविताएं', 'अभी बिलकुल अभी', 'पक गई धूप', 'उजली कसौटी', 'इतिहास का दर्द आदि तथा वे सभी कृतियां जिनकी चर्चा तार सप्तकों के बाहर के कवियों के संदर्भ में की गई है', 'नई कविता की कृतियां हैं। प्रतीक', 'नई कविता', 'निकष', 'संकेत', 'विविधा', 'आदि में संकलित कविताएं भी नई कविता के अंतर्गत आती हैं। कल्पना', 'कृति', 'लहर तथा ज्ञानोदय आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताएं भी नई कविता में आती हैं।

प्रयोगवाद ही आगे चलकर नई कविता में परिवर्तित हो गया है। इसलिए नई कविता में प्रयोगवाद के अनेक तत्वों का समावेश मिलता है फिर नई कविता का स्वतंत्र विकास हुआ है। बहुत से ऐसे कवि भी हैं जो दोनों धाराओं में कविता करते रहे हैं। इसलिए उनकी कृतियों के संदर्भ में स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि उनका मिश्रित रूप है। यह कहना कठिन है कि कहां तक प्रयोगवादी है कहां से नई कविता के कवि बन जाते हैं। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि सन् 1950 ई. के बाद की नए भावबोध की कविताओं को नई कविता की संज्ञा दी जा सकती है और प्रयोगवादियों की भी सन् 1950 ई. के बाद की कविताओं को नई कविता कह सकते हैं। फिर भी सन् 1952 ई. में प्रकाशित तारसप्तक (द्वितीय) की अधिकांश कविताएं अपने व्यक्तिवादी द ष्टिकोण के कारण प्रयोगवाद में ही समाविष्ट की जाती हैं। इसलिए नई कविता को प्रयोगवाद के क्रम में ही मानना औचित्यपूर्ण है। यदि सन् 1950 ई. को विभाजक रेखा मान लिया जाये तो द्वितीय तार-सप्तक की कुछ कविताएं नई कविता के अंतर्गत आ जाती हैं।

उत्तर छायावादी काव्य-

उपर्युक्त काव्यों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता के पश्चात् काव्य रूप में इस प्रकार मोड़ आया जो सर्वथा नवीन था उसे प्रगतिवाद की संज्ञा दी गई। उसके बाद परिवर्तन आते गए। किन्तु छायावाद के पश्चात् ऐसा निश्चित मोड़ नहीं आया जिसे नया नाम दिया जा सके।

भारतेंदु युग से चली आती राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा इस काल तक आई। यही स्थिति वैयक्तिक गीतों की रही। छायावाद के बाद काव्य प्रणाली में परिवर्तन आया। यद्यपि छायावादी कुछ प्रव त्तियां विद्यमान रहीं। इस द ष्टि से उत्तर छायावादी काव्य को (i) उत्तर छायावाद, (ii) वैयक्तिक गीत काव्य तथा (iii) राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता तीन उप वर्गों में विभाजित कर सकते हैं-

(i) उत्तर छायावाद

छायावाद की काल सीमा सन् 1918 से सन् 1939 ई. तक मानी गई। छायावादी महान चतुष्टयी के मूर्धन्य महाकवि जयशंकर प्रसाद की म त्यु सन् 1936 ई. में हो गई। चतुष्टयी के मात्र तीन ही उत्तर छायावाद में अवशिष्ट हैं पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रा नंदन पंत तथा महादेवी वर्मा जिनकी काव्यकृतियों में छायावाद के बाद विशिष्ट परिवर्तन परिलक्षित होता है।

पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला-

निराला के गीत नई संभावनाओं के सूचक हैं। उनमें लोकोन्मुखता की शक्ति का विकास परिलक्षित होता है। यह लोकोन्मुखता निराला काव्य में प्रारंभ से द ष्टिगोचर होती है। निराला का जीवन संघर्षमय तथा लोक-संप क्त था। इसलिए स्वाभाविक रूप से वे प्रेम सौंदर्य के साथ-साथ जीवन के अन्य अनुभवों को भी अपने में समेटे हुए हैं। वे व्यक्तिगत प्रणय के गीत न गाकर लोक जीवन से संबंधित सुख-दुख, मानव यातना एवं जीवन संघर्ष की सशक्त अभिव्यक्ति करते आए हैं। ऐसे समय में उनकी वैयक्तिक प्रणयानुभूति भी एकांतवासिनी न होकर लोक-गंधित हो उठती है। निराली की इस प्रव त्ति को उत्तर छायावाद काल में विशेष रूप से विकसित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। जिसके परिणामस्वरूप उनकी इस प्रव त्ति ने दो रूप धारण किए - (i) छायावाद इतर प्रगतिवादी कविताएं लिखना (ii) छायावादी काव्यधारा के स्वर का अधिक लोकोन्मुखी होना। प्रगतिवादी कविताओं में छंद, भाषा एवं भाव सभी द ष्टियों से छायावादी प्रभाव से पूर्ण मुक्तता परिलक्षित होती है। इस प्रकार की कविताओं में 'कुकुरमुत्ता', 'प्रेम संगीत', 'गर्म पकौड़ी', 'रानी कानी', 'मास्को डायलाग्स', 'खजोहरा', 'नए पत्ते' तथा 'स्फटिक शिला' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं जिनमें प्रगतिशीलता दार्शनिक रूप में नहीं अपितु लोकानुभूतियों के रूप में है। इनकी भाषा लोकभाषा

है। मुहावरे लोक तथा शैली भी लोक हैं। लोक कथात्मक तथा संवादात्मक शैली प्रयुक्त है। निराला इस तथ्य से अवगत थे कि लोक जीवन को केवल उसके भाव, द श्य एवं व्यापार से नहीं ग्रहण किया जा सकता अपितु उस हेतु भाषा अपेक्षित है।

निराला ने छायावादी 'अणिमा', 'अर्चना' तथा 'आराधना' आदि कविताओं में एक से स्वानुभूतिपरक गीतों की संरचना की है दूसरी ओर 'विजय लक्ष्मी पंडित', 'प्रेमानंद', 'संत रविदास', 'प्रसाद एवं बुद्ध' आदि व्यक्तियों को अपनी प्रशंसात्मक कविताओं का विषम बनाया है। ये गीत विभिन्न प्रकार के हैं - प्रेमसंवेदना प्रार्थना परकता, मानवीय संवेदना आदि की इनमें अभिव्यक्ति हुई है। सन् 1938 ई. से पूर्व की कविताओं में भी निराला की ये विशेषताएं द ष्टिगोचर होती हैं। अनुपात भिन्नता अवश्य है। 'तुलसीदास' उत्तर छायावाद को निराला की विशिष्ट देन है। जिसमें भारत को सांस्कृतिक एवं सामाजिक पराजय के गृहवरगर्त से उबारने का द ढ़ संकल्प है। निराला की लोकवादी कविताएं इस युग की नवीन देन हैं यद्यपि उन्हें कविता की उपलब्धि के स्वरूप स्वीकारा नहीं गया है किंतु भाषा एवं नवीन प्रयोग के रूप में उनका विशेष महत्व है। इन कविताओं में ठहराव को तोड़ने की शक्ति है जो जनजीवन से समग्र रूप से जोड़ती है। निराला इस काल की कविताओं में जीवनानुभूति के स्वरों में टूटन एवं पराजय की प्रमुखता है। जो उन्हें भक्तिभावना की ओर प्रेरित करती है। साथ ही कवि का संतुलित मानस प्रेम, भक्ति, खुलेपन एवं उलझाव का ऐसा समन्वित रूप प्रस्तुत करता है कि ये कविताएं उस उलझाव से ग्रसित हो जाती हैं।

सुमित्रानंदन पंत-

पंत इस कालावधि में स्वचिंतन एवं विषय में अधिक विकासशील रहे। सन् 1936 ई. में 'युगांत' की घोषणा करके पंत ने सन् 1939 ई. में 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की रचना की। जहां वे मार्क्सवाद, भौतिक दर्शन तथा जन-जीवन के सत्यों की ओर झुक गए। निराला ने चिंतन के द्वारा नहीं अपितु संवेदना और अनुभव के द्वारा जन-जीवन को अपनाया। इसलिए उनके काव्य को मार्क्सवादी या समाजवादी दर्शन का स्पष्ट स्वरूप नहीं मिल सका। जनजीवन अपने समस्त संवेदन के साथ व्यक्त हुआ। पंत ने मार्क्सवादी दर्शन को चिंतन के स्वर पर स्वीकारा। इसलिए वे मार्क्सवादी सिद्धान्त की अभिव्यक्ति करने में व्यस्त रहे। कवि ने मार्क्सवादी द ष्टि के प्रकाश में ग्रामीण जीवन की विविध छवियों का अति रमणीय चित्रांकन किया है। कुशल शिल्पी पंत को ग्रामीण बाह्य जीवन के यथार्थ ने जितना अपनी ओर आकर्षित किया है उतना आंतरिक चेतना ने नहीं।

'ग्राम्या' के पश्चात् का कवि अरविंद के प्रभाव में आकर प्रगतिवाद के भौतिक भटकाव से मुक्त होकर आध्यात्मिक लोक की ओर अग्रसर हो जाता है। जिससे वैचारिक स्तर पर छायावाद को एक नवीन दिशा एवं सम द्ध आधार सुलभ हो जाता है। मार्क्सवाद से संतुष्ट न होकर उसकी आवश्यकता को स्वीकारता है। प्रारंभ से ही कवि मानस मात्र के सुख, प्रेम एवं शांति का प्रबल कांक्षी रहा है। पंत इस तथ्य से अवगत थे कि एकांगी मार्क्सवाद मात्र भौतिक योग क्षेम की व्यवस्था करने में समर्थ है। इसे पर्याप्त न मानकर पंत अरविंद में भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद को समन्वित करने की अन्वेषणा करने में लग जाते हैं। समन्वय का यही स्वर उनकी परवर्ती रचनाओं 'स्वर किरण', 'स्वर्ण धूलि', 'शिल्पी' तथा 'लोकायतन' में द ष्टिगोचर होता है।

पंत की काव्य विकासीय यात्रा में काव्य पक्ष दबता गया है, धारणा पक्ष उठता गया है जिसके परिणामस्वरूप वे मानव समाज की समस्याओं, उनके समाधानों तथा नवीन विचारों को धारणा एवं आकांक्षा के स्तर पर स्वीकारते हैं, अनुभूति के स्तर पर नहीं। मार्क्सवाद एवं अरविंद दर्शन दोनों ही पंत काव्य को सम द्ध बनाने में सहायक एवं सफल नहीं हो सके हैं।

महादेवी वर्मा-

'दीपशिखा' महादेवी वर्मा का उत्कृष्ट काव्य है। प्रेम उनका प्रमुख विषय है। संयोग-वियोग के उभार में प्रेम को विभिन्न द ष्टिकोणों से उन्होंने अपने अनुभव के आलोक में झांका है। वेदना उनकी मूल संवेदना है जो विरह जन्य है। करुण वेदना एवं निराशा से आक्रांत इनका प्रारंभिक काव्य 'दीपशिखा' कुछ आलोक प्राप्त करने में सफल हो सका है। आशा, उल्लास एवं मिलन भाव द्रष्टव्य हैं-

(i) **सब बुझे दीपक जला लूं।**
फिर रहा तम आज दीपक रागिनी अपनी जगा लूं।

(ii) **हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चंदन।**
अगरु धूम सी सांस सुधि गंध सुरभित।

महादेवी में गीति काव्य के उत्कर्ष की अति संभावना है। लेकिन यह रहस्यात्मकता का आवरण उनके प्रभाव की तीव्रता को कुंठित करने में सफल हो जाता है। संवदेनाएं सीमित हैं जो विभिन्न प्रतीकों एवं रूपकों के आधार पर अभिव्यक्ति प्राप्त करती हैं। प्रतीक एवं रूपक भी अति सीमित एवं अभिजात हैं।

लौकिक संवेदनाएं रहस्यवादी आभास से संप क्त होकर नए अर्थ का विस्तार करती हैं किन्तु उनकी लौकिक मूर्तता, प्रत्यक्षता तथा तीव्रता विलीन हो जाती है। महादेवी के प्रमुख प्रतीक चंदन, दीप, मेघ, क्षितिज, मंदिर, करुण, आकाश, धूलि, सागर, विद्युत हैं जिन्हे पुनः-पुनः भावाभिव्यक्ति हेतु प्रयुक्त किया जाता है। परिणाम यह होता है कि रहस्यात्मक संकेत उन्हें उलझा लेते हैं। वैयक्तिक एवं छायावादी सीमाओं के होते हुए भी महादेवी छायावाद की विशिष्ट ही नहीं समर्थ कवयित्री हैं तथा 'दीपशिखा' उनकी विशिष्ट कृति है। रहस्य एवं संकोच के आवरण के होते हुए भी कवयित्री की अंतरंग निजता उनके गीतों में प्रवाहमान रहती है। कहीं-कहीं उनकी पारदर्शिता समग्र द श्यों को समेटकर उसी की ओर संकेतित करने लग जाते हैं वहां उनके गीतों की रचना अति उत्कृष्टता को प्राप्त करती है। महादेवी के गीतों में सूक्ष्म चित्रात्मकता सर्वत्र विद्यमान है। उनके चित्र रूप जगत तथा भावजगत दोनों के हैं। रूप जगत के चित्रों की संयोजना कवयित्री के मानसिक संदर्भ में ही की गई है। लोक परिवेश और लोक भाषा से दूर, सीमित आत्मानुभूति की परिधि में विचरण करने वाले, भाषा की अभिजात छवि से मंडित ये गीत शब्द चयन, पद संतुलन, बिंब ग्रहण, प्रांजलता, कोमलता और स्वर लय में अपनी अति विशिष्टता का प्रतिपादन करते हैं।

वैयक्तिक गीति काव्य- कवि द ष्टि एवं विषय के द ष्टिकोण से छायावाद एवं वैयक्तिक गीति काव्य में अत्यधिक समानता है। कवि द ष्टि रोमानी है वस्तु जगत के प्रति इनकी प्रतिक्रिया अत्यंत भावुक है। इनका संबंध वस्तु जगत से नहीं अपितु वस्तु जगत की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न स्व सुख-दुखात्मक आवेग से था। इनकी कविताओं में भयंकर आत्म संप क्ति एवं उत्तेजना मिलती है। इनका काव्य विषय मूलतः सौंदर्य एवं प्रेम तथा उसके कारण उत्पन्न उल्लास एवं विषाद की अनुभूति थी। गीति को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। क्योंकि इनके काव्य विषय की प्रकृति छायावादी काव्य की प्रकृति के समान गीतात्मक है। इनकी कृतियों में संकोच, रहस्यमत्यता तथा आदर्शवादिता को स्थान नहीं मिला है। बड़े उत्साह के साथ स्पष्ट तौर पर ये अपने वैयक्तिक प्रेम संवेग एवं सुख-दुख को व्यक्त करने के लिए छटपटाते रहते हैं। इनकी वेदना सामान्य न होकर वैयक्तिक है जो अनुभव का बिंब उकेरने में पूर्ण सफल हैं। 'मैं' द्वारा वैयक्तिक गीत स्व अनुभव व्यक्त करते हैं। वैयक्तिक गीत काव्य का 'मैं' बिना किसी संकोच, मर्यादा, भय या आतंक डर के निर्व्याज भाव से राग विराग के साथ स्वतः बह निकलता है।

लौकिक प्रेम इनकी केन्द्रीय व त्ति है। प्रेम के संयोग-वियोग जन्य उल्लास, पीड़ा, उदासी, टूटन एवं असंतोष आदि का सघन स्वर इनकी कविताओं में मुखरित हो उठता है। परिवेश, अनुभव एवं संस्कारानुसार कवि स्वरों में वैविध्य पाया जाता है किंतु मूल व त्ति में कोई अंतर द ष्टिगोचर नहीं होता है। प्रेम लौकिक सौंदर्यालंबन पर आधारित होने के फलस्वरूप अधिक मूर्तता ग्रहण करता है। इनका हर्ष-विषाद, आदर्श का छलिया नहीं है जो भू-नभ के मध्य झुकना नहीं जानता है। प थ्वी के विशुद्ध धरातल पर यात्रा करने वाला भू परिवेश के मध्य एवं स्व-स्वरूपानुसार अत्यधिक स्पष्ट एवं उघड़ा हुआ होता है। हरिवंश राय बच्चन के 'निशा निमंत्रण' एवं 'एकांत संगीत' काव्य यदि प्रेम के विषाद की गहनता को व्यक्त करते हैं तो मिलन-यामिनी, मिलन की मादकता तथा उमंग को। नरेंद्र शर्मा के 'प्रवासी के गीत' में यदि लौकिक विरह-व्यथा की प्रधानता है तो अन्य कृतियों में प्रेयसी के सौंदर्य, भोग और संयोग की ऊष्मा के मादक चित्र भी विद्यमान हैं। यही स्थिति इस धारा के अन्य कवियों अंचल, नवीन एवं दिनकर आदि की कविताओं में द ष्टिगोचर होती है।

वैयक्तिक गीति काव्य धारा का मूल स्वर प्रेम है। प्रेम जन्य व्यथा एवं उदासी सर्वत्र व्याप्त है। इनकी स्वच्छंद व त्ति सौंदर्य और प्रेम की पिपासा लिए उड़ान भरती है, उसकी त प्ति कहीं नहीं हो पाती थी जिससे उड़ान की तीव्रता में इनका सामाजिक प्रतिबंधों से टकराव होता था। परिणाम टूट जाते थे। टूटन विरह व्यथा का रूप धारण कर लेती थी जिससे कवि को यह अनुभूति होती थी कि विश्व को उसके ये गीत वासना के गान प्रतीत हो रहे हैं। अनुभव के इन सत्यों को उसका स्वच्छंद ह्रदय अनियंत्रित, निर्लिप्त भाव से गाना चाहता था। हरिवंश राय बच्चन ने अपने और सामाजिक तनाव को स्पष्ट अनुभव करते हुए 'मधुकलश' में लिखा है-

(i) **"कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्गार मेरा।"**

(ii) **"व द्ध को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी।"**

(ii) "शत्रु मेरा बन गया है छल रहित व्यवहार मेरा।"

निराशा एवं उदासी के स्वर की मुखरता मात्र प्रेम मूलक नहीं है अपितु जीवन के अन्य संदर्भो को भी उसकी मुखरता का अवलोक कहा जा सकता है। देश की परतंत्रता, सामाजिक कुरीतियों अंध विश्वासों, धार्मिक बाह्याडंबरों, आर्थिक विषमता आदि के अनुभव की भयंकरता से गुजरता हुआ अकेला, स्वच्छंद, संवेदनशील युवा मानव पुनः पुनः अपनी टूटन का अनुभव कर रहा है। उसका वैयक्तिक आक्रोश का स्वर संपूर्ण कुरूपताओं को अस्वीकारता हुआ, स्वयं को कहीं स्वीकृत न पाता हुआ 'स्व' में ही प्रत्यावर्तित हो जाता था। अपने को आत्मपीड़न, कुंठा, संत्रास, टूटन, घुटन की एक नवीन चादर से आच्छादित कर उन्हीं अनुभूतियों को गाता चलता था। इनके पास जीवन द ष्टि का अभाव था न तो पुरानी आध्यात्मिक जीवन द ष्टि थी न नवीन समाजवादी द ष्टि। इनके अनुभव ही इनका परिचालन कर रहे थे। इनके अनुभव भावुक ह्रदय के अनुभव थे। उनका द ष्टिकोण रोमानी था अतः वे व्यक्ति को न तो सामाजिक शक्ति से जोड़ सके न आध्यात्मिक आदर्शो से। जीवन द ष्टि के अभाव में ये व्यक्तिवादी अनुभव निराशा, म त्यु की छाया और नियति बोध से ग्रसित हैं। इनका अनुभव जहां अपनी तीव्रता में सूक्ष्म, किंतु खुले हुए बिंबों की रचना में एक नवीन साहित्यिक सौंदर्य की स ष्टि करता है। वहां अपने आत्यंतिक अकेलेपन, उदासी और अपने दोहराव में क्षयोन्मुख द ष्टिगोचर होने लगता है। जहां यह काव्यात्मक द ष्टि से सपाट हो जाता है वहां अपनी सार्थकता किसी भी प्रकार प्रमाणित नहीं कर पाता है।

"कितना अकेला आज मैं
संघर्ष में टूटा हुआ
दुर्भाग्य से लूटा हुआ
परिवार से छूटा हुआ, किंतु अकेला आज मैं।"
-एकांत संगीत

वह अकेला अपने चारों ओर मात्र अवसाद देखता है। अवसाद खुला हुआ लौकिक अवसाद है। कवि का साथ ईश्वर ने भी छोड़ दिया है। देवता भी नहीं है। समाज की रूढ़िवादिता भी नहीं है। कोई संस्था नहीं है। उसे किसी का आश्रय अर्थात् तिनके का भी सहारा प्राप्त नहीं है। सहारा मात्र प्रेयसी के मिलन की आशा है जो दूर कहीं तारा सी टिमटिमा रही है किन्तु म ग मरीचिका में प्रेयसी से मिलन भी नहीं हो पाता है। ऐसी अवस्था में कवि अपनी नंगी पीड़ा, असफलता, निराशा को प्रत्यक्ष बेलौस झेलता हुआ जीवन को असफल एवं निराधार अनुभव करता है।

इस प्रकार की वैयक्तिक, निराशापूर्ण, निराधार अनुभव-यात्रा के दो परिणाम द ष्टिगोचर होते हैं-

(i) यह विश्वास निश्चित हो गया है कि जीवन क्षणभंगुर है। इस अवसाद-विषय के विस्तार में यदि उल्लास के कुछ क्षण मिल जाते हैं तो उन्हें मस्ती से भोगो। भोग के समय आगा-पीछा मत देखो।

(ii) कवि को विश्वास है मद्यपान दुखों से छुटकारा दिलाता है इसलिए अपने दुखों को भुलाने के लिए मधु का सहारा लेता है। क्योंकि अन्य सहारों का उसे सहारा नहीं है। इतना ही नहीं वह अपनी मादकता, प्रेम या उल्लास की उत्तेजना को तीव्र करने हेतु मधुशाला के मार्ग पर चल पड़ता है क्योंकि मधुपान करना चाहता है।

यह मधु शनैः शनैः इतना आत्मीय हो जाता है कि वह अन्य जीवन सत्यों का प्रतीक बन जाता है। 'मधुशाला' एवं 'मधुबाला' में ऐसा ही हुआ है। वैयक्तिक गीति काव्य में कहीं-कहीं प्रगतिवादी कविता जैसा विद्रोह ध्वनित हुआ है जैसे बच्चन के 'बंगाल का काल' नरेन्द्र शर्मा के 'अग्निशस्य' अंचल की 'किरण बेला' तथा शंभुनाथ सिंह के 'मन्वंतर' आदि में। समाज में व्याप्त असंतोष तथा वैयक्तिक अस्वीकृति की प्रबल भावना के कारण कवियों में विद्रोही भावना परिलक्षित होती है। विद्रोह के ये दो प्रमुख कारण हैं किन्तु इस धारा में व्याप्त समस्त विद्रोह स्वर मूलरूप से समान है। उसमें वैयक्तिक भावावेश का आधिक्य है। सामाजिक दर्शन तथा रचनात्मक चिंतन अपेक्षाकृत न्यून है।

अभिव्यक्ति की सादगी वैयक्तिक गीति काव्य की प्रमुख विशेषता एवं देन है। कवि अति सीधे-सादे शब्दों का प्रयोग करके अपने गहनातिगहन भावों की अभिव्यक्ति अति सहजता एवं सरलता से करता है। सर्व परिचित चित्रों, तथा सरल, लघु, सारगर्भित कथन भंगिमा से अपने कथ्य को सहृदय तक प्रेषित कर देता है। इसलिए कवि की शक्तियां-अशक्तियां दोनों अति स्पष्टता

से उभर कर सामने आती हैं। शक्तियों की यह विशेषता है कि वे अस्पष्ट बिंबों में अपने को उलझाकर अपनी तीव्रता एवं प्रभाव नष्ट नहीं करती हैं तथा अशक्तियां रहस्यात्मकता का लाभ उठाकर अपनी महानता को आभासित नहीं कर पातीं। गीति काव्य के कवियों की संवेदना भक्तिवादी है। किन्तु वे अपने को जिस माध्यम, परिवेश, प्रकृति चित्र, बिम्ब, उपमा, भाषा आदि के द्वारा व्यक्त करना चाहते हैं वह अति परिचित होता है, लोक का निकटस्थ होता है इसलिए मांसल एवं मूर्त की प्रतीति करवाता है। काव्य भाषा संस्कृतनिष्ठ होते हुए भी शब्द चयन, पद विन्यास हमें अपना सा प्रतीत होता है। बोलचाल के शब्दों और मुहावरों का पर्याप्त प्रयोग भाषा को जीवंत रूप प्रदान करता है। वैयक्तिक गीति काव्य धारा के कवियों में हरिवंशराय बच्चन, नरेंद्र शर्मा तथा रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के नाम प्रमुख हैं-

हरिवंशराय बच्चन-

वैयक्तिक गीति काव्य धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हरिवंश राय बच्चन हैं। धारा की समस्त संभावनाएं एवं सीमाएं बच्चन में एकत्रित हैं। बच्चन मूलतः आत्मानुभूति के कवि हैं। आत्मानुभूति की सघनता वाली कृतियां तीव्र प्रभावोत्पादक एवं मर्मस्पर्शी हैं। आत्मानुभूति के साथ अवधारणा का समावेश हो जाने के परिणामस्वरूप प्रभावान्विति टूट-टूट गयी है। 'निशा निमंत्रण', 'एकांत संगीत' तथा 'मिलन यामिनी' के गीत इस द ष्टिकोण से यदि गीत काव्य की उपलब्धियां हैं तो अवधारणाएं अनुभूतियों के रंग में सराबोर हैं। बच्चन ने स्वानुभूति जन्य सौंदर्य, सुख-दुख तथा प्रेम विषयक गीत अति उन्मुक्तता तथा सहजता से गाए हैं। यहीं तक अपने को सीमित न करके सामाजिक विकृतियों के चित्रण तक पहुंचाया है। उनके प्रति विद्रोही भावना भी द ष्टिगोचर होती है। बच्चन के गीतों ने अपनी सहज भाषा और अनुभूति की निश्छलता के फलस्वरूप गीति काव्य को नवीन गरिमा प्रदान की है। लेकिन जब उनमें उत्तेजना आ जाती है, भाषा सपाट हो जाती है, शब्द बिंबों का अपव्यय होता है तथा स्फीति आ जाती है तब अप्रभावी हो जाते हैं। बच्चन के काव्य सौंदर्य के धरातल, ऊंचाई-निचाई एवं सपाटता की अत्यधिक विषमता द ष्टिगोचर होती है। बच्चन ने निर्भय भाव से अपने परिचित विश्व का परित्याग कर यथार्थवादी नवीन विश्व में पदार्पण किया है तथा उसके अनुसार भाषा की खोज की है।

नरेंद्र शर्मा-

नरेंद्र शर्मा के गीत अपनी विशिष्टता के फलस्वरूप औरों से भिन्न हैं। उनमें आत्मीयता एवं चित्रात्मकता की प्रधानता है। सुख-दुख का निवेदन बिना किसी माध्यम के सीधे प्रेमपात्र को किया गया है। माध्यम के अतिरिक्त किसी अवधारणा या छल कपट अथवा बांकपने को भी अवसर नहीं मिला है। गीतों के परिवेश में कवि एवं सहृदय दोनों के परिवेश का समन्वय होता है। जो कवि के अनुभवों को जीवंत बनाता है। ऐसा लगता है नरेंद्र शर्मा के गीत अपने हैं। इनमें प्राकृतिक परिवेश भी होता है। नरेंद्र के गीति काव्यों का विषय मानवीय सौंदर्य, प्राकृतिक सौंदर्य तथा तज्जन्य विरह मिलन की अनुभूतियां हैं। इन्होंने सामाजिक यथार्थ का सफल चित्रण किया है। सामाजिक विसंगतियां इनके लिए असह्य हैं इसलिए उनके प्रति इनकी विद्रोही प्रव त्ति परिलक्षित होती है। नरेन्द्र की द ष्टि रोमानी है जिसमें सामाजिकता का समावेश है।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

व्यक्तित्व- रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' का जन्म सन् 1915 ई. में किशनपुर में हुआ था एम.ए. की शिक्षा प्राप्त करके जबलपुर के इंस्टीट्यूट ऑफ लैंग्वेजेज़ ऐंड रिसर्च के हिंदी विभागाध्यक्ष रहे। बाद में राजकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रायगढ़ के आचार्य हो गए।

साहित्यिक विशेषताएं- 'अंचल' तीव्र रोमानी संवेदना के कवि हैं। उनकी यायावर प्रव त्ति के फलस्वरूप उनके सामाजिक यथार्थ वाले काव्यों में रोमानी संवेदना प्रमुख रूप से द ष्टिगोचर होती है। रूपासक्ति, वासना, पीड़ा एवं जिजीविषा में इनका उद्दाम रूप ही दिखलाई पड़ता है जिसने इनके काव्य का स जन किया है। वासना की प्रबलता इनके काव्य को सामाजिक संयम से अलग कर देती है। रचनात्मक स्तर पर उनमें गहनता तथा संश्लिष्टता का अभाव आ जाता है उसका स्थान उत्तेजना ग्रहण कर लेती है। 'अंचल' के व्यक्तित्व पर स्नायविक तनाव इतना हावी है कि वे लगातार येनकेन प्रकारेण काव्य में श ंगारिक प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति करते रहते हैं इसके अभाव में उन्हें संतुष्टि नहीं मिलती है।

14. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा

परिवेशानुसार 'राष्ट्रीय' शब्द में अर्थ परिवर्तन होता रहता है। राष्ट्रीय शब्द में आधुनिकता के समावेश से जाति, धर्म, संप्रदाय, निश्चित भू-भाग आदि की संकीर्णता के स्थान पर आधुनिक काल में समग्र देश, उसके अंदर निवास करने वाली सभी जातियां, विभिन्न भूखंडों, संप्रदायों एवं रीति-रिवाजों के लोगों का संश्लिष्ट, सामूहिक रूप उभर कर सामने आया है क्योंकि भूमि, भूमिवासी जन और उनकी संस्कृति को राष्ट्र की संज्ञा दी जाती है। राष्ट्र में संस्कृति समाहित होती है। संपूर्ण भारतवर्ष की अखंडता एवं एकता के रूप में राष्ट्रीयता का अर्थ विकसित हुआ। अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत अनेक छोटे छोटे राज्यों में विभक्त था। उस समय राष्ट्रीयता में अखंडता के स्थान पर हिंदुत्व आदि को प्रधानता दी जाती थी रीति कालीन भूषण की राष्ट्रीयता ऐसी ही थी। आजादी से पूर्व सभी धर्म एवं जाति के लोग एकत्रित हो अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त होने के लिए स्वतन्त्रता संग्राम में एकजुटता राष्ट्रीयता बन गई। स्वधीनता आंदोलन और उसका देशव्यापी प्रसार राष्ट्रीय क्रिया कलाप में समाहित हो गया। पाश्चात्य राष्ट्रीयता भारतीय राष्ट्रीयता से भिन्न है क्योंकि वहां परतंत्रता नहीं थी। भारतीय राष्ट्रीयता में स्वरक्षा एवं स्वविकास दोनों हैं जबकि पश्चिम में स्वविकास ही प्रधान है। भारत में संस्कृति, भाषा की भिन्नता होते हुए भी राष्ट्रीय एकता मुख्य है। प्राचीन संस्कृति एवं प्राचीन आध्यात्मिकता राष्ट्रीय एकता का वह मूल स्रोत है जो सबको सूत्रबद्ध करता है। इस कालावधि की राष्ट्रीयता में (i) पराधीनता की यातना का अनुभव तथा उससे मुक्ति पाने हेतु किये गए प्रयत्न। (ii) पश्चिमी सभ्यता और अलगाव की भावना से आक्रांत होती हुई भारतीय चेतना का उद्धार करने हेतु उसमें एकता एवं स्वाभिमान का बल फूंकने के लिए अपनी प्राचीन संस्कृति के समुज्जवल रूप का प्रस्तुतिकरण तथा (iii) उपयोगी आधुनिक मूल्यों के संदर्भ में राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिकता का पुनर्विचार तथा पुनर्गठन। स्वतंत्रता के पश्चात् प्रथम दो उद्देश्य पूरे हो गए हैं। मात्र तीसरे तत्व की सार्थकता अवशिष्ट है। नवीन विशेषताएं देश का विकास, राजनीतिक व्यवस्था की प्रतिष्ठा एवं नवीन राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय परिवेशों के कारण उत्पन्न समस्याएं तथा उनके समाधान खोजने की चेष्टा। आधुनिक राष्ट्रीयता का प्रारंभ भारतेंदु युग से हुआ। वर्तमान राष्ट्रीयता मानवीय एवं सार्वभौम प्रश्नों तथा संवेदनाओं से संप क्त होती चली जा रही है। इस काल में राष्ट्रीयता कहीं खंडित रूप में कहीं संश्लिष्ट रूप में द ष्टिगोचर होती है। इस काल में राष्ट्रीयता का मूल रूप विदेशी शासन के अत्याचारों, उनके कारण जन्मी अनेक जन-यातनाएं तथा जनता के मन में उठती हुई क्रोध तथा असंतोष की ललकारों का चित्रण है। दिनकर, सोहन लाल द्विवेदी, नवीन, माखन लाल चतुर्वेदी आदि की कृतियों में दिखलाई पड़ती है।

सन् 1938 ई. के आस-पास राष्ट्रीय जीवन की यातना और आक्रोश के स्वर में एक नया उभार परिलक्षित होता है। परिवेश जन्य कारणों से राष्ट्रीय साहित्य का स्वर उग्रतर यथार्थोन्मुख तथा लोकोन्मुख होता चला गया। प्रगतिवाद से पूर्व भी शोषक-शोषित की समस्या उठ खड़ी हुई थी। राष्ट्रीयता दिनकर काव्य में उभर कर आयी।

संस्कृति का संबंध इसी आत्मा अथवा चेतना से होता है। संस्कृति इतिहास के रूप में मानव के लिए प ष्ठभूमि एवं प्रेरणा बनती है तथा वर्तमान चेतना से स्पंदित होकर मानव जीवन का स्वरूप धारण कर लेती है। प्रतिभा संपन्न कवियों ने संस्कृति के उदात्त अतीत रूप को वर्तमान जीवन के परिप्रेक्ष्य में पुनर्परीक्षित करके ही स्वीकारा है। यह प्रयास छायावादी कृतियों में परिलक्षित होता है।

इस कालावधि में प्रकाशित 'कुरुक्षेत्र', 'जय भारत', 'नकुल', 'उन्मुक्त', 'रश्मिरथी' तथा 'विक्रमादित्य' आदि काव्यों में भी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक भावना का चित्रण किया गया है। इन ग्रंथों के अतिरिक्त 'इतिहास के आंसू' की फुटकल कविताओं में भी इस संदर्भ का अवलोकन किया जा सकता है।

मैथिलीशरण गुप्त-

मैथिलीशरण गुप्त इस धारा के श्रेष्ठ कवि हैं। गुप्त ने तत्कालीन राष्ट्र चेतना को अपने काव्यों में मुखरित किया है। जिसमें वैविध्य की स्थिति देखी जा सकती है। आधुनिक काल के राष्ट्रीय इकलौते कवि स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त हैं।

माखन लाल चतुर्वेदी-

राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविताएं माखन लाल ने लिखीं। इनका संबंध तत्कालीन राष्ट्रीय व्यवस्था से है। पराधीन राष्ट्र की व्यथा, अंग्रजों के अत्याचारों आदि का चित्रण किया है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'-

नवीन सौंदर्य एवं प्रेम लिखने के कारण छायावादी कवियों का सान्निध्य प्राप्त कर लेते हैं। राष्ट्रीय सांस्कृतिक भावना का चित्रण किया जिसमें राष्ट्रीयता प्रमुख है। संस्कृति के प्रति विशेष रूचि नहीं थी।

रामधारी सिंह दिनकर-

व्यक्तित्व- रामधारी सिंह दिनकर का जन्म 30 सितम्बर, सन् 1908 सिमरिया जिला मुंगेर में हुआ था। बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त कर हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक बन गए। बिहार सरकार के अधीन सब रजिस्ट्रार, बिहार सरकार के प्रचार विभाग के उपनिदेशक, मुजफ्फरपुर कॉलेज में हिंदी विभागाध्यक्ष तथा भारत सरकार के सलाहकार रह चुके हैं। ये राज्य सभा सदस्य भी रहे हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- इस काल में सबसे अधिक सशक्त कवि रामधारी सिंह दिनकर थे। संवेदना एवं विचार का अति सुंदर समन्वय इनमें द ष्टिगोचर होता है। प्रेम सौन्दर्य मूलक एवं राष्ट्रीय कविताएं कवि की संवेदना से स्पंदित है। परिवेश संप क्त करने की इनमें प्रबल आकांक्षा थी। लोकोन्मुखता, सहजता इनकी विशेषता है। इनकी कविता में वैयक्तिक कुंठा, अवसाद तथा निराशा का स्थान प्रसन्नता तथा सर्वत्र सौंदर्य के प्रति स्वस्थ मानवीय प्रतिक्रिया ने लिया है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता देश एवं युग सत्य के प्रति जागरूकता है। जिसे ग्रहण करने में अनुभूति और चिंतन दोनों स्तरों पर पूर्ण सफलता मिली है।

कवि ने राष्ट्र को उसकी सामयिक घटनाओं, यातनाओं, विषमताओं तथा समताओं आदि के रूप में नहीं, उसकी संश्लिष्ट सांस्कृतिक परंपराओं के रूप में पहचाना है और उसके प्राचीन मूल्यों का नए जीवन संदर्भो के परिप्रेक्ष्य में आकलन कर एक ओर उन्हें जीवंतता प्रदान की है, दूसरी ओर वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को महत्व देते हुए उन्हें अपने प्राचीन किंतु जीवंत मूल्यों से जोड़ने का प्रयत्न किया है। 'कुरुक्षेत्र' में भीष्म के माध्यम से बुद्धि से वस्तु स्थिति की तीखी पहचान और ह्दय में सार्वभौम सुख-साम्राज्य की स्थापना की सुंदर कामना का अनुपम समन्वय किया है-

कर पाता यदि मुक्त ह्दय को
मस्तक के शासन से
उतर पकड़ता बांह दलित की
मंत्री के आसन से
स्यात् सुयोधन भीत उठाता
पग कुछ और संभल के
भरत भूमि पड़ती न स्यात्
संगर में आगे चल के।
-कुरुक्षेत्र।

सियाराम शरण गुप्त-

सियाराम शरण गुप्त इस धारा के विशिष्ट कवि हैं। इनकी कृतियां गांधीवाद की अभिव्यक्ति से भरपूर हैं। देश की ज्वलंत घटनाओं एवं समस्याओं का चित्रण बड़ी सफलता से इनके काव्य में हुआ है। घटनाओं, अवस्थाओं तथा समस्याओं को तत्कालीन न मानकर उनको मानवीय मूल्यों, संवेदनाओं से संदर्भित कर देते हैं। आधुनिक या अतीत की प ष्ठभूमि को आधुनिक मानवता की करुणा, यातना, द्वंद्व से समन्वित करके चित्रित किया है। किसी भी भारतीय घटना का उदात्तीकरण कर उसे व हत्तर मानवीय मूल्यों का स्तर प्रदान किया है। राष्ट्रीयता के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीयता को महत्व दिया है। 'उन्मुक्त' आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय संदर्भो का द्योतन करने वाली प्रमुख कृति है। जिसमें कवि ने अपने तरीके से युद्ध की अनिवार्यता, बलिदान, त्याग, यातना, विभीषिका तथा मानवीय करुणा का अद्भुत समन्वय किया है।

15. प्रगतिवाद

छायावाद का व्यष्टिगत द ष्टिकोण उसके ह्रास एवं पतन का प्रधान कारण था क्योंकि महादेवी वर्मा के शब्दों में वह "वष्टिगत सत्य की समष्टिगत परीक्षा में अनुत्तीर्ण रहा था"। साथ पंत के शब्दों में - "छायावाद के शून्य सूक्ष्म आकाश में अति काल्पनिक उड़ान भरने वाली अथवा रहस्य के निर्जन अद श्य शिखर पर विराम करने वाली कल्पना" को जन जीवन का सच्चा मित्र अंकित करने के लिए "एक हरी भरी ठोस जनपूर्ण धरती" की आवश्यकता थी। प्रगतिवाद उपर्युक्त व्यष्टिगत भावना की अवहेलना कर समष्टिगत स्वरूप को लेकर आगे बढ़ा और उसने "अति काल्पनिक उड़ान भरने वाली" कल्पना को "एक हरी भरी ठोस जनपूर्ण धरती" पर उतार कर उसे जन-जीवन का चित्रण करने के लिए प्रेरित किया। जिस समय छायावाद अपने व्यष्टि की साधना में तन्मय, जगत की वास्तविकता की ओर से आंखें बंद करके आत्म विभोर होकर आगे बढ़ा जा रहा था उसी समय जगत की नग्न वास्तविकता, "रोटी का राग" और "क्रांति की आग" लिए प्रगतिवाद आगे आया तथा उसने झकझोर कर साहित्यकार को एक नवीन समस्या, एक नवीन चेतना का आलोक दिखाया। उसने छायावाद की अति सूक्ष्म काल्पनिक भावनाओं का विरोध कर उसे स्थूल जगत की कठोर वास्तविकता के समक्ष खड़ा कर दिया। कुछ लोगों की मान्यता है कि प्रगतिवाद विचारधारा की देन है।

इसका प्रारंभ सन् 1936 ई. में लखनऊ में होने वाली 'प्रगतिशील लेखक संघ' की पहली बैठक से हुआ। सन् 1936 ई. में सज्जाद जहीर और डॉ. मुल्क राज आनंद के प्रयत्नों से भारत वर्ष में भी इस संस्था की शाखा की स्थापना हुई। लखनऊ का अधिवेशन प्रेम चन्द की अध्यक्षता में हुआ था। इससे एक वर्ष पूर्व ही सन् 1935 ई. में पेरिस में ई.एम. फार्स्टर के सभापतित्व में "प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन" नामक अंतर्राष्ट्रीय संस्था का अधिवेशन हुआ था। इस वर्ष तक साम्यवादी या समाजवादी आंदोलन का श्रीगणेश हुआ। इससे एक वर्ष पूर्व सन् 1935 ई. में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का जन्म हुआ। गांधी जी के नेत त्व में स्वाधीनता आंदोलन चल रहा था। युवा ह्रदय अपनी विद्रोही भावना की अभिव्यक्ति हेतु साधन की तलाश में था। गांधीवादी विचारधारा में अहिंसावादी सिद्धांतों से असंतुष्टों का विकास हो रहा था। अधिक उग्र वैचारिकता वालों का उग्र आचरण में विश्वास था। अहिंसावादी गांधी ने हिंसा के डर से अनेक बार जन आंदोलन को रोक दिया था। उमड़ता हुआ जन-जीवन सहज रूप से इसे स्वीकार नहीं कर पाता था। मजदूरों का आंदोलन भी बढ़ता जा रहा था। शनैः शनैः राजनीति में वामपंथी शक्तियों का जोर बढ़ने लगा। समसामयिक परिवेश, वैचारिक उग्रता तथा समाजोन्मुखता को बल दे रहा था। राजनीतिक दासता में एक ओर पूंजीवाद और सामंतवाद की शोषण प्रव त्ति को बढ़ावा मिल रहा था और दूसरी ओर जन-सामान्य के लिए भयावह गरीबी, अशिक्षा, असुविधा और अपमान अपना प्रबल रूप धारण करता जा रहा था। इसके अतिरिक्त अकाल एवं युद्ध की भीषण विभीषिकाएं देश को निगलती चली जा रही थीं। द्वितीय महायुद्ध और बंगाल का अकाल देश का बेड़ा गर्क करने वाली भयानक घटनाएं थीं। युद्ध के दबाव में जनता अत्यधिक आक्रांत हो रही थी। जगती हुई उग्र चेतना, रूस में स्थापित समाजवाद तथा पश्चिम के अन्य देशों में प्रचारित कम्युनिज़्म के सिद्धांतों से उत्पन्न विश्वव्यापी प्रभाव के फलस्वरूप भारत में प्रगतिवाद का उदय हुआ।

'प्रगतिवाद' रचना एवं आलोचना के क्षेत्र में सर्वथा नवीन द ष्टिकोण लेकर आया। प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति को ही रचना का उद्देश्य स्वीकारता है। प्रत्येक युग में यथार्थ की दो शक्तियों का द्वंद्व चलता रहता है - मरणोन्मुख पुरानी शक्तियों और नवीन जीवंत शक्तियों का। सामाजिक स्तर पर पुरानी शक्तियों में शोषक होते हैं तथा नवीन शक्तियों में शोषित गरीब, किसान मजदूर होते हैं। किसान-मजदूर शोषित का अंत कर नवीन जन मंगलशाली समाज की स्थापना हेतु प्रयत्नशील रहते हैं। शोषक-शोषित संघर्ष सनातन है सदियों से चलता आया है चल रहा है और अनादि काल तक चलता रहेगा। नवीन शक्तियां वैयक्तिक नहीं अपितु समष्टिगत होती हैं। उनमें पीड़ा और अभाव के साथ जीवनसंघर्ष, अडिग विश्वास और भविष्य की दिव्य आकांक्षा विद्यमान रहती है। अनेक बुनियादी तत्वों को ग्रहण करने वाला सच्चा यथार्थवादी है। ऐसा साहित्ययुगीन वास्तविक का सच्चा प्रतिनिधि होता है।

कुछ लोग प्रगतिवाद के जन्म में भारतीय परिवेश को न मानकर रूसी कम्युनिस्टों का प्रचार मात्र मानते हैं उनकी भूल है क्योंकि हमारा साहित्य का इतिहास यह प्रमाणित करता है कि हमारे साहित्य की कोई भी विचारधारा ग्रियर्सन की 'भक्तिधारा' के समान एकाएक न तो उत्पन्न होती है न कोई भी विदेशी प्रभाव उसे इतना लोकप्रिय एवं सशक्त बना सकता है। प्रत्येक विचारधारा अपने स्वतंत्र रूप से क्रमशः विकसित होती हुई अग्रसर होती है। सामयिक परिवेश, युग की मांग के अनुरूप, उसका 3स्वरूप निश्चित करते हुए उसे निरंतर आगे बढ़ाती रहती है जो विचारधारा जन-मन से अनुप्राणित न होकर मात्र किसी विदेशी साहित्य की नकल के आधार पर आगे बढ़ती है उसका वही परिणाम होता है जो 'हालावाद' का हुआ था। 'हालावाद' मात्र चार वर्ष ही जीवित रह सका।

प्रगतिवाद युग की पुकार है। इसकी उत्पत्ति एकाएक न होकर या रूसी प्रभाव से न होकर बहुत पहले से चली आती हुई असंतोष और विद्रोह की भावनाओं का स्वाभाविक प्रतिफलन है। इसमें सन्देह नहीं कि साहित्य की अन्य धाराओं के समान इस पर विदेशी प्रभाव भी द ष्टिगोचर होता है। किन्तु इस प्रभाव ने उसके स्वरूप को अधिक उन्नत, स्वस्थ एवं सशक्त बनाया है।

प्रगतिवादी विचारधारा रूस की बपौती न होकर विश्वव्यापी असंतोष की वाणी है। भारत में यह विचारधारा अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध बहुत पहले से चली आ रही थी जिसका स्वरूप अनुकूल परिवेश पाकर अब अधिक स्पष्ट और मुखर हुआ है जो भावी युगों हेतु प्रेरणा स्त्रोत होगा।

प्रगतिशील साहित्य समाज के युगीन संबंधों को त्यागकर हवा में शाश्वत महल का निर्माण करने वाले साहित्य को नकली एवं निर्जीव मानता है। यदि कोई शाश्वत वस्तु है तो यही नवीन सामाजिक मानवता जो सदैव पुरानी और जर्जर शक्तियों से युद्ध करती है। आज के युग में बुनियादी शक्तियां वे हैं जो पूंजीवाद को नष्ट कर समाजवाद की स्थापना करने के लिए प्रयत्नशील हैं। इसका समर्थक साहित्य अनिवार्य रूप से किसानों, मजदूरों के संघर्ष को रूपायित कर उसे बल प्रदान करता है तथा पूंजीवादी या सामंतवादी शक्तियों की शोषक, स्वार्थी, स्वकेंद्रित, जर्जर विसंगतिमय प्रव त्तियों पर करारी चोट करता है।

प्रगतिवाद ने सौंदर्य का नवीन स्वरूप निर्मित किया है। वह वर्तमान जनजीवन में वास्तविक सौंदर्य की अन्वेषणा करता है। सौंदर्य का संबंध हमारे हार्दिक आवेगों और मानसिक चेतना से होता है। प्रगतिवादी कवि नए उदीयमान समाज में सौंदर्य का दर्शन करेगा। सौंदर्य का दर्शन करने के लिए अतीत या कल्पना लोक में गोता न लगाएगा। सौंदर्य जीवन है।

प्रगति साहित्य को सोद्देश्य स्वीकारता है। उद्देश्य सहित होने का अर्थ किसी विशेष अभिप्राय या किसी विशेष द ष्टि से कला का स जन करना है। प्रगतिवाद का मुख्य उद्देश्य कुरुप, शोषक, सड़ी-गली, विसंगतिग्रस्त शक्तियों पर से पर्दा हटाना एवं नई सामाजिक शक्तियों के संघर्षो, युयुत्सा तथा आस्था को सबल बनाना है। साहित्य जनता का जनता के लिए चित्रण करता है। प्रसार साहित्य को प्रगतिवादी नकारता है। प्रचारवादी साहित्य अपने परिवेश से अलग होकर लाल सेना, लाल रूस, एवं लाल चीन की प्रशंसा के गीत गाता है। प्रचार का एक दूसरा खतरा यह भी हुआ कि कवियों ने जन-जीवन से अपने को संबद्ध किए बिना ही जन-जीवन का गीत गाना प्रारंभ कर दिया। अनुभव के स्थान पर फार्मूला कविताओं की प्रेरणा बन गया।

प्रगतिवादी कविता सामाजिक जीवन की वास्तविकता को लेकर चली है इसलिए जनता तक पहुंचना तथा जनता के जीवन की बात कहना उसका लक्ष्य बन गया। यही कारण है कि उसने छायावाद की वायवी, असामान्य, रेशमी परिधान शालिनी सूक्ष्म भाषा का परित्याग कर सुस्पष्ट, सामान्य, प्रचलित भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। उसने प्रतीकों, शब्दों, मुहावरों तथा चित्रों का चयन जन-जीवन से किया है। इसलिए उसकी भाषा में सादगी होते हुए भी जीवंतता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रगतिवादी कवि छायावादी रंगीन कुहासे को तोड़कर विषम यथार्थ के धरातल पर आ गया है। या तुलसीदास का रूप धारण कर छायावादियों की संस्कृतनिष्ठता अर्थात् संस्कृत भाषा को छोड़कर हिंदी की बोलचाल की भाषा को अपने काव्य का विषय बनाया जैसे तुलसीदास ने अवधि में 'रामचरितमानस' की रचना की।

शैली सांकेतिक, और चित्तात्मक न होकर उपदेशात्मक हो गई है। इसीलिए काव्य का सौंदर्य निखार को प्राप्त नहीं कर सका। प्रगतिवाद ने अपनी सीमाओं के बावजूद हिंदी काव्य-धारा के विकास में एक महत्वपूर्ण अध्याय जोड़ा है। उसने काव्य को वैयक्तिक यथार्थ के बंद कमरे से निकालकर जनजीवन के मध्य प्रवाहित कर दिया है। जीवन और साहित्य के मूल्य, सौंदर्य बोध तथा लक्ष्य को समाज के यथार्थ और उसकी रचना से संबद्ध किया, भाषा को कुहरे से निकालकर मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित किया। प्रगतिवादी काव्यधारा के कवियों में पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत, केदार नाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, शिवमंगल सिंह सुमन, त्रिलोचन तथा मुक्तिबोध आदि प्रमुख हैं।

16. प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख प्रव त्तियाँ

समय परिवर्तन के साथ परिवर्तन होता रहता है। वैचारिक राजनीतिक क्षेत्र में साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र में समाजवाद दर्शन के क्षेत्र में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है, वही साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद है।

इस प्रकार मार्क्सवादी द ष्टिकोण से निर्मित काव्यधारा प्रगतिवाद है।

शोषक तथा शोषित वर्ग में समाज को बाँटकर यदि विचार किया जाए तो साम्यवाद का केन्द्र श्रमिक वर्ग ही है। प्रगतिवादी रचना में दलित, मजदूर शोषित के प्रति विशेष भाव व्यक्त किया जाता है।

प्रगति का सामान्य अर्थ है- आगे बढ़ना, जो साहित्य जीवन को आगे बढ़ाने में सहायक हो वह प्रगतिशील साहित्य है।

प्रगतिवादी कवियों में सुमित्रानंदन पंत, शिवमंगला सिंह, सुमन, उदयशंकर भट्ट, नागार्जुन, नरेन्द्र शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, राम विलास शर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला आदि।

प्रगतिवादी काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. **रूढ़ियों का विरोध-** प्रगतिवादी कवियों का ईश्वर की सत्ता, आत्मा, परमात्मा, परलोक, भाग्यवाद, धर्म, स्वर्ग, नरक आदि पर विश्वास नहीं है। उनकी द ष्टि में मानव की महत्ता सर्वोपरि है। उनके लिए धर्म एक अफीम का नशा है। प्रगतिवादी कवियों ने अंधविश्वास और रूढ़ियों पर गहरा प्रहार किया है।

2. **शोषकों के प्रति विद्रोह, शोषितों के प्रति सहानुभूतिः** प्रगतिवादी कवियों ने शोषक वर्ग को घोर स्वार्थी, निर्दयी एवं कपटी के रूप में चित्रित किया है। इनकी मान्यता है कि पूँजीपति निर्धनों का रक्त चूस-चूसकर सुख की नींद सोते हैं। वह बड़े व्यापारी, जमींदार तथा उद्योगपति जैसे शोषकों के चिथड़े-चिथड़े होते हुए देखना चाहता है। उनकी द ष्टि में शोषण की नींव पर खड़े समाज का नष्ट हो जाना ही श्रेयस्कर है-

   दिनकर के शब्दों में -

   "श्वानों को मिलता वस्त्र, दूध बच्चे अकुलाते हैं,
   माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाड़ों की रात बिताते हैं।"

   इस काव्यधारा का मूल केन्द्र शोषित वर्ग है। कवियों ने शोषण से पीड़ित मजदूरों और किसानों की करुण दशा का सुन्दर चित्रण किया है। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', 'भिक्षुक' का वर्णन इस प्रकार करते हैं -

   "वह आता दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता।"

3. **क्रांति की भावना-** प्रगतिवादी कवियों ने शोषित वर्गो के प्रति सहानुभूति दर्शाने तथा प्राचीन परम्पराओं को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए क्रान्ति का आह्वान किया है। वे समानता स्थापित करने के लिए समाज में आमूलचूल परिवर्तन करना चाहते हैं। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की यह पंक्तियाँ देखने योग्य हैं-

   "कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,
   जिससे उथल-पुथल मच जाए।"

4. **यथार्थ चित्रण-** प्रगतिवादी काव्य में निम्नवर्ग के जीवन की प्रतिष्ठा हुई। इससे पहले साहित्य में मध्यवर्ग तथा उच्चवर्ग का जीवन प्रतिबिम्बित हुआ था। कवियों ने प्रकृति के रमणीय चित्र खींचने की बजाय नगर और ग्रामीण जीवन के नग्न यथार्थ रूप का चित्रण किया है। शोषण के दुष्परिणाम दिखलाने के लिए उन्होंने ऐसा वर्णन किया है। निम्न वर्ग के कुरुचिपूर्ण जीवन के साथ उन्होंने सहानुभूति व्यक्त की है। एक उदाहरण देखिए-

   "सड़े घूर की गोबर की बदबू से दबकर,

महक जिन्दगी के गुलाब की भर जाती है।"

-केदारनाथ अग्रवाल

कवि को व्यक्ति तथा समाज के कटु सत्यों के सामने ऐश्वर्य, विलास एवं मादक वसंत सभी फीके लगने लगते हैं। जीवन के अनाचार, पीड़ित की हाहाकार ने उसे व्यथित बना दिया है। ताजमहल के संबंध में पंत जी लिखते हैं-

"हाय म त्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन
जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन।"

इसी प्रकार भारत के ग्रामों का वर्णन करते हुए कवि पंत लिखते हैं-

"यह तो मानव लोक नहीं है, यह है नरक अपरिचित।
यह भारत का ग्राम सभ्यता संस्कृति से निर्वासित।"

5. **मानवतावादी द ष्टिकोण-** प्रगतिवादी साहित्यकार मानव की शक्तियों पर असीम आस्था रखता है। उसके अनुसार ईश्वर नहीं, मानव ही अपने भाग्य का निर्माता है। ईश्वर के नाम पर हो रहे शोषण से कुपित होकर वह कहता है-

"जिसे तुम कहते हो भगवान
जो बरसाता है जीवन में
रोग, शोक, दुःख-दैन्य अपार
उसे सुनाने चले पुकार।"

उसे ईश्वर पर आस्था नहीं है।

6. **मार्क्स का गुणगान-** प्रगतिवादी कवियों ने इस बात का बिना विचार किए हुए कि रूस की मान्यताएं भारत के लिए उपयोगी हैं या नहीं, धारा के बहुत से कवियों ने मार्क्स और रूस का गुणगान किया है। पंत जी कार्ल मार्क्स के प्रति कुछ इस प्रकार के भाव प्रदर्शित करते हैं -

"धन्य मार्क्स चिर तमाच्छन्न प थ्वी के उदय शिखर,
तुम त्रिनेत्र के ज्ञात चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।"

उपर्युक्त पंक्तियों में पंत जी ने मार्क्स को प्रलयंकारी शिव का तीसरा नेत्र बताया है तो नरेन्द्र शर्मा रूस का गुणगान करते हुए कहते हैं-

"लाल रूस है ढाल साथियों
सब मजदूर किसानों की।"

7. **सांस्कृतिक समन्वय-** प्रगतिवादी साहित्यकार की द ष्टि व्यक्ति, परिवार, स्वदेश तक सीमित न होकर सम्पूर्ण विश्व तक व्याप्त है। उसका स्वर मान्यतावादी है। जापान के ध्वस्त नगरों की पीड़ा से वह भी व्यथित है। अतः यह क्रन्दन और चीत्कार कर पुकार उठता है-

"एक दिन न्यूयार्क भी मेरी तरह हो जाएगा
जिसने मिटाया है मुझे, वह भी मिटाया जाएगा।"

प्रगतिवादी कवि की द ष्टि में हिन्दु, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सभी मानव के नाते बराबर हैं।

8. **नारी भावना-** प्रगतिवादी कवि नारी-स्वतंत्रता का पक्षधर है। उसने नारी को पुरुष के समकालीन उसकी सहयोगिनी के रूप में स्वीकार किया है। साथ ही उसे उसका हक दिलाने के लिए प्रबल आवाज भी उठाई है।

प्रगतिवादी कवि के लिए मजदूर तथा किसान के समान नारी भी शोषित है जो कि युग-युग से सामंतवाद की धारा में पुरुष की दासता की श ंखलाओं में बन्दिनी के रूप में पड़ी है। वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो चुकी है और वह केवल मात्र रह गई है पुरुष की वासना-त प्ति का उपकरण। अतः पंत कहते हैं -

"योनि नहीं रे नारी, वह भी मानव प्रतिष्ठित है।

उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रे न नर पर अवसित।।"

कवि पंत पुनः कहते हैं -

"मुक्त करो नारी को।"

9. **वेदना चित्रण-** प्रगतिवाद की वेदना संघर्षो से जूझने की सामाजिक वेदना है। निराशा के लिए उसमें कोई स्थान नहीं। प्रगतिवादी इसी संसार को स्वर्ग बनाना चाहते हैं जिसमें वर्ग भेद, शोषण और रूढ़ियों का नामोनिशान नहीं होगा। कवि निराला की बंगाल के अकाल पर अभिव्यक्ति वेदना हृदय को दहला देने वाली है-

"बाप बेटा बेचता है, भूख से बेहाल होकर,

धर्म धीरज प्राण खोकर, हो रही अनरीति बर्बर

राष्ट्र सारा देखता है।"

नागार्जुन आज की थोथी आजादी पर अपनी वेदना व्यक्त करते हुए कहते हैं -

"कागज की आजादी मिली

ले लो दो-दो आने में।"

10. **शिल्प योजना-** प्रगतिवादी साहित्य जनता का साहित्य है। इसलिए उसकी भाषा भी जनभाषा है। भाषा सरल है। प्रगतिवादी कवियों का आदर्श था-जन-मन-तक अपने विचारों को पहुँचाना। इसके लिए उन्होंने बोलचाल की शब्दावली को भी ग्रहण किया है। प्रायः इस युग का साहित्य अमिधाप्रधान है। अलंकारों के सहज प्रयोग से अभिव्यक्ति स्पष्ट है।

प्रगतिवादी काव्य में मुक्तक और अतुकान्त छंदों के साथ गीतों और लोकगीतों की शैली का भी प्रयोग किया गया है।

प्रगतिवादी काव्य का अपना अलग महत्व है। वह जीवन के भौतिक पक्ष का उत्थान करना चाहता है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में - "भारत में प्रगतिवाद का भविष्य साम्यवाद के साथ बंधा हुआ है। लेकिन फिर भी आधुनिक काव्य के अध्येयता को उसका अध्ययन आदर और धैर्यपूर्वक करना होगा। उसने हिंदी काव्य को जीवंत चेतना प्रदान की है। इसका निषेध नहीं किया जा सकता।" इस प्रकार प्रगतिवादी कविता का अपना महत्व है।

17. प्रगतिवादी प्रमुख रचनाकार

केदारनाथ अग्रवाल

व्यक्तित्व- केदारनाथ अग्रवाल का जन्म 9 जुलाई सन् 1911 ई. में कमासिन जनपद बांदा में हुआ। बी.ए. एल.एल.बी. उत्तीर्ण कर बांदा में ही वकालत करते थे।

कृतित्व

संकलन - "फूल नहीं रंग बोलते हैं" संकलन में 'मांझी न बजाओ वंशी' तथा 'वसंती हवा' आदि कविताएं संग्रहीत हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- अग्रवाल प्रगतिवादी वर्ग के सशक्त कवि हैं। इनकी कविताओं में उद्‌बोधन अधिक है। अग्रवाल की कविताओं में मानव एवं प्रकृति के सौंदर्य का अति सहज, वेगवान तथा उन्मुक्त रूप प्रस्तुत किया गया है। 'मांझी न बजाओ वंशी' तथा 'वसंती हवा' आदि कविताओं में प्रगतिकालीन सहज सौंदर्य का स्वरूप अवलोकनीय है-

"आज नदी बिलकुल उदास थी
सोयी थी अपने पानी में,
उसके दर्पण पर
बादल का वस्त्र पड़ा था
मैंने उसका नहीं जगाया
दबे पांव वापस घर आया।"
-'फूल नहीं रंग बोलते हैं'।

रामविलास शर्मा

व्यक्तित्व- डॉ. राम विलास शर्मा का जन्म सन् 1912 ई. में झांसी में हुआ था। अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. करके पी.एच.डी. की। बलवंत राजपूत कॉलेज आगरा में अंग्रेजी के प्राध्यापक रहे। उसके पश्चात् केन्द्रीय हिंदी संस्थान आगरा में कार्य किया। प्रगतिशील लेखक संघ के मंत्री तथा 'हम' के संपादक भी रहे हैं। प्रख्यात प्रगतिवादी समीक्षक हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- राम विलास शर्मा की कविताओं में सादगी, वेग तथा सहजता की प्रधानता रही है। प्रचार एवं नारे बाजी से अपने को मुक्त नहीं कर पाए। स्थूल व्यंग्यों का इनकी कविताओं में आधिक्य है। अतिवादिताओं से मुक्त होकर तथा सामाजिक संवेदना को आत्मसात कर उसे सरल वेगवान भाषा में अभिव्यक्ति प्रदान की है।

नागार्जुन

व्यक्तित्व- नागार्जुन का जन्म सन् 1910 ई. में तरौना जनपद दरभंगा में हुआ था। स्कूल शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके। घर पर ही हिंदी संस्कृत का अच्छा स्वाध्याय किया। इनका स्वभाव घुमक्कड़ी था। स्वतंत्र लेखन कार्य किया। इनका असली नाम वैद्यनाथ मिश्र था। उपनाम 'यात्री' था इसी नाम से मैथिली में कविताएं लिखते थे। कवि के साथ-साथ हिंदी के प्रमुख उपन्यासकार भी थे।

कृतित्व- 'बादल को घिरते देखा', 'पाषाणी', 'चंदना', 'रवीन्द्र के प्रति' 'सिंदूर तिलकित भाल', 'तुम्हारी दंतुरित मुसकान' आदि इनकी उत्तम प्रगतिवादी कविताएं हैं।'

साहित्यिक विशेषताएं- नागार्जुन की कविताएं मुख्यतः तीन प्रकार की हैं-

(i) कुछ कविताएं गंभीर संवेदनात्मक और कलात्मक हैं जिनमें कवि ने मानव मन की रागात्मक एवं सौंदर्यमयी छवियों को अंकित किया है तथा मानवीय संभावनाओं के प्रति आस्था की अभिव्यक्ति हुई है।

(ii) सामाजिक कुरूपता, राजनीतिक अव्यवस्था तथा धार्मिक अंधविश्वास पर करारा व्यंग्य किया है। शिक्षा पद्धति पर किया गया व्यंग्य अवलोकनीय है -

"घुन खाए राहतीरों पर की बारहखड़ी विधाता बांचे,
फटी भीत है, छत चूती है, आले पर विस्तुइया नाचे,
बरसा कर बेबस बच्चों पर , मिनट-मिनट पर पांच तमाचे,
इसी तरह से दुखरन मास्टर, गढ़ता है आदम के सांचे।"

-'युगधारा'

(iii) इस कोटि की रचनाएं उद्‌बोधनात्मक हैं, किन्तु काव्य-तत्व की द ष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं।

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

व्यक्तित्व- शिव मंगल सिंह 'सुमन' का जन्म 14 अगस्त सन् 1915 ई. को झामपुर मध्य प्रदेश में हुआ था। हिंदी साहित्य में एम.ए. परीक्षा उत्तीर्ण कर पी.एच.डी. एवं डी.लिट. किया। सन् 1942 ई. में विक्टोरिया कॉलेज ग्वालियर में प्राध्यापक नियुक्त हुए। तब से शिक्षा संबंधी विभिन्न कार्य करते रहे। विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के कुलपति रहे। सन् 1956-61 ई. तक भारतीय दूतावास काठमांडु, नेपाल में सूचना तथा सांस्कृतिक सहचारी के रूप में कार्य किया।

साहित्यिक विशेषताएं- डॉ. शिव मंगल सिंह 'सुमन' की कविताएं दो प्रकार की हैं-

(i) गीत अथवा छोटी-छोटी कविताएं हैं।

(ii) कविताएं लंबी-लंबी तथा उपदेशात्मक हैं।

उनकी छोटी-छोटी कविताएं और गीत कला और प्रभाव के द ष्टिकोण से अलग प्रतीत होते हैं। लंबी कविताएं आयाम बड़ा होने से स्थान तो अधिक घेरती हैं उनका प्रभाव भी समन्वित न होकर बिखराव का हो जाता है। लंबी कविताएं ध्वन्यात्मक एवं चित्रात्मक न होकर इतिव न्तात्मक हैं।

त्रिलोचन

व्यक्तित्व- त्रिलोचन का जन्म 20 अगस्त, 1917 ई. को कटघरा पट्टी जनपद सुलतानपुर में हुआ। शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। उसके पश्चात् बी.ए. की परीक्षा पास की। 'हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' तथा 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी' के कोश निर्माण कार्य से सम्बद्ध रहे। वाराणसी के 'जनवार्ता' सम्पादकीय विभाग में भी कार्य किया। 'हंस' का संपादन किया। वास्तविक नाम वासुदेव सिंह था।

साहित्यिक विशेषताएं- इनकी कविताओं में अत्यधिक सादगी विद्यमान है। प्रत्येक कविता में धरती की सोंधी गंध भरी है। सतसैया के दोहों के समान इनकी कविताएं - "देखन में छोटी लगें, भाव करें गंभीर' अर्थात इनकी कविताओं का आकार छोटा है किंतु प्रभाव में तीव्रता है।

मुक्तिबोध- विश्वासों एवं संवेदनाओं में जनवादी हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- इनकी कविताएं प्रगतिशील हैं। किन्तु इन्हें नई कविता के अंतर्गत रखना औचित्य पूर्ण होगा। इन कवियों के अतिरिक्त अज्ञेय, भारत भूषण अग्रवाल, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, शमशेर बहादुर सिंह तथा धर्मवीर भारती भी किसी न किसी रूप में प्रगतिवादी हैं किन्तु मूलतः इन्हें प्रगतिवाद में स्थान नहीं दिया जा सकता है।

18. प्रयोगवाद

छायावादी एवं प्रगतिवादी कुछ कवियों का विद्रोह अपनी मूल प्रव त्ति में दब नहीं सका वह अनुकूल परिवेश एवं वातावरण में उभरता रहा और प्रयोगवाद के रूप में विकसित हुआ। वैसे प्रयोग प्रत्येक काल, युग या समय में होता रहता है किन्तु इस कालावधि में प्रव त्ति विशेष के रूप में विकसित हुआ। अपने क्रमिक विकास में प्रगतिवाद ने प्रयोगवाद को विकसित किया। हिंदी में काव्य की नवीनतम प्रव त्तियों का समारंभ 'तार सप्तक' के प्रकाशन सन् 1943 ई. से माना जा सकता है। पुरानेपन के प्रति सबके मन में असंतोष की भावना थी जिससे नवीनता की खोज में नए-नए प्रयोगों में जुट गए। ऐसे ही वैचारिक संक्रांति बिंदु पर 'अज्ञेय' ने अपने मित्रों - डॉ. राम विलास शर्मा, गिरिजा कुमार माथुर, नेमिचंद जैन, प्रभाकर माचवे, गजानन माधव मुक्तिबोध तथा भारत भूषण अग्रवाल के सहयोग से 'तारसप्तक' का प्रकाशन किया। जिसके संबंध में पंत ने लिखा कि अज्ञेय ने 'तारसप्तक' का संपादन करके हिंदी पाठकों के लिए प्रयोगशील कविता का सर्वप्रथम संग्रह प्रस्तुत किया। 'तार सप्तक' के सात कवियों के एकत्र होने का एक विशिष्ट कारण एवं प्रयोजन था। वे एक स्कूल के नहीं थे, किसी मंजिल पर पहुंच हुए नहीं थे, राही थे, राही नहीं - राहों के अन्वेषी थे। काव्य के प्रति इनका एक अन्वेषी द ष्टिकोण था और द ष्टिकोण की समानता ने ही इन्हें एकत्रित किया था।

'तारसप्तक' के समान अज्ञेय द्वारा संपादित सन् 1946 ई. की पत्रिका 'प्रतीक' को भी प्रयोगवादी कविता का मुख्यपत्र कहा जा सकता है क्योंकि द्वितीय महायुद्ध के आस-पास ही साहित्यिक चेतना 'प्रतीक' के माध्यम से ही सर्वप्रथम मुखरित हुई थी।

प्रयोगवाद नाम से भ्रम उत्पन्न होता है कि इन कवियों ने प्रयोग को साध्य मानकर एक नया वाद चलाया। अज्ञेय के द ष्टिकोण से प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं है वरन् वह साधन है। दोहरा साधन-

(i) सत्य को जानने का साधन जिसे कवि प्रेषित करता है।

(ii) उस प्रेषण-क्रिया को और उसके साधनों को जानने का साधन है।

'तारसप्तक' के कवियों में एकरूपता नहीं है। इनके तीन वर्ग द ष्टिगोचर होते हैं-

(i) कुछ ऐसे हैं जो विचारों से समाजवादी हैं और संस्कारों से व्यक्तिवादी - जैसे शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता और नेमिचन्द्र जैन।

(ii) कुछ ऐसे हैं जो विचारों और क्रियाओं दोनों से समाजवादी हैं - जैसे राम विलास शर्मा तथा गजानन माधव मुक्तिबोध।

(iii) कुछ ऐसे हैं जो प्रगतिशील कविता के द्वारा व्यक्त होते हुए जीवन-मूल्यों और सामाजिक प्रश्नों को असत्य या सत्याभास मानकर अपने व्यक्तिगत जीवन में तड़पने वाली गहरी संवेदनाओं को ही रूपायित करना चाहते हैं।

छायावादी काव्य की भाव-वस्तु और उसके शिल्प विधान के प्रति विद्रोह, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों का जन्म एक ही परिवेश में हुआ। प्रगतिवाद के मार्ग को अवरुद्ध करने वाली प्रतिक्रियावादी विचारधारा प्रयोगवाद है।

सन् 1951 ई. में दूसरे 'तारसप्तक' के कवि - भवानी प्रसाद मिश्र, शकुंतला माथुर, हरि नारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय तथा धर्मवीर भारती हैं।

'पाटल' तथा 'द ष्टिकोण' नामक पत्रिकाओं में भी पर्याप्त प्रयोगवादी कविताओं को स्थान मिला। 'तारसप्तक' की परंपरा में इधर सन् 1954 ई. से 'नई कविता' नाम से प्रयोगवादी कविताओं का एक अर्द्ध वार्षिक संग्रह निकलने लगा जिसके संपादक डॉ. जगदीश गुप्त थे। सन् 1936-37 ई. में छायावाद का पतन हुआ और प्रगतिवाद नवीन युग चेतना के साथ अग्रसर हुआ। बेकारी और भुखमरी का युग था। जनता में भयंकर असंतोष व्याप्त हो रहा था जिसके परिणामस्वरूप पूंजीवादी शोषकों और उसके द्वारा शोषित मजदूर वर्ग में संघर्ष प्रारंभ हो गया था। छायावाद पतनोन्मुख सामंतवाद और विकासोन्मुख पूंजीवाद की

ही अभिव्यंजना कर रहा था। प्रगतिवाद ने शोषित वर्ग का समर्थन किया और प्रगतिवादी साहित्यिकों की वाणी में सामान्य, दुखी, दलित जनता का क्षोभ मुखरित हो उठा। पंत, निराला आदि छायावाद के उन्नायक प्रगतिवाद से प्रभावित होकर छायावाद की रंगीन स्वप्नों की दुनिया छोड़ कर जन-जीवन की ठोस कर्ममय भूमि पर उतर आए। प्रगतिवाद में जनता का स्वर, जनता की भावनाएं, जनता का क्षोभ और विद्रोह मुखरित हो रहा था। इस बीच शाश्वतवाद, प्रतीकवाद, अभिव्यंजनावाद तथा स्वच्छंदतावाद आदि पानी के बुलबुलों रूपी वादों की पानी के ऊपर बाढ़ सी आ गई। ये सतही उथली चीजें जनता को अपनी ओर आकर्षित न कर सकीं। क्योंकि जनता साहित्य में अपनी समस्याओं का समाधान चाहती थी। ऐसे में प्रयोगवाद का श्रीगणेश हुआ।

पूंजीवाद पतनोमुख था। रूस का सर्वहारा वर्ग क्रांति कर अग्रसर हो रहा था। इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में भी साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव बढ़ने लगा था। इस युग के कवियों की सारी शक्ति तकनीक के नए प्रयोगों की तरफ लग गई। पश्चिमी प्रयोग ने साहित्य को जनता का खिलौना बनाना चाहा जिसमें इसके जन्मदाता टी.एस. इलियट तथा आई.ए. रिचर्ड्स का नाम विशेष उल्लेखनीय है। कविता में सरलता, सहजता का स्थान दुरुहटा ने ले लिया। हिंदी का प्रयोगवाद पश्चिमी की जूठन है। इन लोगों का साहित्य, कला और जनता के प्रति जो द ष्टिकोण है वह कुत्सित है, संकीर्ण और पूर्णतः प्रगति विरोधी है क्योंकि ये लोग कला को जीवन के लिए न मानकर केवल कला के लिए मानते हैं। प्रयोगवादी व्यक्ति की परिधि में केन्द्रित होकर साहित्य को सामाजिक जीवन से दूर रखने के लिए प्रयत्नशील हैं। प्रयोगवादी भी जीवन से पलायन कर रहा है परंतु सचेत रूप में जान बूझकर। शैली के क्षेत्र में छायावाद का अनुगामी है। प्रयोग शैली दुरूहतर होती गई है। प्रयोगवादियों का मूल उद्देश्य कविता द्वारा अपनी विद्रोहात्मक भावनाओं का प्रचार करना है। सामाजिक उत्तरदायित्व की समस्या प्रयोग वादियों के सम्मुख नहीं है, ऐसी स्थिति में प्रयोगवादी कविता का जन-जीवन से क्या संबंध हो सकता है। पुरानी भाषा प्रयोगवादी नवीनता की अभिव्यक्ति करने में समर्थ नहीं है।

प्रयोगवादी नवीन द ष्टि द्वारा न्यूनता उत्पन्न न कर मात्र शब्दों तथा अलंकारों की विलक्षणता द्वारा प्रभाव उत्पन्न करना चाहते हैं। चौकाने, ध्यान आकृष्ट करने तथा नई शैली का आभास पैदा करने की ओर ज्यादा उन्मुख हैं। इन्हें नवीनता का मोह सता रहा था। इसलिए ये नवीन विषय, नवीन भाषा, सब कुछ नवीन लाना चाहते हैं। निराला की सरस्वती वंदना का यही भाव देखा जा सकता है। 'तारसप्तक' द्वितीय को ही प्रयोगवादी कविताओं का प्रथम संग्रह माना जाना चाहिए। प्रयोगवाद एक वर्ग विशेष का साहित्य है जिसका तात्कालिक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि समस्याओं से कोई संबंध न होकर केवल काव्य शैली शिल्प में नए-नए परिवर्तन करने के लिए उपमानों, प्रतीकों और नए-नए शब्दों को ढूंढने से ही संबद्ध है। नए-नए प्रयोग करते हैं-

"चांदनी उस रूपये सी है जिसमें
चमक पर खनक ग़ायब है।
हम कहेंगे ज़ोर से:
मुंग घर अजायब है।
जहां पर बेतुकु, अनमोल, जिंदा और मुर्दा भाव रहते हैं।"

ये लोग जन-भाषा को अपनाने का नारा लेकर आगे आए हैं लेकिन इनका काव्य इतना दुरूह और जटिल है कि उसके सींग-पूंछ का भी पता नहीं लगता है। इन कवियों के शब्द, पद, वाक्य, छंद, वर्णावस्तु, विचार, मानसिक दशाएं, रूचि, क्षेत्र सब भिन्न हैं। प्रयोगवादी 'सर्वथा नवीन' की ही टोह में रहते हैं। डॉ. प्रेम नारायण शुक्ल ने प्रयोगवादियों की प्रव त्ति को थोथा एवं निस्सार माना है।

प्रयोगवादी कविता के विषय में पंत का कहना है - "प्रयोग की निर्झरिनी कल-कल, छल-छल करती हुई, फ्रायडवाद से होकर, उपचेतन की रुद्ध-क्रद्ध ग्रंथियों को मुक्त करती हुई, दमित, कुंठित आकांक्षाओं को वाणी देती हुई लोक चेतना के स्रोत में नदी के द्वीप की तरह प्रकट होकर अपने प थक अस्तित्व पर अड़ गई। अपनी रागात्मक विकृतियों के कारण अपने निम्न स्तर पर इसकी सौंदर्य भावना, केंचुओं, घोघों, मेढ़कों के उपमानों के रूप में सरीस पों के जगत से अनुप्राणित होने लगी।"

अरविंद वादी पंत प्रगतिवाद के विरोधी हैं। प्रगतिवाद भी प्रयोगवाद का विरोध कर रहा है। वही पंत प्रयोगवाद में विकृतियों को मानने वाले उसी में रागात्मकता की खोजकर उसकी प्रशंसा करने लगे थे।

डॉ. देवराज ने नए मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए नवीन प्रयोगों को स्वीकारा है।

नंद दुलारे वाजपेयी ने लिखा है, "किसी भी अवस्था में यह प्रयोगों का बाहुल्य वास्तविक साहित्य-स जन का स्थान नहीं ले सकता।" क्योंकि काव्य का क्षेत्र प्रयोगों की दुनिया से बहुत दूर है। प्रयोगवादी कविताएं चौहद्दी में नहीं आती, वैचित्र्य प्रिय हैं तथा अनुभूति के प्रति ईमानदार नहीं है। प्रयोगवादी साहित्य मात्र चमत्कार के चक्कर में पड़कर काव्य के अभिन्न अंगों को भूल गया है। वह व्यक्तिवादी तथा अंतर्मुखी हो गया है। परिचित का परित्याग कर अपरिचित की तलाश में लगा रहता है। कुछ लोग प्रयोगवाद को परराष्ट्रीय प्रतीकवाद का दूसरा रूप मानते हैं तो कुछ प्रभावित स्वीकारते हैं।

उपमा का नवीन मोह अवलोकनीय है-

"मेरे सपने इस तरह टूट गए
जैसे भुंजा हुआ पापड़।"

कहीं-कहीं मात्र क्रियाहीन शब्दों के प्रयोग से ही क्रिया को ध्वनित करने का प्रयत्न किया जाता है-

"मेंढक पानी झप्प"

यह चीनी कविता की नकल है।

प्रायः सभी कवि मध्य वर्ग के हैं। प्रयोगवादी कविता ह्रासोन्मुखी मध्यवर्गीय समाज के जीवन का चित्र है। प्रयोगवादी कवि ने जिस नए सत्य के शोध और प्रेषण के माध्यम की नई खोज की घोषणा की थी, वह सत्य इसी मध्यवर्गीय समाज के व्यक्ति का सत्य था। वास्तविकता यह है कि हमने लिए हुए अंश को कितना जिया है कितना भोगा और कितनी ईमानदारी और सच्चाई के साथ व्यक्त किया है। वह अपने जिए हुए जीवन के ही विभिन्न दर्दो को अंकित करना पसंद करता है।

प्रयोगवादी कवि यथार्थवादी नहीं हैं। वे भावुकता के स्थान पर ठोस बौद्धिकता को स्वीकारते हैं। इनमें दमित कामवासना की अभिव्यक्ति अधिक परिलक्षित होती है। काम संवेदना में तीव्रता है जिससे यौन वासना का उभार कुंठित हो गया है। यह कुंठा ही दर्द, टीस या पीड़ा बन गई है। उन्होंने कल्पना का रंगीन आवरण हटाकर दमित यौन-वासनाओं के नग्न रूप को स्पष्ट कर दिया है। फ्रायड का नाम सिद्धांत इनका प्रधान जीवन दर्शन बन गया है। इन कवियों ने कहीं स्पष्ट रूप से कहीं बारीक प्रतीकों तथा बिंबों के माध्यम से दमित काम वासनाओं और उलझी हुई संवेदनाओं को रूपायित किया है।

अज्ञेय, शमशेर, गिरिजा कुमार माथुर तथा धर्म वीर भारती इस संदर्भ में विशिष्ट कवि हैं। प्रयोगवादी कवियों, ने व्यक्ति के अंतः संघर्षो, क्षणिक अनुभूतियों तथा सूक्ष्म में सूक्ष्म, लघु से लघु संवेदनाओं और मन की विभिन्न स्थितियों को लेकर छोटी-छोटी तीव्र प्रभावशाली कविताएं लिखी हैं।

19. प्रयोगवादी काव्य की प्रमुख प्रव त्तियाँ

'तारसप्तक' ने उसको समेकित रूप से एक निश्चित रूपाकार प्रदान किया तथा, हिन्दी कविता के अन्तर्गत यह नव्य काव्यधारा प्रयोगवाद की संज्ञा से जानी गई है। प्रयोगवादी कविता प्रयोग पर आधारित थी। इस काव्यधारा की कुछ उल्लेखनीय विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1. **वैयक्तिकता-** प्रयोगवादी कविता में वैयक्तिकता की अभिव्यंजना अनेक रूपों में हुई है। सामान्य रूप में, रचनाकार की यही आत्मानुभूति सर्वानुभूति बनकर साहित्य की संज्ञा धारण करती थी, और करती है, लेकिन सबसे पहले प्रयोगवादी काव्य में नितान्त व्यक्ति की अपनी अनुभूति और भावना अभिव्यंजित हुई है। प्रयोगवादी कवियों के अहं भाव से ही उनमें गहन वैयक्तिकता पैदा हुई है। वहाँ पर अहं एक सम्पूर्ण वाद के रूप में आया है। कवि नरेश कुमार कहते हैं-

   "विश्व के इस रेल-वन पर
   मैं अहं का मेघ हूँ
   X X X
   क्या नहीं तुम देखते?
   आज मेरे कन्धों पर गगन बैठा हुआ है।"

   अज्ञेय ने भी इस अहंनिष्ठ वैयक्तिकता को अपने काव्य में स्वर प्रदान किया है। अज्ञेय को इस बात का पूर्वाभास था कि प्रयोगवादी कवि जिस गहन वैयक्तिकता से परिधित हैं, वह उनका वरेण्य नहीं हो सकता है, जिससे उनको निकालना ही पड़ेगा। 'हरी घास पर क्षण भर', 'कितनी शांति', 'छंद है यह फूल' आदि कविताओं में अहं की काया से मुक्त होने की कामना को कवि ने रेखांकित किया है।

2. **अति बौद्धिकता-** अतिशय बौद्धिकता प्रयोगवादी काव्य की अन्यतम विशेषता है। प्रयोगवादी कवि सारे तथ्यों का दर्शन बुद्धि के ही आलोक में करते हैं। धर्मवीर भारती के अनुसार इस बौद्धिकता का जन्म हर भावना के आगे लगे हुए एक प्रश्नचिन्ह से होता है। वे लिखते हैं कि 'प्रयोगवादी कविता में भावना है, किन्तु हर भावना के सामने एक प्रश्नचिन्ह लगा हुआ है। इसी प्रश्नचिन्ह को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। सांस्कृतिक ढांचा चरमरा उठा है और यह प्रश्नचिन्ह उसी की ध्वनिमात्र है।' डॉ. नगेन्द्र को इस काव्य में बौद्धिकता के व्यवहार पर चिन्ता है। वे कविता में राग तत्व को ही प्रधान मानते हैं, क्योंकि उनका द ष्टिकोण है कि जिस काव्य में बुद्धित्व रागतत्व से प्रबल हो जाता है, वहाँ काव्यात्मकता धूमिल हो जाती है।

   प्रयोगवादी कविता की अतिशय बौद्धिकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। प्रयोगवादी कवियों ने आक्रोश, झुँझलाहट, व्यंग्य, विद्रोह, सत्यकथन, स्वविश्लेषण, पर-विश्लेषण तथा तथ्य-निरूपण पर अपने बौद्धिक उत्कर्ष का परिचय दिया है। अज्ञेय की 'हरी घास पर क्षणभर' काव्य संग्रह में अनेक कविताएँ बौद्धिकता से उत्पन्न हुई हैं। एक उदाहरण अवलोकनीय है-

   "चलो उठें अब
   अब तक हम थे बन्धु
   सैर को आए
   और रहे बैठे तो
   लोग कहेंगे
   धुंधले में दुबके दो प्रेमी बैठे हैं

वह हम हों भी

तो यह हरी घास ही जाने"

संशय और प्रश्नाकुलता इस अवतरण-संदर्भ को बौद्धिकता से बांध रही है। कवि के मन में समाज से एक अज्ञात भय समाया हुआ है। यहाँ पर तर्क का आश्रय लेकर कवि ने अपनी उसी सन्देहास्पद स्थिति को स्पष्ट करना चाहा है।

यह बौद्धिकता प्रयोगवाद में कई रूपों में प्रकट हुई है। अज्ञेय और मुक्तिबोध आदि तो स्व या अपने का विश्लेषण करते हुए इसका सहारा लेते हैं और प्रभाकर माचवे तथा भारतभूषण आदि वार्तालाप की शैली में इसकी अभिव्यक्ति करते हैं।

3. **अनास्था-** बौद्धिकता से रागतत्व नष्ट हो जाता है और रागात्मिका शक्ति के विनाश से ही संशय और अनास्था की उत्पत्ति होती है। अतिशय बौद्धिकता के कारण ही प्रयोगवादी कविता में अनास्था की भावना उत्पन्न हुई है। इसी अनास्था के कारण प्रयोगवादी कवियों के मन में निराशा, कुण्ठा, पाप-बोध, वेदना और पराजय की भावना को स्थान मिला है। अज्ञेय, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, प्रभाकर माचवे, मुक्तिबोध आदि रचनाकार ने अपने काव्य में अनास्था के कारण पूजा की एक नयीं व्याख्या करते हुए कहते हैं -

"मैं छोड़ कर पूजा

क्योंकि पूजा है पराजय का विनत स्वीकार

बाँधकर मुट्ठी तुझे ललकारता हूँ।

सुन रही है तू?

मैं खड़ा तुमको यहाँ ललकारता हूँ।"

'सागर-मुद्रा' में अज्ञेय ने युग-युग से कृष्ण के पवित्र-प्रतिष्ठित प्यार को प्रश्न के घेरे में घेर दिया है। वे 'कन्हाई ने प्यार किया' नामक कविता में कृष्ण के प्यार पर उँगली उठाते हुए कह रहे हैं कि -

"कन्हाई ने प्यार किया कितनी गोपियों को कितनी बार।

पर उड़ेलते रहे अपना सारा दुलार

उस एक रूप पर जिसे कभी पाया नहीं-

जो कभी हाथ नहीं आया।

कभी तो प्रेयसी में उसी को पा लिया होता

तो दोबारा किसी को प्यार क्यों किया होता?"

4. **आस्था की भावना-** प्रयोगवादी कवियों ने अपनी कविताओं में अनास्था और शंका को ही नहीं, आस्था और विश्वास को भी स्थान दिया है। उनकी यह आस्था उनकी अनास्था से ज्यादा सहज और शक्तिवान् लगती है। यद्यपि ये कवि निराशा, कुण्ठा, वेदना और पराजय की भावना से ग्रस्त हैं, फिर भी ये उसी के अन्तराल से ऊर्ध्वगामी चेतना का उन्मेष करते हैं, अपनी रुग्ण मानसिकता को स्वस्थ आलोक प्रदान करते हैं। अज्ञेय आस्था के प्रति कृतज्ञता और उसकी सुद ढ़ता की कामना व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि-

"हम में तो आस्था हैं, कृतज्ञ होते।

X X X

आस्था न काँपे

मानव फिर मिट्टी का भी, हो जाता है।"

प्रयोगवादी कवियों ने पराजय, अविश्वास तथा मरण का ही वरण नहीं किया। यदि उनमें ऐसा ही भाव होता तो प्रभाकर माचवे प्रकाश-प्रसन्न ऐसी उत्साहित कविता क्यों लिखते-

"नया प्रकाश चाहिए, नया प्रकाश चाहिए
पुकारती दिशा-दिशा
मिटे त षा, मिटे निशा
बहुत हुआ उदास मन
हमें सुहास चाहिए"

प्रयोगवाद के सम्पूर्ण भाव-बोध को देखकर कहा जा सकता है कि प्रयोगवादी कवियों की पराजय और अनास्था की भावना एक सीमा तक है। उसके बाद उनकी समस्त रुग्ण मानसिकता आस्था की सजल सरिता में स्नात होकर स्वस्थ और सबल बन जाती है। यह एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जीवन की निर्मिति एक जैसे प्रकृति तत्वों के सम्मेल से नहीं हो सकती है। सुख-दुःख, आस्था-अनास्था, जय-पराजय के ताने-बाने से ही उनकी सफल रचना होती है। ये द्वंद्व ही जीवन को अस्तित्व प्रदान करते हैं। और जीवन को अपने चक्राकार भ्रमण से व्याप्त बनाते हैं।

5. **यथार्थ चित्रण-** माना जाता है कि प्रगतिवाद में समाजवाद की और प्रयोगवाद में व्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा हुई है लेकिन जहाँ तक दोनों के तात्विक स्वरूप का प्रश्न है, दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। समाजवाद के अन्तर्गत व्यक्ति का अध्ययन समाज से शुरू होकर व्यक्ति पर पहुँचता है और प्रयोगवाद के अंतर्गत यही अध्ययन व्यक्ति से शुरू होकर समाज तक पहुँचता है। दोनों धाराओं के अंतर्गत व्यक्ति की सत्ता को अस्वीकार नहीं किया गया है, क्योंकि समाज की निर्मिति व्यक्ति से ही तो होती है। डॉ. रघुवंश ने प्रयोगवादी सामाजिकता के संदर्भ में लिखा है कि इन सभी कवियों में सामाजिकता के प्रति जागरूकता है, इनमें से कोई भी उस कोटि का असामाजिक नहीं है, जिस कोटि के योरोप के पिछले युग से ही भिन्न वादों के अंतर्गत हुई हैं।

अज्ञेय, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, नेमिचन्द्र जैन, मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा आदि सभी कवियों की रचनाओं में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। यहाँ पर एक तथ्य और इंगित कर देना समीचीन प्रतीत होता है कि तारसप्तक अथवा प्रयोगवाद के कवि का यह सामाजिक यथार्थवादी द ष्टिकोण कहीं-न-कहीं मार्क्सवादी चिन्तनधारा और उसके समाजवाद से अवश्य अनुप्रेरित है। मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा और नेमिचन्द्र जैन तो अपने को मार्क्सवादी स्वीकार भी कर चुके हैं। अज्ञेय पर व्यक्तिवादी होने का सबसे बड़ा आरोप लगाया जाता है। उनके काव्य को पढ़ने के उपरान्त यह स्थापना मिथ्या प्रतीत होने लगती है। अज्ञेय ने समाज को उसकी विराटता और यथार्थता के साथ स्वीकार किया है। 'इन्द्रधनुष रौंदे हुये ये' नामक कविता में अज्ञेय ने समाज को उसकी समग्र यथार्थता के साथ ग्रहण किया है-

"रुई धुनता है, गारा सानता है, खटिया बुनता है,
मशक से सड़क सींचता है,
रिक्शा में अपना ही प्रतिरूप लादे खींचता है,
जो भी जहाँ भी पिसता है
पर हारता नहीं, न मिटता है-
पीड़ित श्रमरत मानव
कमकर, श्रमकर, शिल्पी स्रष्टा
उसकी मैं कथा कहता हूँ
दूर दूर दूर... मैं वहाँ हूँ..."

6. **क्षणवाद-** क्षणवादी प्रव त्ति की प ष्ठभूमि में अस्तित्ववादी विचारधारा काम करती है। प्रयोगवादी काव्यधारा के अंतर्गत यह प्रव त्ति पाश्चात्य चिन्तन के परिणामतः आई है। क्षणवादियों की मान्यता है कि जीवन का एक आनन्दमय क्षण सम्पूर्ण जीवन से अधिक वरेण्य होता है। क्षणवादी वर्तमान में ही जीता है, भविष्य के प्रति उसके मन में कोई स्वर्णिम सपना नहीं होता है। हिन्दी के प्रयोगवादी कवियों ने क्षणवाद को बड़ी व्यापकता के साथ ग्रहण किया है। अज्ञेय तो इस क्षण की जोरदार वकालत करते ही हैं और धर्मवीर भारती भी इससे ग्रस्त दिखाई पड़ते हैं।

क्षण की इसी पकड़ ने प्रयोगवादी कवियों को अस्तित्व का भी बोध कराया। अज्ञेय की 'नदी के द्वीप', गिरिजाकुमार माथुर के 'शिलापंख चमकीले', 'प थ्वीकल्प', मुक्तिबोध का 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' और भारती का 'टूटा पहिया' नामक कविताओं अथवा काव्य-संग्रहों में अस्तित्वबोध का गहरा भाव विद्यमान है। सम्पूर्ण 'अंधायुग' त्रासद अस्तित्व की गाथा है। पौराणिक आख्यान के माध्यम से धर्मवीर भारती लघु से लघुतर और लघुतम व्यक्ति और पदार्थ की अस्मिता को अस्तित्व प्रदान करते हुए लिखते हैं कि -

"मैं रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत
क्या जाने कब इस दुरूह चक्रव्यूह में
अक्षैहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ
कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर जाये
बड़े-बड़े महारथी
अपने पक्ष को असत्य जानते हुए भी
निहत्थी अकेली आवाज को
अपने ब्रह्मास्त्रों से कुचल देना चाहें
तब मैं रथ का टूटा हुआ पहिया
उनके हाथों में ब्रह्मास्त्रों से लोहा ले सकता हूँ।"

7. **मानवतावाद-** मानव और मानवतावाद की उपेक्षा करके कोई भी साहित्य रचा नहीं जा सकता है। रचनाकार का परिवेश उसकी रचना में विद्यमान रहता है। परिवेश रचनाकार को विषयवस्तु देता है। सारे सुखद और दुखद भाव, उछलती और घुटती जिन्दगी अपनी सर्वांगीणता के साथ रचना के अमूर्त रचनात्मक उपादान होते हैं। कतिपय समालोचकों की मान्यता है कि प्रयोगवादी कविता व्यक्तिनिष्ठ है समाजसापेक्ष नहीं, इसलिए वहाँ मानवतावादी विचारधारा को स्थान नहीं मिला है, लेकिन इस द ष्टिकोण की संगति प्रयोगवादी कविता के प्रतिपाद्य-पदार्थ के साथ नहीं बैठती। कहने का केन्द्रीय पदार्थ-प्रतिपाद्य मानव ही है। यह मानव विराट्-जगत् में कहाँ-कहाँ किस-किस प्रकार से जी रहा है। इसका जीवन्त और सजल चित्रण प्रयोगवादी कविता में हुआ है। अज्ञेय (इन्द्रधनुष रौंदे हुये ये), प्रभाकर माचवे (बीसवीं सदी), गिरिजाकुमार माथुर (धूप के धान), मुक्तिबोध (चाँद का मुँह टेढ़ा है), सर्वेश्वर दयाल (पोस्टर और आदमी), भारती (सात गीत वर्ष) की अधिकांश रचनाओं में समसामयिक मानव के वास्तविक रूप को ग्रहण किया गया है। अज्ञेय जीवन जीने के लिए और रोजी-रोटी के लिए संघर्ष करने वाले मनुष्यों की कथा कहने की प्रतिबद्धता की घोषणा करते हुए लिखते हैं कि-

"जो भी जहाँ भी पिसता है
पर हारता नहीं, न मरता है-
पीड़ित श्रमरत मानव
अविजित दुर्जेय मानव
कमकर, श्रमकर, शिल्पी, स्रष्टा
उसकी मैं कथा कहता हूँ"

अज्ञेय हों चाहे धर्मवीर भारती, मुक्तिबोध हों चाहे सर्वेश्वरदयाल सक्सेना या कुँवर नारायण आदि कवि हों, सभी की रचनात्मक प्रकृति अस्तित्ववादी और क्षणवादी चिन्तन से प्रभावित हैं। हाँ, यह अवश्य है कि अज्ञेय और भारती इससे अधिक प्रभावित दिखाई पड़ते हैं।

8. **श ंगारिकता-** प्रयोगवादी कवियों ने फ्रायड के मनो-विश्लेषणवाद से काफी कुछ ग्रहण किया है। इसीलिए इनकी रचनाओं में जहाँ एक तरफ श ंगार की पवित्र और सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है वहीं दूसरी तरफ मांसल श ंगार और भोग-भावना का

भी व्यापक चित्रण हुआ है। कविवर अज्ञेय ने आधुनिक मानव को यौन वर्जनाओं का पुंज माना है। वे 'तारसप्तक' में लिखते हैं कि -'आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है..... आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओं से लदा है और वे कल्पनाएँ सब दमित और कुण्ठित हैं। उसकी सौन्दर्य चेतना भी इससे आक्रान्त है, उसके उपमान सब यौन-प्रतीकार्थ रखते हैं। 'सावन मेघ' नामक कविता में अज्ञेय ने उक्त मान्यता के आलोक में एक बिम्ब बनाया है। देखें-

"घिर गया घन, उमड़ आए मेघ काले,
भूमि के मम्पित उरोजों पर झुका सा
छा गया इन्द्र का नील वक्ष
बाध्य देख,
स्नेह से आलिप्त
बीज के भवितव्य से उत्फुल्ल
बद्ध
वासना के पंक-सी फैली हुई थी
धारयित्री सत्य की निर्लज्ज नंगी और समर्पित।"

उक्त अवतरण में कवि ने पर्वत पर होने वाली वर्षा और रतिक्रिया का एक जैसा रूप बिम्बित किया है। सामान्य रूप से, प्रयोगवादी कविता के अन्तर्गत भोग और वासना को ही प्रमुखता मिली है।

प्रयोगवादी कवियों ने श्ंगार को जिस रूप में लिया है, उसको देखकर यह कहना पड़ता है कि उन्होंने इसको प्रकृत रूप में ही ग्रहण किया है। इन रचनाकारों ने प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से अपनी कुण्ठित और दमित संवेदनाओं को शब्दाकार प्रदान किया है।

9. **कुण्ठा और निराशा-** डॉ. शिवकुमार मिश्र ने लिखा है कि 'निराशा, कुण्ठा और घुटन का व्यापक प्रदर्शन प्रयोगवादी काव्य की एक महत्वपूर्ण दिशा है, जिसका स्त्रोत भी उसके निर्माताओं की एकान्त व्यक्तिवादिता, आत्मलीनता एवं सामाजिक विषमताओं से एकाकी ही संघर्ष करने से प्राप्त असफलताओं में ही निहित है तथा जो बहुत कम अनुभूत और अधिकतर गढ़ी हुई है।

मुक्तिबोध, अज्ञेय, दुष्यंत कुमार आदि अनेक प्रयोगवादी कवियों ने अपनी रचनाओं में इन रूपों को चित्रित किया है। भारतभूषण अग्रवाल निराशा का निरूपण करते हुए लिख रहे हैं कि-

"न देखो नयन कोरों से
गिरा दो पलक का परदा
कि मूँदों कान
हो सुनमान
दरवाजा करो सब बन्द
सपनों की अटारी के
कि बाहर गरजता हुआ तूफान आता है।"

संत्रास, दुःख, कुण्ठा, निराशा, जुगुप्सा आदि से सारे प्रयोगवादी कवि अभिभूत दिखाई पड़ते हैं। लेकिन इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं लेना चाहिए कि इन कवियों ने आशा, आह्लाद, आस्था आदि उज्जवल भावों का निरूपण किया ही नहीं है। वस्तुतः संत्रास, कुण्ठा, अनास्था की ही कुक्षि से आशा, आह्लाद और आस्था का जन्म होता है।

10. **प्रकृति चित्रण-** छायावादी कवि ने प्रकृति को जिस बहुरंगी आभा के साथ प्रस्तुत किया है, वह अत्यंत विलक्षण है। प्रयोगवादी कवि में वैसा रूप नहीं दिखाई पड़ता है जैसा छायावादी कविता में है। इस कविता में कवि मनुष्य के जीवन

की विसंगतिपूर्ण स्थिति को शब्दायित करने में सचेत और संलग्न है। प्रयोगवादी कवियों में अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता आदि की रचनाओं में प्रकृति का सुंदर और ह्दयाकर्षी रूप दिखाई पड़ता है।

प्रकृति के विविध रूप हैं। कहीं पर उसका स्वतंत्र (आलम्बनगत) रूप अपनी सहजता के कारण आकर्षित करता है और कहीं उद्दीपनगत रूप चित्त को चंचल बनाकर आनन्दित-पीड़ित करता है। अज्ञेय की 'अरी ओ करुणा प्रभामय' तथा 'ऋतुराज' में प्रकृति का आलम्बनगत तथा 'बावरा अहेरी' की कतिपय कविताओं में प्रकृति का उद्दीपनगत रूप उकेरा गया है।

"यह झकझक रात
चाँदनी उजली कि सुई में पिरोलो ताग
चाँदनी को दिन समझकर बोलते हैं काग
हो रही ताजी सफेदी नर्म चूने से
पुत रहे हैं द्वार
चाँद पूरा साथ"

भवानी प्रसाद मिश्र प्रकृति के अनन्य प्रेमी हैं। 'गीत फरोश' नामक उनके काव्य संग्रह में प्रकृति बड़े सहज और आत्मीय रूप में स्वयं आकर बैठ गयी है-

"सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डुबे हुए से
ऊंघते अनमने जंगल।
झाड़ ऊंचे और नीचे
चुप खड़े हैं और आँख मींचे।
घास चुप है, कास चुप है
मूक शाल, पलाश चुप है
बन सके तो धँसों इनमें
सतपुड़ा के घने जंगल
ऊँघते अनमने जंगल।"

11. **आंचलिकता-** प्रयोगवादी कविता में अंचल प्रेम की भी छवि छायी हुई है। अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, भवानी प्रसाद मिश्र आदि की कतिपय रचनाओं में अंचल विशेष की जीवंत चेतना की खनक सुनी जा सकती है। 'वैशाख की आँधी' (अज्ञेय), 'सावन का गीत' और 'झूले का गीत' (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना), 'मंगल वर्षा' (भवानीप्रसाद मिश्र), लेण्डस्केप (गिरिजाकुमार माथुर) आदि कविताओं में आंचलिक परिवेश का सचेत समाहरण हुआ है।

12. **भदेस या नग्नता-** गर्हित, घ णित और अश्लील शब्द चित्रों को भदेस कहा जाता है। प्रयोगवादी कवियों ने भदेस द श्यों का भी आयोजन अपने काव्य में किया है। इस योजना से एक तरफ तो कवि की दमित भावनाओं की अभिव्यंजना होती है और दूसरी तरफ उनका नवीनता के प्रति आग्रहवादी द ष्टिकोण भी प्रस्तुत होता है। सामान्य रूप से ये चित्रण काव्य सौन्दर्य के सम्वर्धन में सहायक नहीं हें, लेकिन कतिपय आलोचक इसे भी सौन्दर्याभिव्यक्ति का शक्तिशाली उपादान स्वीकार करते हैं। इस द ष्टि से, लक्ष्मीकांत वर्मा का द ष्टिकोण है 'विरूपता अश्लीलता नहीं है। असुंदर में भोड़ापन नहीं है परिवेश खोखला नहीं है। इन सबका सौंदर्य पक्ष में महत्व है। ये सब सौन्दर्य को सम्पूर्ण बनाते हैं। उनके आयामों को विकसित करते हैं, यह वर्मा का अतिवादी द ष्टिकोण है। यदि असुंदर को भी सुंदर मान लिया जाएगा फिर असुंदर किसे कहा जाएगा। अंतर की सीमा समाप्त हो जाएगी।

प्रयोगवादी कविता में भदेस का निरूपण कवियों ने निस्संकोच भाव से किया है। अज्ञेय जैसा सुसंस्कृत और बहुपठ रचनाकार भी इसके चित्रण का व्यामोह संवरित नहीं कर पाया-

"निकटतर धसती हुई छत, आड़ में निर्वेद
मूत्र सिंचित म त्तिका के व क्ष में
तीन टांगों पर खड़ा नत ग्रीव
धैर्य मन गदहा।"

13. **भाषा शैली-** प्रयोगवादी कवियों ने भावपक्ष में जिस प्रकार से वैविध्यपूर्ण प्रयोग किए हैं, वैसे ही वे शैल्पिक क्षेत्र में भी नवीनता के आग्रही रहे हैं।

अ) **काव्य भाषा-** प्रयोगवादी कवियों ने भाषा को भावाभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में अंगीकार किया है। शब्द चयन में वे अत्यंत उदार हैं। जीवन और समाज को बिम्बित करने में जो स्पष्ट हो वही भाषा और वे ही शब्द उन्हें ग्राह्य हैं। हरिनारायण व्यास भाषा के संदर्भ में लिखते हैं भाषा जीवन और समाज का एक प्रबल शास्त्र है, किन्तु उसे जीवन से अलग होकर नहीं जीवन में ही रहना है। यदि कविता की भाषा दुर्बोध रही तो उसका कर्म अर्थात् लड़ने में मनुष्य का सहायक होना अधूरा ही रह जाता है।.... पुरानी मान्यताओं, पुराने शब्दों, पुरानी कहावतों को नए अर्थ से विभूषित करके कविता में प्रयोग करने से पाठक की अनुभूतियों को छूने में सहायता मिलती है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रयोगवादी कवि भाषा में सुस्पष्टता, सहजता और सुबोधता के पक्षधर रहे हैं। इसीलिए उन्होंने अंग्रेजी, उर्दू, हिन्दी के तत्सम तथा ग्रामीण बोलचाल के शब्दों का निस्संकोच व्यवहार किया है।

प्रयोगवादी कवियों की भाषा भावानुकूल है। भावानुरूप शब्दों का व्यवहार करके उन्होंने अपनी अपूर्व क्षमता का परिचय किया है। उनके ऐसे शब्द बिम्बात्मकता तथा भाव सम्वर्धन में विशेष सहायक सिद्ध हुए हैं।

आ) **व्यंग्यात्मकता-** व्यंग्यात्मकता प्रयोगवादी काव्यभाषा की एक विशेष प्रव त्ति है। इसके आविर्भाव के मूल उत्स पर प्रकाश डालते हुए मदन वात्स्यायन ने लिखा है कि 'जहां दारिद्रय की दवा दया नहीं, पंचवर्षीय योजना है, वहां कवि की प्रतिक्रिया व्यंग्यात्मक हो सकती है।' प्रयोगशील कवियों में अज्ञेय, भवानीप्रसाद मिश्र, प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल आदि अच्छे व्यंग्यकार माने गए हैं। 'साँप' के माध्यम से आज के जहरीले शहरीपन पर व्यंग्य करते हुए अज्ञेय लिखते हैं कि -

"सांप तुम सभ्य तो हुए नहीं, न होगे
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूँ! उत्तर दोगेद्य
फिर कैसे सीखा डसना
विष कहाँ से पाया।"

इ) **छंदयोजना-** प्रयोगवादी कवियों ने प्रगतिवादी कवियों की ही तरह छंद के रूढ़ बन्धनों को स्वीकार नहीं किया है। उन्होंने मुक्त छंद में काव्यरचना की है। गिरिजाकुमार माथुर इस संदर्भ में लिखते हैं कि 'कविता में मुक्त छंद ही पसन्द करता हूँ। मुक्त छंद में अधिकतर मैंने विरामान्त (एण्ड स्टाफ) पंक्तियाँ नहीं रखीं, धारावाहिक (रन ऑन) ही रखी हैं। आगत पंक्ति के आरम्भ में विगत पंक्ति की ध्वनि सम संगीत उत्पन्न करने के लिए वर्तमान रहने दी है। इसी कारण मैं मुक्त छंद में संगीत प्रधान गीत सम्भव कर सका हूँ जिन्हें गाते समय तुक की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है।

प्रयोगवादी काव्यधारा के कवियों ने नवीन छंदों के व्यवहार के साथ अंग्रेज़ी के कवियों के प्रमुख छंदों (लिरिक, एलेजी, सोनेट, ओड आदि) और उर्दू के ग़ज़ल एवं रुबाई से भी प्रभाव ग्रहण करके काव्य रचनाएँ की हैं।

प्रयोगवादी कवियों ने लोकधुनों में भी छंद रचनाएँ की हैं। इस प्रकार, कहा जा सकता है कि छंद और लय की द ष्टि से भी प्रयोगशील कविता अत्यंत सम्पन्न है।

ई) **बिम्ब योजना-** काव्य की सम्प्रेषणीयता और सजीवता के लिए आचार्यो ने बिम्ब योजना को आवश्यक माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो यहां तक कह डाला कि बिना बिम्ब ग्रहण के अर्थ ग्रहण हो ही नहीं सकता है। वस्तुतः आचार्य शुक्ल का यह कथन बहुत कुछ सही है। प्रयोगवादी कवियों ने सर्वथा नवीन और विविध बिम्बों का प्रयोग किया है। प्रयोगवादी कवियों की रचनाओं में प्राकृतिक बिम्ब, पौराणिक बिम्ब, कलात्मक बिम्ब, द श्यात्मक बिम्ब, सान्द्र बिम्ब आदि दिखाई पड़ते हैं। कतिपय बिम्ब योजना द्रष्टव्य है।

अज्ञेय द श्य बिम्ब प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि-

"उठी एक किरण,
धायी,
क्षितिज को नाम गयी,
सुख की स्मित,
कसक भरी,
निर्धन की नैन कोरों में काँप गयी,
बच्चे ने किलक भरी,
माँ की नस-नस में वह व्याप गयी"

प्रयोगवादी कवि बिम्बों के विधान में बड़े निष्णात हैं। वे बड़ी सफलता से साथ स्पर्श, रंग, स्वाद, श्रवण, स्म ति आदि गुणों के आधार पर भी अत्यंत सारगर्भित और सान्द्र बिम्ब की रचना कर देते हैं।

उ) **प्रतीक योजना-** प्रतीक का शाब्दिक अर्थ है 'चिह्न'। जो वस्तु हमारे सामने नहीं है उसको प्रत्यक्ष करना। काव्य के अंतर्गत सम्प्रेषणीयता के लिए प्रतीकों का बहुत बड़ा महत्व है। प्रयोगवादी कवियों ने व्यापक धरातल पर प्रतीकों की नियोजना अपने साहित्य के अंतर्गत की है। मुख्य रूप से प्रयोगवादी रचना कलात्मक, प्राकृतिक, पौराणिक, वैज्ञानिक और यौन प्रतीकों का व्यवहार किया गया है। प्रतीकों के कुछ उदाहरण देखें-

कलात्मक प्रतीक-

"हम सबके दामन पर दाग
हम सबकी आत्मा में झूठ
हम सबके माथे पर शर्म
हम सबके हाथों में
टूटी तलवारों की मूठ।"

युग की राजनीतिक और वैज्ञानिक प्रगति ने प्रयोगवादी कवियों को बहुत प्रभावित किया है। इसीलिए उनकी कविता में वैज्ञानिक प्रतीकों का प्रयोग मिलता है। गिरिजाकुमार माथुर की 'रेडियम की छाया', भारतभूषण अग्रवाल की 'विलायती स्पंज' आदि कविताएँ इस द ष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अज्ञेय की सोन मछली जीवन की जिजीविषा का प्रतीक बनकर आई है-

"वह उजली मछली है
भेद गयी जो मेरी
बहुत-बहुत पहचानी
बहुत-बहुत अपनी यह
बहुत पुरानी छाप।"

प्रयोगवादी कविता के विषय में डॉ. नगेन्द्र का कथन उद्धरणीय है। एक गहन बौद्धिकता इन कवियों पर शीशे की पर्त की तरह जमती जाती है। छायावाद के रंगीन कल्पना वैभव और सूक्ष्म सरल भावना चिन्तन के स्थान पर यहाँ ठोस बौद्धिक तत्व का बाझीलापन है। ये कविताएँ अनिवार्य रूप से ही नहीं, सिद्धान्त रूप से भी दुरूह हैं।

प्रयोगवादी कविता जीवनानुभूत कविता है, सीधे मिट्टी और आदमी की गहरी संवेदना से संलिप्त है। वह आदमी की सम्पूर्ण चेतना को प्रकृत रूप में शब्दायित करती है। डॉ. रमेशचन्द्र शर्मा ने प्रयोगवादी कविता के अस्तित्व और प्रदेय के संदर्भ में बिलकुल उचित ही लिखा है कि 'यह कहना सर्वथा असंगत है कि प्रयोगवाद ने हिन्दी साहित्य को कुछ दिया ही नहीं। उसने और कुछ भले ही न दिया हो, परन्तु सड़ी-गली परम्पराओं और जीवन मूल्यों के विरुद्ध विद्रोह की भावना अवश्य दी। साथ ही भाषा और शैली के नए-नए प्रयोग करने की प्रेरणा प्रदान कर भाषा को और अधिक सशक्त और प्रांजल बनाया।'

20. नई कविता - नामकरण और विशेषताएँ

नामकरण

नई कविता के नाम का आधार 'तारसप्तक' की परंपरा में निकलने वाला अर्द्ध वार्षिक संग्रह है जो सन् 1954 ई. में नई कविता के नाम से प्रकाशित हुआ था। यद्यपि इस संग्रह में संग्रहीत कविताएं प्रयोगवादी हैं जिसका संपादन डॉ. जगदीश गुप्त ने किया है। इसी के आधार पर नई कविता नाम पड़ा। नए नए प्रयोगों का कारण भी सार्थक है।

डॉ. जगदीश गुप्त का नई कविता विषयक कथन अवलोकनीय है-

"कुछ व्यक्ति ऐसे भावुक होते हैं कि अपनी तन्मयता में कविता का अर्थ बिना समझे उसके संगीत पर ही मुग्ध हो उठते हैं। नई कविता कदाचित ऐसे व्यक्तियों के लिए भी नहीं है। वह उन प्रबुद्ध विवेकशील आस्वादकों को लक्षित करके लिखी जा रही है जिनकी मानसिक अवस्था और बौद्धिक चेतना नए कवि के समान है अर्थात् जो उसके समान धर्मा है; एक ओर जो पुरानी कविता की अभिव्यंजना प्रणालियों, शक्तियों और सीमाओं से परिचित हैं और जिनकी परित प्ति वस्तु और अभिव्यक्ति से नहीं होती या होती है तो संपूर्ण रूप से नहीं। दूसरी ओर जो नई दिशाएं खोजने में संलग्न नूतन प्रतिभा की क्षणिक असफलताओं और कठिनाइयों के प्रति सहानुभूतिशील होकर नए कवि की वास्तविक उपलब्धि की प्रशंसा करने में संकोच नहीं करते।.... बहुत अंशों में नई कविता की प्रगति ऐसे प्रबुद्ध भावुक वर्ग पर आश्रित रहती है। भले ही यह वर्ग संख्या में कम हो, क्योंकि इसका महत्व संख्या से नहीं उस स्थिति से आंका जाता है जिस तक अनेक अनुभवों को संचित करता हुआ यह पहुंचा होता है।"

पंत के काव्य का विकास छायावाद, प्रगतिवाद प्रयोगवाद से होता हुआ नई कविता तक आ पहुंचा। सन् 1954 ई. में अरविंद वादी पंत का रंग पलटा और उन्होंने नई कविता के विषय में लिखा है-

"नई कविता ने मानव-भावना को छायावादी सौंदर्य के धड़कते हुए पलने से बलपूर्वक उठाकर उसे जीवन समुद्र की उत्ताल लहरों में पेंग भरने को छोड़ दिया है....। नई कविता विश्व वर्चस्व से प्रेरणा ग्रहण करके तथा आज के प्रत्येक पल बदलते हुए युग पट को अपने मुक्त छंदों के संकेतों की तीव्र मंद गति लय में अभिव्यक्त कर, युग मानव के लिए नवीन भाव भूमि प्रस्तुत कर रही है।.... नई कविता अपनी शैली तथा रूप विधान में जहां अधिक मौलिक, वैचित्र्य पूर्ण तथा वैयक्तिक हो गई है, वहां अपनी भावना में अधिक रागात्मक तथा मानवतावादी बन गई है।"

भारतीय स्वतन्त्रता के बाद लिखी गई उन कविताओं को नई कविता की संज्ञा दी गई है जिनमें परंपरा कविता से आगे नए भाव बोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नए मूल्यों और नए शिल्प विधान का अन्वेषण किया गया। यह अन्वेषण साहित्य में कोई नई वस्तु नहीं है। इतिहास के संदर्भ में देखा जाए तो प्रायः सभी नए वाद या सभी नई-नई धाराएं अपने पूर्ववर्ती वादों या धाराओं की अपेक्षा कुछ नवीनता की खोज करती हुई द ष्टिगोचर होती हैं। साहित्य में इस नवीनता की सदा प्रशंसा की जाती है, यदि वह अपना संबंध बदलते हुए सामाजिक जीवन के मूल सत्यों से बनाए रखे। इस प्रकार नित्य नित नवता की परंपरा अतीत् काल से गतिमान देखी जा सकती है। फिर स्वतंत्रता के पश्चात् लिखी जाने वाली उन कविताओं के लिए 'नई कविता' नाम रूढ़ हो गया जो अपनी वस्तु छवि एवं रूप छवि दोनों में पूर्ववर्ती प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद से विकसित होने पर भी अपना विशिष्ट स्थान बनाए हैं।

विशेषताएं- आस्था - नई कविताओं की प्रमुख विशेषता जीवन के प्रति आस्था है। नई कविता के कवियों में यह आस्था प्रायः सभी में द ष्टिगोचर होती है। आधुनिक क्षणिक एवं लघु मानवतावादी द ष्टि जीवन-मूल्यों के प्रति सकारात्मक है। नई कविता में जीवन को पूर्ण रूपेण स्वीकार करके जीवन भली-भांति भोगने की प्रबल आकांक्षा विद्यमान है। मनोविज्ञान ने इस तथ्य को प्रमाणित कर दिया है कि हमारा जीवन क्षणभंगुर एवं क्षणिक है जिसके अनेक लघु क्षण हैं उन्हीं क्षणों में हम जीवन यापन करते

हैं। क्षणिक अनुभूतियां संपूर्ण जीवनाभूति में कहीं अवरोध उत्पन्न नहीं करती हैं अपितु उनकी साधिका स्वरूप उपस्थित होती है। क्षण की सत्यता का अभिप्राय यह है कि जीवन की प्रत्येक अनुभूति, प्रत्येक व्यथा, प्रत्येक सुख को सत्य मानकर जीवन को सघन रूप से स्वीकार किया जाए।

2. **लघुमानव-** नई कविता में लघु मानवत्व के तथ्य को उभारा गया है उसे भी जीवन की संपूर्णता के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। लघु मानव का अभिप्राय उस सामान्य मनुष्य से है जो अपनी संपूर्ण संवेदना, क्षुधा-त ष्णा कुंठा-संत्रास तथा मानसिक ताप को लिए दिए सदैव उपेक्षित रहा है। सामान्य मनुष्य से अभिप्राय यदि मनुष्य की लघुता का अन्वेषण कर वास्तविक सत्य के रूप में उसकी प्रतिष्ठा करने से है तो निश्चय ही यह अतिवादी, प्रतिक्रियावादी और असत्य जीवन धारणा है। स्वस्थ नई कविता ने कभी भी इस तथ्य को नहीं स्वीकारा है।

   नई कविता ने न तो जीवन को एकांगिता में परखा या देखा है न मात्र महान रूप में अपितु किसी भी वर्ग विशेष से संबंधित, वैयक्तिक या सामाजिक जीवन को जीवन के रूप में ही देखा है। इसमें किसी सीमा की अवधारणा नहीं की है। मनुष्य किसी वर्गीय चेतना, सिद्धांत अथवा आदर्श के सहारे गतिमान होकर यहां तक नहीं आया है। वह अपने संपूर्ण जीवन के सुख-दुख तथा राग विराग की विभिन्न परिस्थितियों में बंधा हुआ शुद्ध मानव रूप में आया है।

3. **वादमोह-** इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी वाद विशेष के मोह में पड़कर नई कविता का स जन नहीं किया है। नयी कविता न कोई वाद है न किसी वाद के अंतर्गत आती है क्योंकि एक कालावधि होती है। वाद अपने कथ्य एवं द ष्टिकोण में बंधा हुआ तथा सीमित होता है। नयी कविता की ऐसी कोई कालसीमा नहीं होती।

4. **वैयक्तिकता-** नयी कविता में एक विशिष्ट प्रकार की वैयक्तिकता पायी जाती है जिसका स्वाभाविक एवं मर्यादित सामाजिकता से कोई सैद्धान्तिक या व्यावहारिक विरोध नहीं था। वह न तो व्यक्ति निरपेक्ष सामूहिकता थी, न समाज-निरपेक्ष अहंवादिता। कवि अधिकतर एक सामाजिक व्यक्ति के रूप में ही अपनी रचनाओं में प्रकट हुए। कहीं वे अपनी आन्तरिक स्थितियों के प्रति संवेदनशील हो उठे, कहीं बाह्य परिवेश के प्रति। दोनों से जन्य अनुभूतियाँ कवि की अपनी थीं, किसी सैद्धान्तिक आग्रह से अनुप्राणित नहीं। एक प्राकृतिक द श्य के प्रति कवि की प्रतिक्रिया दर्शनीय है-

   "दिन बीते कभी इस शाख पर,
   किसी कोयल को कूकते सुना था;
   ...बार-बार कानों में कही कुहू, गूँजती हुई पाती हूँ।"

   नई कविता में कुछ ऐसी भी कविताएं मिलती हैं, जहां कवि प्रयोगवादियों की तरह परिवेश-निरपेक्ष होकर अपनी आन्तरिक स्थिति की अभिव्यक्ति करते हैं। कुंवरनारायण की 'गहरा स्वप्न' नामक रचना उदाहरण-स्वरूप ली जा सकती है, जिसमें कवि ने 'भग्नावशेषों की दुर्व्यवस्थ छायाएँ', 'उलझी हुई ईर्ष्यालु लपटें', आदि जीवन की अनेक पर्तो को खोलकर अपने जीवन-सत्य को स्वप्न में देखा है।

   दूसरी और नई कविता में उभरती हुई सामाजिक चेतना भी द्रष्टव्य है क्योंकि ऐसे भी नये कवि हुए जो मानते थे कि "समाज के प्रत्येक सदस्य की छोटी सी चेतन क्रिया भी किसी न किसी अंश में सामाजिक होती है। फिर कविता तो समाज के सबसे अधिक संवेदनशील व्यक्ति की चेतन क्रिया है। अतः उसकी सामाजिकता असंदिग्ध है।" कवि कथन उद्धरणीय है -

   "मेरी प्रतिभा यदि कल्याणी, तो दर्द हरे,
   सुख सौख्य भरे
   यह नहीं कि अपने तन-मन के निजी
   व्यक्तिगत
   दु:खों दर्दों में जिये-मरे!"

   सामाजिक कल्याण करने में असमर्थ होने वाला कवि-कार्य करना नहीं चाहता।

"अगर नहीं है मेरे स्वरों में तुम्हारा स्वर
तो... पछाड़ खाये बादलों की तरह टूट
जाने दो।"

यद्यपि नए कवि वैयक्तिक अनुभूतियों को ही अधिकतर कविताबद्ध करते रहे, तथापि उसमें उभरती हुई सामाजिक चेतना लक्षित हुए बिना नहीं रही।

5. **मानव-मूल्यों का विघटन-** जिन नैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक मूल्यों को शाश्वत मानकर मानव-समाज उनके सहारे जीवन में शांति और सुख प्राप्त करने के लिए युगों-युगों से प्रयत्नशील रहा है, उनको प्रथम एवं द्वितीय महायुद्धों ने झूठा, खोखला, अस्थायी, पंगु और अविश्वसनीय ठहराया। सर्वत्र बढ़ती हुई व्यक्तिगत स्वार्थ-साधना, बेईमानी, चोर-बाजारी, घूसखोरी आदि ने युग-युगों से समाद त मानव-मूल्यों के सम्मुख भारी प्रश्नवाचक चिन्ह लगा दिये। ईश्वर के अस्तित्व पर विज्ञान ने अविस्मरणीय प्रहार किया। संसार की सभ्य समझी जाने वाली जातियों द्वारा ह्वाइटमैंत बरडन, वर्ण विवेचन जैसे असभ्य सिद्धान्तों का समर्थन और प्रचार होने लगा तो राजनीतिक और सांस्कृतिक मूल्यों पर ठहर पाना असंभव हो गया। इस विघटित स्थिति में नए मूल्यों की स्थापना भी आसान न थी। मार्क्सवादी दर्शन में पहले-पहल आकर्षण देखा गया पर वह भी युगीन बुद्धिजीवियों की अतिचेत और अतितार्किक कसौटी पर खरा उतर नहीं सका। इस विघटित अवस्था का सही-सही चित्रण नई कविता में बहुतायत से हुआ।

आगे की अवतारणा में कवि इस मूल्यगत शून्यावस्था के कारण परम्परा के विश्वासों के प्रति विद्रोही हो उठता है-

"आओ, हम अतीत को भूलें, जिसके यक्ष-
यक्षिणी हमकों
प्रिय लगते थे -क्योंकि वे नहीं रहे।"

इस प्रकार मूल्यों की द ष्टि से विघटित दुनिया को कुँवरनारायण इस प्रकार देखते हैं-

"पागल से लुटे-लुटे, जीवन से छुटे-छुटे
ऊपर से सटे-सटे
अन्दर से हटे-हटे-
कुछ ऐसी भी दुनिया जानी जाती है।"

विघटित मूल्यों पर भी विश्वास रखने की भयानक स्थिति को देख कवि पूछ उठता है-

"कितना भयप्रद है, प्रभु, इन सबका सच होना।"

इस प्रकार विघटित मूल्यों का स्वर नयी कविता में मुखर सुनायी पड़ता है।

6. **खंडित व्यक्तित्व-** ठीक ही है कि कवि का व्यक्तित्व नई कविता में उभर आता है। पर उपर्युक्त मूल्यों का विघटन और तज्जन्य सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं नैतिक अव्यवस्था के अनिवार्य परिणामस्वरूप जो कुछ काव्य में उभर आता है, वह उसका खंडित, घायल एवं पंगु व्यक्तित्व ही है। जो कवि बेकार रहता है, उस पर समाज, परिवार, मित्र सभी टूट पड़ते हैं और जो नौकरी पर है वह यंत्र और नौकरशाही का क्रीतदास बनकर उन दोनों के बीच पिसता जाता है। किन्तु उसकी बौद्धिक चेतना भौतिक जीवन के दब जाने से नहीं दबती। अतः उसका व्यक्तित्व कटकर दुहरा हो जाता है। एक दिखावे का, दास का व्यक्तित्व जिसने परिवेश से समझौता कर लिया है, दूसरा अन्तर का क्रांतिकारी का व्यक्तित्व जो परिस्थिति के प्रति तीव्र विद्रोही हो उठता है।

इसके अतिरिक्त, आर्थिक द ष्टि से अधिकांश नये कवि निम्न-मध्यवर्ग के थे उनका भी समाज में दुहरा व्यक्तित्व दिखा। एक दिखावा, ठाटबाट और भौतिक द ष्टि से सम्मानित बनने के सफल-असफल प्रयासों से युक्त नुमाइशी व्यक्तित्व, दूसरा परिवार-हीन-आर्थिक स्थिति में पिसने वाला वास्तविक व्यक्तित्व। इन विरोधी तत्वों के बीच पिस-पिसकर उसका व्यक्तित्व खंडित हो गया जिसकी अभिव्यक्ति हम नयी कविता में बहुतायत से पाते हैं। अविराम संघर्ष के फलस्वरूप अपने थके-हारे घायल व्यक्तित्व का चित्रण कुँवरनारायण ने भारतीय चक्रव्यूह ग्रस्त अभिमन्यु से रूपक बाँधकर किया-

"मेरे हाथ में टूटा हुआ पहिया... बदन पर टूटा हुआ कवच,
सारी देह क्षत-विक्षत.......
मैं बलिदान उस संघर्ष में, कटु व्यंग्य हूँ
उस तर्क पर
जो जिन्दगी के नाम पर हारा गया।"

एक दूसरा खंडित व्यक्तित्व देखिए-

"मेरे बाँझ दिन की साँझ, पंख थका गयी
बैठा हूँ मैं दुबक कर घोंसले में"

किन्तु इस खंडित व्यक्तित्व की विशेषता यह है कि कवि इस अवस्था को शाश्वत मानकर और क्षयी मनोव त्तियों को अपनाकर अपने को उसके अनुरूप बनाने के बजाय उससे ऊपर उठकर अपने व्यक्तित्व की खोई हुई पूर्णता एवं संतुलितावस्था को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्नशील बना रहा।

7. **नूतन-मानव की कल्पना-** नए कवियों की नवीन मूल्य भावना से सम्बद्ध है या हम कह सकते हैं कि यह नूतन मानव कवियों द्वारा समर्थित नूतन मूल्यों का पुतला है। जीवन को उसकी व्यापक संपूर्णता एवं समग्रता में चित्रित न करके उसकी जगह खण्ड चित्रों को प्रस्तुत करने की प्रव त्ति के कारण इस नव-मानव की भी समग्र एवं चतुर्मुखी कल्पना हमें नयी कविता में नहीं मिलती। विभिन्न कवियों ने अपनी-अपनी विभिन्न रचनाओं में इस नव-मानव के 'गुण विशेष' और उसको अनुशासित करने वाले 'मूल्य विशेष' की ओर अवश्य संकेत किया जिनको संग हीत करने पर नव-मानव की स्पष्ट मूर्ति पाठक के समक्ष आ सकती है।

   यह नव मानव निरंकुश स्वतंत्रता का अचूक प्रेमी है जिसको पाने या बनाये रखने के संग्राम में पराजित होने की अपेक्षा वीरों की म त्यु मरना ही उसे वरणीय है। इतना स्वतंत्रता प्रेमी होते हुए भी वह अपने सामाजिक कर्त्तव्यों के प्रति सदा जागरूक है, क्योंकि वह जानता है कि 'मेरा भाग्य जुड़ा है उनसे जो मेरे हैं'। और युग जीवन की क्षयी प्रव त्तियों एवं अनिश्चयात्मकता से वह प्रभावित अवश्य है पर उनसे ऊपर उठने का आग्रह भी उसमें है। किसी भी एकांगी द ष्टिकोण के चरणों में आत्मसमर्पण करने के लिए वह तैयार नहीं होता। भावुकता की जगह बौद्धिकता और विश्वासों की जगह तार्किकता से वह काम लेता है। अपने को सम्पूर्ण रूप से व्यवहारवादी बनाकर परिवर्तनशील परिवेश के अनुरूप ढाल लेने का आग्रह भी उसमें पाया जाता है।

8. **आशा-निराशा, आस्था-अनास्था का मिश्रित स्वर-** अनास्था और निराशा को पनपाने वाली परिस्थितियों में भी अपने जीवन-दर्शन के बल पर प्रगतिवादी कविता ने आशा और आस्था को मुखर किया है। इसकी प्रतिक्रियाजन्य अतिवादिता प्रयोगवादी कविता की विशेषता रही जहां अनुभूत या आरोपित निराशा एवं अनास्था से कवि की भावभूमि आक्रांत हो गई।

   शायद निराशा और अनास्था के बीच में भी आशा और आस्था को प्रेरित करने वाली सामयिक परिस्थिति की ओर संवेदनशील होने के कारण या कभी आरोपित निराशावादिता में रमने और कभी उससे ऊपर उठकर बाहर की ओर खुली द ष्टि रखने के कारण इन विरोधी तत्वों का मिश्रित स्वर नयी कविता में सुनाई पड़ा। इस विरोधाभास का कारण यह भी हो सकता है कि 'आज का कवि विभिन्न तत्वों से मिलकर बना है, उसने विभिन्न क्षेत्रों से प्रभाव ग्रहण किया है और वर्ण्य विषय के प्रति उसकी प्रतिक्रिया यहाँ भी विविध है।"

   अब सवाल है कि इसमें कौन-सा स्वर नयी कविता में अधिक मुखर रहा। तमाम कवि निराशा और आस्था को ही काव्य में उतारते रहे, पर ऐसे भी कवि हुए जो इस प्रकार के चित्रण की परिसमाप्ति में आशा और आस्था का संदेश देना नहीं भूले। डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने माना कि 'नयी कविता' में 'मानव व्यक्तित्व को उभारने तथा उसमें आत्मविश्वास और आस्था के साथ सामाजिक दायित्व को भरने के भी अंकुर विद्यमान हैं। अतः यही कहना समीचीन होगा कि नयी कविता में इन विरोधी प्रव त्तियों का मिश्रित स्वर पाया जाता है। संसार की निराशामय स्थिति का चित्र देखिए-

"हर अलौकिक रूप प थ्वी पर बिगड़ता ही रहा
एक धब्बा हर उजाले पर सदा पड़ता रहा......
आदमी हर दिव्यता के बाद भी सड़ता रहा।"

लगातार घायल होने और आशाओं पर निराशा की काली घटा घिरने के बाद भी कवि अग्रसर तो होते हैं पर "किसी भी ओर से संकेत की कोई किरन भी" नहीं फूटती। 'नई कविता' में अभिव्यक्त आशा और आस्था के भी एक दो स्वर सुनिए-

"फूलेंगे फूल लाल लाल करूँगी प्रतीक्षा अभी
पौधा है वर्तमान...
कल उगूंगी मैं, आज तो कुछ भी नहीं हूँ।"

9. **कथ्य की व्यापकता-** नई कविता का विषय क्षेत्र विशाल है तथा काव्य रचना में स्वच्छंदता है। नई कविता में नवीन बोध किंतु यह नवीन बोध भारतीय संस्कृति की भांति परंपरा या पुरातनता से अलग नहीं है। अपितु इसमें पुरातनता एवं अद्यतना का पूर्व सामंजस्य है। नई कविता के अधिकांश कवियों का संबंध प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद की एक निश्चित सीमा एवं प्रव त्ति थी जिसका इन्हें पूर्व ज्ञान था। सीमाबंधन के कारागार से मुक्त होने के लिए वे आकुल व्याकुल थे। कारागार से मुक्त होकर उन्मुक्त विस्त त काव्य जगत के प्रांगण में विचरण करने की असीम कामना थी। नई कविता ने ऐसे कवियों को सामान्य स्वच्छंद भूमि प्रदान की।

   नई कविता के प्रमुख दो तत्व हैं - (i) अनुभूति की सच्चाई तथा (ii) बौद्धिक यथार्थवादी द ष्टिकोण। इन दोनों तत्वों की कोई सीमा नहीं थी अनुभूति की सत्यता का संबंध क्षणिक जीवन से भी हो सकता है। अथवा यह अनुभूति की सत्यता किसी समग्र काल की भी हो सकती थी। बौद्धिक यथार्थवादी द ष्टि किसी व्यक्ति विशेष अथवा समष्टिगत अर्थात् सामाजिक जीवन से संबंधित आशा-निराशा, सामान्य व्यक्ति-विशिष्ट व्यक्ति, प्रेम-ईर्ष्या, अनुराग-विराग आदि किसी की भी सच्चाई में कविता एवं जीवन के लिए अमूल्य है। नई कविता की बौद्धिकता नवीन यथार्थवादी द ष्टि तथा नवीन जीवन चेतना की पहचान के दोनों रूपों में द ष्टिगोचर होती है। अनुभवों का मूल्यांकन करने वाली द ष्टि है जो उनसे तटस्थ बनाए रखने हेतु सदैव प्रयास करती है तथा जीवन चेतना की पहचान हेतु सदैव प्रयास करती है तथा जीवन चेतना की भावात्मक सत्ता को नवीन समझ से संक्रांत बनाती है जिसके परिणामस्वरूप संवेदना का रूप ज्ञानात्मक हो जाता है।

10. **अनुभूति-** प्रश्न यह उठता है कि अनुभूति कवि या समाज किसकी होती है। साहित्य समाज का दर्पण है से स्पष्ट हो जाता है कि अनुभूति समाज की नहीं अपितु कवि की होती है। यह अनुभूति कभी मीरा जैसी अथवा कल्पित या क्रीत सूरदास जैसी होती है किंतु होती कवि की है। सामाजिक अनुभूति को कवि आत्मसात कर अथवा अपनी वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यंजना कर काव्य स जन करता है। कवि का सर्जक व्यक्तित्व कोई यंत्र नहीं है। वह प्रत्येक परायी अनुभूति को आत्मसात कर उसे स्वानुभूति का रूप प्रदान करने के पश्चात् ही काव्य स जन में सफलता प्राप्त करता है। जितना अधिक उसकी ग्रहण शक्ति होती है उतनी ही प्रबल उसकी अभिव्यंजना शक्ति होती है यही काव्य का सत्य है। समाज से लेने और समाज को देने में ही उसकी वास्तविक सच्चाई का ज्ञान होता है। इसलिए उसके व्यक्तित्व को संस्कारित करने वाली युग-सत्यग्राही चेतना की आवश्यकता होती है। कवि का युग बोध से संस्कृत व्यक्तित्व अपने द्वारा सबका अवलोकन कर लेता है। क्योंकि अपने मूल दर्द में एक है और कवि का व्यक्तित्व दर्द की संवेदना का जागरूक भोक्ता है-

"वही परिचित दो आंखे ही
चिर माध्यम हैं
सब आंखों से सब दर्दों से
मेरे चिर परिचय का।"

-अज्ञेय

11. **जीवन सत्य-** नई कविता जीवन के प्रत्येक क्षण की सत्यता को स्वीकारती है तथा उसे सहृदयता एवं पूर्ण चेतना से भोगने का समर्थन करती है। क्षण एवं शाश्वत बोध परस्पर विरोधी नहीं अपितु सहयोगी हैं। बूंद-बूंद जल से तालाब का निर्माण होता है। क्षण ही शाश्वत का निर्माता है इससे स्पष्ट हो जाता है कि क्षण शाश्वत को प्राप्त करने की यथार्थ प्रक्रिया है। क्षणिक जीवन सौंदर्य, क्षणिक अनुभूत व्यथा, या उल्लास, क्षणों में लक्षित होने वाली मनःस्थिति अथवा बाह्य व्यापार, क्षणों में स्फूर्जित हो जाने वाला कोई सत्य छोटा नहीं है। सत्य छोटा हो या बड़ा सत्य सत्य ही होता है। अनुभूति शून्यता तथा व्यथाहीनता इतिहास को असत्य का रूप प्रदान करती है। ऐसे इतिहास की कोई सार्थकता नहीं है। इसलिए नई कविता अनुभूतिपूर्ण गहरे क्षण प्रसंग, व्यापार या किसी भी सत्य को उसकी आंतरिक मार्मिकता के साथ ग्रहण करना चाहती है। इस प्रकार जीवन में सामान्य से सामान्य द ष्टिगोचर होने वाला व्यापार या प्रसंग नई कविता में आकर नए अर्थ की अभिव्यक्ति करता है।

क्षणिक अनुभूतियों के संदर्भ में नई कविता में मर्मस्पर्शी एवं वैचारिक प्रेरणा प्रदायिनी अनेक कविताएं उपलब्ध हैं। ये कविताएं मात्र क्षणों, प्रसंगों या द श्यों की लघुता का चित्रण नहीं करती अपितु संगत-असंगत बिंबों के द्वारा क्षणों की परिसीमा में उफनते हुए मानव जीवन की संश्लिष्टता को मूर्तिमत्ता प्रदान करती है। इन कविताओं का आकार लघु एवं प्रभाव अति तीव्र होता है। कुछ आलोचक नई कविता पर पूर्ण पाश्चात्य प्रभाव स्वीकारते हैं जिसमें आंशिकता सत्यता है। किन्तु इसे नई कविता धारा का मूल स्वर नहीं स्वीकारा जा सकता है। पाश्चात्य प्रभाव अपवाद स्वरूप है। कवि अपने परिवेश में जन्मता, पलता तथा अनुभूति ग्रहण करता है। इसलिए नई कविता परिवेश के जीवन सत्यों को छोड़कर परराष्ट्रीय प्रभाव की वैसाखी के सहारे खड़ी नहीं हो सकती है।

सत्य रूप- जीवन सत्य के दो रूप हैं-

(i) **कालजयी एवं सार्वभौम सत्य-** ये सत्य प्रकृति से ही देश-काल की सीमा में प्रतिबद्ध नहीं होते हैं।

(ii) **देश-काल बद्ध सत्य-** कुछ जीवन सत्य किसी विशेष काल एवं स्थान के होते हैं। कविता में आकर काल एवं स्थान की सीमा लांघ जाते हैं।

12. **परिवेश-** कविता एक ऐसी संश्लिष्ट कृति है जिसमें हम परिवेशगत एवं परिवेशमुक्त सत्य को अलग-अलग नहीं कर सकते हैं क्योंकि सत्य की कोई विभाजक रेखा नहीं है। नई कविता का स्वर अपने परिवेश की जीवनानुभूति से प्रस्फुटित हुआ है। भिन्न-भिन्न कविताओं के जीवनानुभव विभिन्न परिवेशों से संबद्ध हो सकते हैं। नई कविता में ग्रामीण एवं नागरिक दोनों परिवेशानुसार काव्य स जन करने वाले कवि हैं। अज्ञेय का अनुभव क्षेत्र अति व्यापक है किन्तु अन्य कवियों का अनुभव क्षेत्र सीमित है।

नागरिक परिवेश- इन कवियों में, बालकृष्ण राव, शमशेर बहादुर सिंह, गिरिजा कुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, कुंवर नारायण, विजय देव नारायण साही, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय आदि प्रमुख हैं।

ग्रामीण परिवेश- ग्रामीण संस्कार एवं अनुभूतियों से निर्मित कवियों में भवानी प्रसाद मिश्र, ठाकुर प्रसाद सिंह, केदार नाथ सिंह, नागार्जुन, शंभूनाथ सिंह तथा केदार नाथ अग्रवाल आदि प्रमुख हैं। इसे एकांतिक अलगाव नहीं कहा जा सकता है। कवियों का संक्रमण एक परिवेश से दूसरे परिवेश में होता रहता है। परिवेश के प्रभावानुसार काव्य स जन होता है। यथा - मदन वात्स्यायन की यांत्रिक परिवेश की कविताएं तथा ठाकुर प्रताप सिंह की संथाली परिवेश के आर्द्र गीत। परिवेश का वैषम्य अज्ञेय की कविताओं में द ष्टिगोचर होता है। उनकी कविताओं में मध्यवर्गीय कुंठा-निराशा, औद्योगिक नगरों की असंगतिपूर्ण सभ्यता का तीव्रता से ग्रहण मिलता है। दूसरी ओर उन्मुक्त प्रकृति या ग्रामीण जीवन - छवि तथा विषमता या व्यथा को व्यंजित करते हैं अथवा प्रकृति एवं ग्राम जीवन के बिंबों के आधार अनुभूति या सौंदर्य का स्वर मुखरित करते हैं।

नई कविता का परिवेश भारतीय जीवन है किंतु कुछ आलोचकों की मान्यता है कि नई कविता पर राष्ट्रीय परिवेश से प्रेरणा ग्रहण करने के परिणामस्वरूप अतिरिक्त अनास्था, निराशा, मरणधर्मिता तथा वैयक्तिक कुंठा आदि विशेषताओं का पश्चिम की नकल के आधार पर चित्रण किया गया है। यह सत्य है कि नई कविता में अतिरिक्त अनास्था, निराशा, मरणधर्मिता तथा वैयक्तिक कुंठा आदि चित्रित हैं किंतु ये विशेषताएं पाश्चात्य नहीं हैं अपितु इन विशेषताओं के जन्मदाता कारक भारतीय समाज में विद्यमान हैं। भारतीय समाज का परिवेश अति विषम एवं व्यापक है।

13. **क्षण-शाश्वत-** जीवन के प्रत्येक क्षण को विश्वास के साथ भोगना, उसकी पीड़ा और निराशा को जीवन सत्य के रूप में स्वीकार करके सच्चे रूप में भोगना ही जीवन का सच्चा उपभोग है। वास्तव में यही जीवन की आस्था है। किंतु जीवन का मूल्य सत्य मात्र पीड़ा एवं निराशा को मानकर अहोरात्रि शोक गीत गाने का उपदेश देना सामाजिक जीवन के संपूर्ण विकास के पीछे कार्य करने वाली मनुष्य की जिजीविषा, प्रेम एवं उल्लास को नकारता है। नई कविता में भी पीड़ा-निराशा को यत्र-तत्र जीवन का एक पक्ष न मानकर जहां समग्र जीवन सत्य को स्वीकारा गया है वहां पीड़ा को जीवन की सर्जनात्मक शक्ति न मानकर उसे गतिहीन करने वाली बाधा बनकर आने वाली माना है। ऐसा द ष्टिकोण समाज या व्यक्ति जीवन के अभाव पक्ष को उद्‌घाटित करने में ही आनंदित होता है। अभाव पक्ष का उद्‌घाटन तभी सार्थक है जब यह सुधार या पूर्ति हेतु व्यंग्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया हो। नई कविता जीवन मूल्यों की पुनः परीक्षा करती है। ये मूल्य नवीन युग की आवश्यकताओं के परिवेश में कितने सही प्रमाणित होते हैं अथवा अपने रूढ़ रूप में कितने असंगतिपूर्ण हो गए हैं। इनका कितना अंश ग्राह्य या अग्राह्य है? जागरूक कवि या चिंतक हेतु यह परीक्षण अनिवार्य है।

14. **लोकोन्मुखता-** लोकोन्मुखता नई कविता की मुख्य विशेषता है कि वह सहज लोक जीवन के सन्निकट पहुंचने के लिए प्रयत्नशील है। नई कविता ने लोक जीवन की अनुभूति, सौंदर्य बोध, प्रकृति और उसके प्रश्नों को एक सहज और उदार मानवीय भूमि पर ग्रहण किया है। लोक जीवन के बिंबों, प्रतीकों, शब्दों एवं उपमानों को उन्हीं के मध्य से चुनकर उसने अपने को अत्यधिक संवदेनापूर्ण एवं सजीव बनाया है। बिंब कविता की मूल छवि है इसलिए नई कविता बिंब बहुल है।

15. **भाषा एवं बिंब-** भाषा मुक्त भाव से ऐसे शब्दों को ग्रहण करती है जो अभिजात न होकर सशक्त हैं। अपने में मिट्टी की सौंधी गंध छिपाए हुए हैं। नयी कविता जीवन के नए संदर्भो में उभरने वाली अनुभूतियों, सौंदर्य प्रतीतियों और चिंतन आयामों से संप क्त बिंब ग्रहण करती है। शहरी कवि विशेष रूप से नागरिक जीवन-बिंब ग्रहण करते हैं। जबकि ग्रामीण जीवन के संस्कारों से युक्त कवि ग्रामीण बिंबों का चयन करते हैं। व्यक्तित्व और सामाजिक दोनों प्रकार के बिंब नई कविता में विद्यमान हैं। कुछ बिंब नई कविता ने पुराणों एवं इतिहास से भी चुने हैं किन्तु उन्हें संदर्भानुसार नवीन अर्थ प्रदान किया गया है। बिंब विधान की द ष्टि से 'अंधा युग', 'कनुप्रिया' तथा 'आत्मजयी' महत्वपूर्ण कृतियां हैं। रोमानी या बोझिल पदावली का प्रयोग। लोक शब्दों का चयन है। नई कविता की भाषा में खुलापन एवं ताजगी है।

अनुभूति शून्यता की अभिव्यक्ति की अस्पष्टता, अटपटेपन, दुरूहता में छिपाने का फैशन यहां तक बढ़ गया कि ढेर सी नई कविताओं के मध्य में बहुत से कवियों के व्यक्तित्व को पहचानना कठिन कार्य हो गया।

21. नई कविता के प्रमुख रचनाकार

सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय

व्यक्तित्व- अज्ञेय का जन्म (7 मार्च 1911-1987 ई.) ग्राम कसया जनपद देवरिया में हुआ था। पिता का नाम हीरानंद था। बी.एस.सी. परीक्षा उत्तीर्ण की। अंग्रेजी, हिंदी तथा संस्कृत का स्वाध्ययन किया। अज्ञेय का जीवन यायावरी एवं क्रांतिकारी था। इसलिये ये किसी व्यवस्था में बंधकर नहीं रह सके। सन् 1943-1946 ई. तक सेना में सेवा की। कई बार सांस्कृतिक कार्यो हेतु अमेरिका गए। कुछ दिनों तक जोधपुर विश्वविद्यालय में कार्य किया। कवि होने के साथ-साथ प्रख्यात कथाकार, समीक्षक एवं चिंतक-विचारक थे।

कृतित्वः

काव्य- 'आंगन के पार द्वार', 'अरी ओ करुणा प्रभामय', 'हरी घास पर क्षण भर', 'इन्द्र धनु रौंदे हुए ये'।

कविताएं- 'भग्न दूत' एवं 'चिंता' नामक छायावादी कविताओं से काव्य यात्रा प्रारंभ की। 'दुख सबको मांजता है', अच्छा 'खंडित सत्य सुघर नीरंध्र म षा से' एवं 'सांप'।

संपादन- 'तारसप्तक', 'इत्यलम्'।

साहित्यिक विशेषताएं- छायावादी कविताओं से काव्य-यात्रा प्रारंभ करने वाले अज्ञेय प्रयोगवाद एवं नई कविता के विशिष्ट कवि हैं। इस धारा के कवियों में इनका काव्य सबसे अधिक वैविध्यपूर्ण है। उनका स्वर अहं - समाज, प्रेम-दर्शन, आदिम गंध - विज्ञान चेतना, यंत्र-सभ्यता - लोक परिवेश, यातना - बोध - विद्रोह की ललकार, प्रकृति सौंदर्य - मानव सौंदर्य तक विस्त त है। इस व्याप्ति में संवेदनशीलता या अनुभूति सर्वत्र साथ नहीं देती है। कहीं कहीं कोरा बुद्धिवाद या नीरसता उभर आती है।

'तारसप्तक' की कविताओं के साथ अज्ञेय की नई कविता यात्रा का आरंभ होता है। जो बाद में 'इत्यलम्' में संग्रहीत द ष्टिगोचर होती है। अज्ञेय में संवेदना के साथ सजगता एवं बुद्धिवाद की प्रधानता है। बुद्धिवाद उनकी संवेदना को नियंत्रित करता है साथ ही कभी सूक्तियों के रूप में कभी व्यंग्य के रूप में, कभी युग चिंतन और युग बोध के बिंब विधान के रूप में व्यक्त होता है जो संवेदना या अनुभूति से अंतरंग भाव से जुड़ा न होने के कारण बिंब रचना के होते हुए भी बहुत दूर तक प्रभावविहीन हो जाता है। अज्ञेय की कविताओं में स्वर वैविध्यता का कारण उनका बुद्धिवाद है। संवेदना एवं बुद्धिवाद की यह सहयात्रा जहां रोमानी परंपरा को तोड़कर नए सौंदर्यबोध से सम्पन्न स्वस्थ काव्य की स ष्टि करती है वहीं बुद्धिवादिता का अतिरेक शुष्क, दुरूह और नव रहस्यवादी कविता को जन्म देता है। अज्ञेय की छोटी-छोटी कविताएं सौंदर्य और प्रभाव की स ष्टि की द ष्टि से विशिष्ट एवं सक्षम हैं - वे चाहे व्यंग्य करती हों, चाहे कोई सौंदर्य का अनुभव जगाती हों, चाहे रूप की अभिव्यक्ति करती हों।

गिरिजा कुमार माथुर

व्यक्तित्व- गिरिजा कुमार माथुर का जन्म सन् 1918 ई. को मध्य प्रदेश के एक कस्बे में हुआ था। अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. तथा एल.एल.बी. परीक्षा उत्तीर्ण कर वकालत प्रारंभ की। कुछ समय पश्चात् दिल्ली सेक्रेटियेट में सेवा की । अंत में आल इंडिया रेडियो में कार्य करने लगे।

कृतित्व- 'नाश और निर्माण', 'धूप के धान', तथा 'शिलापंख चमकीले'।

साहित्यिक विशेषताएं- माथुर में प्रयोग एवं संवेदना का सुंदर सामंजस्य है। अर्थात् बुद्धिवाद या फैशन के कारण कहीं प्रयोग नहीं किया गया है। उनका प्रयोग उनकी अनुभूतियों और संवेदनाओं के सूक्ष्म कोणों, रंगों एवं प्रभावों को व्यक्त करने की आकुलता से संबद्ध है। छंद, भाषा, बिंब विधान सभी द ष्टियों से प्रयोग किए गए हैं। इनके छंदों में लयात्मकता सर्वत्र देखी

जा सकती है। कहीं कहीं कवि ने सवैया छंद को तोड़कर उसे नए छंद में परिवर्तित कर दिया है। उनके काव्य के दो स्वरूप हैं -

(i) **व्यक्तिगत अनुभूतियां-** 'मजीर' एवं 'तारसप्तक' में उनकी वैयक्तिक अनुभूतियां द ष्टिगोचर होती हैं।

(ii) **सामाजिक अनुभूतियां-** 'नाश और निर्माण' तथा 'शिलापंख चमकीले' में सामाजिक जीवन की अनुभूतियां एवं यथार्थ का स्वर मुखरित हुआ है।

'तारसप्तक' में जीवन यथार्थ के नए आयाम का प्रयोग नहीं किया गया है। वे अपने परिवेश में जीवन सत्यों से अलग द ष्टिगोचर होते हैं उनसे जुड़ाव की प्रतीति नहीं होती है। संवेदना रोमानी है। प्रकृति की रंगमयता, उसकी उदासी, सौंदर्य-प्यास, प्रेम-प्रसंगों की स्म तियों का दंश, सुंदर वातावरण, साथी विहीनता तथा अकेलेपन का बोध आदि इनके अनुभव एवं संवेदना के अंग हैं। इनके रचना लोक में विभिन्न रूप-रंगों, ध्वनियों, गंधों एवं स्पर्शों में इन्हीं का रूप दिखलाई पड़ता है। सीमित जीवन अनुभवों में भी माथुर एक विशिष्ट कवि हैं क्योंकि वे इन अनुभवों, अति गहन एवं सूक्ष्म छायाओं के सच्चे पारखी हैं।

'नाश और निर्माण' में 'तारसप्तक' की कविताएं भी संकलित हैं इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी कविताएं भी हैं जो सामाजिक चेतना से अनुप्राणित हैं। इनकी कविताओं में शक्ति, उल्लास एवं सामाजिक जीवन का स्पंदन है। पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के रूप में विषम परिणामों का तीव्र अनुभव तथा उनके विरुद्ध समाजवादी चेतना का प्रसार है।

गजानन माधव 'मुक्ति-बोध'

व्यक्तित्व- इनका जन्म (सन् 1917-1964 ई.) ग्वालियर के एक कस्बे में हुआ। बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर अध्यापन कार्य करने लगे। पत्रकारिता का कार्य प्रारंभ कर दिया पुनः अध्यापन कार्य करने लगे। ये विशिष्ट विचारक, समीक्षक तथा कथाकार थे। अपनी पूरी पीढ़ी में मुक्तिबोध का व्यक्तित्व विशेष महत्व रखता है।

कृतित्व- 'ब्रह्म राक्षस' तथा 'अंधेरे में' इनकी प्रमुख कविताएं हैं।

साहित्यिक विशेषताएं- इस पीढ़ी और इससे लगी हुई परवर्ती पीढ़ी के लगभग सारे महत्वपूर्ण जिनमें अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, शमशेर बहादुर सिंह तथा धर्मवीर भारत आदि प्रमुख हैं - कवियों ने रूमानी कविता का त्याग कर नया प्रयोग करने का प्रयास किया किंतु रूमानी संवेदना और तत्कालीन भाषा से उनको मुक्ति नहीं मिल पाई। किंतु मुक्तिबोध मात्र ही ऐसे कवि हैं जिनका अनुभव जगत अति व्यापक है। उनकी प्रगतिवादी द ष्टि परिवेश बोध, सामाजिक चिंतन तथा अनुभव वैविध्य को और बलवान बनाती है। जिसके फलस्वरूप कहा जा सकता है कि बाद में जीवन की बहुविध छवि को लेकर विकसित होने वाली नई कविता के अग्रज एवं श्रेष्ठ कवि सच्चे अर्थो में मुक्तिबोध ही हैं। लोक परिवेश गहन संप क्ति तथा लोक जीवन के प्रति अटूट विश्वास एवं आस्था उनकी सबसे बड़ी शक्तियां हैं।

शिल के प्रति असावधानी उनके अनुभव - खंडों को एक सूत्र में बांध नहीं पाती और समग्रतः बिंबों की रचना में संश्लिष्टता एवं सघनता नहीं भर पाती है। मुक्तिबोध में फैंटेसी है अर्थात् एक जादुई कथा में आधुनिक जीवन अनुभव की अभिव्यक्ति है। 'अंधेरे में' एवं 'ब्रह्मराक्षस' इस द ष्टि से विशेष महत्व की कविताएं हैं। उनकी अनुभूति वैयक्तिक ही नहीं है अपितु अपने परिवेश से गहनता से संबद्ध है तथा अनेक आवर्तो से लिपटी है। कवि आलोच्च द ष्टि रचनात्मक संदर्भ में लक्षित होने वाली सार्थकता-निरर्थकता को परखती चलती है।

भवानी प्रसाद मिश्र

व्यक्तित्व- भवानी प्रसाद मिश्र का जन्म सन् 1914 ई. में मध्य प्रदेश में हुआ। बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त की। 'कल्पना' पत्रिका के संपादक बन गए। वहां से आल इंडिया रेडियो की सेवा में लग गए। अवकाश प्राप्त करने तक संपूर्ण गांधी वाङ्मय के संपादक मंडल में रहे।

कृतित्वः

कविताएं- 'कमल के फूल', 'वाणी की दीनता', 'टूटने का सुख', 'सतपुड़ा के जंगल', 'सन्नाटा', 'गीत फरोश', 'असाधारण' एवं 'स्नेह शपथ' आदि प्रमुख कविताएं हैं। जिनमें 'गीत फरोश' को विशेष ख्याति मिली।

साहित्यिक विशेषताएं- ये सहज संवेदना के कवि हैं। इनकी संवेदना कहीं अति सूक्ष्म एवं आत्मसात हैं, जैसे 'कमल के फूल', 'वाणी की दीनता' तथा 'टूटने का सुख' आदि में। कहीं अति प्रत्यक्ष और परिवेश संप क्त है, जैसे-'सतपुड़ा के जंगल', 'सन्नाटा' तथा 'गीत फरोश' आदि कविताओं में कवि की सहजता, सघन अनुभूति तथा संयत अभिव्यक्ति के क्षणों में जहां अति रम्य काव्य का स जन करती है वहीं फॉर्मूलाबद्ध आदर्शवादिता, अनुभूति के सतहीपन तथा अभिव्यक्ति के तुकांतवादी विस्तार की अव्यवस्था में सामान्य काव्य की। 'असाधारण' एवं 'स्नेह शपथ' जैसी उनकी अनेक कविताएं सामान्य हैं। उनकी भाषा और अभिव्यक्ति में लोक जीवन का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है।

शमशेर बहादुर सिंह

व्यक्तित्व- शमशेर बहादुर सिंह का जन्म 3 जनवरी सन् 1911 ई. में देहरादून में हुआ। बी.ए. की शिक्षा प्राप्त कर लेखन कार्य में रत हो गए। 'कहानी' एवं 'नया साहित्य' के संपादक मंडल में कार्य करने लगे। काफी दिनों तक बेकार भी रहे। दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली के उर्दू विभाग में कोश संबंधित कार्य भी किया।

साहित्यिक विशेषताएं- शमशेर बहादुर सिंह के संस्कार व्यक्तिवादी हैं, अनुभव रूमानी हैं, तथा विचार मार्क्सवादी हैं। इस प्रकार उनका व्यक्तित्व विभिन्नता में एकता स्थापित करने वाला है। उनकी अधिकांश कविताओं की विषयवस्तु कुंठित प्रेम है। संवेदना एवं अभिव्यक्ति की द ष्टि से ये प्रयोगवाद की अतिशय व्यक्तिवादिता के प्रतीक हैं। इनकी अतिशय व्यक्तिवादिता मात्र अपने प्रति प्रतिबद्ध है जिसके फलस्वरूप वह पाठकों के संज्ञानक की उपेक्षा कर जाती है तथा ऐसे-ऐसे बारीक जाल बुनती है, खंडित बिंबों की योजना करती है कि संपूर्ण कविता अपने इच्छित मंतव्य के साथ व्यक्त नहीं हो पाती है। शमशेर का सौंदर्य बोध अति सूक्ष्म है किंतु कठिनाई यह है कि सौंदर्य यत्र-तत्र की पंक्तियों में येनकेन प्रकारेण उभार का अवसर प्राप्त करता है। मुक्त आसंग, चेतना प्रवाह, अमूर्त चित्रात्मकता तथा शब्द-संगीत आदि शमशेर बहादुर सिंह के शिल्प को सर्वथा एक नवीन रूप अवश्य प्रदान करते हैं किन्तु वे अनुभव लोक मूर्तता प्रदान करने की अपेक्षा उलझाव प्रदान करते हैं। अभिप्राय यह कि उनकी कविता पाठकों के लिए सहज ग्राह्य न होकर कष्ट साध्य एवं श्रम साध्य है।

धर्मवीर भारती

कृतित्व- 'अंधा युग', 'कनुप्रिया' तथा 'सात गीत वर्ष'।

साहित्यिक विशेषताएं- वास्तविकता यह है कि धर्मवीर भारती की उपलब्धियां उनकी अंतिम कृतियों में द ष्टिगोचर होती हैं। आरंभिक कविताएं उनकी किशोरावस्था की भावुकता से विशेष रूप से आक्रांत द ष्टिगोचर होती हैं। भारत में आदिम गंध की तड़पन और जनजीवन की रूमानी छवि की पकड़ है। इसलिए इनकी कविताएं विशेष रूप से गीत परक हो गई हैं जिनमें लोक-परिवेश की मस्ती एवं उल्लास की स्थानापन्न उदासी एवं सूनापन ही अधिक उभरकर सामने आया है।

"घाट के रस्ते उस बंसवट से
इक पीली सी चिड़िया
उसका कुछ अच्छा नाम है
मुझे पुकारे ताना मारे
उन्मन यह फागुन की शाम है।"

-ठंडा लोहा

भारती के काव्य की बहुत बड़ी विशेषता यह है कि उसका मूर्तविधान एवं पारदर्शिता जो उनके परवर्ती गंभीर एवं चिंतन से संवरे काव्यों में लक्षित होती है। 'सात गीत वर्ष' की कविताओं में कवि की रूमानी भाव प्रधानता ने यथार्थ की गहनता को प्राप्त कर लिया है। यहां भी अनेक कविताएं प्रेम प्रधान हो गई हैं किन्तु प्रेम के अति सूक्ष्म संक्रांत अनुभवों को उभार प्रदान की गई हैं। इनमें कुछ कविताएं व्यंग्य की प्रधानता लिए हुए हैं जो किसी सांस्कृतिक, सामाजिक या राजनीतिक विसंगतियों पर हल्की-हल्की चोट पहुंचाती हैं। मूल्य से संबंधित प्रश्न भी उभारे गए हैं किन्तु मान संवेदना की सेंक से तप्त हैं।

प्रबंध काव्य- नई कविता काल में कुछ प्रबंध काव्यों का भी स जन हुआ है जिनमें मैथिलीशण गुप्त -'जय भारत' एवं 'विष्णु प्रिया', गुरुभक्त सिंह 'भक्त' - 'विक्रमादित्य', मोहन लाल महतो वियोगी - 'आर्यावर्त', रामधारी सिंह दिनकर - 'उर्वशी', 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी', सियाराम शरण गुप्त - 'उन्मुक्त', सुमित्रा नंदन पंत - 'लोकायतन', केदार नाथ मिश्र प्रभात - 'ऋतंवरा', धर्मवीर भारती - 'कनुप्रिया', ठाकुर प्रसाद सिंह - 'महामानव', नरेन्द्र शर्मा - 'द्रौपदी' तथा उत्तर जय एवं कुंवर नारायण - 'आत्मजयी' आदि उल्लेखनीय हैं।

युद्ध काव्य- कुछ युद्ध से संबंधित काव्य भी इस काल में लिखे गए जिसमें प्रमुख - 'कुरुक्षेत्र', 'आर्यावर्त' तथा 'उन्मुक्त' हैं।

22. नवगीत और नव गीतकार

नवगीत को नव्य गीत या नए गीत भी कहा गया है। पद्य काव्य की एक विद्या गीत है। समसामयिक परिवर्तनों की द ष्टि से इसे चिरंतन विद्या की संज्ञा दी जा सकती है। युगीन संदर्भानुसार मानव मन के संवेग, भाव या विचार परिवेश में नए-नए रूप ग्रहण करते रहते हैं। इन संवेगों की अभिव्यक्ति हेतु मानव मन आकुल-व्याकुल रहता है जब तक इन्हें मुक्त कंठ से गा नहीं लेता उसे संतुष्टि नहीं मिलती है। यह कटु सत्य है कि काल एवं परिवेश मानव मन के संवेगों को परिवर्तित करते रहते हैं। यही कारण है कि आधुनिक व्यक्ति के सुख-दुख, राग-विराग, ईर्ष्या-द्वेष आदि की संवेदना आदिम कालीन मानव संवेदना की भांति प्रत्यक्ष, सीधी और आवेगात्मक नहीं हैं क्योंकि उसमें बौद्धिक युग की अनेक जटिलताएं समाहित हो गई हैं। इसलिए आधुनिक संवेदना आदिकालीन, मध्ययुगीन संवेदना रूमानी गीतों की संवेदना की भांति एक लय में वेग से नहीं फूट चलती है अपितु वह एक विशिष्ट मानसिक परिवेश में अपने अनुकूल बिखरे हुए संवेगों से जुड़ती है। अभिप्राय यह है एक संवेग दूसरे से संक्रांत होता है। ये संक्रांत संवेग एक आंतरिक एकता से अनुशासित होते हैं। देखने में ये संवेग बिलकुल भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं किंतु मूलतः आंतरिक संगीत से समन्वित होते हैं। वर्तमान में यह सत्य भाव नई कविता और नवगीत दोनों में व्यक्त हो रहा है। इन संक्रांत संवेगों को रूपायित करने के लिए कवि को अनिवार्य रूप से बिंबों, प्रतीकों और लाक्षणिकता की योजना करनी पड़ती है। बिंबों और प्रतीकों के बिना संवेगों की संश्लिष्टता और सूक्ष्मता व्यंजित नहीं हो पाती है।

जहां मानव मन सौंदर्य, राग एवं सत्य के किसी पहलू को गहराई से स्पर्श करता है वहां गीत की भूमि होती है। यह कथ्य अपेक्षाकृत आत्मप्रधान होता है। इसे विश्लेषण या विवेचन की आवश्यकता नहीं होती हैं न ही अति व्यापक या जटिल होता है कि उसको सुलझाने में बुद्धि को प्रयास करने में थकावट का अनुभव हो। बुद्धि भार से दबती नहीं है। हिंदी में प्रायः गीतों का एक आकार स्वीकार कर लिया गया है। उस आकार में अधिक से अधिक सामग्री अर्थात् विषय वस्तु भरने का अथक प्रयास किया जाता है। जितना संभव था उतना उसमें ठूंस-ठूंसकर भरा गया। जिसके परिणामस्वरूप नया कवि गीतों को अच्छी द ष्टि से न देखकर उससे घ णा का भाव रखने लगा है। उन गीतों को आज के लिए अनावश्यक तथा अपर्याप्त स्वीकारने लगा है। गीत की इन व्यावहारिक सीमाओं के कारण उसकी मौलिक शक्तियों को अस्वीकार नहीं किया जा सकता, किंचित इन्हीं शक्तियों के कारण बहुत से अच्छे नए कवि गीतकार भी हैं। उनके गीतों की तरलता, अनुभूति सघनता और प्रभावान्विति का प्रभाव उनकी नई कविताओं पर भी पड़ता है। प्रचलित रंगमंचीय अश्लील एवं भद्दे गीतों से अलग करने के लिए इन गीतों को नवगीत कहा गया है। समसामयिक गीतकारों में प्रमुखतः अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, जगदीश गुप्त, शंभू नाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, केदार नाथ सिंह, रवींद्र भ्रमर तथा वीरेंद्र मिश्र आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी गीतकारों का अपना-अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है किंतु इनके गीतों की एक सामान्य भूमि भी है। अनुभूति की सच्चाई, अनुभूति की अपनी-अपनी विशिष्टता, नवीन सौंदर्य बोध, आकार लघुता, नवीन बिंब-प्रतीक उपमान-योजना इनकी सामान्य विशिष्टता है। इसलिए ये गीत प्रभावान्विति की द ष्टि से अंतर्दीप्त प्रतीत होते हैं। इन सभी गीतों में लोकजीवन का आनंद है। इस अर्थ में नहीं कि इन्होंने प्रचलित गीतों की भांति लोकभाषा से अपने गीतों 'दूध-बताशा', 'पनघट', 'वंशीवट', 'चुनरिया' तथा 'ओढ़निया' आदि अनेक शब्दों को चुना है अपितु इसलिए कि इसमें इन्होंने लोक जीवन की वस्तु योजना को पकड़ा है। उसकी संवेदना को स्वीकारा है। ये गीत जिस भूमि पर उत्पन्न हुए हैं उस भूमि के रसगंध को अपने में समेटे हुए हैं। इसलिए इन गीतों में नागरिक, ग्रामीण, व्यक्तिगत, सामाजिक, प्रेम की प्रेमेत्तर प्रकार की संवेदनाओं के भिन्न-भिन्न स्वरूप कवियों के व्यक्तित्वों एवं मानस संस्कारों के अनुसार लक्षित होते हैं। नव गीत में रस का बासीपन सा सड़ांध नहीं होती है अपितु अंतर की दमक होती है। इन गीतों की उपलब्धि इनके तरल, सरल, रसमय, उच्छल प्रवाह और आवेगों में नहीं है अपितु इनकी बुद्धि संयत हार्दिकता, संवेदना के अनुभूत स्तरों में नियोजन, एक विशेष प्रभाव भूमि के अंतर्गत आने वाले बिखरे किंतु एक दूसरे से संक्रमित बोधों के संश्लेषण और अनुकूल बिंबो, प्रतीकों और लाक्षणिक प्रतीकों की खोज में हैं। कवि अपने अपने संस्कारानुसार इस सामान्य भूमि पर नूतन बिंब प्रतीकों का विधान करते हुए चले हैं।

नवगीत के अंतर्गत प्रयोगवादी एवं नई कविता के अधिकांश कवि आ गए हैं। नव कवि की प्रतिभा इसी में है कि वह इन्हें नव संदर्भो में जांच-परखकर नवगीत की संरचना करे। नवगीत के प्रयोजन को रसानुभूति नहीं कहा जा सकता है। अनुभूति को नकारा नहीं जा सकता है। साधारणीकरण का रूप बदल गया है। आज पहले की भांति सामान्य प्रतीतियां नहीं है जिनमें सभी लोग सांझी हो सकें। विभक्त प्रतीतियों के समय में प्रेषणीयता का कार्य पर्याप्त कठिन हो गया है। नवगीत में प्रेषणीयता अनिवार्य तत्व है। नवगीत में पुरानी काव्य-रूढ़ियां भी मिलेगीं, पर युगीन संदर्भ से युक्त होने के कारण वह नव होकर रूढ़ि मुक्त हो गया है। परंपरा से कटकर लिखे गद्य नव गीत की संप क्तता सर्वथा संदिग्ध है। परंपरा को नया संदर्भ देना उसे जीवंत बनाना है।

गीत विहीन जीवन शुष्क एवं नीरस हो जाता है। गीत के भाव सीधे हृदय से आते हैं।

महादेवी वर्मा ने नवगीत को परिभाषित करते हुए लिखा है -

"सुख-दुख की भावावेशमयी अवस्था विशेषकर गिने-चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। साधारण गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र और सुख दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।"

गीत का संबंध मानव के अंतस्तल से होता है जो सुख-दुख से प्रेरणा प्राप्त करके तीव्रतम भावों की अभिव्यक्ति करता है। वही भाव संगीत के साथ लयबद्ध होकर गीत कहलाते हैं। प्रायः सभी कालों में गीत की संरचना हुई है किन्तु नई कविता के बाद के नवगीत उन सबसे अपना अस्तित्व भिन्न बनाए हुए हैं। परंपरा से अपने को मुक्त करके इन्होंने अपना संबंध जन-जीवन से जोड़ा है। गीतकारों ने आधुनिक गीत को नया भावबोध तथा विस्त त आयाम प्रदान किया है जिसमें सर्वसाधारण मानव के जीवन-संघर्षो का चित्रण किया गया है। निराला के गीतों में नवगीत का आरंभिक स्वरूप देखने को मिलता है। छायावाद युग में ही नवगीत का बीजवपन हो चुका था। नवगीत आंदोलन नहीं अपितु विकास की परंपरा है।

नवगीतकारों ने गीत को छायावादी गीत से बाहर निकाला है तथा समष्टि के यथार्थ एवं परंपरागत सौंदर्य से निकालकर नए सौंदर्य से भंडित किया है।

गीतकार- गीतकारों में हरिवंश राय बच्चन, रामेश्वर शुक्ल अंचल, गोपाल सिंह नेपाली, नरेन्द्र शर्मा, नीरज, जानकी वल्लभ शास्त्री तथा सोम ठाकुर आदि प्रमुख हैं।

नवगीत बीसवीं सदी के छठे दशक की देन है। सन् १९५८ ई. में राजेन्द्र सिंह ने मुजफ्फरपुर बिहार से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'गीतांगिनी' में इन गीतों को 'नवगीत' नाम से विभूषित किया। वैमत्य के होते हुए राजेन्द्र सिंह को 'नवगीत' का प्रवर्तक स्वीकारा गया।

नवगीत के बीज छायावादोत्तर गीत लेखन में अर्थात् बच्चन, भगवती चरण वर्मा एवं रामेश्वर शुक्ल अंचल में खोजे जा सकते हैं। इसके बाद यह गीतधारा, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद के गीतकारों के कंठों को सुसज्जित करती हुई नई कविता धारा में पहुंच गई तथा पंत, निराला, केदार नाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन शास्त्री, अज्ञेय, शंभूनाथ सिंह, धर्मवीर भारती, भवानी प्रसाद मिश्र आदि का सानिध्य प्राप्त किया।

नवगीत की भाव चेतना के आधार पर नवगीतकारों को चार वर्गो में विभाजित किया जा सकता है-

(i) **आधुनिकता बोध संपन्न-** आधुनिकता की प्रव त्ति निम्नलिखित गीतकारों में द ष्टिगोचर होती है। ओम प्रभाकर, सोम ठाकुर, भगवान स्वरूप नईम, विनोद गौतम, विजय किशोर, डॉ. सुरेश, राजेन्द्र गौतम, उमा शंकर तिवारी, राम चन्द्र भूषण, कुमार रवींद्र, शंभू नाथ सिंह, श्री कृष्ण तिवारी, राम सेंगर तथा अमर नाथ।

(ii) **लोक बोध सम्पन्न-** ठाकुर प्रसाद सिंह, दिनेश सिंह, अनूप अशेष, सुधांशु उपाध्याय, गुलाब सिंह, अखिलेश कुमार आदि।

(iii) **प्रकृति बोध सम्पन्न-** देवेन्द्र कुमार, ठाकुर प्रसाद सिंह, शिव बहादुर सिंह भदौरिया, अनूप अशेष तथा गुलाब सिंह आदि।

(iv) **जातीय बोध सम्पन्न-** उमाकांत मालवीय, देवेन्द्र शर्मा 'इंद्र', सोम ठाकुर, शंभूनाथ सिंह, राधे श्याम शुक्ल तथा नीरज आदि।

"नवगीत" के संदर्भ में सोम ठाकुर ने लिखा है-

'नवगीत सामाजिक विसंगतियों तथा विद्रूपताओं के नग्न चित्र प्रस्तुत करता है परन्तु वह उसे निरीह नग्न रूप में अकेला नहीं छोड़ता, वरन् उसके शरीर पर उभरे हुए अनेक घावों का वैद्य बनकर रोगी की मरहम पट्टी करता है तब उसमें दिखावा, बनावटीपन एवं कृत्रिमता लेशमात्र भी दिखाई नहीं देती। उसने पूर्व के गीत से चली आ रही विसंगति पर खुलकर चोट की, उसके पारंपरिक ढांचे को ध्वस्त किया और नवीन जीवन द ष्टि लेकर जनसाधारण के बीच खड़ा होकर दैनिक समस्याओं का सामना किया है।"

सोम ठाकुर ने आगे लिखा है-

"नवगीत का कथ्य हमारे देश की निजी, कड़वी-मीठी संवेदनशीलता का आसव है और उसका शिल्प निजी अभ्यासों के अनुकूल अपनी मिट्टी की नई तराश और पकड़ की गुंजाइश का पात्र, जिसके सर्जक की कसौटी में स्वयं का व्यक्तित्व स्पष्ट निजता के साथ ध्वनित हो रहा है। यह सार्वजनिक निजता ही नवगीत का परस्तरित सेतुबंध है।"

नवगीत में सामाजिक यथार्थ का निरूपण, नगरी एवं महानगरीय परिवेश का चित्रण, व्यवस्था का विरोध, बौद्धिकता की प्रधानता, ग्रामीण एवं आंचलिक चित्रण, प्रेम एवं श ंगार की अभिव्यक्ति, राष्ट्रचेतना का चित्रण आदि विशेषताएँ पाई जाती हैं।

डॉ. कुंवर बेचैन ने नवगीत के शिल्प के विषय में लिखा है-

"आकार-प्रकार में सक्षिप्त गेयता को सुरक्षित रखने वाली उस काव्यविद्या को नवगीत कहेंगे, जिसमें सामाजिक यथार्थ की छाया में वैयक्तिक अनुभूतियों को ताजे टटके प्रतीकों, बिंबों एवं ऐसी नई शब्दावली में अभिव्यक्त किया जाता है, जिसमें समसामयिक बोध की दीप्ति बलवती है। अनुकृति की सच्चाई, रागात्मकता की चमक, नवीन लाक्षणिक प्रतीकों की खोज, सामाजिक यथार्थ से व्यक्ति की समझ का टकराव, रचनात्मक स्तर पर जड़ परंपराओं का विरोध, भाव और विचारों का समन्वय ऐसे तत्व हैं जिनकी छाया में नवगीतों को पहचाना जा सकता है।"

संक्षेप में कहा जा सकता है कि नवगीत पारंपरिक गीतों से भिन्नता में विशेष रूप से पहचाना जाता है। शब्दों का चयन ग्रामीण अंचल एवं नागरिक परिवेश से किया जाता है। वस्तु पक्ष की भांति ही नवगीत का शिल्पपक्ष भी अति विशिष्टता एवं व्यापकता लिए हुए है।

23. समकालीन कविता

नामकरण

समकालीन कविता से पूर्व गद्य विद्या में कहानी के पश्चात् अकहानी तथा लघु कथा का रूप प्रचलित हो चुका था उसी को आधार बनाकर नवगीत के पश्चात् पद्य विधा में जिस नवीन विधा का आविर्भाव हुआ उसे अकविता, अतिकविता, अस्वीकृत कविता, विद्रोही पीढ़ी, कबीर पीढ़ी, क्रुद्ध पीढ़ी, भूखी पीढ़ी आदि अनेक नाम दिए गए।

सन् 1960 ई. के आस-पास नई कविता और नवगीत की धारा अपने से कुछ अलग होती हुई परिलक्षित है जिसे अनेक नाम दिए गए हैं। उपर्युक्त नामों में दो वर्ग द ष्टिगोचर होते हैं

(i) अकविता, अति कविता, अस्वीकृत कविता।

(ii) विद्रोही पीढ़ी, कबीर पीढ़ी, क्रुद्ध पीढ़ी, भूखी पीढ़ी।

प्रथम वर्ग के तीनों नामों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इन की निर्मिति नञ् समास के आधार पर हुई। दो मदों को समस्त पद रूप से समन्वित करके नामकरण किया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ज्योमितीय शब्दावली में कहा जा सकता है कि 'कविता' शब्द और 'अ' उपसर्ग उभयनिष्ठ हैं। उभयनिष्ठ को अलग कर दिया जाए तो 'अ' एवं 'कविता' शब्द शेष रह जाते हैं ये दोनों ही बहुचर्चित पद हैं इनके विवेचन की आवश्यकता नहीं है। नकारात्मक 'अ' का अर्थ विहीनता एवं न होना है। कविता के तत्वों को नहीं नकारा गया है जो नहीं है वह क्या है? लगता यह है कि मात्र अकहानी के आधार अकविता कहां कैसे कविता एवं अकविता में कोई भेदक तत्व प्रस्तुत नहीं किया गया है। यह तथ्य अवश्य सामने आया है कि अकविता में नकारात्मक नहीं अपितु विशिष्टता अथवा चमत्कार का भाव भरा गया है। यथा 'खालिस' शुद्धता का द्योतक शब्द है उसमें 'नि' नकारात्मक उपसर्ग इसी अर्थ में नहीं लिया जाता है अपितु विशिष्टता या चमत्कारी अर्थ देने के लिए 'खालिस' से 'नि' + 'खालिस' = निखालिस शब्द का निर्माण किया गया है जो विशेष शुद्धता का द्योतन करता है। उसी प्रकार 'कविता' से अलग उसमें विशिष्टता तथा चमत्कार का भाव भरने के लिए 'अकविता' शब्द का निर्माण किया।

द्वितीय वर्ग के नामों के विश्लेषण से ज्ञात है यह नामकरण भी दो समस्त पदों से निर्मित है। ये पद विद्रोही, कबीर, क्रुद्ध तथा भूखी एवं पीढ़ी है। पीढ़ी पद उभयनिष्ठ है। 'पीढ़ी' का अर्थ वर्ग होता है। मानव सभ्यता का विकास पीढ़ी दर पीढ़ी अग्रसर है। इसी प्रकार नई कविता, नवगीत के पश्चात् आने वाले वर्ग को पीढ़ी का नाम दिया गया है। पीढ़ी विकास वंश परंपरा का विकास होता है। दादा के पश्चात् पिता, पिता के पश्चात् पुत्र अस्तित्व में आता है। दादा-पोते की धारणा, भाव, चिंतन एवं दर्शन में समयांतराल के परिणामस्वरूप परिवर्तन आ जाता है यह परिवर्तन ही संघर्ष का कारण है। कुछ समय पूर्व तक दादा-पोता से संघर्ष पीढ़ी संघर्ष का रूप धारण कर गया अर्थात-पिता-पुत्र में पीढ़ी संघर्ष आया। वर्तमान में यह पीढ़ी संघर्ष दशक संघर्ष का रूप धारण कर गया है अर्थात् दस वर्ष के अंतराल में वैचारिक भिन्नता आ जाती है जिसके परिणामस्वरूप पुरातन नवीन का संघर्ष चलता है। यह संघर्ष अनादि काल से चलता रहा है चल रहा है चलता रहेगा। पुरातन पीढ़ी नवीन पीढ़ी को जन्म देती है तथा उससे संघर्ष करती है।

नई कविता एवं नवगीत ने समकालीन कविता को जन्म दिया। अब रह गया प्रश्न पीढ़ी से पूर्व लगे पूर्व पदों 'विद्रोही', 'कबीर', 'क्रुद्ध' तथा 'भूखी'। इन शब्दों में रूप भेद हैं किन्तु आत्मा एक है इसलिए अर्थ भेद नहीं है। विद्रोह का अर्थ पुरानी मान्यता को अस्वीकारना तथा नवीन मान्यता की स्थापना करना है। इस कार्य में प्राचीन पुरातनवादी कवि नवीनतावादियों का विरोध करता है, नवीनतावादी कवि प्राचीनतावादी अथवा पुरातनवादियों का विरोध करता है। यह विरोध विद्रोह या संघर्ष कहलाता है। कबीर विद्रोही कवि थे इसलिए कबीर को विद्रोह का प्रतीक बना दिया गया। कबीर को बाह्याडंबर, अंधविश्वास तथा रूढ़ियों से अत्यधिक नफरत थी इनको देखते ही वे क्रुद्ध हो जाते थे उनमें ऽक्रोध भावना का उदय हो जाता था।

'क्रोध' विद्रोह का पर्यायवाची बन गया। अधिकांश समकालीन कविता के कवियों का संबंध निम्न मध्यवर्गीय परिवार से था जो भूख प्यास से आकुल-व्याकुल होकर क्षुधा मिटाने के लिए विद्रोही हो गया। भूखी-नंगी पीढ़ी विद्रोही होती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि समकालीन कवि विद्रोही, कबीर जैसे विद्रोही, क्रुद्ध एवं भूखी-नंगी पीढ़ी अर्थात् वर्ग था। इन सभी नामों का एक ही अर्थ अपनी पूर्व पीढ़ी के विद्रोह में नवीन मान्यता एवं धारणा की स्थापना करना था। अपने उद्देश्यानुसार उन्होंने अपनी कृतियों की प्रव त्ति विशेष का नामकरण किया है। ये नामकरण अनुभूतिजन्य, संवेदनशील तथा यथार्थ पर आधारित हैं। इनके दर्शन एवं मूल्यों में परिवर्तन आ गया है।

सन् 1960 ई. के बाद काव्य क्षेत्र में नवीन मोड़ परिलक्षित हुआ। वह एकाएक द ष्टिगोचर होने वाली कोई नवीन वस्तु नहीं है अपितु नई कविता एवं नवगीत से ही विकसित, प्रस्फुटित हुआ है। अकविता वालों ने अपनी कविता को अलग करने के लिए उसे अकविता नाम दिया। इस प्रकार समकालीन कविता अर्थात् अकविता नई कविता तथा नवगीत से बिलकुल अलग नहीं अपितु उसी का विकसित रूप है। यही कारण है कि अकविता वाले मौलिकता के आधार अकविता को कविता, नई कविता या नवगीत से अलग स्थापित नहीं कर सके। वास्तविकता यह है कि सन् 1960 ई. के बाद अकविता में जो स्वर उगे हैं बीजवपन नई कविता में हो चुका था। नवगीत में अंकुरित होकर इस कालावधि में प्रस्फुटित हुआ है। ये स्वर नई कविता के मौलिक स्वरूप या मूलाधार नहीं थे किंतु नई कविता तथा नवगीत से इनको सर्वथा भिन्न भी नहीं कहा जा सकता है जैसा अकविता वाले करते हैं।

काव्यगत विशेषताएं

1. **विद्रोही स्वर-** अकविता के नामकरण विवेचन से ही ये स्पष्ट हो गया है सन् 1960 ई. के बाद आविर्भाव में आने वाली अकविता में असंतोष, अस्वीकृति, क्रोध तथा विद्रोह भाव अत्यधिक स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आया है। असंतोष एवं अस्वीकृति का स्वर नई कविता में विद्यमान रहा है। मुक्तिबोध के अतिरिक्त अन्य कवियों में भी विद्रोह स्वर था। कहीं व्यंग्य का रूप धारण कर आया था कहीं स्पष्ट विद्रोह के रूप में। अंतर इतना है कि सन् 1960 ई. के बाद इस स्वर ने अकविता में आकर अत्यंत करारे व्यंग्य एवं विद्रोह का रूप धारण कर लिया। जीवन के टूटते हुए क्षणों की सन्निकट अनुभूति ने उसकी संवेदना को तलख, व्यथामय तथा उसमें फूटती हुई अस्वीकृति की उग्रता से भली भांति अवगत हो गया। अकविता की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उसने समग्र जीवन की प्रामाणिक अनुभूतियों को उनके जीवंत परिवेश में अभिव्यक्ति प्रदान की है। विषय या अनुभूति के अभिजात्य तथा विभिन्न द ष्टियों अथवा वादों से निर्मित घेरों, परिसीमाओं तथा अवरोधों को तोड़कर व्यक्ति द्वारा भोगे जाते हुए मानव जीवन के प्रत्येक क्षण के छोटे-बड़े सत्यों को प्रतीकों -बिंबों द्वारा उभारने में ही उसने अकविता की सार्थकता का अनुभव किया है किंतु अंतोगत्वा कहना होगा कि अकविता संत्रासजन्य कुंठा, संक्रांतिजन्य संत्रास, यातना, टूटन, घुटन, दुविधा की अनुभूति की कविता है जिसमें रह रह कर सुंदर अनागत के आगमन की आशा, स्वयं को अंधेरे में प्रकाश की भांति जलाकर पुष्प की भांति पुष्पित एवं प्रफुल्लित करके अपने को सार्थक एवं अपने द्वारा युग को मूल्यवान बनाने की आस्था कौंध स्वरूप चमक-चमक कर रह जाती है।

2. **पीड़ाबोध-** अकविता जिस युग की उपज है वह युग पीड़ा बोध अधिक दे सकता था विद्रोह कम। स्वराज्य प्राप्ति की आरंभिक बेला में जो यातना, पीड़ा या दर्द अत्यंत हो गया था वह अपने साथ भविष्य के प्रति आशा तथा विश्वास का स्वर भी अवश्य समेटे था किंतु एक दुविधा थी पीड़ा-आशा, टूटन की वास्तविकता-बनने का स्वप्न, जिसमें पीड़ा तथा टूटन अधिक थी बनने की आशा तथा स्वप्न कम। मोहभंग पूर्ण रूप से नहीं हुआ था। इसलिए अकविता में पीड़ा, यातना तथा अस्वीकृति बोध है। यातना एवं अस्वीकृति भी पीड़ा के प्रतिरूप हैं। पीड़ा बोध का स्वर उभर कर आया है किंतु विद्रोह का उभार नहीं है। शनैः शनैः मोह भंग हुआ। व्यक्ति का सामाजिक परिवेश अधिक कुरूप होता गया। भविष्य के आशा के स्वप्न टूट टूटकर बिखरते गए।

विभिन्न मार्ग- ऐसे परिवेश में साहित्य अर्थात् अकविता या समकालीन कविता के समक्ष दो मार्ग उभर कर आए -

(i) वह अकविता के प्रधान स्वर में स्वर मिला कर पीड़ा की मुक्त अनुभूति को और गहराई से अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

(ii) अथवा ये पूर्ण परिवेश उसके संवेदनशील मन को झकझोरता और पीड़ा के मध्य से उभार कर उसे विद्रोही बनाता हुआ सब कुछ अस्वीकृत करने हेतु प्रेरणा देता।

अकविता में दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाएं द ष्टिगोचर होती हैं। अकविता वाले संवेग, संचेतना को, नव विकसित सत्य को, सहज और एक सरल ढंग से अभिव्यक्ति प्रदान करने की घोषणा करते हैं। ये अव्यवस्था, विसंगति, मूल्य हीनता, विरोधाभास और आदर्शों के अकाल से आंदोलित नहीं होते।

दूसरी प्रक्रिया विद्रोह की थी। विद्रोह की दो प्रव त्तियां होती हैं-

(i) अस्वीकृति या ध्वंस

(ii) रचना।

अकविता में 'विद्रोह' के नाम पर लिखी जाने वाली अकविताएं उनमें अधिकांश लक्ष्यविहीनता का प्रतिनिधित्व करती थीं या यौन की विकृति का प्रतिपादन करने वाली थीं। लक्ष्य-विहीनता ने इन्हें सुविधा वादी या अवसर वादी बना दिया। ये सुविधा का विद्रोह करते थे अर्थात् जहां उन्हें करने की सुविधा का अवसर प्रतीत होता था वहां विद्रोह कर डालते थे किंतु जहां उन्हें प्रतीत होता कि विद्रोह का परिणाम खतरा मोल लेना है वहां वे दुम दबाकर पतली गली से भाग लेते थे। अकविता या समकालीन कविता के कवियों को सबसे बड़ी विसंगति 'यौन' विसंगति के रूप में द ष्टिगोचर होती थी यदि इनकी द ष्टि से ओझल हो जाती थी तो इन्हें शारीरिक वीभत्सता दिखलाई पड़ती थी।

3. **आंदोलन नहीं विकास-** समकालीन कविता या अकविता आंदोलन नहीं नई कविता की जीवनोन्मुख धारा का विकास है जिसमें प्रयत्नज आंदोलन की योजनाबद्ध रेखाएं नहीं हैं अपितु वर्तमान जीवन की अनुभवजन्य विषम संवेदनाएं एवं पीड़ा-बोध हैं। ये अनुभव एवं बोध आंदोलन से नहीं अपितु सत्य से प्रेरणा प्राप्त करके वर्तमान विषम परिवेश की प्रतीति, अस्वीकृति एवं विद्रोह सभी को आवश्यकतानुसार अपने में समन्वित किए हुए हैं। सन् 1960 ई. के बाद की धारा में कवि भी आ जाते हैं जो नई कविता के विशिष्ट कवि रहे हैं जिनमें जीवनधारा की उर्जस्वलता ही प्रधान रही है या जो नई कविता की बनती हुई सीमाओं से अवगत होकर उन्हें तोड़ने हेतु पुनः अकुला उठे हैं तथा वे कवि भी हैं जिनका आविर्भाव सन् 1960 ई. के बाद हुआ है। इन कवियों ने एक ओर जीवन की विकसित चेतना और जटिलता का अनुभव किया तथा दूसरी ओर यह देखा कि नई कविता के भी फार्मूले लदने लगे हैं। उसके प्रतीक और दर्द रूढ़ बनते जा रहे हैं। प्रतीकों की ऊंची गुफा में बंद होकर कविता सर्वथा अंतर्मुखी तथा निस्पंद होती जा रही है। इस ठहराव को तोड़ना था। अकविता को पुनः जीवन निकट लाना था अथवा समकालीन कविता की जीवनधारा से अवगत होकर अग्रसर होना था।

4. **सामान्योन्मुखी-** समकालीन कविता परिवेशानुसार सामान्योन्मुखी हो गई, चीन एवं पाकिस्तान के अतिक्रमणों के अवसर पर सामान्य जवानों का बलिदान, लघु द ष्टिगोचर होने वाले लोगों का त्याग, कृषकों, श्रमिकों की महत्ता का अनुभव उभर कर सामने आया। समकालीन कविता नई कविता के उस स्वर का विकास है जो वर्तमान की प्रतिदिन के जीवन की अनुभूतियों को अति सहजता व्यक्त करता है। उन अनुभूतियों को वाणी देता है जो पल-पल के अंतर्विरोध की उपज हैं। समसामयिक कविता में एक ओर व्यक्तिगत पीड़ा या स्थिति की विषमता को व्यक्त करने वाले कवि हैं, तो दूसरी ओर स्थिति की विषमता के विरुद्ध विद्रोह का आक्रोश व्यक्त करने वाले कवि भी हैं। क्रुद्ध और विद्रोही पीढ़ी की कविताएं अधिक तेज, धक्कामार और वर्तमान जीवन की सड़ांध अधिक प्रत्यक्षता से उभारने वाली हैं। समकालीन कविता में वे कवयित्रियां भी आती हैं जिनमें वर्तमान की व्यथा अनुभूति के अति सूक्ष्म, बारीक, एवं संयत स्तर के उभार हैं। नारी की अपनी विशेषताएं होती हैं। जिसके परिणामस्वरूप कवयित्रियां कवियों की भांति उच्छ ंखल या यौन संबंधों को व्यक्त करने में प्रत्यक्ष या सामाजिक विद्रोह के प्रति अधिक अनुभववान तथा पूर्ण सक्रिय नहीं होती हैं। वे अपने परिवेश के दबाव से अनुभव करती हुई पीड़ा बोध तथा सौंदर्य बोध को अधिक तीव्रता, गहनता तथा सफलता से व्यक्त कर सकती हैं।

5. **जनक्रांति-** कवि को पूर्ण विश्वास है कि विषम व्यवस्था को दूर करने का मात्र उपाय जनक्रांति है। एकमात्र जनक्रांति के द्वारा ही अपने अस्तित्व का संज्ञान कराया जा सकता है। इसलिए कवि बैठे-बैठे काव्य स जन में ही अपना समय व्यर्थ नष्ट नहीं करता है अपितु वह आगे बढ़कर एक दावानल भड़काना चाहता है जो जनक्रांति लाए तथा विषम व्यवस्था का निवारण कर सके।

6. **राजनेताओं के प्रति क्षोभ-** देश की उत्तरोत्तर हासोन्मुखी स्थिति के लिए कवि भ्रष्ट राजनेताओं को दोषी ठहराते हैं क्योंकि इनकी क्षुद्र राजनीति मात्र कुर्सी तक सीमित है। इनका दीन ईमान सब कुर्सी है। कुर्सी के लिए वे अपना धर्म ईमान सब बेचने के लिए सदैव उद्यत रहते हैं। आवश्यकतानुसार दलबदल करना इनका परम धर्म बन गया है।

कवि ऐसी विषम परिस्थितियों में घबराने एवं चुप बैठने वाला नहीं है साफ-साफ विरोध करता है।

7. **भाषा-भंगिमा-** समकालीन कवियों की भाषा विचार एवं भावानुसारिणी है। सपाटपना अधिक है। लोक मानस की सहज, सरल एवं स्वाभाविक भाषा का प्रयोग किया गया है पारिवेशिक विसंगतियों - विद्रूपताओं के चित्रण में मार्मिक शैली अपनाई गई। वहां भाषा को नवीन शक्ति प्राप्त हो जाती है। समकालीन कविता की भाषा अभिजात्य सांस्कारिक नहीं है, अपितु अनुजन्य आम बोलचाल की भाषा है। अप्रस्तुत विधान, बिंब विधान एवं प्रतीक योजना का आवश्यकतानुसार पूर्ण समावेश है।

क्षणिकाएं- बीसवीं सदी के सातवें दशक में गद्य विद्या में कहानी का लघु रूप 'लघु कथाओं' ने लिया। उसके आधार पद्य विद्या में कविता के लघु रूप में 'क्षणिकाएं' आईं। जिनका आयाम अति लघु होता है। वर्तमान काल में भी क्षणिकाएं पत्र पत्रिकाओं में यत्र-तत्र प्रकाशित होती रहती है। ये भी समकालीन कविता का लघु-संस्करण हैं।

रचनाकार-

समकालीन कविता के क्षेत्र में नई कविता के कवि भी हैं तथा बीसवीं सदी के सातवें दशक के उभरने वाले कवि भी हैं। इन युवा कवियों में पद्माधर त्रिपाठी, धूमिल, ऋतुराज, चंद्रकांत देव ताले, लीलाधर जगूड़ी, विष्णु चन्द्र शर्मा, प्रणव कुमार बंद्योपाध्याय आदि प्रमुख हैं।

हिन्दी गद्य

हिन्दी गद्य - विधाओं का उद्भव एवं विकास

साहित्य की प्रमुख विधाएं पद्य एवं गद्य हैं। गद्य की प्रमुख विधाएं कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबंध एवं आलोचना हैं। इनके अतिरिक्त गद्य की कुछ अन्य विधाएं संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा तथा रिपोर्ताज हैं।

24. कहानी : उद्भव एवं विकास

मानव के आदि काल से कहानी कहने, सुनने, सुनाने की प्रव त्ति चली आ रही है। विश्व के प्राचीनतम ग्रंथों में कहानी का महत्व प्रायः देशों में है। भारतीय वांगमय में वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश तथा पुरानी हिंदी में किसी न किसी स्वरूप में कहानी विद्यमान है, इसके अतिरिक्त पुराणों, उपनिषदों, ब्राह्मणों, रामायण, महाभारत, पालि जातक, तथा पंचतंत्र आदि में कहानियों का भंडार भरा पड़ा है। इन सभी कहानियों में उपदेशात्मक अथवा धार्मिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। आधुनिक अर्थ में इन्हें कहानी नहीं कहा जा सकता है।

कहानी शब्द की व्याख्या

'कहानी' शब्द संस्कृत कथानिका प्राकृत कहाणिआ, सिंहली-मराठी कहानी से विकसित हुआ है जिसका अर्थ मौखिक या लिखित कल्पित या वास्तविक, तथा गद्य या पद्य में लिखी हुई कोई भाव प्रधान या विषय प्रधान घटना, जिसका मुख्य उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना, उन्हें कोई शिक्षा देना अथवा किसी वस्तु स्थिति से परिचित कराना होता है। इसका अंग्रेजी पर्याय 'स्टोरी' है।

आधुनिक हिंदी कहानी का प्रारंभ उन्नीसवीं सदी में हुआ जिसे कहानी या कथा कहते हैं इसका शाब्दिक अर्थ 'कहना' है। इस अर्थ के अनुसार जो कुछ भी कहा जाये कहानी है। किंतु विशिष्ट अर्थ में किसी विशेष घटना के रोचक ढंग से वर्णन को 'कहानी' कहते हैं। 'कथा' एवं 'कहानी' पर्यायवाची होते हुए भी समानार्थी नहीं हैं। दोनों के अर्थो में सूक्ष्म अंतर आ गया है। कथानक व्यापक अर्थ की प्रतीति कराता है इसमें कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी आदि का समावेश हो जाता है। कथा साहित्य के अंतर्गत मुख्य रूप से कहानी एवं उपन्यास को ही माना जाता है जबकि कहानी के अंतर्गत कहानी और लघु कथाएं ही आती हैं।

यूरोप में विकसित कहानी का स्वरूप अंग्रेजी और बंगला के माध्यम से बीसवीं शताब्दी के आरंभ में भारत आया।

प्राचीन कहानी एवं आधुनिक कहानी के स्वरूप में पर्याप्त अंतर है। आधुनिक कहानी जनसाधारण मनुष्य जीवन से संबंधित लौकिक यथार्थवादी, विचारात्मक धरती के सुख तक सीमित है।

हिंदी की प्रथम कहानी

हिंदी की प्रथम कहानी किसे माना जाए इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। लगभग दर्जन भर कहानियां प्रथम कहानी की होड़ में सम्मिलित हैं जिन्हें आलोचक मान्यता प्रदान करते हैं।

सन् 1803 ई. में लिखी गई, हिंदी गद्य में कहानी शीर्षक से प्रकाशित होने वाली प्रथम रचना 'रानी केतकी की कहानी' है। इस कहानी के लेखक इंशा अल्ला खां हैं। डॉ. राम रतन भटनागर ने 'रानी केतकी की कहानी' को हिंदी प्रथम कहानी स्वीकारा है। किंतु इसकी संयोग बहुलता, अतिमानवीयता के कारण इसे प्रथम कहानी के रूप में नहीं स्वीकारा जा सकता है क्योंकि ये विशेषताएं आधुनिक कहानी में क्षम्य नहीं है। इसके विषय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन समीचीन प्रतीत है कि यह नई परंपरा की प्रारंभिक कहानी नहीं है, बल्कि मुस्लिम प्रभावापन्न परंपरा की अंतिम कहानी है।

डॉ. बच्चन सिंह ने किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'प्रणायिनी परिणय' (सन् 1887 ई.) को हिंदी की प्रथम कहानी माना है जबकि स्वयं इसके लेखक ने इसे उपन्यास कहा है। कारण यह बताया गया है कि सन् 1900 ई. तक कथा साहित्य को उपन्यास कहने की परिपाटी थी। इसलिए यह भी प्रथम कहानी नहीं है। क्योंकि इसका विभाजन सात निष्कों में किया गया है। प्रत्येक निष्क को अलग खंड मान लेने पर कहानी कई खंडों में विभक्त प्रतीत होती है। इस तरह खंडों में विभाजित कर कहानी लिखने की परिपाटी चलती रही है। प्रत्येक निष्क या खंड के प्रारंभ में श्लोक बद्ध नीति कथन हैं जो कहानी के रूप विन्यास में बाधक सिद्ध होते हैं। इस कहानी के रूप बंध पर आख्यान पद्धति का पूर्ण प्रभाव हैं। संस्कृतनिष्ठ शब्दावली में केन्द्रीय भाव प्रगाढ़ प्रेम की सुखद परिणति दिखलाई गई है।

रैवरेंट जे. न्यूटन कृत 'जमींदार का द ष्टांत' तथा अनाम 'छली अरबी की कथा' नामक दो कहानियां अलीगढ़ से प्रकाशित 'शिलापंख' मासिक के 'कल की कहानी' स्तंभ में प्रकाशित देखकर यह अनुमान लगाया किंचित ये ईसाई धर्म प्रचार हेतु लिखी गई है। 'शिलापंख' के संपादक राजेंद्र गढ़वालिया ने सन् 1871 ई. में प्रकाशित इस कहानी को अब तक प्राप्त कहानियों में प्राचीनतम माना है। प्राचीनतम होकर भी प्रथम कहानी नहीं क्यों धर्म प्रचार हेतु लिखी गई है।

डॉ. सुरेख सिन्हा गोस्वामी कृत 'इन्दुमती' को प्रथम कहानी मानने पर बल देते हुए लिखा है, "प्रथम कहानी का निर्धारण समय क्रम से होना चाहिए न कि कथानक, शिल्प, विचार धारा, या अन्य किसी द ष्टिकोण से।"

'रानी केतनी की कहानी' के पश्चात् राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद कृत 'राजा भोज का सपना'; भारतेंहु हरिश्चन्द्र कृत 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें कहानी की सी रोचकता विद्यमान है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक ढंग की कहानियों का आरंभ 'सरस्वती पत्रिका' के प्रकाशन काल से स्वीकारा है। 'सरस्वती' में प्रकाशित कहानियां इस प्रकार हैं-

(i) इंदुमती - किशोरी लाल गोस्वामी (1900 ई.)

(ii) गुलबहार - किशोरी लाल गोस्वामी (1902 ई.)

(iii) प्लेग की चुडैल - मास्टर भगवान दास (1902 ई.)

(iv) ग्यारह वर्ष का समय - राम चन्द्र शुक्ल (1903 ई.)

(v) पंडित और पंडितानी - गिरजादत्त बाजपेयी (1903 ई.)

(vi) दुलाई वाली - बंग महिला (1907 ई.)

ये सभी कहानियां 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थीं। इस प्रकार प्रथम कहानीकार किशोरी लाल गोस्वामी तथा प्रथम कहानी 'इंदुमती' प्रमाणित होती है। 'इंदुमती' की चर्चा प्रायः प्रत्येक समीक्षक ने की है। इस पर टेम्पेस्ट की छाया मानकर इस की मौलिकता पर भी प्रश्न चिह्न लगा दिया। रामचन्द्र शुक्ल 'इंदुमती' को ही प्रथम कहानी मानते हैं।

रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, "यदि 'इंदुमती' किसी बंगला कहानी की छाया नहीं है तो हिंदी की यही पहली मौलिक कहानी ठहरती है इसके उपरांत 'ग्यारह वर्ष का समय' और 'दुलाईवाली' का नंबर आता है।"

सुरेश सिन्हा को शुक्ल के कथन में चालाकी की गंध आती है। उन्हें लगता है कि इंदुमती को अनूदित करार देकर अपनी कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' को प्रतिष्ठित करना चाहते थे। किंतु यह प्रमाणित हो चुका है कि 'इंदुमती' मौलिक रचना नहीं है।

डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल शिल्प की द ष्टि से रामचन्द्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय' (सन् 1903) हिंदी की प्रथम कहानी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी इसे आधुनिकता के लक्षण से युक्त माना है।

देवी प्रसाद वर्मा, ओंकार शरद और देवेश ठाकुर आदि समीक्षकों ने 'छत्तीसगढ़ मित्र' में प्रकाशित माधव राव सप्रे कृत 'एक टोकरी भर मिट्टी' (सन् 1901) को हिंदी की प्रथम कहानी का श्रेय दिया है। देवेश ठाकुर के अनुसार काल क्रमानुसार अपने समय के यथार्थ परिवेश से जुड़ी है। शिल्प की द ष्टि से सहजता, सरलता तथा भाषा की शुद्धता इसमें है। अतः जब तक इस दिशा में और अधिक शोध न हो जाए मान लेना चाहिए कि माधव राव सप्रे कृत 'एक टोकरी भर मिट्टी' हिंदी की प्रथम कहानी है।

आर्थिक चेतना की कहानी होने के कारण यह आधुनिक अर्थमूला कहानियों की पहचान की पहली हिंदी कहानी है। (डॉ.

रामदरश मिश्र) 'दुलाईवाली' (सन् 1907 ई.) को यथार्थवादी चित्रण की सर्वप्रथम रचना माना है। किंतु वंग महिला का नाम नहीं ज्ञात है।

प्रो. वासुदेव 'इंदु' में प्रकाशित 'ग्राम' (1911 ई.) को हिंदी की पहली कहानी का गौरव प्रदान करते हैं। प्रसाद की यह पहली कहानी है।

शिवदान सिंह चौहान के विचार में हिंदी कहानी का श्रीगणेश प्रसाद और प्रेमचन्द से माना जाना चाहिए।

राजेन्द्र यादव चन्द्रधर शर्मा गुलेरी कृत - 'उसने कहा था' (1916) को हिंदी की पहली मौलिक कहानी मानते हुए इसी से आधुनिक हिंदी कहानी का श्रीगणेश मानना चाहिए

अब तक 'दुलाई वाली' को ही प्रथम कहानी माना जाता है। 'जमींदार का द ष्टांत' (1871 ई.) को अंग्रेजों की लिखी कहानी को प्रथम श्रेय नहीं मिलना चाहिए।

'दुलाईवाली' या 'ग्यारह वर्ष का समय' को हिंदी की प्रथम कहानी का श्रेय मिलना श्रेयस्कर है।

हिंदी कहानी - विकास- हिंदी कहानी के विकास में प्रेम चन्द केन्द्र बिन्दु हैं जिन्हें आधार बनाकर प्रेम चन्द पूर्वोत्तर, प्रेमचन्द, प्रेमचन्द परवर्ती युग के विभाग द्वारा संपूर्ण कहानी काल का विवेचन किया जाता रहा है। यह कहना कि प्रसाद का महत्व खो जाता है उनका युग नहीं बन पाता है। वे मूलतः कवि हैं उनका युग माना जा सकता है माना जाए। चरणों में अध्ययन वैज्ञानिक न होते भी आसान है किंतु सन् 1950 ई. से आज तक एक ही चरण नहीं माना जाना चाहिए। लगभग पांच चरणों में कहानी के विकास को विभाजित किया जाना श्रेयस्कर प्रतीत होता है।

(i) प्रथम चरण (सन् 1870 - 1915 ई.)
(ii) द्वितीय चरण (सन् 1916 - 1935 ई.)
(iii) त तीय चरण (सन् 1936 - 1955 ई.)
(iv) चतुर्थ चरण (सन् 1956 - 1975 ई.)
(v) पंचम चरण (सन् 1976 से आज तक)

प्रथम चरण (सन् 1870-1915 ई.)

हिंदी का प्रारंभिक कहानियों के विषय में डॉ. रामदरश मिश्र का कथन सत्य है कि इनमें यथार्थ समर्थित आदर्श की व्यंजना लक्ष्य रूप में विद्यमान है। 'इंदुमति', 'दुलाई वाली', 'ग्यारह वर्ष का समय', 'जमींदार का द ष्टांत', 'प्रणयिनी परिणय', 'छली अरब की कथा' तथा 'एक टोकरी भर मिट्टी' आदि प्रमुख कहानियां हैं। जमींदार का द ष्टांत तथा प्रणयिनी परिणय में परोपकारी भावना का चित्रण किया गया है। 'एक टोकरी भर मिट्टी' की परिणति परहित में हुई है। 'जमींदार का द ष्टांत' में महाजन कृषकों की परेशानी से अवगत होकर सोचता है कि मेरे पास अपार धन दौलत है। इनके आर्थिक संकट का निवारण मैं कर सकता हूं। 'प्रणयिनी परिणय' में राजाराम शास्त्री की सहायता करता है। परोपकारी व त्ति के आदर्श के साथ राज्य कर्मचारियों की धन लिप्सा के यथार्थ की ओर भी संकेत किया गया है - "ऐसी चपलता, क्या राज्य कर्मचारी ऐसे-ऐसे भयंकर लालच से बच सकते हैं? फिर तब क्या अनर्थ न्यून होने की संभावना हो सकता है? यदि इस समय मैं न होता तो इधर न्यायाधीश अवश्य ही घूस लेकर इसे छोड़ देते।" 'ग्यारह वर्ष का समय' में प्रेम के आदर्श की अभिव्यक्ति हुई है - इस अद ष्ट प्रेम का कर्म और कर्त्तव्य से घनिष्ठ संबंध है। इसकी उत्पत्ति केवल सदाशय और निःस्वार्थ हृदय में ही हो सकती है।

इस कालावधि की अधिकांश कहानियों में भावुकता और संयोग का बाहुल्य द ष्टिगोचर होता है। 'ग्यारह वर्ष का समय' में दीर्घ काल के उपरांत पति पत्नी का मेल एकाएक एक टूटे फूटे निर्जन भवन में हो जाता है। 'इंदुमती' में भी संयोग से ही चन्द्रशेखर इंदुमती का अतिथि बन जाता है। राधिका रमण सिंह कृत 'कानों में कंगना' में गहरी भावुकता के दर्शन होते हैं। अधिकांश कहानियां अंग्रेजी एवं बंगला कहानियों से प्रभावित हैं। कहानी शिल्प अति अव्यवस्थित है मात्र 'छली अरब की कथा' और 'एक टोकरी भर मिट्टी' शिल्प की द ष्टि से कसी हुई कहानियां हैं। यद्यपि इन कहानियों का महत्व नहीं है। इतना अवश्य है कि अब तक कहानीकारों के एक मंडल का गठन हो चुका था तथा पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से कहानी एक लोकप्रिय विधा का रूप धारण करती जा रही थी। (देवेश ठाकुर)

द्वितीय चरण (सन् 1916-1935 ई.)

प्रेमचन्द-

द्वितीय चरण को कहानी की प्रेमचन्द की अपूर्व देन के कारण प्रेमचन्द युग कहा जाता है। मुंशी प्रेमचन्द द्वारा रचित कहानियों की संख्या लगभग तीन सौ से अधिक है जो मान सरोवर के आठ भागों में संग्रहीत हैं। इसके अतिरिक्त इनकी कहानियों के संग्रह 'सप्तसरोज', 'नव निधि', 'प्रेम पचीसी', 'प्रेम पूर्णिमा', 'प्रेम द्वादशी', 'प्रेम तीर्थ', तथा 'सप्त सुमन' आदि हैं। प्रेमचन्द पहले उर्दू में लिखते थे। उनका उर्दू में लिखा हुआ प्रसिद्ध कहानी संग्रह सोचे वतन सन् 1907 ई. में प्रकाशित हुआ था जो स्वातंत्र्य भावनाओं से ओत-प्रोत होने के कारण अंग्रेजी सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था। सन् 1919 ई. में उनकी हिंदी रचित प्रथम कहानी 'पंच परमेश्वर' प्रकाशित हुई। उनकी कहानियों में इसके अतिरिक्त 'आत्माराम', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'रानी सारंघा', 'वज्रपात', 'अलग्योझा', 'ईदगाह', 'पूस की रात', 'सुजान भक्त', 'कफन', 'पंडित मोटे राम' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचन्द की कहानियों में जन साधारण के जीवन की सामान्य परिस्थितियों, मनोव त्तियों एवं समस्याओं का मार्मिक चित्रण हुआ है। वे साधारण से साधारण बात को भी मर्मस्पर्शी रूप में प्रस्तुत करने की कला में निपुण कहानीकार थे। उनकी शैली सरल स्वाभाविक एवं रोचक है। जो पाठक के हृदय पर सीधा प्रहार करती है। उनकी सभी कहानियां सोद्देश्य हैं - उनमें किसी न किसी विचार या समस्या का अंकन हुआ है किन्तु इससे उनकी रागात्मकता में कोई न्यूनता नहीं आई है। भाव-विचार, कला-प्रचार का सुंदर समन्वय किस प्रकार किया जा सकता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण प्रेम चंद का कहानी साहित्य है।

द्वितीय चरण में हिंदी कहानी दो विशिष्ट धाराओं में विभक्त होकर चलती है-

(i) प्रथम धारा व्यक्ति हित या व्यक्ति सत्य के भावात्मक अंकन की है, जिसके सर्वप्रथम प्रमुख कहानीकार जयशंकर प्रसाद हैं और रायकृष्ण दास, विनोद शंकर व्यास तथा चतुरसेन शास्त्री इस परंपरा को अग्रसर करने वाले सहयोगी हैं।

(ii) द्वितीय धारा के विषय में डॉ. इंद्रनाथ मदान का कथन है "हिंदी कहानी के विकास की दूसरी दिशा जिसमें समष्टि-सत्य की संवेदना है, समष्टि - विकास की संचेतना है, समष्टि मंगल की भावना है, समष्टि यथार्थ को आत्मसात करने की प्रेरणा है, प्रेम चन्द के कहानी साहित्य से आरंभ होती है।" प्रेमचन्द के समसामयिक कहानीकार सुदर्शन और विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक प्रेमचन्द की कथा द ष्टि का समर्थन करते हुए द ष्टिगोचर होते हैं।

प्रेमचन्द और उनके सहयोगी कहानीकारों में समकालीन यथार्थ की आदर्शात्मक परिणति मिलती है। अपनी कहानी यात्रा के अंतिम चरण में प्रेमचंद ने स्वयं को आदर्श के मोह से अलग कर दिया था लेकिन सुदर्शन, विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' ज्वाला दत्त शर्मा आदि बराबर आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहानियां लिखते रहे। इस द ष्टि से कौशिक की 'रक्षा बंधन', 'सुदर्शन की एलबम', 'हार जीत' और 'एथेन्स का सत्यार्थी' उल्लेखनीय कहानियां हैं। प्रेमचन्द की कहानी यात्रा के तीन मोड़ माने जा सकते हैं।

(i) 'पंच परमेश्वर', 'बड़े घर की बेटी', 'नमक का दरोगा' आदि प्रारंभिक कहानियों में उनका आग्रह पुरातन आदर्शों को प्रतिष्ठित करता प्रतीत होता है। इन कहानियों में उपदेश का प्रच्छन्न स्वर सुनाई देता है।

(ii) सन् 1920-30 ई. के मध्य लिखी गई गांधी वादी विवाद धारा सतह पर है।

(iii) 'मैकू', 'शेख नाद', 'दुर्गा मन्दिर', 'सेवा मार्ग' आदि कहानियों में प्रेम चन्द स्थूल कथात्मकता को छोड़कर यथार्थ को विश्लेषण और संकेत के स्तर पर ग्रहण करते दिखाई देते हैं। डॉ. बचन कुमार सिंह के अनुसार, "चरित्रों के चित्रण में मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताओं का समावेश भी उनमें आ गया है। नाटकीयता तथा व्यंग्य के पैनेपन के कारण उसमें जीवंतमयता और प्रभान्विति की घनता आ गई है। 'नशा', 'पूस की रात' और 'कफन' आदि कहानियां प्रेम चन्द की कहानी कला के अंतिम चरण की है। यहां तक आते-आते प्रेम चन्द अपनी सारी आस्थाओं का परित्याग कर देते हैं और जीवन के प्रति उनकी द ष्टि अधिक तीखी और निर्मम हो गई है। इन कहानियों में जो सूक्ष्मता और सांकेतिकता विद्यमान है वह 'नई कहानी' की अच्छी कहानियों में भी नहीं है। यह कम महत्वपूर्ण नहीं है कि हिंदी कहानी का विकास प्रेमचन्द द्वारा संकेतित दिशा में ही हुआ है।

प्रेमचन्द की कहानियों में जहां एक ओर युग का सच्चा चित्रण है, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संदर्भो के विश्लेषण की कोशिश है वहीं दूसरी ओर प्रेम, सहानुभूति, तपस्या, सेवा आदि महनीय मूल्यों का जोरदार समर्थन उनमें है। अधिकांश कहानियों

में प्रेम चंद ने जन साधारण के जीवन को उसी की भाषा में उपस्थित किया है। वे संभवतः पहले कहानीकार हैं जिनकी कहानियों में ग्रामीण जीवन अपनी समूची शक्ति और सीमा के साथ उभरा है। डॉ. भगवत स्वरूप मिश्र ने लिखा है, "मानव स्वभाव के परिचय, युगबोध, विषय क्षेत्र के विस्तार, कहानी कला के उत्कर्ष आदि की द ष्टि से प्रेमचन्द स्कूल का एक भी कहानीकार प्रेमचन्द की गरिमा को नहीं पहुंच सका।"

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद की प्रथम कहानी 'ग्राम' सन् 1911 ई. में 'इंदु' में प्रकाशित हुई और जीवनपर्यत उन्होंनके कुछ 69 कहानियां लिखीं। देवेश ठाकुर का कथन है, "प्रसाद जी पहले कहानीकार हैं जिन्होंने हिंदी को बंगला, अंग्रेजी तथा फ्रेंच अनुवादों से मुक्त कर, उसके स्वरूप को मौलिकता और स्थिरता प्रदान की।" इसी आधार पर कुछ आलोचक प्रसाद को प्रथम कहानीकार तथा उनकी कहानी 'ग्राम' को प्रथम कहानी मानते हैं। प्रसाद की कहानियों की विशिष्टता उनके पात्रों के अंतर्द्वन्द्व उद्‌घाटन, काव्यात्मक अभिव्यक्ति और कहानी के मार्मिक अंत में निहित है, यद्यपि कविता और नाटक का शिल्प कभी कहानी में प्रमुख हो उठता है और उसकी संरचना में गड़बड़ी पैदा करता है।

प्रसाद की कहानियों में वस्तुगत वैविध्य बिलकुल न हो, ऐसा नहीं है। 'पुरस्कार', 'दासी तथा गुंडा' आदि में इतिहास का प्रयोग किया गया है जबकि 'मछुआ बड़ा' और 'छोटा जादूगर' में सामाजिक विषमता को उभारा गया है। अधिकतर कहानियों में कथा सूत्र की क्षीणता द ष्टिगोचर होती है। लेकिन 'दासी' एवं 'सालवती' आदि कहानियों में अनावश्यक अंश भी कम नहीं है। भावुकता की स्फीति कहानी को प्रतिघातित करती है। इन दोषों के होते हुए भी प्रसाद की कथन भंगिमा और चारित्रिक स ष्टि कहानियों को अविस्मरणीय बना देती है। प्रसाद का शिल्प प्रायः 'ग्राम' कहानी से लेकर 'सालवटी' तक एक समान रहा है और इसका अनुकरण नहीं हो पाया है। प्रसाद की शैली में लिखी गई हृदयेश और विनोद शंकर व्यास की अनेक कहानियां असफल रही हैं। उनके शिल्प के संबंध में डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल ने लिखा है, "हिन्दी कहानी साहित्य में प्रसाद जी एक ऐसे कहानीकार हैं जिनकी कहानी भावों की अनुवर्तिनी रही है। शिल्प की अनुवर्तिनी नहीं।"

विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक'

विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' (सन् 1891 - 1946 ई.) उर्दू से हिंदी में आने वाले प्रेमचंद युगीन कहानीकार हैं। उनकी प्रथम कहानी 'रक्षाबंधन' सन् 1913 ई. में प्रकाशित हुई थी। विचारधारा की द ष्टि से कौशिक प्रेमचन्द की परंपरा में आते हैं। उन्होंने समाज सुधार को कहानी का लक्ष्य बनाया। उनकी कहानियों की शैली अत्यंत सरस, सरल एवं रोचक है। उनकी हास्य एवं विनोद से भरी हुई कहानियां 'चांद' में 'दुबे जी की चिट्ठियां' के रूप में प्रकाशित हुई थीं। उन्होंने लगभग 300 कहानियां लिखीं। जो 'कल्पमंदिर', 'चित्रशाला' आदि में संग्रहीत हैं।

आचार्य चतुर सेन शास्त्री

आचार्य चतुर सेन शास्त्री ने अपनी कहानियों में सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। उनकी कहानियों के संग्रह 'रजकण' और 'अक्षत' आदि प्रकाशित हुए हैं। उनकी प्रमुख कहानियां में 'दुखवा मैं कासे कहूं मोरी सजनी', 'दे खुदा की राह पर', 'भिक्षुराज' तथा 'ककड़ी की कीमत' विशेष उल्लेखनीय हैं।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

प्रेमचन्द युगीन कहानीकारों में मात्र तीन कहानी लिखकर ख्याति प्राप्त करने वाले चंद्रधर शर्मा गुलेरी हैं। हिंदी कहानी साहित्य में इनका बहुत ऊँचा स्थान है। उनकी प्रथम कहानी 'उसने कहा था' सन् 1915 में प्रकाशित हुई थी जो अपने ढंग की अनूठी रचना है। इसमें किशोरावस्था के प्रेमांकुर का विकास, त्याग, और बलिदान से ओत-प्रोत पवित्र भावना के रूप में किया गया है। कहानी का अंत गंभीर एवं शोकप्रद होते हुए भी इसमें हास्य एवं व्यंग्य का समन्वय इस ढंग से किया गया है कि उसमें मूल स्थायी भाव को कोई ठेस नहीं पहुंचती है। विभिन्न द श्यों के चित्रण में सजीवता, घटनाओं के आयोजन में स्वाभाविकता एवं शैली की रोचकता सभी विशेषताएं एक से बढ़कर एक हैं। कहानी की प्रथम पंक्ति ही पाठक के हृदय को पकड़कर बैठ जाती है और जब तक वह पूरी कहानी को पढ़ नहीं लेता है उसे छोड़ती नहीं है तथा जिसने एक बार कहानी पढ़ लिया वह 'उसने कहा था' वाक्य को आजीवन विस्म त नहीं कर पाता है। भाव, विचार, शिल्प तथा शैली आदि सभी द ष्टियों से यह कहानी एक अमर कहानी है। गुलेरी की दूसरी कहानी 'सुखमय जीवन' भी पर्याप्त रोचक एवं भावोत्तेजक है। इसमें एक अविवाहित

युवक के द्वारा विवाहित जीवन पर लिखी गई पुस्तक को लेकर अच्छा विवाद खड़ा किया गया है। जिसकी परिणति एक अत्यंत रोचक प्रसंग में हो जाती है। 'बुद्धू का कांटा' भी अच्छी कहानी है।

पं. बद्रीनाथ भट्ट 'सुदर्शन'

सुदर्शन का जन्म सन् 1896 ई. में हुआ था। कहानी कला में इनका महत्व कौशिक के समान स्वीकारा गया है। इनकी प्रथम कहानी 'हार की जीत' 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। तब से अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जैसे 'सुदर्शन सुधा', 'सुदर्शन सुमन', 'तीर्थ यात्रा', 'पुष्प लता', 'गल्प मंजरी', 'सुप्रभात', 'नगीना', 'चार कहानियां', तथा 'पनघट' आदि। उन्होंने अपनी कहानियों में भावनाओं एवं मनोव त्तियों का चित्रण अत्यंत सरल एवं रोचक शैली में किया है।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'

उग्र का हिंदी कहानी जगत में प्रवेश सन् 1922 ई. में हुआ। उग्र की उग्रता को परिलक्षित आलोचकों ने उन्हें 'उल्कापात', 'धूमकेतु', 'तूफान' तथा 'बवंडर' आदि नामों से विभूषित किया। इसी से आपकी विद्रोही प्रव त्ति का अनुमान लगाया जा सकता है जिसको ऐसी ऐसी उपमाएं या उपाधियां मिली हों उसकी कहानी कला कैसी होगी? सहज अनुमान लगाया जा सकता है। उनकी कहानियों 'वीभत्स' एवं 'कुरूपता' को भी स्थान मिल गया है किन्तु उग्र का उद्देश्य जीवन की कुरूपता का प्रचार करना नहीं था अपितु कुरूपता का समूल अंत करना था। उनके कहानी संग्रह 'दोजख की आग', 'चिंगारियां', 'बलात्कार' तथा 'सनकी अमीर' आदि प्रकाशित है।

ज्वालादत्त शर्मा

ज्वालादत्त शर्मा ने बहुत कम कहानियां लिखी हैं किन्तु हिन्दी जगत ने उनका अच्छा स्वागत किया है। उनकी कहानियों में 'भाग्य चक्र' तथा 'अनाथ बालिका' आदि उल्लेखनीय हैं।

इन कहानीकारों के अतिरिक्त द्वितीय चरण के अन्य कहानीकार रामकृष्ण दास, विनोद शंकर व्यास के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

त तीय चरण (सन् 1936-1955 ई.)

हिंदी कहानी का त तीय चरण जैनेंद्र के आगमन से आरंभ होता है। त तीय चरण की कहानियों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(i) **व्यक्ति** - सत्य का उद्‌घाटन, मनोवैज्ञानिक धारणाओं के संदर्भ में करने वाली कहानियां - जिनका प्रतिनिधित्व जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, भगवती प्रसाद वाजपेयी और पहाड़ी आदि कहानीकार करते हैं।

(ii) **समाज सापेक्ष**- इस वर्ग की कहानियों का समाज सापेक्ष प्रश्नों से संबंध है। इस वर्ग के प्रमुख कहानीकार यशपाल, रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' और अम त राय हैं।

(iii) **व्यक्ति सत्य-समष्टि सत्य-** इस वर्ग में वे कहानीकार आते हैं जो व्यक्ति सत्य तथा समष्टि सत्य दोनों को सुविधानुसार अपनी कहानियों का आधार बनाते हैं। अश्क और भगवती चरण वर्मा आदि इसी वर्ग में आते हैं।

जैनेन्द्र कुमार

जैनेन्द्र कुमार ने स्थूल समस्याओं को कहानी का विषय न बनाकर सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विषयों को कहानी का विषय बनाया। उन्होंने हिन्दी कहानी को एक नवीन अंतर्द ष्टि, संवेदनशीलता एवं दार्शनिक गहनता प्रदान की। सामान्य मानव की सामान्य परिस्थितियों को न लेकर असामान्य मानव की असामान्य परिस्थितियों से प्रभावित मानसिक प्रक्रियाओं का व्यापक विश्लेषण किया है। उनका द ष्टिकोण समष्टिगत न होकर व्यष्टिगत था, भौतिकवाद की अपेक्षा आध्यात्मिक वाद था। उनके पास विषय सामग्री का अभाव द ष्टिगोचर होता है। इसलिए प्रत्येक रचना में एक ही तथ्य का पिष्टपेषण करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। घटनाओं की अपेक्षा उन्होंने चरित्र-चित्रण तथा शैली को अधिक महत्व दिया है। इनकी कहानियों के संग्रह 'वातायन', 'स्पध ा', 'पाजेब', 'फांसी', 'एक रात', 'जयसंधि' तथा 'दो चिड़िया' आदि हैं।

जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज'

जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' ने अपनी कहानियों में करुण रस की अभिव्यक्ति मौलिक ढंग से की है। उनके कहानी संग्रह 'किसलय', 'म दुल' तथा 'मधुमयी' आदि प्रकाशित हुए हैं। इनकी कहानियों में मार्मिकता का हृदय ग्राह्य रूप मिलता है। इसलिए इनकी कहानियों का स्थान अत्यधिक ऊंचा है।

चंडीप्रसाद 'हृदयेश'

चंडी प्रसाद हृदयेश का द ष्टिकोण आदर्शवादी था। उनकी कहानियों में सेवा, त्याग, बलिदान तथा आत्म शुद्धि आदि की उच्च भावनाओं का चित्रण किया गया है। उनमें भावुकता की प्रधानता है। उनकी कहानी के संग्रह 'नंदन निकुंज' तथा 'वनमाला' आदि नामों से प्रकाशित हुए हैं।

गोविंद वल्लभ पंत

गोविंद वल्लभ पंत की कहानियों में यथार्थ की कटुता तथा कल्पना की रंगीनी का दिव्य समन्वय मिलता है। उनमें प्रणय-भावनाओं का चित्रण अति मधुर रूप में किया गया है।

सियाराम शरण गुप्त

सियाराम शरण गुप्त ने कविता की तरह कहानी क्षेत्र में भी अच्छी सफलता प्राप्त की है। उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी 'झूठ-सच' है जिसमें आधुनिक युगीन यथार्थ वादी लेखकों पर तीखा व्यंग्य किया है। कहानी कला की द ष्टि से भी यह कहानी अद्वितीय है। उनकी कहानियों का संग्रह 'मानुषी' है।

व ंदावन लाल वर्मा

व ंदावन लाल वर्मा ने कहानी की अपेक्षा उपन्यास के क्षेत्र में अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की है। उनकी कहानियों में भी कल्पना एवं इतिहास का समन्वय मिलता है। इनकी कहानियों का संग्रह 'कलाकार का दंड' है। वर्मा की शैली में सरलता एवं स्वाभाविकता होती है।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

अज्ञेय की कहानियां अभिजात्य बौद्धिकता द्वारा लिखी गई मनोवैज्ञानिक कहानियां हैं। कथ्यगत विविधता के होते हुए भी इन कहानियों का अनुभव सांसारिक, व्यक्तिगत तथा अत्यधिक सीमित है। मनोविज्ञान के सिद्धांतों का स्मरण और सचेत रूप से केन्द्रित करने का आग्रह भी 'कड़ियां', 'पुलिस की सीटी', 'लेटर बॉक्स', 'हीलोबीन बतखें' आदि कुछ कहानियों में अत्यधिक मुखर हो उठा है। डॉ. रामदरश मिश्र का कथन है, "अज्ञेय का गरिष्ठ व्यक्तित्व उनकी कहानियों को एक निजता प्रदान करता है। इस निजता की बनावट बड़ी जटिल है। इसीलिए इनकी कहानियों में लेखक की वैचारिकता, अनुभव, अध्ययन, तटस्थता, मानवीय प्रतिबद्धता आदि का बड़ा ही जटिल सहअस्तित्व दिखाई पड़ता है। इस जटिल सहअस्तित्व का परिणाम शुभ-अशुभ दोनों है। एक ओर वे इसके चलते 'रोज' जैसी अच्छी कहानी लिखने में समर्थ एवं सफल सिद्ध हुए हैं, वहीं दूसरी ओर घोर बौद्धिकता से परिपूर्ण रचनाएं भी उन्होंने की हैं। 'रोज' में एक रस और यांत्रिक ढंग से जीवन जीने का संदर्भ अति सहजता किंतु तीखेपन के साथ चित्रित हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि अज्ञेय मनोविज्ञान के किसी सिद्धांत के प्रतिपादन हेतु कहानी लिख रहे हैं।

यशपाल, रांगेय राघव, अम त लाल नागर एवं बेचन शर्मा 'उग्र'

सामाजिक समस्याओं का समाधान प्राप्त करना तथा उसी में जूझते रहने का क्रियाकलाप करने का श्रीगणेश मुंशी प्रेमचंद ने किया था। सामाजिक समस्याओं का समाधान प्राप्त करने में यशपाल, रांगेय राघव, अम तलाल नागर एवं बेचन शर्मा 'उग्र' उनके अनुगामी रहे हैं।

यशपाल

यशपाल सामाजिक प्रश्नों एवं समस्याओं को मार्क्सवादी जीवन द ष्टि के माध्यम से देखते हैं क्योंकि वे मार्क्सवादी कामरेड था। साम्यवाद को प्रधानता देते थे। सन् 1936 ई. में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। जिसने तत्कालीन रचनाकारों पर अपना प्रभाव डालना प्रारंभ कर दिया तथा प्रगतिशील रचनाएं सामने आने लगीं।

यशपाल इन प्रतिबद्ध रचनाकारों में अग्रगण्य थे। यशपाल का अनुभव संसार अति व्यापक तथा वैविध्यपूर्ण है। एक ओर मध्यवर्गीय जीवन की विसंगति, असहायता और यातना को व्यक्त करने वाली 'परदा', 'फूलों का कुरता', 'प्रतिष्ठा का बोझ' आदि कहानियां है। दूसरी ओर श्रमशील विश्व के संघर्ष और शोषण तंत्र की विरोधी कहानियां हैं, जिनमें 'राग', 'कर्मफल', 'वर्दी' तथा 'आदमी का बच्चा' महत्वपूर्ण कहानियां हैं। पुरातन मूल्यों, अप्रासंगिक रूढ़ियों और नैतिक निषेधों को तिरस्कृत करने का उनका ढंग वैयक्तिक है। धारदार व्यंग्य उनकी अभिव्यंजना का सर्वाधिक सबल अस्त्र है। यशपाल में जहां कथ्यगत सम द्धि है वहीं शिल्पगत प्रभाव भी है। कुछ प्रगतिवादी कहानीकारों की तरह उनकी कहानियों में शिल्प का अवमूल्यन नहीं दिखलाई पड़ता है।

रांगेय राघव

रांगेय राघव की कहानियां मार्क्सवादी बोध से सम्पन्न होकर भी कहीं-कहीं उससे बाहर जाती हुई द ष्टिगोचर होती है। अनुभव की वास्तविकता उनकी प्रथम विशेषता है। रांगेय राघव की सर्वश्रेष्ठ कहानी मदल है।

बेचन शर्मा उग्र

बेचन शर्मा 'उग्र' को प्रेमचंद युगीन कहानीकारों में गिना जाता है। वास्तव में उनकी कहानी कला का उमभांश प्रेम चंदोत्तर युग में ही अस्तित्व में आया। वे घोषित मार्क्सवादी न थे लेकिन सामाजिक विसंगतियों को उधेड़ने में वे प्रगतिशीलता का परिचय देते हैं। 'कला का पुरस्कार', 'ऐसी होली खेलो लाल', 'उसकी मां' आदि उनकी श्रेष्ठ कहानियां हैं।

उपेन्द्र नाथ 'अश्क'

अश्क को न तो प्रगतिवादी कहानीकार कहा जा सकता है न व्यक्तिवादी। डॉ. रामदरश मिश्र ने अश्क के मार्क्सवादी द ष्टिकोण को लेकर कहानी लिखने वालों को प्रगतिशील कोटि में रखा है। वस्तुतः अपनी संवेदना के द ष्टिकोण से वे प्रगतिशील कथा चेतना से स्पष्ट अलगाव रखते हैं। उनके भाषा शिल्प पर प्रेम चन्द का गहन प्रभाव दिखलाई पड़ता है। एक ओर अश्क ने 'डाची' और 'कांड़ा का तेली' जैसी अति चुस्त प्रभावशाली कहानियां लिखी हैं वहीं दूसरी ओर 'एंबेसडर' तथा 'बेबसी' जैसी यौन समस्याओं वाली कहानियों में उनको सफलता नहीं मिली है। उनकी कहानियों पर टिप्पणी करते हुए हृषिकेश ने लिखा है -

"वह इतनी सपाट और आत्मीय हैं कि पढ़कर चिंता नहीं होती, न खेद होता है, न आश्चर्य न जिज्ञासा और न ही व्यामोह, केवल तरल अनुभूति देने वाली अश्क की कहानियां अन्वेषण तो करती हैं अन्वेषक नहीं बनाती और पाठक के समक्ष आत्म निर्णय का संचार नहीं करती।" अश्क की बहुत सी कहानियों पर यह टिप्पणी सटीक बैठती है।

भगवती चरण वर्मा

भगवती बाबू अपनी व्यंग्यात्मक कहानियों के लिए चर्चा का विषय बने रहे। उनको प्रतिष्ठित करने में 'प्रायश्चित', 'दो बांके', और 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' आदि कहानियों का विशेष योगदान रहा है। किन्तु 'मोर्चा बंदी' संग्रह की कहानियां उनको चुकाने में सहयोगी सिद्ध हुई है।

इन कहानीकारों के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में भगवती प्रसाद वाजपेयी तथा पहाड़ी का नाम भी उल्लेखनीय है। प्रगतिवादी कहानीकारों में भैरव प्रसाद गुप्त तथा अम त राय का भी कहानी साहित्य को प्रमुख योगदान है।

चतुर्थ चरण (सन् 1956-1975 ई.)

हिंदी कहानी के चतुर्थ चरण में जैनेंद्र द्वारा प्रवर्तित मनो-विश्लेषण की परंपरा का विकास हुआ। भगवती प्रसाद वाजपेयी तथा राम प्रसाद आदि का योगदान मिला।

भगवती प्रसाद वाजपेयी

वाजपेयी ने अपनी कहानियों में मनोवैज्ञानिक सत्यों को उद्घाटित किया। उनके अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हुए जिनमें 'हिलोर', 'पुष्करिणी' तथा 'खाली बोतल' आदि प्रमुख हैं। उनकी कहानियों में 'मिठाई वाला', 'झांकी', 'त्याग', तथा 'वंशीवादन' आदि श्रेष्ठ कहानियां मानी जाती हैं। भगवती चरण वर्मा ने कहानी के क्षेत्र में असाधारण सफलता प्राप्त की है। उनमें विश्लेषण की गरिमा तथा गंभीरता है। मार्मिकता एवं रोचकता का गुण भी विद्यमान है। उनके कहानी-संग्रह 'खिलते-फूल', 'इंस्टालमेंट'

तथा 'दो बांके' आदि उल्लेखनीय हैं।

सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय

चतुर्थ चरण के मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में भी अज्ञेय का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने मनोविश्लेषण परंपरा को और आगे बढ़ाया है। 'विपयाग', 'परंपरा', 'कोठरी की बात' तथा 'जयदोल' इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं।

इला चन्द्र जोशी

इनके कहानी संग्रह 'रोमांटिक छाया', 'आहूति' तथा 'दीवाली और होली' आदि हैं। जोगी ने मनोविज्ञान के सत्यों का उद्‌घाटन किया जिससे अन्य लेखकों की अपेक्षा इनका अधिक मर्मस्पर्शी रूप सामने आया।

उपेंद्र नाथ 'अश्क'

सामाजिक विषयों को अपनाने वाले लेखकों में उपेंद्रनाथ 'अश्क' का नाम चतुर्थ चरण में भी प्रमुख है। उनकी कहानियों में 'पिंजरा', 'पाषाण', 'मोती', 'दूलो', 'मरुस्थल', 'गोखरू', 'खिलौने', 'चट्टान', 'जादूगरनी' तथा 'चित्रकार की मौत' आदि प्रमुख हैं। इनको अत्यधिक लोकप्रियता मिली। अश्क की विषय वस्तु, शैली एवं रोचकता की द ष्टि से प्रेम चंद की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले कहानीकार हैं।

यशपाल

यशपाल ने अपनी कहानियों में आधुनिक समाज की विषमताओं पर करारा व्यंग्य किया हैं उनकी कहानियों में पराया सुख, 'हलाल का टुकड़ा', 'ज्ञान दान', 'कुछ न समझ सका', 'जबरदस्ती' तथा 'बदनाम' आदि उल्लेखनीय हैं।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

विद्यालंकार का कहानी क्षेत्र में विशेष नाम है। आपकी कहानियों के द्वारा कहानी-कला का विकास हुआ है। विद्यालंकार के कहानी संग्रह 'चन्द्रकला' तथा 'अमावस' है।

राम प्रसाद पहाड़ी

पहाड़ी का हिंदी कहानी को विशेष योगदान है। पहाड़ी के कहानी संग्रह 'सड़क पर', 'मौली' तथा 'बरगद की जड़े', आदि उल्लेखनीय हैं।

हास्य रस की कहानियां

हिंदी में हास्य रस की कहानियां लिखने वालों में जी.पी. श्रीवास्तव, हरिशंकर शर्मा, कृष्ण प्रसाद गौड़, बेढब बनारसी, अन्नपूर्णानंद, मिर्जा अजीम बेग, चुगताई तथा जयनाथ नलिन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जी.पी. श्रीवास्तव की कहानियों में अत्यधिक वैविध्य उपलब्ध है। इनकी कहानियों में 'पिकनिक', 'भड़ाम सिंह शर्मा', 'गुदगुदी' तथा 'लतखोरी लाल' आदि महत्वपूर्ण हैं। उनका हास्य साधारण स्तर का है। 'बेढब बनारसी' और 'अन्नपूर्णानंद' की कहानियों में अधिक परिष्कृत हास्य मिलता है। अन्नपूर्णानंद की कहानियों में 'महाकवि चच्चा', 'मेरी हजामत', 'मगन रहु चोला' आदि उल्लेखनीय हैं। मिर्जा ने 'गीदड़ को शिकार', 'लेफ्टिनेंट', 'कोलतार' आदि कहानियां लिखीं। नलिन के कहानी संग्रह में 'नवाबी सनक', 'शतरंज के मोहरे', 'जवानी का नशा', 'टीलों की चमक', आदि उल्लेखनीय हैं।

चतुर्थ चरण को स्वतंत्र्योत्तर हिंदी कहानी युग भी कहा जाता है। इस अवधि में तीन पीढ़ियों की लिखी कहानियां आती हैं-

(i) यशपाल, जैनेंद्र, भगवती चरण वर्मा जैसे पुरानी पीढ़ी के कहानीकार सक्रिय रहे।

(ii) आजादी मिलने के समय वयस्क हो रही पीढ़ी के कहानीकारों राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मन्नू भंडारी, रेणु, मोहन राकेश आदि ने खूब कहानियां लिखीं।

(iii) सन् 1960 ई. के अत में युवा पीढ़ी ने लिखना प्रारंभ किया जिसने स्वतंत्र भारत में आंखे खोली थीं। इस पीढ़ी के कहानीकारों में ज्ञानरंजन, रवींद्र कालिया, कामता नाथ, इब्राहिम शरीफ, हिमांशु जोशी तथा महीपाल सिंह आदि प्रमुख हैं।

स्वतंत्रता के बाद की हिंदी कहानी का इतिहास आंदोलन का इतिहास है। चार-पांच साल की अवधि बीतते-बीतते एक आंदोलन उठ खड़ा होता रहा जिसे लेकर खूब ढोल पिटे तथा नारे लगे। इसके परिणामस्वरूप कहानी एक गंभीर एवं केन्द्रीय विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। सन् 1950 ई. के बाद कहानी में एक नवीन मोड़ आया जिससे नई कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी सहज और समानांतर कहानी के अलग अलग झंडे लहराने लगे। इस ढाई-तीन दशक की अवधि में ढेरों अच्छी बुरी कहानियां लिखी गई। नई कहानी के नई होने की घोषणा कम, स्वतंत्रता पूर्व की कहानी के पुरानी हो जाने की घोषणा अधिक थी। सन् 1950 ई. तक आते आते ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैनेन्द्र की चौंकाने वाली दार्शनिक कथा, मुद्रा, अज्ञेय की सतही प्रगतिशील कहानियां तथा कथा एवं शिल्प के द्वंद्व में फंसी हुई यशपाल की कहानियों की प्रासंगिकता समाप्त प्राय है। ऐसा प्रतीत होता था कि या तो वे कहानीकार बुझ चुके हैं अथवा कहानी लेखन का आत्म विश्वास उन्हें अनाथ बनाकर चला गया है। ऐसी स्थिति में एकाएक कहानी के नएपन के आग्रह का उभर कर आंदोलन का रूप ग्रहण कर लेना आकस्मिक घटना नहीं अपितु पुराने के प्रति नए का विद्रोह तथा नवीन कहानी लेखक की तड़प तथा छपास है।

हिंदी कहानी साहित्य की अभिव द्धि में महिला कहानीकारों ने भी कम योगदान नहीं किया है। सुभद्रा कुमारी चौहान, उमा नेहरू, शिवरानी देवी, तेजरानी पाठक, ऊषा देवी मित्रा, सत्यवती मलिक, कमला देवी चौधरानी, महादेवी वर्मा, चंद्रप्रभा, तारा पांडेय, चन्द्र किरण सौन रिक्शा, रामेश्वरी शर्मा, पुष्पा महाजन, विद्यावती शर्मा आदि ने अनेक कहानियों की रचना की है। इनकी कहानियों में प्रायः पारिवारिक जीवन और हिंदी समाज में नारी की दारुण स्थिति के चित्र हैं। फिर वे जीवन के उस गरिमा द्वंद्व को उस व्यापक द ष्टि से आंकने में सफल नहीं हो सकी हैं जैसा कि विश्व के महान कहानीकारों ने किया है।

पंचम चरण (सन् 1976 से आज तक) नई कहानी

नामकरण

कमलेश्वर का कथन है कि जितेंद्र एवं ओम प्रकाश श्रीवास्तव ने कहानी को नवीन रूप देने का प्रयास किया। कहानी के नवीन रूपों को 'नई कहानी' नाम देने का श्रेय दुष्यंत कुमार को है। डॉ. बच्चन सिंह ने सन् 1950 ई. में शिवप्रसाद सिंह द्वारा प्रकाशित 'दादी मां' में नयी कहानी के तत्वों का अवलोकन किया। उनके विचार से सन् 1956-57 में नई कविता के साम्य पर इसका नाम 'नई कहानी' रख दिया गया। सूर्य प्रकाश दीक्षित नई कहानी के शुभारंभ का श्रेय कमलेश्वर मोहन राकेश तथा राजेन्द्र यादव को संवेत रूप में देते हैं। वास्तव में किसी व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों को किसी आंदोलन का श्रेय देना उचित प्रतीत नहीं होता है। सार्थक आंदोलन परिवेश की मांग तथा पूरी पीढ़ी के प्रयास की उपज होता है। हिंदी कहानी साहित्य में नएपन का प्रारंभ 'पूस की रात', 'नशा' तथा 'कथन' जैसी कहानियों से हो चुका था। सन् 1950 ई. तक आते आते कहानी के कथा शिल्प में पर्याप्त परिवर्तन हो चुका था। नएपन की यह प्रव त्ति सन् 1956-57 ई. में आंदोलन का रूप ग्रहण कर चुकी थी। डॉ. नामवर सिंह उन आलोचकों में से हैं जिन्होंने नई कहानी के प्रवक्ता की भूमिका निभाई है। कहानी के नववर्षांक सन् 1956-58 में प्रकाशित उन लेखों से इस आंदोलन को अति बल मिला।

नई कहानी उस समय लिखी गई जब कहानीकारों में देश की स्वतंत्रता को लेकर संशय की भावना का उदय हो रहा था। मोह भंग की प ष्ठ भूमि का निर्माण हो रहा था। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के विभाजन के फलस्वरूप बड़े पैमाने पर मूल्य संक्रमण तथा मूल्य-विघटन का परिवेश तैयार हो गया था। राजनीतिक प ष्ठभूमि में भी सेवा, त्याग, करुणा, सत्य, प्रेम आदि गांधीवादी मूल्य कड़ी आजमाइश में पड़ गए थे। डॉ. भगवान दास वर्मा का कथन है, "परंपरावादी जीवन-दर्शन की असारता, भारतीय संस्कृति की नए युग के संदर्भ में निरर्थकता, स्वतंत्रता प्राप्ति और भ्रम भंग की अवस्था, जीवनादर्शो की अनिश्चितता, व्यक्ति जीवन, अकेलेपन एवं अजनबीपन एहसास आदि अनुभूत सत्यों के अनेक स्तरीय संदर्भो के परिपार्श्व पर नई कहानी विकसित हो रही है।

नई कहानी की विशेषताएं

नई कहानी की अनेक विशेषताएं उभरकर सामने आई जिनमें प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

जटिल एवं व्यापक यथार्थ की अभिव्यक्ति

नई कहानी की प्रमुख विशेषता जीवन के जटिल एवं व्यापक यथार्थ की अभिव्यक्ति है। परिवर्तित परिवेशानुसार, अपने नवीन द ष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में कहानीकारों ने समाज को बहुरंगी कहानियां प्रदान कीं। कहानीकार व्यक्त सत्य की परिधि एवं सामाजिकता के बंद कठघरे में अपने को मुक्त करके नई कहानी कर रहे थे। जिसके परिणामस्वरूप उनकी कहानियों में एक ओर पारिवारिक विघटन दिखलाई पड़ता है। दूसरी ओर आर्थिक सामाजिक तीव्र गति के परिवर्तनों को नई कहानी का विषय बनाया गया है। मध्यवर्गीय, निराशा, हताशा एवं पीड़ाओं को नई कहानी में विस्तार से उभारा गया है। देश-विभाजन के परवर्ती परिवेश तथा समस्याओं को कुछ कहानीकारों ने अपनी नई कहानी का विषय बनाया है। व्यापक यथार्थ बोध की कहानियों में ऊषा प्रियंवदा-'वापसी', राजेंद्र यादव - 'छूटना', कमलेश्वर 'राजा निरबंसिया', राकेश 'एक और जिंदगी', मार्कंडेय - 'हंसा जाइ अकेला', शिव प्रसाद सिंह - 'कर्मनाशा की हार', मोहन राकेश - 'मलवे का मालिक', आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें ग्राम, कस्बा, नगर एवं महानगर के व्यापक फलक पर जीवन की सच्चाइयों को उकेरा गया है।

सांकेतिकता

मोहन राकेश के अनुसार नई कहानी की प्रमुख विशेषता सांकेतिकता है। सांकेतिकता पुराने कहानीकारों में भी है लेकिन उनका संकेत यदा-कदा था। उनकी सांकेतिकता वैचारिक स्तर तक सीमित थी। नई कहानी कथ्य-कथन दोनों स्तरों पर सांकेतिकता को प्रमाणित करती हैं। सुरेंद्र के अनुसार वह किसी स्तर पर संकेत का उपयोग न होकर स्वयं संकेत होती हैं सांकेतिकता की द ष्टि से भीष्म साहनी - 'चीफ़ की दावत', अमरकांत - 'जिंदगी और जोंक' आदि अवलोकनीय हैं। नई कहानी ने स्थापित नैतिक बोध को चुनौती दी है। कमलेश्वर - 'तलाश' तथा राजकमल चौधरी - 'दांपत्य' जैसी कहानियों में परंपरागत नैतिक वर्जनाओं एवं मान्यताओं को झटका सा दिया गया। डॉ. भगवान दास वर्मा के अनुसार-स्थापित नैतिक बोध का विघटन आधुनिक कहानी का तथ्य बनकर चित्रित हुआ है। कहीं वह चित्रण परंपरागत मूल्यों के साथ खंडन का है, कहीं उनकी आग्रहमूलकता के खंडन का है तो कहीं उनका मखौल उड़ाने वाले प्रसंगों का है।"

भाषिक संरचना एवं शिल्प

नई कहानी की भाषिक संरचना एवं शिल्प भी नवीनतामय है। बिंबात्मक एवं सांकेतिक भाषा के साथ-साथ स्पष्ट बयानी की प्रव त्ति भी इसमें है। नई कहानी ने कहानी को नए मुहावरे, भाषायी सपाटन, एवं समसामयिक चेतना से संबद्ध कर दिया - डॉ. पवन कुमार मिश्र। नई कहानी का शिल्प इसके कथ्य की आंतरिक मांग के परिणामस्वरूप स्वतः नया हो गया है। यह सचेष्ट सायास न होकर अयत्नज है। राजेन्द्र यादव जैसे इने-गिने कहानीकारों में शिल्प की अतिरिक्त सजगता द ष्टिगोचर होती है, अन्यथा अधिकांश नई कहानियां सहज संप्रेषणीय हैं। नई कहानी में रेखाचित्र, रिपोर्ताज, ललित निबंध एवं यात्राव त्त का शिल्प भी समाहित हो गया है। इस प्रकार नई कहानी ने कहानी के परंपरागत पुराने ढांचे को चकनाचूर कर दिया है। निश्चित ढंग से कहानी गढ़ना और उसे समाप्त करना नई कहानी की प्रव त्ति नहीं है। फॉर्मूला बद्ध शिल्प नई कहानी में समाविष्ट नहीं हुआ, इसलिए निश्चित आदि, अंत, चरम सीमा अथवा इन्हीं जैसे अन्य नुक्तों का प्रयोग, नए कहानीकारों ने अपने यहां नहीं किया है। जबकि इन नुक्तों ने पुरातन कहानी के शिल्प को दूर तक निर्देश दिए थे। युगीन विडंबना का तलख व्यंग्य का संप्रेषण नई कहानी में इतना सकल हुआ है कि उसके चलते व्यंग्य भाषा का रूप एक खास कोने से उभर सका है - सुरेंद्र। व्यंग्य हेतु हरिशंकर परसाई की नयी कहानियां विशेष उल्लेखनीय हैं। अति यथार्थ की प्रव त्ति के प्रस्फुटन एवं विकास ने नई कहानी के स्वरूप को निखारा। नई कहानी का नारा बुलंद करते हुए नवोदित कहानीकार नग्न यथार्थ का चित्रण स्वच्छंद रूप से अपनी कहानियों में कर रहे हैं आधुनिकता, समसामयिकता, न्यूनता आदि आकर्षक शब्दों की आड़ में अपनी भोगवादी प्रव त्तियों की अभिव्यक्ति को अवगुंठित करने के प्रयास में संलग्न है। इनके पास व्यक्तिगत द ष्टिकोण एवं वैयक्तिक मान्यताओं का अभाव है, इसलिए स्वदेश-विदेश की प्रत्येक नवोदित प्रव त्तियों का अंधानुकरण करने के लिए वे सदा तत्पर रहते हैं। एक ही कहानीकार विभिन्न समयों में अनेक प्रव त्तियों से आक्रांत रहता है। प्रगतिशीलता का गुणगान करने वाले कहानीकार नग्न यौनवाद के पंक में सूकर जैसे लोट रहे हैं। उपेंद्रनाथ अश्क ने इस प्रव त्ति को फैशन का नाम दिया है तथा कहा है "हिंदी कहानी में किसी प्रकार एक के बाद एक नए नए फैशन प्रचलित होते जा रहे हैं कभी अश्लील कहानियों का फैशन चलता है, कभी आंचलिक कहानियों का, अभी सेक्स तथा प्रतीकवाद का। वास्तव में नए कहानीकारों में सुद ढ़ आस्था, स्वस्थ जीवन दर्शन तथा व्यापक जीवन द ष्टि का नितांत अभाव है। वे वासना की संकीर्ण घाटियों और विलासिता की खंदक में फंसकर प्रगति की राह

से विमुख होते हुए द ष्टिगोचर होते हैं। यह स्थिति न केवल साहित्यकारों या साहित्य जगत के लिए घातक है अपितु मानव समाज के लिए विनाशक है।

उपर्युक्त नई कहानी की विशेषताओं की सम्यक विवेचना तथा कहानीकारों की सामान्य विवेचना करके इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि नई कहानी को प्रव त्तियों की द ष्टि से छः वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) **शहरी मध्यवर्गीय जीवन चित्रण-** इस वर्ग में आने वाले कहानीकारों ने मुख्यतः नगरीय मध्यवर्गीय जीवन की आंतरिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। इनके द ष्टिकोण का अति यथार्थवादी लक्ष्य यौन विकृतियों, कुंठाओं, अभावों आदि के चित्रण का रहा है। शिल्प-शैली के क्षेत्र में भी इन्होंने नूतन पर जोर दिया है। इस वर्ग में आने वाले मुख्य कहानीकार एवं उनकी कृतियां इस प्रकार हैं-

राजेन्द्र यादव- कहानी संग्रह - 'जहां लक्ष्मी कैद है', 'छोटे छोटे ताजमहल', 'एक पुरुष एक नारी', आदि; **मोहन राकेश** - संग्रह - 'नए बादल', 'जानवर और जानवर', 'एक और जिंदगी'; **अमर कांत-** 'जिंदगी और जोक' तथा **धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, मार्कंडेय, कमलेश्वर, डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल, रमेश वक्षी, शैलेश भटियानी, नरेश मेहता, मन्नू भंडारी**, आदि कहानीकार इस वर्ग में आते हैं।

(ii) **ग्रामीण जीवन-** इन्होंने आंचलिक प ष्ठभूमि पर ग्रामीण जीवन को अंकित करने का प्रयास किया है। जिनमें फणीश्वर नाथ रेणु - संग्रह - 'ठुमरी'; राजेन्द्र अवस्थी त षित - संग्रह - 'गंगा की लहरें' मार्कंडेय - 'महुआ आम के जंगल'; शिव प्रसाद सिंह - 'इन्हें भी इंतजार है' तथा शेखर जोशी आदि के नाम इस वर्ग में लिए जा सकते है।

(iii) **हास्य व्यंग्यमयी-** इस वर्ग में हास्य व्यंग्यमयी कहानियों के लेखकों को लिया जा सकता है जिनमें केशवचन्द्र वर्मा, श्री लाल शुक्ल, हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्र त्यागी, शांति मेहरोत्रा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

(iv) **व्यापक प्रगतिशील-** यह वर्ग ऐसे कहानीकारों का है जिसमें व्यापक प्रगतिशील द ष्टि से जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण किया गया है। इस वर्ग में कृष्ण चन्द्र-संग्रह - 'गरजन की शाम', 'काला सूरज', 'घूंघट में गोरी जले'। अम त राय - संग्रह 'भोर से पहले', 'तिरंगे कफ़न', 'नूतन आलोक', भैरव प्रसाद आदि को स्थान दिया गया है।

(v) **अन्य-** इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे कहानीकार हैं जिन्हें किसी एक वर्ग में स्थान नहीं दिया जा सकता क्योंकि किसी विशिष्ट वर्ग से उनका संबंध नहीं है। जैसे विष्णु प्रभाकर, सत्यपाल आनंद, कृष्ण बलदेव वैद्य आदि।

(vi) **नए कहानीकारों के विरुद्ध मोर्चा-** इस वर्ग को सचेतन भी कहा गया। नए कहानीकारों की अति सूक्ष्मता, अति वैयक्तिकता, संकीर्णता, एवं निष्प्राणता की प्रव त्तियों के विरुद्ध संगठित मोर्चा स्थापित करने एवं जीवन के व्यापक एवं स्वस्थ रूप को कहानी में स्थापित करने के लक्ष्य से अनेक कहानीकारों ने सचेतन कहानी के नाम से एक वर्ग की स्थापना की है। इस वर्ग में डॉ. महीष सिंह, मनहर चौहान, कुलभूषण, रमेश गौड़, हिमाशु जोशी, सुदर्शन चोपड़ा, सुरेन्द्र मल्होत्रा, जगदीश चतुर्वेदी, वेद राही, धर्मेंद्र गुप्त, योगेन्द्र कुमार लल्ला, राजीव सक्सेना, देवेन्द्र सत्यार्थी जैसे अनेक प्रतिभाशाली कहानीकार सम्मिलित हैं। यदि इन लेखकों ने मात्र वर्ग विशेष के विरोध को अपना लक्ष्य न बनाकर युग की व्यापक समस्याओं एवं जीवन की गंभीर अनुभूतियों के आधार पर जीवन के स्वस्थ, व्यापक एवं उदात्त मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया होता तो वे निश्चित ही कहानी साहित्य को सही दिशा देने में सफल हो जाएंगे अन्यथा 'सचेतन कहानी' भी नई कहानी की तरह मात्र एक फैशन बन कर रह जाएगी।

हिंदी कहानी क्षेत्र में अवत्तीर्ण होने वाली अन्य नई प्रतिभाओं में कृष्णा सोबती, रजनी पनिकर, पुष्पा जायसवाल, उषा प्रियंवदा, विजय चौहान, सलमा सिद्दकी, डॉ. वीरेंद्र मेहंदीरत्ता - संग्रह - 'शिमले की क्रीम', 'पुरानी मिट्टी' तथा 'पुराने सांचे', सोमवीरा, प्रयाग शुक्ल, मेहरून्निसा परवेज, रघुवीर सहाय, शांति मेहरोत्रा, दूधनाथ सिंह, इंदु बाली, सुरेन्द्र पाल, गिरिराज, धर्मेंद्र, रवीन्द्र कालिया, म त्युंजय उपाध्याय, अवध नारायण सिंह, बलवंत सिंह, गंगा प्रसाद विमल, परेश आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

वास्तव में विषय वस्तु की द ष्टि से तथाकथित नई काहनी एक ऐसे वर्ग के कहानीकारों के व्यक्तित्व, चरित्र एवं जीवन दर्शन का प्रतिनिधित्व करती है जिनका जीवन घर के बंद दरवाजों, कॉलेज की दीवारों, शहर की गलियों, और नगर के मदिरालयों में बीता है, जिनकी जीवन-यात्रा काफी हाउसों से लेकर पत्र संपादकों के कार्यालयों तक सीमित है, जिनकी सबसे बड़ी समस्या

दमित वासना, सेक्स की भूख, सुंदर प्रेयसियों की चाह, और भोगी हुई पत्नियों का तलाक है, जिनका आदर्श फ्रायड, सार्त्र और कामू हैं जो रहते हैं भारत में किन्तु स्वप्न लंदन की रात या पेरिस के मध्याह्न का लेते हैं तथा काफी का प्याला, सिगरेट का धुंआ और संपादक का मनीऑर्डर ही जिनकी रचनाओं का सबसे बड़ा प्रेरणा स्रोत है। ऐसी स्थिति में उनसे किसी गंभीर अनुभूति, व्यापक अनुभव एवं बड़े सत्य की आशा करना व्यर्थ है। कहानी के 'नई कहानी' स्वरूप के आगमन से अन्य नामों से कहानी के अनेक रूप प्रचलन में आ गए-

हिन्दी कहानी

नई कहानी के बाद उसकी दुर्बलताएं और उसकी उपलब्धियां कहानी की तरह स्पष्ट रहीं। यौन प्रसंगों के प्रति आवश्यक मोह, क्षणवादी-भोगवादी द ष्टि, शिल्पगत चमत्कारी प्रव त्ति आदि ने कई कहानी का अवमूल्यन किया। विरोधी प्रव त्ति से भी आहत हुई। यही कारण है कि सन् 1960 ई. में ही नई कहानी एवं उसके लेखक पुराने लगने लगे। फिर नएपन की मांग आई जिसके फलस्वरूप अकहानी, सचेतन कहानी, सहज कहानी, समानांतर कहानी, सक्रिय कहानी तथा जनवादी कहानी के आंदोलन प्रारंभ हो गए। डॉ. देवीशंकर अवस्थी ने सन् 1960 ई. के बाद की कहानी में नई कहानी से भिन्न पाया। उनके अनुसार चौथे-पांचवे दशक के कहानीकार यथार्थ का स जन करते हैं। पांचवे-छठे दशक के कहानीकार यथार्थ की अभिव्यक्ति करते थे किन्तु समकालीन कहानीकार यथार्थ को खोजता है। नई कहानी के लेखकों के समक्ष कुछ मूल्य थे लेकिन साठोत्तरी कहानीकार असमंजस्य की स्थिति में आ गया। सन् 1960 ई. के बाद सामाजिक परिवेश में व्यापक परिवर्तन आने के परिणामस्वरूप गद्य-पद्य की सभी विधाओं में परिवर्तन परिलक्षित होता है। अस्पष्ट देखते हुए भी त्वरा में लिखता चला गया। द ष्टि भेद आ गया। सातवें दशक की कहानी बदली हुई मानसिकता की कहानी है। युवा कहानीकारों ने सभी सीमाएं फलांग कर अपने जिए हुए 'सत्य' को कहानी का रूप दिया।?

अकहानी

अकविता के वजन पर गद्य में अकहानी का आविर्भाव हुआ। इसकी प्रेरणा परराष्ट्रीय 'एंटी स्टोरी' की प्रेरणा है। इसे भारतीय संस्करण कहा जा सकता है। अकहानी के प्रबल समर्थक गंगा प्रसाद विमल ने अकहानी को अभारतीय कहने वालों को 'अज्ञान का आग्रह भोही' कहा है। उन्होंने इसे अपरिभाषेय स्वीकारा। डॉ. रामदरश ने अकहानी को स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'अकहानी का 'अ' वस्तु एवं मूल्य के स्तर पर भी निषेध का स्वर मुखर करता है। 'वस्तु' के स्तर पर उसने सामाजिक संघर्षो से संबंधि ात विषयों को ग्रहण न करके यौन प्रसंगों को ही कहानी का विषय बनाया है। सभी मूल्यों का निषेध करते हुए साहित्यिक मूल्य को भी अस्वीकार कर दिया है। यथार्थ बोध या विसंगति को अपना केन्द्र बिन्दु बना लिया है। श्रीकांत वर्मा - झाड़ी, प्रयाग शुक्ल - 'अकेले आकृतियां' एवं 'विश्वेश्वर' - 'दूसरी गुलामी' आदि कहानियों में व्यर्थता बोध को विभिन्न संदर्भो में उभारा गया है। अकहानी में विद्रोही स्वर के साथ साथ यौन संदर्भो तक सीमित रहने में वह विकृत और सतही बन गया। दूधनाथ सिंह - 'रीछ', गंगाप्रसाद विमल - 'विध्वंस', ज्ञान रंजन - 'छलांग', कृष्ण बलदेव वैद - 'त्रिकोण' आदि कहानियां इसी को संदर्भित करती हैं। अकहानीकारों को सर्वाधिक सफलता संबंधाभाव और मूल्यहीनता की स्थितियों को उभारने में मिली हैं। नैतिक वर्जनाओं और निषेधों के प्रति द ष्टि बहुत आक्रामक रही है।

डॉ. नामवर सिंह ने रवींद्र कालिया आदि के शिल्प को सराहा है। उनके अनुसार "कहानी के रूपाकार और रचना विधान की द ष्टि से ये कहानियां पर्याप्त समय से उपयोग में आने वाले कथागत साज संभार को एक बारगी उतारकर काफी हल्की हो गई। हल्की, लघु और ठोस। यहां तक कि कभी-कभी कथा चरित्रों के नाम, ग्राम परिचय का उल्लेख करना अनावश्यक प्रतीत होता है।" 'वह' 'मैं' 'तुम' वाली कहानियों में गंगा प्रसाद विमल - 'इंताकिता', रवींद्र कालिया - 'काला रजिस्टर' तथा दूधनाथ सिंह - 'रीछ' का उल्लेख किया जा सकता है।

अकहानी का महत्व जहां पुरामूल्यों के अस्वीकारने और बिगड़े हुए आपसी संबंधों के यथार्थ चित्रण में हैं, वहीं सेक्स केन्द्रित होने के कारण अकहानी न तो व्यापक बन सकी और न अधिक प्रामाणिक। जीवन की बुनियादी सच्चाईयों की अवहेलना करने से अकहानी दीर्घजीवी भी न हो सकी। अकहानी के प्रमुख हस्ताक्षरों में दूधनाथ सिंह, ज्ञान रंजन, रवीन्द्र कालिया, भीमसेन त्यागी, विश्वेश्वर, गंगाप्रसाद विमल,_कृष्ण बलदेव वैद तथा श्रीकांत वर्मा आदि प्रमुख हैं।

सहज कहानी-

सहज कहानी की बात उठाने वाले अम त राय हैं वे इसके प्रथम एवं अंतिम प्रवक्ता हैं। नई कहानी की असमर्थता ने राम को सहज कहानी की अवधारणा करने के लिए विवश किया। अम त राय के अनुसार "सहज कहानी से हमारा अभिप्राय इनमें से किसी एक से या दो से या दस से नहीं बल्कि इन सबसे और इनसे अलग और भी बहुत से हैं। क्योंकि सहज कहानी से हमारा अभिप्राय उस मूल कथारस से है, तो कहानी की अपनी खास चीज है और जो बहुत सी नई कही जाने वाली कहानियों में एक सिरे नहीं मिलता।" इस उद्धरण में इनमें से पद द्वारा हितोपदेश जातक कथाओं, परी कथाओं आदि की ओर संकेत किया गया है। अम त राय सहज कथारस पर बहुत जोर देते हैं और उनके विचार से कहानी संबंधी सभी प्रयोग सहज कथा रस को ध्यान में रखकर ही सार्थक हो सकते हैं।

सहजता की व्याख्या करते हुए अम त राय ने लिखा है, "सहज वह है जिसमें आडंबर नहीं है, ओढ़ा हुआ मैनरिज्म या मुद्रादोष नहीं है, आईने के समान आत्मरति की भावना से अंग-प्रत्यंग को अलग-अलग कोणों से निहारते रहने का प्रबल मोह नहीं है। अम त राय ने सहज कहानी के संबंध मे यह स्पष्ट कर दिया था कि यह न तो कोई नारा है न कोई आंदोलन। वास्तव में सहज कहानी अकेले कंठ की पुकार बनकर रह गई, इसकी वैचारिकता को कहानीकारों का समर्थन नहीं मिला है।"

सचेतन कहानी

जब नई कहानी से संबद्ध कहानीकारों की जीवन द ष्टि लड़खड़ाने लगी तथा अव्यवस्थित हो गई। गुटबंदी की प्रव त्ति प्रधान हो गई तब कुछ युवा कहानीकारों ने यथार्थवादी द ष्टि से सचेतनता पर बल दिया। 'आधार' के सचेतन कहानी विशेषांक में कहा गया, "सचेतनता एक द ष्टि है, जिसमें जीवन जिया भी जाता है और जाना भी जाता है।" डॉ. महीप सिंह ने सचेतना द ष्टि को आधुनिकता की एक गतिशील स्थिति स्वीकारा है, जो हमारे सक्रिय जीवन-बोध और मनुष्य को उसकी अनुभूतियों के साथ समग्र परिवेश के संदर्भ में स्वीकार करती है। यह सापेक्षता पर बल देती है। डॉ. धनंजय के अनुसार, "समाज और व्यक्ति के ऊपरी संबंधों पर सूक्ष्मता से उसकी द ष्टि डाली जाती है, उतनी ही व्यक्ति के आंतरिक संबंधों पर भी। व्यक्ति वहां आवेगों संवेगों के साथ व्यवस्थित भावभूमि में रहता है किंतु उसकी कार्यशीलता मात्र अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की संकुचित प ष्ठभूमि में नहीं होती।" सामाजिक चेतना का नैरंतर्य सदैव विद्यमान रहता है। सचेत द ष्टि पर्याप्त सीमा तक संतुलित एवं सामयिक होती है। जो नई कहानी में ओझल थी। 1964-65 के निकट यह स्पष्ट हुई। डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार, "सन् 1960 ई. के बाद अनेक अश्लील कहानियों की भीड़ में सामूहिक स्वर में रचनात्मकता के स्तर पर उसका प्रतिवाद करने का प्रयास सचेतन कहानी को एक ऐतिहासिक महत्व प्रदान करता है। सचेतन कहानीकारों में मनहर चौहान, महीप सिंह, कुलभूषण, राम कुमार 'भ्रमर' तथा बलदेव वंशी आदि उल्लेखनीय हैं।

अकहानी सेक्स से पूर्णतया आक्रांत है। सचेतन कहानी इससे मुक्त है। अधिकांश सचेतन कहानियों में किसी न किसी सामाजिक, राजनीतिक अथवा वार्षिक विसंगतियों को उघाड़ा गया है। इसमें अनुभूति की गहनता एवं विविधता है। एक युद्ध की विभीषिका को लेकर की गई वेद राही - 'दरार', महीप सिंह 'युद्ध मन', शैलेश मटियानी - 'उसने नहीं कहा था' आदि कहानियां हैं दूसरी ओर हिमांशु जोशी - 'चीलें', राजकुमार भ्रमर - 'गिरस्तिन', मनहर चौहान - 'उड़ने वाली लाशें', आदि कहानियां काम संबंधों के यथार्थ का उद्घाटन करती हैं। जीवन की कटु विडंबना पर आधारित कहानियों में एक और सुखवीर - 'नारायणे' तथा बलदेव वंशी - 'एक खुला आकाश' उल्लेखनीय हैं।

समांतर कहानी

समांतर कहानी का बीजवपन सन् 1971-72 ई. में ही हो चुका था। सारिका सन् 1974 ई. से समांतर कहानी के विशेषांकों और दौर प्रारंभ हुआ। समांतर कहानी आंदोलन में व द्धि होती गई। सन् 1972 ई. में समांतर प्रथम के प्रकाशन से इसका विधिवत आरंभ माना जा सकता है। इसके मुख्य रचनाकार कमलेश्वर रहे हैं उनके अतिरिक्त, शरीफ, कामता नाथ, मधुकर सिंह, जितेंद्र भाटिया से रा. यात्री मिथलेश्वर, निरूपमा सेवती आदि कहानीकारों ने स्पष्ट समर्थन दिया। समांतर कहानी के कुछ पक्षधर इसे आंदोलन नहीं स्वीकारते थे। से.रा. यात्री ने आंदोलन से असहमति दिखलाई है। समांतर कहानी को लेकर जागरूक समीक्षकों की टिप्पणियों में मतैक्य नहीं है। इब्राहिम शरीफ तथा विनय प्रशंसक हैं तो शैलेष मटियानी ने तीखी

आलोचना की है। मटियानी के अनुसार यह आन्दोलन हिंदी कहानी के समकालीन दौर का सर्वाधिक हास्यास्पद ही नहीं क्षतिकारक है। समांतर कहानी आंदोलन की वैचारिकता की विशेषताएं निम्नलिखित हैंः-

(i) समांतर कहानीकार रचना एवं सामयिक सत्यों के मध्य सामंजस्य की स्थापना करता है। अर्थात् उसका चिंतन एवं लेखन परिवेशानुसार होता है।

(ii) समांतर कहानी का केन्द्र बिंदु सामान्य मानव है। यह सामान्य मानव के संघर्षो की पक्षधर है क्योंकि उसका पूर्ण विश्वास है कि एकजुटता ही सामान्य मानव संघर्षो में विजयी होगी। शोषक शक्तियां परास्त होंगी। समांतर कहानी मानव को व्यष्टि रूप में न देखकर उसे समष्टि रूप में देखते हुए उसको उसके पूर्ण संघर्षो में दिशा निर्देशन एवं स्वरूप प्रदान करती रहती है।

(iii) आंदोलन सुनिश्चित परिवर्तन हेतु जन-संपर्क के प्रति समर्पित है। कहानीकार जन-संघर्ष का द्रष्टा नहीं अपितु सक्रिय सदस्य है।

(iv) समांतर आंदोलन राजनीतिक महत्व को स्वीकारता है। राजनीति में सक्रिय भाग लेते हुए क्रांति हेतु कार्य करना समांतर कहानीकार को रूचिकर प्रतीत होता है। राजनीतिक संघर्षो को वह सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में अवलोकता है। एवं सांस्कृतिक संघर्ष को राजनीतिक स्वरूप प्रदान करता है। समांतर कहानी ने भाषित स्तर पर भावुकता का निराकरण करके उसे स्पष्ट, प्रत्यक्ष एवं प्रभावपूर्ण स्वरूप प्रदान किया है। डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ का कथन है, 'कार्य का कोई आग्रह इसमें नहीं है।

समांतर कहानी के विचार अति स्पष्ट हैं। आंदोलन ने विचारों का दुरूपयोग किया है। समांतर कहानियां विचारों का प्रतिबिंबन नहीं करती है। भारी वेतन भोगी समांतर कहानीकार सामान्य मानव का उथला चित्रण करते हैं जो पाठक पर प्रभाव नहीं डालती। यह सब कुछ होते हुए भी इब्राहिम शरीफ, सूर्यबाला, दिनेश पालीवाल, हिमांशु जोशी, प्रभु जोशी, मिथिलेश्वर तथा देवकी अग्रवाल आदि की कुछ अच्छी कहानियां समांतर कहानी की उपलब्धि कही जा सकती हैं।

सक्रिय कहानी

सक्रिय कहानी की अवधारण सन् 1979 ई. में राकेश वत्स ने की। राकेश वत्स के अनुसार "सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी। उस समझ और अहसास की कहानी जो आदमी को बेबसी, वैचारिक निहत्थेपन और नपुंसकता से निजात दिलाकर पहले स्वयं अपने अंदर की कमजोरियों के खिलाफ खड़ा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सिर लेती है। सक्रिय कहानी एक बिंदु पर जनवादी कहानी के अति निकट है। यह बिंदु व्यवस्था विरोध का है। सक्रिय आंदोलन से संबद्ध कहानीकार आर्थिक - सामाजिक शोषण का विरोध करते हैं। इसके लिए वे वर्तमान व्यवस्था को उत्तरदायी बतलाते हैं। सक्रिय कहानी से जुड़े कहानीकारों में सुरेंद्र कुमार, विवेक निझावन, रमेश बतरा तथा सच्चिदानंद धूमकेतु आदि मुख्य हैं। अनेक कहानीकारों ने आंदोलन धर्मिता से अलग रहकर भी सार्थक स जन किया है। रामदरश मिश्र, म दुला गर्ग, विवेकी राय मैत्रेयी पुष्पा, ललित शुक्ल, प्रेम कुमार, शशि प्रभा शास्त्री, मंजुला तथा हरिमोहन आदि की कहानियां इस संदर्भ में अवलोकनीय हैं।

जनवादी कहानी

जनवादी कहानी एक पत्रिका और व्यक्ति पर केन्द्रित नहीं रही। सातवें-आठवें दशक में इसराइल, असगर वजाहत, मार्कंडेय, प्रदीप मांडव, नमिता सिंह तथा सूरज पालीवाल आदि की कहानियों का तेवर जनवादी है। जनवादी कहानी व्यवस्था विरोध के बिंदु पर सक्रिय कहानी के अति निकट है। जनवादी आंदोलनकारी कहानी के अति निकट हैं। जनवादी आंदोलनकारी कहानीकार आर्थिक सामाजिक शोषण का विरोध करते हैं तथा इसका उत्तरदायी वर्तमान व्यवस्था को बनाया है।

नौंवे दशक की कहानी में दो परिवर्तन स्पष्ट द ष्टिगोचर होते हैं।

(i) वह पंजाब समस्या, सांप्रदायिक द्वेष आदि समसामयिक समस्याओं को अपने विचार का विषय बनाती है।

(ii) वाद या आंदोलन से उसने अपने को मुक्त कर लिया है। शिल्प की द ष्टि से नौंवे दशक में किस्सागोई का प्रत्यावर्तन द ष्टिगोचर होता है। इस दशक में शिवमूर्ति, संजय, अवधेश प्रीत नारायण सिंह, सुनील सिंह, शिवजी श्रीवास्तव, शोभा

नाथ लाला, जनकराज फरीक ललित शुक्ल, कमर मेवाड़ी, मैत्रेयी पुष्पा, नमिता सिंह तथा चित्रा मुद्‌गल आदि कहानीकारों ने सार्थक कहानियां लिखी हैं। वर्तमान कहानी अपने जनधीं परंपरा को बढ़ाते हुए समूचे परिद श्य से साक्षात करने में संलग्न हैं। इस साक्षात्कार में तीक्ष्णता तथा ईमानदारी है।

लघु कथा

वर्तमान समय कार्यव्यस्तता का काल है। पाठकों के पास कालाभाव है। पद्य में क्षणिकाओं को आधार बनाकर गद्य विद्या में लघु कथा का आविर्भाव हुआ है। जिससे संबंधित अनेक लघु कथा संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिन में विषय वैविध्य है। उद्देश्य मनोरंजन समाज सुधार शैली व्यंग्य प्रधान, भाषा सरल भाव मार्मिक है।

25. उपन्यास : उद्भव एवं विकास

उपन्यास शब्द : व्याख्या एवं अर्थ

सं. उप. / नि. / अस् + घञ् प्रत्यय लगाकर 'उपन्यास' शब्द व्युत्पन्न हुआ है। 'अस्' + क्षेपण अर्थ में लिया गया है। उपन्यास का अर्थ वाक्य का उपक्रम। बंधान; अमानत/धरोहर; प्रमाण; वह बड़ी और लंबी आख्यायिका जिसमें किसी व्यक्ति के काल्पनिक या वास्तविक जीवन -चरित्र का चित्र अंकित या उपस्थित किया जाता है। इस शब्द का अंग्रेजी पर्याय 'नॉवेल' है। बंगला में 'नवल कथा' कहते हैं।

'उपन्यास' शब्द का मूल अर्थ - निकट रखी हुई वस्तु (उप-निकट, न्यास-रखी हुई), आधुनिक साहित्य में इसका अर्थ गद्य की एक विशिष्ट विधा हेतु किया जाता है जो आयाम में विस्त त होती है। ऐसी आख्यायिका जिसमें समाज के किसी अंग का चरित्र-चित्रण, काल्पनिक एवं वास्तविक के समन्वित रूप में अंकित होता है। सर्वांगीण व्यापक सामाजिक चित्रण उपन्यास कहलाता है। उपन्यास के मूल अर्थ एवं आधुनिक अर्थ में यद्यपि साम्य नहीं रह गया है किन्तु विद्वानों ने उसका समन्वित प्रस्तुत करने का यत्न किया है। उनके अनुसार उपन्यास में मानव जीवन को उसके अति निकट उपस्थित कर देने वाली विधा उपन्यास कहलाती है। इस द ष्टि से यह नाम सर्वथा उचित प्रतीत होता है किन्तु यही कार्य नाटक, एकांकी एवं कहानी भी करते हैं। माना कि एकांकी एवं कहानी का आयाम छोटा होता है किन्तु नाटक की कथा तो लंबी और बड़ी होती है। उपस्थिति करने की प्रव त्ति उसकी भी उपन्यास जैसी ही है।

प्राचीन काव्य शास्त्र में उपन्यास शब्द का प्रयोग भी 'प्रतिमुख संधि' के एक उपभेद के रूप में किया गया है। भरतमुनि ने इसके लिए 'उपपत्ति कृत्तों ह्यर्थ' तथा 'प्रसादनम्' आदि विशेषण प्रस्तुत किए हैं जिनका अर्थ होता है - किसी अर्थ को युक्तिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने वाला तथा प्रसन्नता प्रदान करने वाला' 'किंतु यही स्थिति साहित्य की अन्य विधाओं की भी है।

आधुनिक उपन्यास अंग्रेजी पर्याय नॉवेल के अर्थों में प्रयुक्त होता है। उपन्यास शब्द पूर्ण अर्थ न प्रदान करते हुए भी साहित्य की विधा विशेष के लिए अत्यधिक प्रचलित रूप धारण कर चुका है।

प्रथम उपन्यास

आधुनिक उपन्यास साहित्य रूप विधान का विकास योरप माना जाता है किन्तु उससे पूर्व प्राचीन भारत में इस विधि का प्रचार प्रसार था, पंचतंत्र, हितोपदेश, वैताल पंचविंशति, व हत् कथा मंजरी, वासवदत्ता, कादंबरी और दशकुमार चरित आदि के रूप में औपन्यासिकता का विकास मिलता है। मराठी साहित्य में 'उपन्यास' का पर्यायवाची ही कादंबरी है। किन्तु यह उचित प्रतीत नहीं होता है।

यथार्थवादी द ष्टिकोण एवं शैली की स्वाभाविकता की द ष्टि से लाला श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरु' को हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास कहा जा सकता है। हिंदी में उपन्यास का आविर्भाव उन्नीसवीं सदी के अंतिम काल में हुआ। बंगला में इस विधा का उद्भव हिंदी से पूर्व हो चुका था क्योंकि अंग्रेजी का प्रभाव पहले बंगला भाषा पर पड़ा।

हिंदी में सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' भारतेन्दु के जीवन काल में ही सन् 1882 ई. में प्रकाशित हो गया था जिसकी रचना का श्रेय लाला श्रीनिवास दास को है। यद्यपि लाला जी ने इसकी भूमिका में स्पष्ट लिख दिया है कि इसके लेखन में-

"महाभारतादि संस्कृत, गुलिस्तां वगैरह फारसी, स्पेकटेटर, लार्ड बेकन, गोल्ड स्मिथ, विलियम कपूर आदि पुराने लेखों और स्त्री बोध आदि के वर्तमान रिसालों से बड़ी सहायता मिली है।" इससे तथा इसके ढांचे से ज्ञात होता है कि इसकी रचना बंगला उपन्यासों के आधार नहीं की गई है अपितु लेखक ने सीधे अंग्रेजी के उपन्यासों से प्रेरणा ग्रहण की है।

'परीक्षा गुरु' में दिल्ली के एक सेठ पुत्र की कहानी है, जो कुसंगति में पड़ गया था जिसका उद्धार अंत में एक सज्जन मित्र ने किया। लेखक इसमें अत्यधिक उपदेशात्मक हो गया है जिसके परिणामस्वरूप यह रचना सफल उपन्यास का रूप ग्रहण नहीं कर सकी। डॉ. विजय शंकर मल्ल ने फिल्लौरी कृत 'भाग्यवती' को प्रथम उपन्यास कहा।

विकास - भारतेंदु युग या प्रेमचन्द -पूर्वोत्तर

भारतेंदु ने सर्व प्रथम 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' नामक उपन्यास का अनुवाद किया। एक मौलिक उपन्यास की रचना भी प्रारंभ की थी दुर्भाग्य से पूर्ण न हो सका। भारतेंदु युग के अन्य कई लेखकों ने भी उपन्यासों की रचना की, जिनमें श्रद्धाराम फिल्लौरी का 'भाग्यवती', रत्न चंद प्लीडर का 'नूतन चरित्र' - 1883, बालकृष्ण भट्ट - 'नूतन ब्रह्मचारी' - 1886 तथा 'सौ अजान एक सुजान' - 1892; राधा कृष्ण दास - 'निस्सहाय हिंदू' - 1890; राधा चरण गोस्वामी - 'विधवा विपत्ति' - 1888; कार्तिका प्रसाद खत्री - 'जया' - 1896 बालमुकुन्द गुप्त - 'कामिनी' आदि उल्लेखनीय हैं।

डॉ. विजय शंकर मल्ल ने फिल्लौरी के 'भाग्यवती' को हिंदी का प्रथम उपन्यास घोषित किया है किन्तु उन्होंने अपनी घोषणा की प ष्टि अपेक्षित प्रमाणों या कारणों से नहीं की।

अनूदित

इन लेखकों ने मौलिक उपन्यासों के अतिरिक्त बंगला के उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद भी किया। बाबू गदाधर सिंह - 'बंगविजेता', 'दुर्गेश नंदिनी'; राधा कृष्ण दास - 'स्वर्ण लता'; प्रताप नारायण मिश्र - 'राज सिंह', 'इंदिरा तथा राधारानी', राधाचरण गोस्वामी 'विरजा', 'जावित्री', तथा 'म ण्मयी' आदि का अनुवाद किया। बाबू रामकृष्ण वर्मा एवं कार्तिका प्रसाद खत्री ने उर्दू और अंग्रेजी के अनेक रोमांटिक एवं जासूसी उपन्यासों का अनुवाद हिंदी में किया। भारतेंदु युग में अनूदित उपन्यासों की प्रधानता रही है। मौलिक उपन्यासों का अनुवाद हिंदी में किया। भारतेंदु युग में अनूदित उपन्यासों की प्रधानता रही है। मौलिक उपन्यासों में भी कला विकास द ष्टिगोचर नहीं होता है। उनमें इतिव त्त एवं घटनाओं की प्रधानता, चरित्र-चित्रण का अभाव, उपदेशात्मकता का आधिक्य एवं शैली की अपरिपक्वता दिखलाई पड़ती है।

हिंदी के मौलिक उपन्यासों की रचना का श्रेय भारतेंदु कालीन उपन्यासकार त्रयी-देवकी नंदन खत्री, गोपाल राम गहमरी तथा राधाचरण गोस्वामी को है। देवकी नंदन खत्री ने सन् 1891 ई. में 'चंद्रकांता' एवं 'चंद्रकांता संतति' की रचना की जिनमें तिलस्मी एवं ऐय्यारी का वर्णन है। इन उपन्यासों को इतनी लोकप्रियता मिली कि अनेक लोगों ने इन्हें पढ़ने के लिए हिंदी सीखी। गहमरी ने 'जासूस' नामक पत्र का संपादन प्रारंभ किया जिसमें लगभग पांच दर्जन से अधिक स्वरचित उपन्यासों का प्रकाशन किया। अनेक उपन्यासों के आधार अंग्रेजी के जासूसी उपन्यास होते थे। गोस्वामी ने उपन्यास पत्रिका निकाली जिनमें उनके छोटे-बड़े लगभग 65 उपन्यास प्रकाशित हुए। गोस्वामी के उपन्यासों का विषय सामाजिक था। किन्तु उनमें कामुकता एवं विलासिता का चित्रण अत्यधिक था जिसके परिणामस्वरूप 'उपन्यास त्रयी' की ये रचनाएं उपन्यास कला की द ष्टि से अति साधारण कोटि में आती है। इनमें अस्वाभाविक घटनाओं की भरमार है।

खत्री, गहमरी और गोस्वामी की समन्वित त्रिवेणी तथा प्रेमचन्द की अजस्त्र प्रवाहिनी धारा को मिलाने का श्रेय अयोध्यासिंह उपाध्याय, लज्जाराम मेहता तथा कुछ अनुवादकों को है। हरिऔध ने 'ठेठ हिंदी का ठाठ' तथा 'अधखिला फूल' लिखकर आई. सी.एम. के विद्यार्थियों के लिए हिंदी मुहावरों की पाठ्य पुस्तक का अभाव पूरा किया। मेहता ने 'आदर्श हिंदू' तथा 'हिंदू ग हस्थ' लिखकर सुधारवाद का झंडा ऊंचा किया।

प्रेमचन्द युग

प्रेमचन्द (सन् 1880-1936 ई.) के हिन्दी कथा साहित्य में पदार्पण से पूर्व तक हिंदी उपन्यास मानो अविकसित कालिका की तरह चुप, निस्पंद एवं चेतना-विहीन सा हो रहा था। सूर्य की प्रथम रश्मियों की तरह प्रेमचन्द की पावन कला का पुनीत स्पर्श प्राप्त करते ही वह कली पुष्पित होकर, खिल उठी, जगमगा कर खिलखिलाने लगी। राजा-रानी, सेठ-सेठानियों की उच्च अट्टालिकाओं की चार दीवारी में बंद उपन्यास कथानक जनसाधारण की लोकभूमि में उन्मुक्त सांस लेता हुआ अबाध विचरण करने लगा। लौह मूर्तियों की तरह स्थिर रहने वाले या कठपुतलियों की तरह लेखन की उंगलियों के मौन संकेतों पर अस्वाभाविक गीत से नाचने वाले, दौड़ने-फुदकने वाले पात्र मांसल सजीव रूप धारण कर व्यक्तित्व सम्पन्न सामान्य मानव की भांति आत्म प्रेरणा से परिचालित होते द ष्टिगोचर होने लगे जिसके परिणामस्वरूप उपन्यास के अन्य तत्वों-कथोपकथन, देश काल एवं वातावरण, भाषा शैली, उद्देश्य एवं रस आदि का विकास प्रथम बार प्रेम चन्द के उपन्यासों में हुआ। उन्होंने मात्र सस्ते मनोरंजन को ही उपन्यासों का विषय न बनाकर जीवन की ज्वलंत समस्याओं को अपने उपन्यासों का लक्ष्य बनाया जिसके परिणामस्वरूप उनके प्रत्येक उपन्यासों में किसी न किसी सामयिक समस्या का चित्रण मार्मिक स्वरूप में उपलब्ध है। यथा

- 'सेवा सदन' (1918) 'वेश्या', 'रंगभूमि' (1928) - 'शासक अत्याचार', 'प्रेमाश्रम' (1921) - 'कृषक,' 'कर्मभूमि' (1932) - हरिजन, 'निर्मला' (1922) - 'दहेज एवं व द्ध विवाह', 'गबन' (1931) मध्यवर्गीय आर्थिक विषमता; 'गोदान' (1936) कृषक श्रमिक शोषण।

प्रेमचंद के प्रारंभिक उपन्यासों में आदर्शवादिता का आधिक्य होने के कारण उनमें कहीं कहीं काल्पनिकता एवं अस्वाभाविकता अधिक आ गई है। किन्तु आगे चलकर प्रेमचन्द का स्वरूप आदर्शवादी के स्थान पर यथार्थवादी बन गया है जहां प्रारंभिक उपन्यासों में समस्याओं के समाधान करने के लिए गांधीवादी विचारधारा को अपनाया है वहां उन्होंने अन्तिम उपन्यास 'गोदान' में केवल समस्याओं के प्रस्तुतीकरण के द्वारा ही आत्मतुष्टि कर ली है।

'गोदान' की प्रमुख ही नहीं अंगी समस्या विवाह है। प्रेमचंद ने 'गोदान' में - बाल विवाह, व द्ध विवाह, अनमेल विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, प्रेम-विवाह, गांधर्व विवाह, परंपरित-विवाह, भगाकर ले जाना, रखैल रखना, वैसे ही संबंध स्थापित कर लेना, विवाहित से प्रेम, अविवाहिता से प्रेम संबंध आदि जितने भी प्रकार या स्वरूप संभव हैं सभी गोदान में दर्शाए गए हैं। इनमें आदर्श विवाह क्या हो सकता है? उसका समाधान प्रेमचंद ने नहीं प्रस्तुत किया है मेहता और मालती को अविवाहित ही क्यों छोड़ दिया है जो पति-पत्नी के रूप में आजीवन रहते हैं। समाज के लिए यह घातक प्रव त्ति है। इसलिए यह माना जा सकता है कि विवाह समस्या का यह समाधान नहीं है। शुक्ल ने जैसे अपने निबंधों का निर्णय अपने पाठकों पर चिन्तामणि के प्रथम भाग की भूमिका दो शब्द में यह कह कर कि "मेरे निबंध विषय प्रधान हैं या विषयी प्रधान इसका निर्णय विज्ञ पाठकों छोड़ देता हूँ।" उसी प्रकार प्रेमचन्द ने समस्या का समाधान पाठकों पर छोड़ा है। श्रेष्ठ साहित्यकार समस्या का समाधान नहीं प्रस्तुत करता है।

प्रेमचन्द युग में प्रेमचंद के अलावा अन्य अनेक उच्च कोटि के उपन्यासकारों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने विभिन्न द ष्टिकोणों से विभिन्न विषयों को अपने उपन्यासों का विषय बनाया। इन उपन्यासकारों को उनकी विशेषताओं के आधार पर अनेक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(i) **सामाजिक समस्या-** इस वर्ग में ऐसे उपन्यास आते हैं जिन्होंने सामाजिक समस्याओं का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द की परंपराओं को अग्रसारित किया। इस वर्ग के उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक', पांडेय बेचन शर्मा उग्र, चतुरसेन शास्त्री तथा उपेन्द्र नाथ अश्क आदि उल्लेखनीय हैं।

जयशंकर प्रसाद- जयशंकर प्रसाद ने 'कंकाल' में भारतीय नारी जीवन की दुर्दशा पर प्रकाश डाला है। उनके अन्य उपन्यास 'तितली' में नारी की सामाजिक स्थिति का चित्रण करते हुए उसके विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाला है। अन्य उपन्यास 'इरावती' है।

विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक- कौशिक ने 'मां' और 'भिखारिणी' में भी नारी की सामाजिक स्थिति का चित्रण करते हुए उसके विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाला है।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'- उग्र लेखक के रूप में सचमुच उग्र हैं। उन्होंने 'दिल्ली का दलाल', 'बुधुआ की बेटी', में सभ्य समाज की आंतरिक दुर्बलताओं, अनीतियों एवं घ णित प्रव त्तियों का उद्‌घाटन आवेगपूर्ण एवं धड़ल्लेदार शैली में किया है।

चतुरसेन शास्त्री- चतुरसेन शास्त्री ने विधवाश्रमों की सहायता लेकर हृदय की प्यास को बुझाने वालों की अच्छी खबर ली है। 'गोली' इस द ष्टि से उनका प्रमुख उपन्यास है जिसमें देशी रियासतों के शासकों की घ णित प्रव त्तियों एवं विलासिता को नग्न रूप में प्रस्तुत किया गया है। शास्त्री ने कुछ ऐतिहासिक उपन्यासों की भी रचना की है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'- अश्क के उपन्यासों मुख्यतः 'गिरती दीवारों' में मध्यवर्गीय समाज की बाह्य एवं आंतरिक परिस्थितियों का उद्‌घाटन यथार्थवादी शैली में हुआ है। विवाह संबंधी सामाजिक रूढ़ियों के कारण होने वाली आधुनिक युवक-युवतियों की असफल परिणति पर उन्होंने 'चेतन' के माध्यम से प्रकाश डाला है। समाज की समस्याओं को उपन्यास का विषय बनाने वाले उपन्यासकारों ने सभी उपन्यासकारों की शैली में सरलता एवं स्वाभाविकता का आग्रह मुख्य रूप से किया है।

(ii) **चरित्र प्रधान-** इस वर्ग के उपन्यासों में चरित्र की प्रधानता है। ऐसे उपन्यासकारों में जैनेंद्र, इलाचन्द्र जोशी, भगवती चरण वर्मा एवं सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय आदि प्रमुख हैं।

जैनेंद्र- जैनेंद्र के उपन्यासों में 'सुनीता', 'परख', 'सुखदा' 'त्यागपत्र' तथा 'विवर्त्त' आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अधिकांश उपन्यासों में पति पत्नी एवं अन्य पुरुष के पारस्परिक संबंधों का चित्रण किया गया है। सबमें प्रायः एक समान ही चित्रण मिलता है। नायिका प्रायः विवाहिता होती है। अपनी वैयक्तिक कुंठाओं से अति दुखी होती है जिसके परिणामस्वरूप सदैव सुख की तलाश में रहती है। पर पुरुष के संपर्क में आते ही उसे प्रभावशाली व्यक्तित्व समझकर उसकी ओर आकर्षित हो जाती है। नायिका का पति इस स्थित से पूर्ण अवगत होते हुए भी चुप्पी साधे सब कुछ धैर्य से सहन करते हुए समय की प्रतीक्षा करता रहता है। प्रारंभ में ऐसा आभास होने लगता है कि नायिका अपने पति का परित्याग कर अपने प्रेमी के साथ पलायन कर जायेगी किंतु अंत तक जाते जाते जैनेंद्र परिस्थिति को संभाल लेते हैं तथा यह निष्कर्ष निकालना चाहते हैं कि पति पत्नी को अन्य व्यक्तियों से संपर्क करने का जितना अवसर मिलता है, जितनी अधिक स्वतन्त्रता मिलती है उतनी चारित्रिक द ढ़ता एवं सबलता में व द्धि होती है। वास्तव में जैनेंद्र के उपन्यासों में एक ओर रसिकता एवं सरसता विद्यमान है तो दूसरी ओर शुष्कता तथा भावुकता के साथ साथ बौद्धिकता आवश्यकता से अधिक आ गई है।

इलाचंद्र जोशी

इलाचंद्र जोशी ने 'सन्यासी' 'परदे की रानी', 'प्रेत' और 'छाया', 'सुबह के भूले' तथा 'मुक्ति पथ' आदि उपन्यासों में चारित्रिक प्रव त्तियों एवं वैयक्तिक परिस्थितियों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है, किंतु जैनेन्द्र की तरह शुष्क कथानक नहीं हैं उनके पास प्रत्येक उपन्यास में प्रयोग करने के लिए नए-नए अनेक कथानक हैं, नई नई अनेक समस्याएं हैं, अतः उन्हें समस्याओं परिस्थितियों एवं कथानकों आदि के पुनर्प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती है। एक ओर उसके पास कल्पना का वैभव है तो दूसरी ओर अनुभूतियों का संचित कोष - जिसके परिणामस्वरूप वे अपने उपन्यासों को सौंदर्यमयी एवं रसमयी बनाने में पूर्ण सक्षम एवं समर्थ हैं। जैनेन्द्र के उपन्यास यदि पेंसिल निर्मित रफ स्केच के समान हैं तो जोशी के उपन्यास सतरंगी सूक्ष्म रेखाओं से सुसज्जित दिव्य चित्र हैं। जटिल दार्शनिकता पर जैनेन्द्र को अत्यधिक गर्व है। जोशी के उपन्यास दार्शनिक जटिलता शून्य है। किन्तु जोशी का सारल्य, भाषा प्रवाह तथा शैली की प्रौढ़ता आज किसी भी उपन्यासकार में उपलब्ध नहीं है। कहीं कहीं जोशी भी दार्शनिकता प्रिय आलोचकों की प्रशंसा प्राप्त करने की प्रबल आकांक्षा में अथवा विद्यार्थियों के काम की वस्तु बनाने के लालच का संवरण न कर सकने के परिणामस्वरूप दार्शनिक नीरस सिद्धान्त निरूपण के जाल में फंस गए हैं। यह उनकी औपन्यासिकता के ह्रास का द्योतन करता है। 'सुबह के भूले' तथा 'मुक्ति पथ' उपन्यासों की औपन्यासिकता का ह्रास हुआ है।

भगवती चरण वर्मा- भगवती चरण वर्मा ने 'तीन वर्ष', 'आखिरी दांव' तथा 'टेढ़े-मेढ़े' रास्ते में सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेशों को द ष्टिगत रखते हुए मनोविश्लेषण को प्रधानता दी है।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय- अज्ञेय ने 'शेखर : एक जीवनी' (दो भाग) तथा 'नदी के द्वीप' दोनों उपन्यासों में यौन प्रव त्तियों का ऐसा भयंकर चित्रण सूक्ष्म, जटिल एवं गंभीर शैली में किया है कि सामान्य पाठक के ह्रदय को शांति प्रदान करने के स्थान पर उसके मस्तिष्क को कुरेदने एवं कचोटने में आग में घी का काम देता है। अज्ञेय ने विभिन्न मनोवैज्ञानिकों, एवं मनोविश्लेषणकर्ताओं द्वारा प्रतिपादिन यौन सिद्धान्तों के अनुकूल अपने उपन्यास के पात्र-पात्राओं के चरित्र को अति सूक्ष्मता से चित्रित किया है। चरित्र-चित्रण को इनमें इतनी अधिक प्रमुखता प्राप्त हुई है कि उसके समक्ष उपन्यास के अन्य तत्व गौण हो गए हैं। ऐसी स्थिति में इनमें सामाजिक परिस्थितियों के स्थान पर व्यक्ति की मानसिक प्रव त्तियों के विश्लेषण को विस्तार मिलना स्वाभाविक हो गया है।

(iii) **साम्यवादी-** इस वर्ग में साम्यवादी द ष्टिकोण से लिखे गए उपन्यास आते हैं जिनमें राहुल सांकृत्यायन तथा यशपाल प्रमुख उपन्यासकार हैं-

राहुल सांकृत्यायन- राहुत सांकृत्यायन के साम्यवादी उपन्यास 'सिंह सेनापति' तथा 'वोल्गा से गंगा' हैं। दोनों उपन्यासों में रूसी साम्यवादी विचारधारा का प्रतिपादन किया गया है।

यशपाल- यशपाल के उपन्यास 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'मनुष्य के रूप' आदि में वर्ग संघर्ष, वर्ग वैषम्य का चित्रण करते हुए सामाजिक क्रांति का समर्थन किया गया है।

(iv) **ऐतिहासिक-** ऐतिहासिक उपन्यासों को देशकाल प्रधान उपन्यास भी कहा जाता है। इस वर्ग में देशकाल प्रधान या ऐतिहासिक उपन्यास आते हैं। ऐतिहासिक कथानकों की ओर हिंदी उपन्यासकारों का ध्यान बहुत पहले चला गया था। ऐतिहासिक उपन्यास लिखने वालों में किशोरी लाल गोस्वामी, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, यशपाल, व ंदावन लाल वर्मा तथा रांगेय राघव विशेष उल्लेखनीय हैं-

किशोरी लाल गोस्वामी- किशोरी लाल गोस्वामी ने कुछ ऐतिहासिक उपन्यास लिखे जिनमें ऐतिहासिकता का निर्वाह नहीं किया गया है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री- आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अनेक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे जिनमें उनका सर्वोत्कृष्ट ऐतिहासिक उपन्यास 'वैशाली की नगर वधू' है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एवं 'चारुचन्द्र' दो प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

यशपाल- यशपाल का ऐतिहासिक उपन्यास 'दिव्या' है। जिसमें तत्कालीन युग के संपूर्ण परिवेश को प्रस्तुत करने का पूर्व प्रयास किया गया है। अन्य उपन्यास 'अमिता' है।

व ंदावन लाल वर्मा- ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा को चरम विकास तक पहुंचा देने का एक मात्र श्रेय व ंदावन लाल वर्मा को है। 'गढ़ कुंडार', 'विराटा की पद्‌मिनी', 'झांसी की रानी लक्ष्मी बाई', तथा 'म गनयनी' आदि उपन्यास ऐतिहासिक हैं जिनमें इतिहास के अनेक विस्म त प्रसंगों को नवजीवन प्राप्त हुआ है। म गनयनी में ऐतिहासिकता - कल्पना, तथ्य - अवास्तविकता तथा मानव और प्रकृति का सुंदर सामंजस्य एवं समन्वय हुआ है।

डॉ. रांगेय राघव- नवीनतम ऐतिहासिक उपन्यासकारों में डॉ. रांगेय राघव तथा उनके उपन्यासों 'अंधा रास्ता', 'सुनामी' एवं 'भगवान एक लिंग' का विशेष महत्व है।

(v) **आंचलिक-** किसी अंचल या प्रदेश विशेष के वातावरण को सजीव रूप में प्रस्तुत करने को आंचलिकता कहा जाता है। जिन उपन्यासों में यह प्रस्तुतीकरण होता है उन्हें आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी जाती है। हिन्दी उपन्यास के तत्वों पर आधारित नहीं अपितु स्वतंत्र सर्वथा नवीन वर्ग है। वर्तमान काल में ऐसे उपन्यासों का विकास हो रहा है। ऐसे उपन्यासकारों में फणीश्वरनाथ रेणु, उदयशंकर भट्ट, बलभद्र ठाकुर, नागार्जुन तथा तरन तारन के नाम उल्लेखनीय हैं हिंदी आंचलिक उपन्यासों पर बंगला प्रभाव द ष्टिगोचर होता है। उपन्यास की इस परंपरा का श्रीगणेश स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अर्थात् सन् 1950 ई. के आस पास हुआ।

नागार्जुन- नागार्जुन हिंदी के सर्वप्रथम आंचलिक उपन्यासकार हैं। नागार्जुन ने अनेक उपन्यास लिखे जिनमें 'बलचनमा', 'बाबा बटेसर नाथ', 'रतिनाथ की चाची', 'ईमरतिया', 'पारो', 'जमनिया का बाबा' तथा 'दुखमोच' आदि प्रमुख हैं। आंचलिक उपन्यास कला की द ष्टि से बाबा बटेसर नाथ अधिक मंजी अुई सशक्त रचना है। इसमें कथ्य का संतुलित निरूपण, सजीव चरित्र चित्रण तथा प्रसंगों का नवीन प्रणाली से संयोजन सहृदय को आकर्षित करता है। बरगद व क्ष का मानवीकरण करके सर्वथा नवीन प्रयोग किया गया है। बरगद मानवीय संवेदनाओं से युक्त है।

फणीश्वर नाथ रेणु- 'मैला आंचल' लिखकर फणीश्वर नाथ रेणु ने आंचलिक उपन्यास के क्षेत्र में तहलका मचा दिया है। इस उपन्यास के प्रकाशन ने रेणु को रातों रात ख्याति के शिखर पर आसीन कर दिया। इतनी ख्याति किसी भी साहित्यकार को एकलौती रचना पर नहीं मिली है। इसमें बिहार प्रांत के पूर्णिया जनपद के मेरी गंज अंचल के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक एवं धार्मिक आदि सभी परिवेशों का यथार्थ चित्रांकन हुआ है। पूर्णिया जिले की स्थानीय बोली का प्रयोग आंचलिकता की मांग है। पर कुछ स्थानिक शब्दों के प्रयोग भावबोध कराने में कठिनता एवं जटिलता उत्पन्न करते हैं जो कथा रस में बाधक सिद्ध हुए हैं भले ही आंचलिकता प्रदर्शन में सफल हुए हों। 'परती परिकथा' अन्य उपन्यास है।

रांगेय राघव- आंचलिक उपन्यास के क्षेत्र में रांगेय राघव का महत्वपूर्ण योगदान है। 'कब तक पुकारूँ' उनका चर्चित आंचलिक उपन्यास है जिसमें जरामयपेशा आपराधिक कृति वाले नटों के जीवन का व्यापक एवं यथार्थ चित्रण किया गया है। इन नटों की वैवाहिक एवं यौन संबंधी मान्यताएं सामान्य मानव से भिन्न है। इनमें सांप्रदायिक मान्यताएं नहीं हैं क्योंकि बहुत कम समय के लिए अपने मूल निवास पर आते हैं। यायावरी जीवन बिताना इनका जीवन यापन का मुख्य लक्ष्य है।

उदयशंकर भट्ट- उदय शंकर भट्ट का आंचलिक उपन्यास 'लोक परलोक' है जिसमें इह लोक तथा स्वर्ग का काल्पनिक चित्रण किया गया है।

बलभद्र ठाकुर- बलभद्र ठाकुर के उपन्यासों में 'आदित्य नाथ', 'मुक्तावली', 'नेपाल की वो बेटी' मुख्य हैं।

श्याम सन्यासी- श्याम सन्यासी ने एक ही आंचलिक उपन्यास की रचना की जो उत्थान है।

तरन तारन- तरन तारन ने ''हिमालय के आंचल' आंचलिक उपन्यास लिखा। इसमें लोक संस्कृति लोक गीतों तथा लोक शब्दावली का प्रयोग अत्यधिक हुआ है।

उपर्युक्त पांच वर्गो के अतिरिक्त प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकार विभिन्न धाराओं में विभाजित होकर विभिन्न रंग रूपों में उपन्यास साहित्य का स जन कर रहे हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् छठे दशक में अनेक ऐसे उच्च कोटि के उपन्यासों का प्रकाशन हुआ है, जिनमें नए-नए विषयों, शिल्प विधियों, और शैलियों का प्रयोग मिलता है। कुछ प्रमुख उपन्यासकारों और उनके उपन्यासों की सूची निम्नलिखित है-

यज्ञदत्त - 'इंसान' एवं 'अंतिम चरण', अंचल - 'चढ़ती धूप', देवेंद्र सत्यार्थी - 'रथ का पहिया', धमवीर भारती - 'सूरज का सातवां घोड़ा', राजेन्द्र यादव - 'प्रेत बोलते हैं', 'टूटे हुए लोग'।

डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार - 'मैंने होटल चलाया', अम त लाल नागर - 'बूंद और समुद्र' एवं 'शतरंज के मोहरे', लक्ष्मी नारायण लाल - 'बंया का घोसला' एवं 'साप', आचार्य चतुरसेन शास्त्री- 'खग्रास', सत्यकाम विद्यालंकार - 'बड़ी मछली और छोटी मछली', यावेंद्र शर्मा चंद्र - 'अनाव त्त', अनंत गोपाल 'शेवड़े' - भग्न मन्दिर, यशपाल - 'झूठा सच', देवराज - 'अजय की डायरी'; जीवन प्रकाश जोशी - 'विवाह ही मंजिलें' आदि साठोत्तरी (सन् 1960 ई. के बाद) उत्कृष्ट उपन्यासों में है।

इनके अतिरिक्त हिंदी में और भी अनेक उपन्यास कार इस विद्या में योगदान कर रहे हैं जिनमें देवी दयाल चतुर्वेदी, कंचन लता सब्बरवाल, तथा हेमराज निर्मम आदि ने भी उच्च कोटि के उपन्यासों की रचना की है।

अनूदित- मौलिक उपन्यासों के अतिरिक्त हिंदी में पर राष्ट्रीय एवं भारतीय भाषाओं के उच्च कोटि के उपन्यासों के सुंदर अनुवाद भी अत्यधिक संख्या में प्रस्तुत हुए हैं इनमें हेमसन 'आग जो बुझी नहीं', स्टीफेन ज्विग - 'विराट', मोबी डिक - 'लहरों के बीच ड्यूमा' - कलाकार कैदी, बालजक - 'क्या पागल था', आदि प्रशंसनीय हैं। भारतीय लेखकों में आरिगपूड़ि - 'अपने पराए', भवानी भाचार्य - 'शेर का सवार', खांडेकर - 'ययाति', विमल मित्र - 'साहब बीबी गुलाम' आदि महत्वपूर्ण है।

स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी उपन्यास साहित्य आज अनेक दिशाओं में तीव्रगति से अग्रसर है। उपन्यासकार अति यथार्थवादिता, प्रयोगशीलता, एवं न्यूनता की प्रव त्तियों से बुरी तरह ग्रस्त होते जा रहे हैं। कुछ उपन्यासकार कुंठाओं से पीड़ित, असफलताओं एवं असंतुलन से जर्जरित तथा पाश्चात्य भोगवादी सभ्यता के आकर्षण में भटके हुए हैं तथा वे साहित्य स जन किसी को कुछ देने के लिए नहीं अपितु अपनी ही कुंठा से मुक्ति पाने हेतु कर रहे हैं।

उपन्यास पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसका क्षेत्र मात्र सुशिक्षित समाज एवं शहरी जीवन तक सीमित हो गया है। पर अनेक उपन्यासकारों ने आंचलिकता को फैशन के रूप में ग्रहण किया है, ग्रामीण जीवन की परिस्थितियों एवं समस्याओं का यथार्थ बोध बहुत कम रचनाओं में उपलब्ध होता है।

इस संदर्भ में सोम वीरा की चुनौती अवलोकनीय है - हमारा आधुनिक साहित्य केवल 'मध्यवर्गीय नगर साहित्य' इसलिए है क्योंकि हमारे अधिकांश साहित्यकार केवल इसी वर्ग की बातों को लेकर, केवल इसी वर्ग के लिए लिखते हैं।

ग्रामीण लोगों, आदिवासियों, करोड़पतियों के जीवन पर, रात को सड़क पर सोने वालों पर, दिन में चना मूंगफली बेचने वालों के जीवन पर, भिखारियों पर खिलाड़ियों पर, वैज्ञानिकों पर, मछुआरों पर, अछूतों पर मध्य वर्ग के अतिरिक्त समाज के अन्य अंगों से संबंधित विषयों पर कितने साहित्यकारों ने कलम उठाई है? अब उठाना है।

आधुनिक प्रयोग- रचना शिल्प के क्षेत्र में उपन्यास में अनेक नए प्रयोग किए गए। उपन्यास के अंदर उपन्यास लेखन का महत्वपूर्ण प्रयोग हुआ। इसके सफल प्रयोग का श्रेय अम त लाल नागर को है। 'अम त और विष' उपन्यास के एक कथा लेखन की आत्म कथा है तो दूसरी ओर पटकथा। लेखन एक कथा का भोक्ता है तो दूसरे उपन्यास का प्रणेता है। उपन्यास लेखन संबंधी सहयोगी प्रयास भी नया प्रयोग है। सहयोगी उपन्यास 'ग्यारह सपनों का देश' धर्मवीर भारती द्वारा संपादित है। इसका प्रथम एवं अंतिम अध्याय भारती ने लिखा है। दूसरे से दसवें अध्याय को उदय शंकर भट्ट, रांगेय राघव, अम त लाल नागर आदि अन्य लेखकों ने लिखा है। उपन्यास लेखन में जीवन क्षेत्र का संकोच भी नया प्रयोग है। इसमें अनेक वर्षो के जीवन चित्रण के स्थान पर कुछ घंटों या कुछ दिनों का चित्रण रहता है। यथा - यशपाल के 'बारह घंटे' उपन्यास और अश्क के 'शहर में घूमता आईना' उपन्यास में केवल बारह घंटे की कथा कही गई है। निर्मल वर्मा के 'वे दिन' में पात्रों के जीवन के तीन दिनों को उकेरा गया है। शैली की द ष्टि से भी नए प्रयोग हुए हैं। पूर्व दीप्ति शैली का प्रयोग 'त्यागपत्र' में मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग सन्यासी में डायसी शेली का प्रयोग 'अजय की डायरी' उपन्यास में किया गया है। अतः प्रेमचन्दोत्तर युग में उपन्यास विद्या के क्षेत्र में अनेक नए प्रयोग किए गए हैं।

26. नाटक : उद्‍भव एवं विकास

नाटक का उद्‍भव और विकास विवेचन विश्लेषण से पूर्व नाटक शब्द की व्याख्या एवं अर्थ तथा व्युत्पत्ति से अवगत हो लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

नाट से पूर्व नट् धातु है जिससे नट व्युत्पन्न हुआ है।

'नट्' - सं. नट् (न त्य) + अच् अभिनय में वह व्यक्ति जो किसी का रूप धारण करके उसकी चेष्टाओं का अभिनय करता है।

नाटक - व्युत्पत्ति - अर्थ एवं व्याख्या

नाटक शब्द की व्युत्पत्ति सं. नट् (नाचना) + घञ् से हुई है जिसका अर्थ नच्च, नाच, न त, न त्य, नकल या स्वांग होता है। नाटक से पूर्व नट् से नाट शब्द व्युत्पन्न हुआ है। इसलिए नाटक से नाट की व्यत्पत्ति देखी।

नाटक- सं. नट् + ण्वुल् - अक प्रत्यय से नाटक की व्युत्पत्ति हुई है जिसका अर्थ नाट्य या अभिनय करने वाला या नटों या अभिनेताओं के द्वारा मंचन। अभिनय इसका अंग्रेजी पर्याय ड्रामा है।

नाटक शब्द की व्युत्पत्ति विवेचन से इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि नाटक शब्द तक पहुंचने से पूर्व - नच्च - नाच - न त् - न त्य, नट - नाट - नाट्य - नाटक शब्द प्रमुख हैं।

नच्च (अंग प्रत्यंग को हिलाना) से क्षतिपूरक दीर्घीकरण से नाच (वाद्य यंत्र सहित स्वर,लय, ताल पर नाचना क्रिया की संज्ञा), न त् में सांस्कृतिक भाव आ जाता है। न त् से (न त्य) बन जाता है। नट से नाट नकल स्वांग का भाव आ जाता है। जिससे नाट्य शब्द बना है। नाट्य से नाटक की व्युत्पित्ति हुई है।

अंग प्रत्यंग हिलाना, अंग प्रत्यंग वाद्य यंत्र के साथ, भावाभिव्यक्ति, तथा अभिनय के साथ कथा की अभिव्यक्ति नाटक कहलाती है।

प्रथम हिंदी नाटक- नाटक का बीजवपन वेदों में हो चुका था जिसके आधार पर नाटक को पांचवां वेद कहा जाता है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में घटना का उल्लेख किया गया है जिसके अनुसार देवताओं से प्रार्थना करने पर ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय एवं अथर्ववेद से रस लेकर पांचवें वेद अर्थात् नाटक को जन्म दिया। शिव ने तांडव न त्य तथा पार्वती ने लास्य प्रदान किया।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि वेदों के बाद ही नाटक का आविर्भाव हुआ। उत्तर-वैदिक युग से पूर्व नाटक का आगमन हो चुका था। 'यवनिका' के आधार पर नाटक को यूनान की देन कहा गया। वह भी सत्य नहीं क्योंकि शब्द यवनिका नहीं 'जवनिका' है। जब वेग के अनुसार, जवनिका-वेग से उठने गिरने वाला पर्दा होता है। यूनानी नाटक में पर्दा नहीं होता था, अंक नहीं होते थे आदि।

पाणिनि (ईसा 400 वर्ष पूर्व) ने नाटक का उल्लेख किया है। रामायण, महाभारत में नाटक का उल्लेख है। उपलब्ध नाटकों में सबसे प्राचीन महाकवि भास की रचनाएं हैं। कालिदास, शुद्रक, भवभूति, हर्षवर्द्धन, भट्ट नारायण तथा विशाखदत्त आदि नाटककार थे। उसके बाद नाट्य कला विलुप्त सी हो गई।

डॉ. दशरथ ओझा ने तेरहवीं शताब्दी से नाटक का आविर्भाव माना है। सर्वप्रथम उपलब्ध नाटक "गय सुकुमार रास" है जिसका रचनाकाल संवत 1289 वि. है। इस की भाषा पर राजस्थानी हिंदी का प्रभाव है। नाटकीय तत्वों पर प्रकाश नहीं पड़ता है। इसलिए इसे प्रथम नाटक नहीं कहा जा सकता है।

महाकवि विद्यापति द्वारा रचित मैथिली नाटक 'गोरक्ष विजय' को प्रथम नाटक कहा गया है। किंतु पद्य भाग मैथिली में है।

मैथिली नाटकों के बाद रास नाटक अर्थात् ब्रजभाषा पद्य के नाटक आये। उसके पश्चात् हिंदी में पद्य वद्य नाटकों की रचना

होती रही जिनमें 'प्रबोध चंद्रोय' को प्रथम नाटक कुछ आलोचकों ने माना है। यशवंत सिंह को प्रथम नाटककार माना है। इसका रचनाकाल सं. 1700 वि. है।

हिंदी में नाटक के स्वरूप का समुचित विकास आधुनिक युग से होता है। सन् 1850 ई. से आज तक के युग को नाट्य रचना की द ष्टि से तीन खंडों में विभक्त कर सकते हैं।

(i) भारतेंदु युग (सन् 1850 - 1900 ई.)

(ii) प्रसादयुग (सन् 1901 - 1930 ई.)

(iii) प्रसादोत्तर युग (सन् 1931 - 1950 ई.)

(iv) स्वातंत्र्योत्तर युग (सन् 1951 - अब तक)

भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने अपने पिता बाबू गोपाल चन्द्र द्वारा रचित नाटक 'महुष नाटक' (सन् 1841 ई.) को हिंदी का प्रथम नाटक माना है। किंतु यह भी ब्रजभाषा परंपरा के पद्य बद्ध नाटकों में आता है।

(i) **भारतेंदु युग-** सन् 1861 ई. राजा लक्ष्मण सिंह ने 'अभिज्ञान शकुन्तलम' का हिन्दी अनुवाद 'शाकुन्तला' नाटक नाम से किया। भारतेन्दु ने प्रथम नाटक 'विद्या सुंदर' सन् 1868 ई में बंगला नाटक से छायानुवाद किया। उसके पश्चात् उनके अनेक मौलिक एवं अनूदित नाटक प्रकाशित हुए- 'पाखंड विडम्बनम्' - 1872, 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' - 1872, 'धनंजय' विजय, 'मुद्राराक्षस' - 1875, 'सत्यहरिश्चन्द्र' - 1875, 'प्रेमयोगिनी' - 1875, 'विषस्य - विषमौषधम्' - 1876, 'कर्पूर मंजरी' - 1876, 'चंद्रावली' - 1876, 'भारत दुर्दशा' - 1876, 'नील देवी' - 1877, 'अंधेरी नगरी' - 1881, तथा 'सती प्रताप' - 1884 ई. आदि उल्लेखनीय हैं।

भारतेंदु के नाटक मुख्यतः पौराणिक, सामाजिक, तथा राजनीतिक विषयों पर आधारित है। सत्य हरिश्चन्द्र, 'धनंजय विजय', 'मुद्राराक्षस' तथा 'कर्पूर मंजरी' अनूदित नाटक हैं। मौलिक नाटकों में उन्होंने सामाजिक कुरीतियों, एवं धर्म के नाम पर होने वाले कुक त्यों आदि पर करारा व्यंग्य किया है। पाखंड-विडंबनम्, वैदिक हिंसा हिंसा न भक्ति ऐसा ही नाटक हैं। विषस्य विषमौषधम् में देशी नरेशों की दुर्दशा पर आंसू बहाए हैं तथा उन्हें चेतावनी दी है कि यदि वे न संभलें तो धीरे-धीरे अंग्रेज सभी देशी रियासतों को अपने अधिकार में ले लेंगे। 'भारत दुर्दशा' में भारतेंदु की राष्ट्र-भक्ति का स्वर उद्‌घोषित हुआ है। इसमें 'अंग्रेज' को भारत के शासक रूप में चित्रित करते हुए भारत वासियों के दुर्भाग्य की कहानी को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें स्थान-स्थान पर अंग्रेजों की स्वेच्छाचारिता, अत्याचारी व्यवहार, भारतीय जनता की मोहकता पर गहरा आघात किया है। 1856 ई. की असफल क्रांति को लोग अभी भूल नहीं पाए थे। भारतेंदु ने ब्रिटिश शासन एवं उसके विभिन्न अंगों की जैसी स्पष्ट आलोचना अपने साहित्य में ही है वह उनके उज्जवल देश प्रेम एवं अपूर्व साहस का द्योतन करती है।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र को संस्कृत, प्राकृत, बंगला एवं अंग्रेजी के नाटक साहित्य का पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने इन सभी भाषाओं से अनुवाद किए थे। नाट्य कला के सिद्धान्तों का उन्होंने सूक्ष्म अध्ययन किया था इसका प्रमाण उनके नाटक देते हैं। उन्होंने अपने नाटकों के मंचन की भी व्यवस्था की थी। वे मंचन में भी भाग लेते थे।

भारतेंदु के नाटकों में जीवन और कला, सौंदर्य और शिव, मनोरंजन और लोक सेवा का अपूर्व सामंजस्य मिलता है। उनकी शैली में सरलता, रोचकता, एवं स्वाभाविकता आदि के गुण विद्यमान हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रेरणा तथा उनके प्रभाव से उस युग के अनेक लेखक नाट्य रचना में तत्पर हुए। श्रीनिवास दास 'रणधीर' और 'प्रेम मोहिनी', राधाकृष्ण दास - 'दुःखिकी बाला', महाराणा प्रताप, खंगबहादुर लाल - 'भारत ललना', बदरी नारायण चौधरी प्रेमधन - 'भारत सौभाग्यम्', तोताराम वर्मा - 'विवाह विडंबन', प्रताप नारायण मिश्र - 'भारत दुर्दशा' रूपक, और राधाचरण गोस्वामी 'तन-मन-धन' श्री गोसाई जी के 'अर्पण' आदि नाटकों की स जना की।

इन नाटकों में समाज सुधार, देश-प्रेम, या हास्य विनोद की प्रव त्ति द ष्टिगोचर होती है। इनमें गद्य खड़ी बोली तथा पद्य ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है। संस्कृत नाटकों के अनेक शास्त्रीय लक्षणों की इनमें अवहेलना की गई है। भाषा पात्रानुकूल है। शैली में सरलता, मधुरता एवं रोचकता द ष्टिगोचर होती है। भारतेंदु युगीन नाट्य साहित्य जन मानस के

निकट था उसमें लोक रंजन एवं लोकरक्षण दोनों भावों का सुंदर समन्वय हुआ है। तत्कालीन नाटक पाठ्य एवं द श्य दोनों रूपों में तत्कालीन लोकहृदय का आकर्षक बने हुए थे। इनका दिव्य मंचन भी होता था।

(ii) **प्रसाद युग-** आधुनिक हिंदी नाट्य साहित्य में भारतेंदु के पश्चात् सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी ऐतिहासिक नाटककार जयशंकर प्रसाद हैं। इन्होंने जितनी ख्याति काव्य की विभिन्न विधाओं के सकल स जन में प्राप्त की। नाटक, कहानी तथा उपन्यास सभी विधाओं में सफल लेखनी उठाकर हिंदी गद्य साहित्य को सम द्ध बनाया। जयशंकर प्रसाद ने एक दर्जन से अधिक नाटकों की स जना की इनके नाटकों में 'सज्जन' - 1910 ई., 'कल्याणी परिणय' 1912 ई., 'करुणालय' - 1913 ई., 'प्रायश्चित' 1914 ई., 'राज्य श्री' 1915 ई., 'विशाख' 1921 ई., 'अजात शत्रु' 1922 ई., 'कामना' 1923 ई., जनमेजय का 'नाम यज्ञ' - 1923 ई. 'स्कंदगुप्त' 1928 ई., 'एक घूंट' 1929 ई., 'चंद्रगुप्त' 1931 ई. तथा 'ध्रुवस्वामिनी' - 1933 ई. आदि उल्लेखनीय हैं।

भारतेंदु युगीन कवियों ने देश की दुर्दशा का वर्णन बारंबार अपनी रचनाओं में किया, जिससे प्रभावित होकर भारतीयों में करुणा, ग्लानि, दैन्य, एवं अवसाद की प्रबल भावनाओं का उदय हुआ। ऐसी भावनाओं का भारतीयों में जन्मना अति स्वाभाविक था। साहित्यिक रचनाओं ने आग में घी का समावेश किया। ऐसे परिवेश एवं ऐसी मनःस्थिति में समाज एवं राष्ट्र विदेशी शक्तियों से संघर्ष करने की क्षमता खो बैठता है। प्रसाद ने देशवासियों में आत्मगौरव का संचार किया। जिसके लिए उन्होंने अपने नाटकों में भारत के अतीत के गौरवपूर्ण द श्यों को प्रतिस्थापित किया। यही कारण है कि उनके अधिकांश नाटकों का कथानक उस बौद्ध युग से संबंधित है जब भारत अपनी सांस्कृतिक पताका विश्व के अधिकांश देशों में फहरा रहा था। बौद्धधर्म का प्रचार-प्रसार करने के लिए महाराज अशोक ने अपने पुष्यमित्र पुत्र एवं पुत्री संमित्रा को विदेशों में भेजा था। प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति को प्रसाद ने अति सूक्ष्मता एवं सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत किया है। उसमें मात्र तत्युगीन रेखाएं ही नहीं मिलती अपितु तत्कालीन वातावरण के सजीव अंकन की रंगीनी भी मिलती है। धर्म की बाह्य परिस्थितियों का चित्रण करने की अपेक्षा उन्होंने दार्शनिक आंतरिक गुत्थियों तथा समस्याओं को स्पष्टता प्रदान करना अधिक उचित समझा है। पात्रों का चरित्र चित्रण करते हुए परिवेशानुसार परिवर्तन एवं विकास का प्रतिपादन किया है। मानव चरित्र सत्-असत् दोनों पक्षों का पूर्ण प्रतिनिधित्व उनके नाटकों में मिलता है। नारी रूप को जैसी महानता, सूक्ष्मता, शालीनता, त्याग, बलिदान, ममता, सौहार्द, दया, माया एवं गंभीरता कवि प्रसाद ने प्रदान की है। उससे भी अधिक सक्रिय एवं तेजस्वी रूप नारी को नाटककार प्रसाद ने प्रदत्त किया है। प्रसाद ने प्रायः सभी नाटकों में किसी न किसी ऐसी नारी की अवतारणा की है जो प थ्वी के दुख पूर्ण, अंधकार पूर्ण मानवता को सुखमय उज्जवल प्रकाश की प्रदायिनी बनी है। जो पाशविकता, दनुजता और क्रूरता के मध्य क्षमा, करुणा एवं प्रेम के स्थायी रूप की प्रतिष्ठा करती है और अपने प्रभाव विचारों तथा चरित्र के दुर्जनों को सज्जन दुराचारियों को सदाचारी, न शंस अत्याचारियों को उदार लोकसेवी बना देती है।

नारी तुम केवल श्रद्धातोविश्वरजत नग पग तल में,
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के इस समतल में।

-कामायनी

प्रसाद की कामायनी की यह उक्ति प्रसाद के नाटक की दिव्य नायिकाओं को पूर्णतः चरितार्थ करती है। नाट्य शिल्प की द ष्टि से प्रसाद के नाटकों में पूर्वी एवं पश्चिमी तत्वों का अपूर्व सम्मिश्रण द ष्टिगोचर होता है। प्रसाद के नाटकों में एक ओर भारतीय नाट्यशास्त्रानुसार कथावस्तु, नायक, प्रतिनायक, विदूषक, शील निरूपण, रस, सत्य और न्याय विजय की परंपरा का पूर्ण सफलता से पालन हुआ है दूसरी ओर पाश्चात्य नाटकों का संघर्ष एवं व्यक्ति वैचित्र्य का निरूपण भी उनकी रचनाओं में उसी तरह हुआ है। भारतीय नाट्य परंपरा की रसात्मकता इनमें प्रचुरता से उपलब्ध है साथ-साथ पाश्चात्य नाटकों की सी कार्य व्यापार की गतिशीलता भी उनमें विद्यमान है। भारतीय नाटक सुखांत होते हैं। पाश्चात्य नाटककार दुखांत। नाटकों को श्रद्धा की द ष्टि से देखते हैं। प्रसाद ने नाटकों का अंत इस ढंग से किया है कि उसे सुखांत दुखांत दोनों की संज्ञा दी जाती है क्योंकि उन्होंने सुख दुखांतक नाटकों का स जन किया है। दूसरी द ष्टि से उन नाटकों को न सुखांत कहा जा सकता है न दुखांत कहा जा सकता है। वास्तव में नाटकों का अंत एक ऐसी वैराग्य भावना के साथ होता है जिसमें नायक विजयी हो जाता है किंतु वह फल का उपभोग स्वयं नहीं करता है। उसे वह प्रतिनायक को ही प्रत्यावर्तित कर देता है। इस प्रकार नाटकों के विचित्र अंत को प्रसाद के नाम पर ही प्रसादांत कहा गया है।

मंचन की द ष्टि से प्रसाद के नाटकों में आलोचकों को अनेक दोष द ष्टिगोचर होते हैं। कथानक विस्त त एवं विश ंखल सा है कि उससे उनमें शैथिल्य आ गया है। उन्होंने ऐसी अनेक घटनाओं एवं द श्यों का आयोजन किया है जो मंचन की द ष्टि से उपयुक्त एवं उचित नहीं। दीर्घ स्वगत कथन एवं लंबे वार्तालाप, गीतों का आधिक्य, वातावरण की गंभीरता आदि बातें उनके नाटकों की अभिनेयता में अवरोधक सिद्ध होती हैं। वास्तव में प्रसाद नाटकों में कवि एवं दार्शनिक अधिक हैं, नाटककार कम हैं। उनके नाटक विद्वानों, ऋषियों, मनीषियों के चिंतन मनन की वस्तु हैं। जन साधारण के समक्ष उनका सफल प्रदर्शन नहीं किया जा सकता है इस तथ्य को प्रसाद में स्वयं व्यक्त किया है।

प्रसाद युग के अन्य नाटककार माखन लाल चतुर्वेदी, 'कृष्णार्जुन युद्ध', पंडित गोविंद वल्लभ पंत - 'वरमाला', एवं 'राजमुकुट' आदि। पांडेय बेचन शर्मा उग्र - 'महात्मा ईसा', मुंशी प्रेम चन्द - 'कर्बला' एवं 'संग्राम' आदि उल्लेखनीय हैं। ध्यातव्य है कि विषय एवं शैली की द ष्टि से इन नाटककारों में परस्पर थोड़ा बहुत अंतर अवश्य है। परिणामतः इन्हें नाटककार स्वरूप विशिष्टता विहीनता के कारण महत्व नहीं दिया जाता है।

प्रसादोत्तर नाटक- प्रसादोत्तर नाटक साहित्य को ऐतिहासिक, पौराणिक, सांस्कृतिक, सामाजिक राजनीतिक कल्पनाश्रित एवं अन्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पुनः कल्पना आश्रित नाटकों को समस्या प्रधान, भावप्रधान तथा प्रतीकात्मक नाटक तीन उप विभागों में विभक्त किया जा सकता है।

क) **ऐतिहासिक-** प्रसादोत्तर युग में ऐतिहासिक नाटकों की परंपरा का अत्यधिक विकास हुआ है। ऐतिहासिक नाटककारों में हरिकृष्ण प्रेमी, व ंदालाल वर्मा, गोविंद वल्लभ पंत, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, उदय शंकर भट्ट तथा कतिपय अन्य नाटककारों ने अपूर्व योगदान किया है।

हरिकृष्ण प्रेमी- हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में - 'रक्षाबंधन' 1934, 'शिव साधना' 1936, 'प्रतिशोध स्वप्न भंग' 1940, 'आहुति' 1940, 'उद्धार' 1940, 'शपथ', 'कानन प्राचीर प्रकाश स्तंभ' 1954, 'कीर्ति स्तंभ' 1955, 'विदा' 1958, 'संवत प्रवर्तन' 1959 'सापों की स ष्टि' 1959 'आन मान' 1961 आदि नाटकों का उल्लेख किया जा सकता है। प्रेमी ने अपने नाटकों में अति प्राचीन या सुदूर पूर्व इतिहास को नाटक विषय का चयन न करके मुसलमानों के इतिहास को चयनित करके उसकें संदर्भ में आधुनिक युग की अनेक राजनीतिक, साम्प्रदायिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। उनके नाटकों ने आधुनिक भारतीय भारतीयों में राष्ट्र भक्ति, आत्मा त्याग, बलिदान, हिंदू मुस्लिम एकता आदि भावों तथा प्रव त्तियां उदीप्त की तथा प्रबलता भरी है। ऐतिहासिकता का उपयोग रोमांस के लिए नहीं किया गया है। आदर्शो की स्थापना के लिए ऐतिहासिकता का ग्रहण किया गया है। प्रेमी की रचनाएं, नाट्य कला एवं शिल्प विधान की द ष्टि से दोष रहित तथा सफल प्रमाणित हुई है।

व न्दावन लाल वर्मा- व न्दावन लाल वर्मा इतिहास वेत्ता है। उनकी इतिहास विज्ञता की अभिव्यक्ति का माध्यम उपन्यास एवं नाटक दोनों हैं। उनके ऐतिहासिक नाटकों में 'झांसी की रानी' - 1948 'पूर्व की ओर' 1950 'बीरबल' 1950 'ललित विक्रम' 1953 आदि का विशेष महत्व है। इनके अतिरिक्त वर्मा ने सामाजिक नाटकों की भी स जना की। वर्मा के नाटकों में कथावस्तु एवं घटनाओं को विशेष महत्व का विषय बनाया गया है। कही कही उनकी घटना प्रधानता भी द ष्टिगोचर होती है। द श्य विधान की सरलता, चरित्र -चित्रण की स्पष्टता, भाषा की उपयुक्तता, गतिशीलता एवं संवादों की संक्षिप्तता ने उनके नाटकों को मंचन की द ष्टि से पूर्ण सफलता प्रदान की है।

गोविंद वल्लभ पंत- गोविंद वल्लभ पंत ने अनेक सामाजिक एवं ऐतिहासिक नाटकों की स जना की है। उनके नाट् साहित्य में 'राजमुकुट' 1935, 'अंतः पुर का छिद्र' 1940 आदि प्रमुख हैं। 'राजमुकुट' में मेवाड़ की पन्ना धाय के पुत्र का बलिदान तथ 'अंतःपुर का छिद्र' में वत्सराज उदयन के अंतःपुर की कलह का चित्रण अति प्रभावोत्पादक ढंग से किया गया है। पंत के नाटकों पर संस्कृत, अंग्रेजी एवं पारसी नाटकों की विभिन्न परंपराओं का प्रभाव द ष्टिगोचर होता है। नाटकों को अभिनेय बनाने का पूरा प्रयास किया गया है।

कुछ ऐसे नाटककार हैं जिनका ऐतिहासिक क्षेत्र नहीं है उनका संबंध अन्य क्षेत्रों से है किन्तु कभी-कभी वे इतिहास को अपने नाटकों का विषय बनाकर साहित्य स जन करते हैं। ऐसे ऐतिहासिक नाटककारों में प्रमुख नाटककार एवं उनके नाटक निम्नलिखित हैं-

चंद्रगुप्त विद्यालंकार- 'अशोक' 1935, 'रेवा' 1938।

सेठ गोविंद दास - 'हर्ष' 1942, 'शशि गुप्त' 1942.

सियाराम शरण गुप्त- 'पुण्य पर्व' 1933।

उदय शंकर भट्ट- 'मुक्ति पथ' 1944, 'दाहर' 1933, 'शक विजय' 1949।

लक्ष्मी नारायण मिश्र- 'गरुणध्वज' - 1948, 'वात्सराज' 1950, 'वितस्ता की लहरों' 1953।

सत्येंद्र- 'मुक्ति यज्ञ' 1936।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद- 'गौतम नंद'।

उपेन्द्र नाथ अश्क- 'जय पराजय' 1936।

सुदर्शन- 'सिकंदर' 1947।

बैकुंठ नाथ दुग्गल-

बनारसी दास करुणा- 'सिद्धार्थ बुद्ध' 1955।

जगदीश चन्द्र माथुर- 'कोणार्क' 1951।

देवराज यशस्वी- भोज, मानव प्रताप 1952।

चतुरसेन शास्त्री- 'छत्रसाल'।

इनके अतिरिक्त कुछ लेखकों ने जीवनी परक नाटकों की भी रचना की है। जिनमें

लक्ष्मीनारायण- 'इंदु' - 1955।

सेठ गोविंद दास- 'भारतेंदु' - 1955, 'रहीम' 1955।

इन्हें भी ऐतिहासिक नाटकों में सम्मिलित किया जा सकता है।

ऐतिहासिक नाटकों की कथित सूची यह स्पष्ट कर देती है कि ऐतिहासिक नाटकों की अत्यधिक प्रगति एवं अभिव द्धि हुई है। इनमें इतिहास और कल्पना का सुंदर समन्वय तथा संतुलित संयोग मिलता है। अधिकांश नाटकों में इतिहास की केवल घटनाओं का ही नहीं अपितु उनके सांस्कृतिक परिवेश का भी प्रस्तुतीकरण किया गया है। पात्रों का अंतर्द्वन्द्व युगीन चेतना तथा समसामयिक सत्य को उद्घाटित करने का प्रयास भी नाटककारों ने किया है। पूर्व नाटककारों की तुलना से स्पष्ट हो जाता है कि इनमें कला, शिल्प एवं शैली की द ष्टि से विशेष विकास किया है। यत्र-तत्र ऐतिहासिक ज्ञान, भाव विचार तथा प्रयोगों की नूतनता पर अधिक बल दिए जाने के परिणामस्वरूप रोचकता एवं प्रभावोत्पादकता कम हो गई है।

(ख) **पौराणिक-** इस कालावधि में पौराणिक नाटकों की परंपरा भी विकसित हुई। विभिन्न लेखकों ने नाटक का विषय एवं आधार पौराणिकता को बनाया तथा अनेक श्रेष्ठ नाटकों का स जन किया जिनका विवरण इस प्रकार है-

सेठ गोविंद दास- 'कर्त्तव्य' 1935, 'कर्ण' 1946।

चतुर सेन शास्त्री- 'मेघनाथ' 1939, 'राधाकृष्ण'।

रामव क्ष बेनीपुरी- 'सीता की मां'।

किशोरी दास वाजपेयी- 'सुदामा' - 1939।

गोकुल चन्द्र शर्मा- 'अभिनय रामायण'।

प थ्वी नाथ शर्मा- 'उर्मिला' 1950।

सद्गुरु शरण अवस्थी- 'मझली रानी'।

वीरेंन्द्र कुमार गुप्त- 'सुभद्रा परिणय'।

उदय शंकर भट्ट- 'विद्रोहिणी अम्बा' 1935, 'सागर विजय' 1937।

कैलाश नाथ भटनागर- 'भीम प्रतिज्ञा' 1934, 'श्री वत्स' 1941।

पांडेय बेचन शर्मा उग्र- 'गंगा का बेटा' -1940।

तारा मिश्र- 'देवयानी' 1944।

डॉ. लक्ष्मण स्वरूप - 'नल दमयंती' 1941।

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी- 'श्रीशुक' 1944।

सूर्य नारायण मूर्ति- 'महानाश की ओर' 1960।

प्रेमनिधि शास्त्री- 'प्रणमूर्ति' 1950।

उमाशंकर बहादुर- 'मोल' 1951।

गोविंद वल्लभ पं.- 'ययाति' 1951।

डॉ. कृष्ण दत्त भारद्वाज- 'अज्ञात वास' 1952।

मोहन लाल जिज्ञासु- 'पर्वदान' 1952।

हरिशंकर सिन्हा 'श्रीनिवास'- 'मां दुर्गे' 1953।

लक्ष्मी नारायण मिश्र- 'नारद की वीणा' 1946, 'चक्रव्यूह' 1954।

रांगेस राघव- 'स्वर्ग भूमि का यात्री' 1951।

गुंजन मुखर्जी- 'शक्ति पूजा' 1952।

जगदीश- 'प्रादुर्भाव' 1955 आदि।

विशेषताएं-

डॉ. देवर्षि सनाढ्य शास्त्री ने अपने शोध प्रबंध में पौराणिक नाटकों की विशेषताओं का विवेचन, विश्लेषण करते हुए कहा है -

(i) "इनका कथानक पौराणिक होते हुए भी उसके ब्याज से आधुनिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। पौराणिक कथाओं के माध्यम से किसी ने कर्त्तव्य के आदर्श को पाठकों के समक्ष रखा है किसी ने शिक्षित पात्र के साथ सहानुभूति के दो आंसू बहाएं हैं किसी ने जाति-पांति की समस्याओं के समाधान ढूंढने का प्रयास किया है। किसी ने नारी के गौरव के प्रति अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किए हैं। अधिकांश नाटककारों ने इन पौराणिक नाटकों के माध्यम से वर्तमान जीवन को सांत्वना एवं आशा की ज्योति प्रदर्शित की है।"

(ii) इन नाटकों की दूसरी विशेषता यह है कि प्राचीन संस्कृत के आधार पर पौराणिक असंबद्ध एवं संगति स्थापित करने का भरसक यत्न किया है।

(iii) पौराणिक नाटक वर्तमान जीवन को संकीर्णता एवं सीमा की प्रतिबद्धता से निकालकर आधुनिक मानव समाज को व्यापकता एवं विशालता का संदेश देकर उन्हें उन्नति के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हुए अग्रसर करते हैं।

रंग मंच एवं नाट्य शिल्प की द ष्टि से इनके अनेक नाटकों में दोष दर्शन किये जा सकते हैं किंतु गोविंद बल्लभ पंत, सेठ गोविंद दास एवं लक्ष्मी नारायण मिश्र जैसे प्रौढ़ नाटककारों में दोष नहीं है। विषयवस्तु की द ष्टि से ये नाटक पौराणिक होते हुए भी प्रतिवादन शैली एवं कला के विकास की द ष्टि से आधुनिक तथा वे आज की सामाजिक रूचि एवं समस्याओं के प्रतिकूल नहीं हैं।

(ग) **कल्पनाश्रित-** इस युग के कल्पना पर आश्रित नाटकों को उनकी मूल प्रव त्ति के अनुसार तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(i) समस्याप्रधान नाटक

(ii) भावप्रधान नाटक

(iii) प्रतीकात्मक नाटक।

(i) **समस्याप्रधान नाटक-** समस्या प्रधान नाटकों को प्रचलन में लाने का श्रेय इब्सन, बर्नाडसा आदि पाश्चात्य नाटककारों को है। पाश्चात्य नाटक के क्षेत्र में रोमांटिक नाटकों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप यथार्थवादी नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें सामान्य जीवन की समस्याओं का समाधान विशुद्ध बुद्धि की द ष्टि से खोजा जाता है। इनमें यौन समस्याओं को ही ग्रहण किया गया है। बाह्य द्वंद्व की अपेक्षा आंतरिक द्वंद्व को अधिक प्रदर्शित किया गया है। स्वागत-भाषण, गीत, काव्यात्मकता आदि का इनमें त्याग कर दिया गया है। विषयवस्तु की द ष्टि से इन्हें भी दो उपभेदों में बांटा जा सकता है-

(क) मनोवैज्ञानिक

(ख) सामाजिक

(क) मनोवैज्ञानिक नाटक- मनोवैज्ञानिक नाटकों में मुख्य रूप से काम संबंधी समस्याओं का विश्लेषण यौन-विज्ञान तथा मनोविश्लेषण के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटक इसी कोटि के हैं।

(ख) सामाजिक नाटक- वर्तमान युग एवं समाज की विभिन्न समस्याओं का समाधान आदर्शवादी द ष्टिकोण से प्रतिपादित किया गया है। इस वर्ग के नाटककारों में सेठ गोविंद दास, उपेंद्र नाथ अश्क, व ंदावन लाल शर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी तथा गोविंद वल्लभ पंत आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

लक्ष्मी नारायण मिश्र- लक्ष्मीनारायण मिश्र के अनेक समस्या प्रधान नाटकों में 'सन्यासी' 1931, 'राक्षस मंन्दिर' 1931, 'मुक्ति का रहस्य', 1932, 'राजयोग' 1934, 'सिंदूर की होली' 1934, 'आधी रात' 1937 आदि उन्लेखनीय नाटक हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने कुछ ऐतिहासिक नाटक भी लिखे हैं। मिश्र के इन नाटकों में बुद्धि, यथार्थ एवं फ्रायड को प्रधानता दी गई है। इब्सन, बर्नाडसा आदि पाश्चात्य नाटककारों की तरह इन्होंने भी जीवन के प्रति विशुद्ध बौद्धिक द ष्टि अपनाई है तथा पूर्ववर्ती रोमांटिक या रूमानी प्रव त्ति का विरोध किया है। इनके अधिकांश नाटकों में यौन समस्याओं एवं काम समस्याओं को ही सबसे अधिक नाटक का विषय बनाकर उसे महत्व प्रदान किया है।

सामाजिक नाटकों के क्षेत्र में उपेन्द्र नाथ अश्क, व ंदावन लाल वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, आदि का विशेष स्थान है। गोविंद दास ने ऐतिहासिक, पौराणिक विषयों के अतिरिक्त सामाजिक समस्याओं का चित्रण अपने अनेक नाटकों में किया है जिनमें 'कुलीनता' 1940 'सेवा पथ' 1940, 'दुख क्यों?' 1946 'सिद्धांत स्वातंत्र्य' 1938, 'त्याग या ग्रहण' 1943 'संतोष कहां' 1945, 'पाकिस्तान' 1946, 'महत्व किसे' 1946, 'गरीबी और अमीरी' 1946 तथा 'बड़ा पापी कौन' 1948 आदि उल्लेखनीय नाटक हैं। सेठ ने आधुनिक युग की विभिन्न सामाजिक राजनीतिक राष्ट्रीय समस्याओं का सफलतापूर्वक चित्रण किया है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'- 'अश्क' ऐसे नाटककार हैं जिनमें न तो विशुद्ध यथार्थवाद है न ही आदर्शवाद। उनके नाटक यथार्थ आदर्श के मध्य की कड़ी हैं। प्रेमचंद के सान इन्हें भी आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी कहा जा सकता। इनकी भावभूमि यथार्थ है जो आदर्श अपनाए हुए हैं। उन्होंने व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं का चित्रण जहां यथार्थ के स्तर पर किया है वहीं उनकी सुधार या क्रांतिकारी नीति उन्हें आदर्शवादी बना देती है। उनके नाटकों में प्रमुख नाटक 'स्वर्ग की झलक' 1939, 'कैद' 1945, 'उड़ान' 1949, 'छठा बेटा' 1949 तथा 'अलग अलग रास्ते' 1955 आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

इन्होंने अपने नाटकों में नारी शिक्षा, नारी स्वतन्त्रता, विवाह समस्या, संयुक्त परिवार आदि से संबंधित विभिन्न पक्षों पर सामाजिक द ष्टिकोण से करारा व्यंग्य किया है। अनेक नाटकों में उन्होंने समाज की वर्तमान स्वार्थपरता, धनलोलुपता, कामुकता, अनैतिकता आदि का यथार्थवादी शैली में चित्रण किया है। अश्क की सर्वप्रमुख नाट्य विशेषता यह है कि वे समस्याओं और समाधानों का प्रस्तुतीकरण उपदेशात्मक प्रणाली या

अति गंभीरता से नहीं करते हैं। अपितु वे इसके लिए हास्य व्यंग्यात्मक शैली का चयन करते हैं। जिससे उनके प्रभाव में अधिक तीव्रता एव तिखाई आ जाती है। रंगमंच एवं नाट्य शैली की द ष्टि से 'अश्क' अतुलनीय है।

व ंदावन लाल वर्मा- व ंदावन लाल वर्मा का जो स्थान ऐतिहासिक उपन्यासकारों में है वही स्थान सामाजिक नाटकों में है। इस क्षेत्र में इनको अपूर्व सफलता मिली है। इस वर्ग के इनके नाटकों में 'राखी की लाज' 1943, 'बांस की फांस' 1947, 'खिलौने की खोज' 1950, 'नीलकंठ' 1951, 'सगुन' 1951, 'विस्तार' 1956 तथा 'देखा देखी' 1956 आदि प्रमुख हैं। वर्मा ने इन नाटकों में छुआछूत, विवाह, जाति पांति, ऊंच नीच, सामाजिक विषमता तथा नेताओं की स्वार्थ परता आदि से संबंधित विभिन्न प्रव त्तियों तथा समस्याओं का चित्रांकन किया है।

गोविंद वल्लभ पंत- गोविंद वल्लभ पंत के सामाजिक नाटकों में 'अंगूर की बेटी' 1936 तथा 'सिंदूर की बिंदी' आदि प्रमुख नाटक हैं। 'अंगूर की बेटी' जैसा कि नाम से ज्ञात हो जाता है अंगूर से जन्मी अर्थात् शराब पीने की भयंकरता से अवगत कराते हुए इस व्यवसन से मुक्ति पाने की विधि पर प्रकाश डाला गया है। 'सिंदूर की बिंदी' विवाहिता नारी के सुहाग का प्रतीक हैं। परित्यक्ता का यह सौभाग्य छिन जाता है कि उसे अनेक भयंकर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। प्रस्तुत उपन्यास उन्हीं समस्याओं, सहानुभूतिमय ढंगों से प्रस्तुत किया गया हैं। पंत के नाटकों में सर्वत्र समाज सुधार की भावना द ष्टिगोचर होती है। कथा की प्रस्तुति इस ढंग से की जाती है कि उसमें रोचकता या कलात्मकता का अभाव नहीं आने पाता।

प थ्वी नाथ शर्मा- प थ्वी नाथ शर्मा के नाटकों में 'दुविधा', 'शाप', 'अपराधी' 1939, तथा 'साध' 1944 आदि नाटकों की प्रमुखता है। जिसमें उन्मुक्त प्रेम, विवाह तथा सामाजिक न्याय से संबंधित विभिन्न प्रश्नों को प्रस्तुत किया गया है। 'दुविधा' की नायिका स्वच्छंद प्रेम एवं विवाह में से किसी एक का चयन की दुविधा से ग्रस्त दिखाई गई है। यही समस्या 'साण' में भी प्रस्तुत की गई है। इस द ष्टि से प थ्वी नाथ शर्मा लक्ष्मी नारायण मिश्र के निकटस्थ हो जाते हैं। किन्तु अंतर इतना है कि इनका द ष्टिकोण मिश्र की तरह अति भौतिकतावादी और अति यथार्थवादी नहीं है।

इस युग के अन्य सामाजिक नाटकों में उदयशंकर भट्ट - 'कमला' 1939, 'मुक्ति पथ' 1944 तथा 'क्रांतिकारी'।

हरिकृष्ण प्रेमी - 'छाया'

प्रेमचंद - 'प्रेम की वेदी' 1933।

चन्द्रशेखर पांडेय - 'जीत में हार' 1942।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद- 'समर्पण' 1950।

चतुरसेन शास्त्री- 'पगन्ध्वनि' 1952।

दयानाथ झा 'कर्म पथ' 1953।

जयनाथ नलिन 'अवसान'

शंभूनाथ सिंह - 'धरती और आकाश' 1954।

अभय कुमार यौधेय- 'नारी की साधना' 1954।

रघुवीर शरण मित्र- 'भारत माता' 1954।

श्री संतोष- 'म त्यु की ओर'

तुलसी भाटिया- 'मर्यादा' तथा

रामनरेश त्रिपाठी- 'पैसा परमेश्वर' आदि उल्लेखनीय हैं।

(ii) **भावप्रधान नाटक-** कल्पनाश्रित नाटकों का दूसरा वर्ग भाव प्रधान नाटकों का है। शैली की द ष्टि से इस वर्ग को गीति नाटक नाम से भी अभिहित किया गया है। इस वर्ग के नाटकों के लिए भाव की प्रमुखता के साथ-साथ पद्य

का माध्यम भी अपेक्षित होता है। आधुनिक युग में रचित हिंदी का प्रथम गीति नाटक जय शंकर प्रसाद द्वारा रचित 'करुणालय' (सन् 1912 ई.) माना गया है। इसमें पौराणिक आधार पर राजा हरिश्चन्द्र तथा शनः शेष की बलि की कथा का वर्णन किया गया है। प्रसाद के पश्चात लंबे समय तक गीति नाटकों के क्षेत्र में कोई प्रयास तथा प्रगति नहीं हुई। परवर्ती युग में अनेक गीति नाटकों की रचना हुई। जिसमें मैथिलीशरण गुप्त - 'अनध' - 1925, हरिकृष्ण प्रेमी - 'स्वर्ण विहान', उदयशंकर भट्ट मत्सयगंधा, विश्वामित्र तथा राधा आदि, सेठ गोविंद दास स्नेह या स्वर्ग - 1946 भगवती चरण वर्मा 'तारा' आदि। भाव प्रधान नाटकों के क्षेत्र में सबसे अधिक सफल उदयशंकर भट्ट रहे हैं। उन्होंने अपने पात्रों की विभिन्न भावनाओं एवं उनके अंतर्द्वन्द्व को अत्यधिक सशक्त एवं संगीतात्मक शैली में प्रयुक्त किया है। इनमें पात्रों के वार्तालाप भी प्रायः लय और संगीत से परिपूर्ण शब्दों में प्रस्तुत किए गए हैं। इसके अतिरिक्त सुमित्रानंदन पंत 'रजत शिखर' धर्म वीर भारती 'अंधा युग' आदि उल्लेखनीय हैं।

(iii) **प्रतीकात्मक नाटक-** प्रतीकात्मक या प्रतीकवादी नाटकों का श्रीगणेश जयशंकर प्रसाद के नाटक 'कामना' (सन् 1926 ई.) से हुआ। सुमित्रानंदन पंत - 'ज्योत्सना' 1934, भगवती प्रसाद वाजपेयी, 'छलना' 1939, सेठ गोविंददास 'नव रस', कुमार हृदय 'नक्शे का रंग' 1941, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल 'मादा कैक्टस', एवं 'सुंदर रस' 1959 आदि सुंदर प्रतीकात्मक नाटक हैं। इस वर्ग के नाटकों में विभिन्न पात्र विभिन्न विचारों या तत्वों के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किए गए हैं।

क) **सांस्कृतिक-** सांस्कृतिक चेतना से युक्त नाटकों का निर्माण इस युग में हुआ जिसमें चन्द्रगुप्त विद्यालंकार - 'अशोक' एवं 'रेवा', 'सेठ गोविंद दास' - 'शशिगुप्त', उदयशंकर भट्टा 'मुक्तिपथ', सियाराम शरण गुप्त - 'पुण्य पाप', लक्ष्मीनारायण मिश्र - 'गरुण ध्वज' तथा गोविंद वल्लभ पंत - 'अंतः पुर का छिद्र' आदि उल्लेखनीय हैं। इतिहास के आधार पर इनके कथानक का निर्माण किया गया है। लेकिन सांस्कृतिक पुनरुत्थान की चेतना सब में विद्यमान है। इनकी सांस्कृतिक पुनरुत्थान चेतना की तुलना करनें में प्रसाद से बहुत अधिक साम्य दिखलाई पड़ता है। अंतर इतना है कि प्रसाद में भावुकता, दार्शनिकता भाषागत जटिलता थी किंतु इन नाटकों में जटिलता नहीं है।

ख) **समस्यात्मक-** पाश्चात्य नाटककारों मुख्य रूप से इब्सन एवं बर्नाडसा की यथार्थवादी चेतना से प्रभावित होकर हिंदी साहित्य में नाटक लिखने वालों ने समस्यात्मक नाटक लिखने की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। फ्रायड ने मानों यह घोषणा कर दी थी कि मानव की व्यापक एवं प्रमुख समस्या काम समस्या है। किंचित इसी घोषणा से प्रभावित होकर समस्या नाटकों में यौन समस्या को मुख्य रूप से उभारा गया तथा वासना या काम भावना का प्रमुखता के साथ वर्णन किया गया। वैयक्तिक समस्याओं, उलझनों, मानसिक अंतर्द्वन्द्वों का विवेचन एवं विश्लेषण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है। हिंदी में समस्या नाटक लिखने का श्रेय लक्ष्मी नारायण मिश्र को है। वही समस्या नाटकों के अधिष्ठाता एवं संस्थापक हैं। इस प्रकार परंपरा का श्रीगणेश उन्होंने 'सन्यासी' नामक समस्या नाटक लिखकर किया। उनके अन्य समस्य नाटक 'राक्षस का मन्दिर', 'मुक्ति का रहस्य', 'राजयोग', 'सिंदूर की होली', तथा 'आधी रात' आदि प्रमुख हैं। इन नाटकों में बौद्धिकता एवं यथार्थवाद का आधिक्य है। प्रेम विवाह एवं काम समस्याओं का चित्रण निडरता से किया गया है। भावुकतावादी रोमांस के मिश्र विरोधी हैं। मिश्र के प्रयासों से नाटक विश्व में नवीनता का समावेश एवं व्यापक प्रयोग किया है।

ग) **सामाजिक एवं राजनीतिक-** इस युग में सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को अनेक नाटकों में आधार स्वरूप ग्रहण किया गया है। इस द ष्टि से सेठ गोविंददास, उपेंद्रनाथ अश्क, व ंदावन लाल वर्मा आदि का योगदान महत्वपूर्ण है। गोविंददास के नाटकों में सिद्धांत स्वातंत्र्य, 'सेवा पथ', 'महत्व किसे', 'संतोष कहां' तथा 'गरीबी और अमीरी' आदि में सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं का चित्रण किया गया है। उपेन्द्रनाथ अश्क के नाटकों में 'स्वर्ग की झलक' 'कैद', 'उड़ान', 'छठा बेटा' आदि उल्लेखनीय हैं। 'स्वर्ग की झलक' में नारी-शिक्षा की समस्या को व्यंग्य के माध्यम से उभारा गया है। 'छठा बेटा' स्वप्न नाटक है जिसके द्वारा यह प्रदर्शित करने का यत्न किया गया है कि मानव अपनी जिन इच्छाओं की पूर्ति जाग तावस्था में पूर्ण नहीं कर पाता स्वप्न अर्थात् अर्द्ध निंद्रा में उन कामनाओं की पूर्ति की प्रबल कामना करता है। अश्क के नाटकों में नारी शिक्षा, नारी स्वातंत्र्य, वैवाहिक समस्या तथा संयुक्त परिवार सें संबद्ध अनेक सामाजिक समस्याओं का प्रस्तुतीकरण करके मानव को उनसे मुक्ति प्राप्त करने हेतु चिंतन के लिए बाध्य कर दिया गया है। मंचन की द ष्टि से अश्क के नाटक सफल हैं।

सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को आधार रूप में ग्रहण करके कुछ नाटकों की भी रचना हुई है। जिनमें व ंदावन लाल शर्मा कृत 'धीरे-धीरे', 'राखी लाज', एवं 'बांस की फांस'। गोविंद वल्लभ पंत कृत 'अंगूर की बेटी', 'सिंदूर की बिंदी', प थ्वी नाथ शर्मा कृत 'अपराधी एवं साधु' तथा उदय शंकर भट्ट कृत 'कमला' एवं 'क्रांतिकारी' आदि उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में भिन्न भिन्न परिवेशों एवं समस्याओं का सफल चित्रांकन हुआ है।

इनके अतिरिक्त इस युग में नीति नाटक, एवं एकांकी नाटक भी लिखे गए हैं। सिने नाटक भी लिखे जाने लगे। डॉ. राम कुमार वर्मा - 'स्वप्न चित्र' तथा भगवती चरण वर्मा - 'वासवदत्त' का चित्रलेख प्रमुख है।

घ) **स्वतंत्र्योत्तर-** स्वतंत्रता के पश्चात् नाटक लेखन की गति में त्वरा आई। हिंदी नाटक साहित्य को सम द्ध करने वाले नाटककारों में - नरेश मेहता - 'सुबह के घंटे', लक्ष्मीकांत वर्मा - 'खाली कुर्सी की आत्मा', शिव प्रसाद सिंह, 'घंटियां गूंजती हैं', मन्नू भंडारी - 'बिना दीवारों का घर', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - 'बकरी', 'मुद्राराक्षस', 'तिलचट्टा', शंकर घोष - 'एक और द्रोणाचार्य', भीष्म साहनी - 'हानूश' एवं 'कविरा खड़ा बाजार में', विमला रैना - 'तीन युग', सर्वदानंद - 'भूमिजा', श्रीमती कुसुम कुमार - 'दिल्ली ऊंचा सुनती है', सुरेन्द्र वर्मा - 'सूर्य की अंतिम किरण' से 'सूर्य की पहली किरण' तक, मणि मधुकर - 'रस गंधर्व', सुशील कुमार सिंह, 'सिंहासन खाली है', ज्ञान देव अग्निहोत्री- 'शुतुरमुर्ग', गिरिराज किशोर- 'प्रजा ही रहने दो', हमीदुल्ला - 'समय संदर्भ', तथा प्रभात कुमार भट्टाचार्य 'काठ महल' आदि विशेष उल्लेखनीय नाटक हैं

'नुक्कड़ नाटक' आधुनिक काल की देन हैं। टेलीविजन सीरियलों (धारावाहिकों) तथा टेलीविजन नाटक युग की मांग है। जिससे नाटक का बहु आयामी विकास हो रहा है। आज हिंदी नाटकों का विकास नई दिशाओं एवं विभिन्न रूपों में होना हिंदी नाटक साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

27. निबंध : उद्‌भव एवं विकास

साहित्य की प्रमुख दो विधाएँ 'गद्य-पद्य' हैं। गद्य आधुनिक काल की प्रमुख देन है। गद्य की अनेक विधाओं में निबंध विशेष विधा है। मुद्रण कला के विकास ने पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार-प्रसार को अत्यधिक बढ़ा दिया जिसके परिणामस्वरूप निबंध की लोकप्रियता एवं वैविध्य में व द्धि होती गई। उन्नीसवीं सदी के छठे दशक में भारतेंदु युग में निबंध का श्रीगणेश हुआ। भारतेंदु एवं उनके सहयोगी साहित्यकारों ने विचाराभिव्यक्ति हेंतु गद्य का माध्यम अपनाया। आधुनिक काल से पूर्व अभिव्यक्ति का माध्यम गद्य न होकर पद्य था। पद्य में अवधी एवं ब्रजभाषा का उपयोग होता था। गद्य में बहुत समय तक ब्रजभाषा का प्रयोग होता था। खड़ी बोली अभिव्यक्ति का माध्यम उन्नीसवीं सदी में बनी जिसका श्रेय भारतेंदु युग के साहित्यकारों विशेषकर भारतेंदु को है जिन्होंने साहित्य में खड़ी बोली भाषा के प्रयोग पर विशेष बल दिया। खड़ी बोली का परिमार्जन एवं परिष्कार द्विवेदी युग में हुआ। गद्य के विकास में निबंध का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' का प्रकाशन एवं संपादन करके निबंध के विकास में उल्लेखनीय योगदान किया है। निबंध का चरम विकास कर पराकाष्ठा पर प्रतिष्ठापित करने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को है। शुक्ल का व्यक्तित्व हिंदी निबंधों के विकास में केन्द्र बिंदु है जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें मील का पत्थर मानते हुए तत्कालीन काल का नामकरण 'शुक्ल युग' किया गया। शुक्ल से पूर्व ही निबंध का उद्‌भव हो चुका था। शुक्ल के बाद हिंदी निबंधों का चहुमुखी विकास हुआ।

निबंध शब्द : अर्थ एवं परिभाषा

निबंध शब्द सं. नि ✓ बंध् (बांधना) + घञ् से व्युत्पन्न है। 'नि' उपसर्ग एवं 'घञ' प्रत्यय है। बंध् धातु बांधने के अर्थ में है। निबंध शब्द का अर्थ किसी चीज को किसी के साथ जोड़ने, बाँधने या लगाने की क्रिया या भाव है। अच्छी तरह गठा या बंधा हुआ पदार्थ या भाव। ग्रंथ, लेख आदि लिखने का भाव या क्रिया। **निबंध** आज कल साहित्यिक क्षेत्र में वह विचार पूर्ण विवरणात्मक एवं विस्त त लेख, जिसमें किसी विषय के सभी अंगों का मौलिक एवं स्वतन्त्र रूप से विवेचन किया गया हो। निबंध का अंग्रेजी पर्याय 'एस्से' है। निबंध का पूर्व रूप संदर्भ, रचना, प्रस्ताव, लेख है। तथा पर एवं विकसित रूप प्रबंध, लघु प्रबंध एवं शोध प्रबंध है। जिस प्रकार वाक्य का विस्त त रूप प्रोक्ति है उसी प्रकार निबंध का विस्त त एवं व्यापक रूप प्रबंध है जिसमें व्यवस्थित क्रमानुसार ठीक से परस्पर एक दूसरे से बंधे हुए अनेक निबंध होते हैं।

विचारों के बिखराव को रोकना या व्यवस्थितरूप से बांधकर विशिष्टरूप देना निबंध कहलाता है। निबंध में उस व्यवस्था पर विशेष बल दिया गया है जहाँ विचार व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत हो जाता है।

जानसन ने निबंध में नियमबद्धता को अस्वीकारा है उनके अनुसार मुक्त मन की मौज, अनियमित और अपरिपक्व रचना निबंध है। गुलाब राय के अनुसार निबंध गद्य की वह रचना है जिसमें एक सीमित आकार के अंदर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन विशेष वैयक्तिकता, स्वच्छंदता, सौष्ठव, सजीवता, आवश्यक संगीत एवं संबद्धता के साथ किया गया हो।

भारतवर्ष में प्राचीन साहित्यकार ऐसी व्याख्या को निबंध कहते थे जिसमें सब प्रकार के मतों का उल्लेख और गुणदोष आदि की आलोचना या विवेचन होता था।

आजकल पाश्चात्य साहित्य शास्त्रानुसार उसकी व्याख्या और स्वरूप का परिमार्जन हो जाने से परिभाषा भी बदल गई है।

गद्यात्मक रचना निबंध है जिसमें निबंधकार अपने भावों एवं विचारों को आत्मपरकरूप से व्यक्त करने हेतु सजीव, लालित्यपूर्ण तथा मर्यादित-साहित्यिक भाषा शैली का प्रयोग करता है।

आधुनिक निबंध के जन्मदाता मौनतेय हैं। उनका कथन है, निबंध, विचारों, उद्धरणों और कथाओं का मिश्रण है।" जॉनसन के मतानुसार, "निबंध मन का आकस्मिक और उच्छ ंखल आवेग - असंबद्ध और चिंतनहीन बुद्धि - विलास मात्र है।"

केवल नामक पाश्चात्य विद्वान ने हास्य-विनोदमय निबंध की व्याख्या की है।" निबंध लेखन कला का बहुत प्रिय साधन है जिस लेखन में न प्रतिभा है और न ज्ञान व द्धि की जिज्ञासा, वही निबंध लेखन में प्रव त्त होता है तथा हल्की रचनाओं में आनंद लेने वाला पाठक ही उसे पढ़ता है।"

निबंध विचार-प्रकाशन का गंभीर साधन है। व्यापक अर्थ में, राजनीतिक, सामाजिक, अर्थशास्त्रीय एवं वैज्ञानिक बिषयों के प्रतिपादक लेख को भी निबंध कहते हैं। निबंध की विशेषताओं में विषय नहीं बल्कि आत्मा, आकार, लघुता, मन के स्वाधीन विचरण एवं चिंतन पर आधारित होना, शैली-संक्षिप्त, रोचक एवं व्यंग्य प्रधान होना आदि है।

निबंध की विषय वस्तु के आधार पर निबंध के वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विचारात्मक तथा भावात्मक आदि अनेक भेद हैं।

उद्भव एवं विकास

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में हिंदी निबंध का आविर्भाव हुआ। इससे पूर्व गद्य का विकास नहीं हुआ था। निबंधों के प्रचार-प्रसार के साधनों - मुद्रण-यंत्र, पत्र-पत्रिकाओं का प्रचलन आधुनिक युग में हुआ है। भारतेंदु युगीन 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका, ब्राह्मण, सार सुधा निधि, प्रदीप आदि के प्रकाशन ने निबंध के विकास में अत्यधिक योगदान किया। प्रो. जय नाथ नलिन ने भारतेन्दु युग से आज तक के निबंध साहित्य के विकास काल को (1) भारतेंदु युग (2) द्विवेदी युग (3) प्रसाद युग तथा (4) शुक्लोत्तर युग चार युगों में बांटा है।

प्रसाद ने निबंध अवश्य लिखे हैं किंतु निबंध विधा में उनका इतना महत्व नहीं है कि उनके नाम पर युग का नामकरण किया जाए। 'नलिन' ने निबंध का चरमोत्कर्ष करनेवाले तथा निबंध की पराकाष्ठा तक उसे पहुंचाने वाले शुक्ल की उपेक्षा की है। शुक्ल युग, विभाग या युग न बनाकर शुक्लोत्तर युग का नामकरण किया है जो वैज्ञानिक एवं उचित प्रतीत नहीं होता है। निबंध काल को (1) भारतुंदु युग (2) द्विवेदी युग (3) प्रसाद युग (4) शुक्ल युग तथा (5) शुक्लोत्तर युग नामकरण करके निबंध के विकास का विवेचन औचित्य पूर्ण होगा।

1. भारतेन्दु युग

भारतेंदु युग (संवत् 1930 से 1960 वि.) के प्रमुख निबंधकारों में भारतेंदु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त तथा राधाचरण गोस्वामी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु मात्र निबंधकार ही नहीं अपितु साहित्यकार के विराट् रूप थे उन्होंने कविता, काव्य, नाटक, निबंध एवं आलोचना आदि अनेक विधाओं पर सफल लेखनी उठाई है। सभी रूपों का विकास ही नहीं किया अपितु उनमें उन विशेषताओं एवं प्रव त्तियों का समन्वय भी किया जो युगीन संभावना थी। कविता एवं नाटक की तरह उनके नाटकों का क्षेत्र अति व्यापक था। इतिहास, धर्म, राजनीति, समाज, आलोचना, खोज, यात्रा, आत्म चरित, प्रकृति वर्णन तथा व्यंग्य विनोद आदि सभी विषयों को निबंध में स्थान दिया। उनके प्रमुख निबंध, उदयपुरोदय, काश्मीर कुसुम, बादशाह दर्पण तथा काल चक्र आदि हैं। निबंधों में साहित्य-मनीषी की सूक्ष्म द ष्टि से अवगत हो जाते हैं। अन्य निबंध वैद्यनाथ धाम, हरिद्वार, तथा सरयूपार की यात्रा आदि में भारतीय संस्कृति एवं भारतभूमि के प्रति अगाध प्रेम द ष्टिगोचर होता है। प्रकृति सौंदर्य का वर्णन द्रष्टव्य है -

"ठंडी हवा मन की कला खिलाती हुई बहने लगी। दूर से घानी और स्याही रंग के पर्वतों पर सुनहरापन आ चला। कहीं आधे पर्वत बादलों से घिरे हुए, कहीं एक साथ वाष्प निकलने से उनकी चोटियां छिपी हुई और चारों ओर से उन पर जलधारा पात से बुक्के ही होली खेलते हुए बड़े ही सुहावने मालूम पड़ते थे।"

यात्रा संबंधी निबंधों में यात्रा के कष्टों का अनुभव करते हुए भारतीय जनता के प्रति सहानुभूमि की अभिव्यक्ति पर्वतीय प्रवाहिनी के समान बीच-बीच में पत्थरों एवं वन प्रांत की झाड़ियों से निकलकर शीतलता प्रदान करने लगती है।

"गाड़ी भी ऐसी टूटी-फूटी जैसे हिन्दुओं की किस्मत और हिम्मत। अब तपस्या करके गोरी-गोरी कोख में जन्म लें तब ही संसार में सुख मिले।"

भारतेंदु के अन्य निबंधों में सामयिक, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं पर तीखा व्यंग्य किया गया है ऐसे निबंधों में लेवी प्राण लेवी, ज्ञाति विवेकिनी सभा, स्वर्ग में विचार सभा अधिवेशन, अंग्रेज स्त्रोत, पांचवें पैगंबर तथा कंकड़ स्त्रोत आदि प्रमुख हैं।

कंकड़ स्त्रोत की कुछ पंक्तियां अवलोकनीय हैं। कंकड़ को प्रणाम है। देव नहीं महादेव, क्योंकि काशी के कंकड़ शिव शंकर के समान हैं .... आप अंग्रेजी राज्य में भी गणेश चतुर्थी की रात को स्वच्छंद रूप से नगर में भड़ाभड़ लोगों के सिर पर पड़कर रुधिर धारा से नियम और शांति का अस्तित्व बहा देते हो। अतएव हे अंग्रेजी राज्य में नवाबी संस्थापक! तुमको नमस्कार है।"

यहां हिंदुओं की मूर्तिपूजा, बहुदेवोपासना तथा अंग्रेजी राज्य की शांति व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया गया है।

भारतेंदु के निबंधों में विषयानुसार भाषा शैलियों का वैविध्य द ष्टिगोचर होता है। उनकी भाषा में मार्मिक अभिव्यंजना, वाग्वैदग्ध्य, सजीव अनेकरूपता, आकर्षक स्वच्छता एवं सरलता विद्यमान है जिसमें कहीं स्वाभाविक अलंकार योजना है, कहीं संगोष्ठी वार्तालाप का स्वरूप विद्यमान है। उनके आलोचनात्मक निबंधों में नाटक एवं वैष्णवता और भारतवर्ष प्रमुख हैं जिसमें भाषा अत्यंत प्रौढ़ एवं प्रांजल है। किन्तु उसमें दुरूहता, दुर्बोधता, कृत्रिमता एवं समासात्मकता नहीं दिखलाई पड़ती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि विषय एवं भाषा शैली दोनों द ष्टियों से भारतेंदु के निबंधों का अत्यधिक महत्त्व है।

बालकृष्ण भट्ट

भारतेंदु युगीन नाटककारों में बालकृष्ण भट्ट श्रेष्ठ हैं। भट्ट हिंदी प्रदीप के संपादक थे। उन्होंने विवरणात्मक, वर्णनात्मक, विचारात्मक तथा भावात्मक आदि सभी प्रकार के निबंध लिखे हैं। कुछ ऐसे निबंध भी लिखे जिनके शीर्षकों से विषय वस्तु का संज्ञान हो जाता है। ऐसे निबंधों में - मेला-ठेला, वकील, सहानुभूति, आशा, खटका, रोटी तो किसी भांति कमाय खाय मुछंदर। इंगलिश पढ़े तो बाबू होय, आत्म निर्भरता, शब्द की आकर्षण शक्ति तथा माधुर्य आदि प्रमुख हैं। भट्ट के निबंधों में वैचारिक मौलिकता, विषय वैविध्य, तथा शैली का आकर्षण आदि सभी गुण विद्यमान हैं।

प्रताप नारायण मिश्र

प्रताप नारायण मिश्र 'ब्राह्मण' के संपादक थे। इन्होंने विभिन्न विषयों को निबंध का विषय बनाया। कभी उन्होंने शारीरिक अंगों - भौं, दांत, पेट, मूंछ, नाक आदि को अपने निबंधों का विषय बनाया एवं उन पर सफलतापूर्वक निबंध लिखे। कभी उन्होंने प्रताप चरित, व द्ध, दान, जुआ तथा अपव्यय जैसे विषयों पर निबंध लिखे। उनके अन्य निबंध ईश्वर की मूर्ति, नास्तिक, शिवमूर्ति, सोने का डंडा, तथा मनोवेग आदि प्रमुख हैं। समझदार की मौत है, धूरे क लत्ता बिनै, कनातन क डोरी, होली है होरी है, होरी है जैसी उक्तियों को आधार बनाकर निबंध रचना की। मिश्र के निबंधों में मुहावरों का अत्यधिक प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं तो वे एक वाक्य में ही मुहावरों की झड़ी लगा देते हैं। मुहावरेदार भाषा मात्र बात पर आधारित मुहावरों की झड़ी अवलोकनीय है -

"डाकखाने अथवा तारघर के सहारे से बात की बात में चाहे जहां की बात हो, जान सकते हैं। इसके अतिरिक्त बात बनती है, बात बिगड़ती है, बात आ-आ पड़ती है, बात जाती रहती है, बात जमती है, बात उखड़ती है। बात खुलती है, बात छिपती है, बात चलती है, बात उड़ती है।"

हिंदी निबंधकार के निबंध में उद्ध त उद्धरण इनकी निबंध संबंधी विशेषताओं पर पूर्ण प्रकाश डालता है -

"भाषा में स्खलन, शैली में घरूपन, और ग्रामीणता, चंचलता और उछलकूद मिश्र जी की विशेषता है। भाषा संबंधी दोष जहां तहां लापरवाही से बिखरे पड़े हैं। कहीं-कहीं वाक्य का विलक्षण और दुर्बोधरूप भी मिलता है। उर्दू के एक-दो शब्द भी परदेशी की तरह डरे-डरे से दीख पड़ते हैं। तेग अदा, कमाने, अव, निहायत, आदि भौं में मिल जाएंगी। पर केवल इन्हीं तक में दूसरे में कुछ नहीं, 'फिर क्यों इनकी निंदा की जाए?' का अर्थ टेढ़ी खीर है। विराम चिन्ह तब प्रयुक्त ही अधिक नहीं होते थे। इन्होंने उनका जैसे बहिष्कार ही कर रखा हो। इनके अभाव में वाक्य कभी कभी इतना लंबा हो जाता है कि समझने में उसे बार-बार पढ़ना पड़ता है।"

बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन'

बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' भारतेंदु के मित्र थे। इन्होंने आनंद कादंबिनी (मासिक) तथा नागरी नीदर (साप्ताहिक) दो पत्रों का संपादन किया जिनमें उनके अनेक निबंधों का प्रकाशन हुआ। इनमें प्रकाशित निबंधों में हिंदी भाषा का विकास, परिपूर्ण

प्रवास, तथा उत्साह-आलंबन आदि प्रमुख हैं। प्रेमधन की भाषा आलंकारिक, कृत्रिम तथा चमत्कारी है जिसमें इन्होंने अधिक-से-अधिक चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयास किया है। प्रेमधन की भाषा सदैव दलदल में फंसी रही है।

बालमुकुंद गुप्त

बाल मुकुंद गुप्त भारतेंदु युग एवं द्विवेदी युग को जोड़ने वाली कड़ी हैं। इन्होंने बंगवासी तथा भारत मित्र का संपादन किया। गुप्त जी के अनेक निबंध इन पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। उनके निबंधों में परराष्ट्रीय शासकों की नीति एवं अत्याचार पर मीठा, चुभता हुआ व्यंग्य किया गया है। शिव शंभु के उपनाम से उन्होंने अनेक निबंध लिखे। जिसमें शिव शंभू का चिट्ठा को अत्यधिक ख्याति मिली। इसमें लार्ड कर्जन को संबोधित करते हुए भारतवासियों की राजनीतिक विवशता को चित्रित किया गया हैं कहीं-कहीं उनके व्यंग्य में अति तीखापन आ गया है। होली के अवसर लिखे गए चिट्ठे में उन्होंने लिखा है -

"कृष्ण हैं उद्धव हैं, पर ब्रजवासी उनके निकट भी नहीं फटक पाते। सूर्य है, धूप नहीं। चन्द्र है, चांदनी नहीं। माई लार्ड नगर में ही हैं पर शिव शंभू उनके द्वार तक नहीं फटक सकता है। उनके घर चल होली खेलना तो विचार ही दूसरा है। माई लार्ड के घर तक बात की हवा तक नहीं पहुंच सकती। .... माई लॉर्ड के मुख चंद्र के उदय के लिए कोई समय भी नियत नहीं है।"

राधाचरण गोस्वामी

राधा चरण गोस्वामी के निबंध व्यंग्य से ओत-प्रोत हैं। उन्होंने तत्युगीन समाज की कुरीतियों एवं बुराईयों पर तीखा व्यंग्य किया है। राधा चरण गोस्वामी धार्मिक अंध विश्वासों पर चोट करते हैं तो उनका व्यंग्य कबीर के दोहों से अधिक प्रभावोत्पादक हो जाता है। कबीर के व्यंग्यों में कटुता एवं तीखापन है जिसके गले से उतरते ही लकीर सी खिंच जाती है। जबकि गोस्वामी के व्यंग्य शहद में डूबे या होमियोपैथिक औषधि हैं तथा हंसी लिपटे एवं कल्पना से रंगीन हैं। यमपुर की यात्रा लेख में वैतरणी पार करते करते समय लेखक को वहां प्रधान ने रोक लिया, पूछा क्या तुमने गोदान किया है? तब लेखन उत्तर देता है - "साहब प्रथम प्रश्न तो सुन लीजिए, गोदान का कारण क्या? यदि गौ की पूंछ पकड़कर पार उतर जाते हैं, तो क्या बैल से नहीं उतर सकते? जब बैल से उतर सकते हैं, तो कुत्ते ने क्या चोरी की है?" लेखक ने किसी साहब को कुत्ता दान में दिया था। इसी से वह "वैतरणी पार" का पासपोर्ट बनवा लेना अपना अधिकार समझता है।"

भारतेंदुयुगीन सभी निबंधकारों में व्यष्टि-समष्टि का समन्वय विद्यमान है। निबंधों के विषय क्षेत्र में वैविध्यता एवं व्यापकता है। हास्य व्यंग्य सोद्देश्य है जो कि सामाजिक या राजनीतिक व्यवस्था पर प्रहार करना है। जटिल-से-जटिल विषयों को इस युग के निबंधकारों ने सरल सुबोध एवं मनोहारी शैली में प्रस्तुत किया है। उनकी भाषा शैली में भाषिक एवं व्याकरणिक शुद्धता भले ही न हो किंतु सहृदय को गुदगुदाने, उसके मस्तिष्क को झंकृत करने तथा उसकी आत्मा को स्पर्श करने में उसे पूर्ण सफलता मिली है। उनके निबंधों में शुष्कता एवं वैज्ञानिकता नहीं है। साहित्यिक आदर्श कोटि के निबंध हैं जिनसे विचारों के साथ-साथ भावनाओं का भी उदवेलन होता है जिनसे केवल ज्ञान की ही व द्धि नहीं होती अपितु रसानुभूमि की प्राप्ति भी होती है।

2. द्विवेदी युग

द्विवेदी युगीन लेखकों में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्र बंधु, डॉ. श्याम सुंदरदास, डॉ. पद्म सिंह शर्मा, अध्यापक पूर्ण सिंह, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बनारसी दास चतुर्वेदी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सन् 1903 ई. से द्विवेदी युग का प्रारंभ हो गया।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

द्विवेदी ने सरस्वती के संपादन द्वारा हिंदी भाषा एवं साहित्य को प्रौढ़ता प्रदान की। उन्होंने स्वयं निबंध लिखकर उच्चकोटि के निबंधों का आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने अंग्रेजी के निबंधकार बेकन के निबंधों का अनुवाद भी बेकन विचार रत्नावली के नाम से प्रस्तुत किया जिससे हिंदी के अन्य लेखकों को प्रेरणा मिली। सरस्वती के संपादन का कार्य भार संभालते ही द्विवेदी ने सर्वप्रथम तत्कालीन लेखकों की भाषा को संस्कारित एवं परिमार्जित किया। व्याकरणिक सुधार तथा विराम चिन्हों के प्रयोग पर बल दिया। वे भाषा के गठन एवं स्वरूप को समझाने का यत्न करते थे। हिन्दी को अन्य भाषा के शब्दों के प्रयोग से अलग न रखा जाए यह उनकी भाषाई नीति थी। जानबूझकर संस्कृत के तत्सम शब्दों का आधिक्य या बहिष्कार न किया जाए। उनकी इस भाषा नीति से प्रायः सभी निबंधकार प्रभावित हुए। उनके निबंधों में कवि और कविता, प्रतिमा, कविता, साहित्य की महत्ता,

क्रोध तथा लोभ आदि नवीन विचारों से ओत-प्रोत हैं। भारतेन्दु युगीन निबंधों जैसी वैयक्तिकता का प्रदर्शन, रोचकता, सजीवता एवं सहज उच्छ ंखलता का द्विवेदी के निबंधों में अभाव है। इनके निबंधों में भाषा की शुद्धता, सार्थकता, एकरूपता, शब्द प्रयोग पटुता, आदि गुण विद्यमान हैं। किंतु पर्यवेक्षण की सूक्ष्मता, विश्लेषण की गंभीरता, चिंतन की प्रबलता इसमें बहुत कम है। इनक निबंधों की शैली व्यास है जिसके कारण पर्याप्त सरलता है तथा हास्य व्यंग्य एवं भावुकता का पूर्ण अवसर है। कवि और कविता लेख में उनकी शैली का रूप द्रष्टव्य है -

"छायावादियों की रचना तो कभी-कभी समझ में नहीं आती। वे बहुधा बड़े ही विलक्षण छंदों का या व त्तों का भी प्रयोग करते हैं। कोई चौपदें लिखते हैं, कोई छः पदें, कोई ग्यारह पदें तो कोई तेरह पदें। किसी की चार सतरें गज-गज लंबी तो दो सतरें दो ही अंगुल की। फिर ये लोग बेतुकी पद्यावली भी लिखने की बहुधा कृपा करते हैं। इस दशा में इनकी रचना एक अजीब गोरखधंधा हो जाती है। न ये शास्त्र की आज्ञा के कायल, न ये पूर्ववर्ती कवियों की प्रणाली के अनुवर्ती न सत्य समालोचकों के परामर्श की परवाह करने वाले इनका मूलमंत्र है - 'हम चुनी दीगरे नेस्त'।"

विषयानुसार उनकी शैली में गंभीरता भी दिखलाई देती है। 'मेघदूत' निबंध की कुछ पंक्तियां अवलोकनीय हैं -

"कविता कामिनी के कमनीय नगर में कालिदास का मेघदूत एक ऐसे भव्य भवन के सद श्य है, जिसमें पद्यरूपी अनमोल रत्न जुड़े हुए हैं - ऐसे रत्न जिनका मोल ताजमहल में लगे हुए रत्नों से भी कहीं अधिक है।" वास्तव में द्विवेदी के प्रमुख संग्रह रसज्ञ रंजन में सचमुच रसज्ञ पाठकों के रंजन की अपूर्व क्षमता विद्यमान है।

द्विवेदी युग के अन्य निबंधकारों में माधव प्रसाद मिश्र गोविंद नारायण मिश्र, श्याम सुंदर दास, पद्म सिंह शर्मा, अध्यापक पूर्ण सिंह, एवं चंद्रधर शर्मा गुलेरी आदि के नाम प्रमुख हैं।

माधव प्रसाद मिश्र

विषय वस्तु की द ष्टि से इन्होंने द्विवेदी का अनुसरण करते हुए विचारात्मक निबंधों की रचना की है। किंतु इनमें कहीं-कहीं शैली की विशिष्टता दिखलाई पड़ती है। माधव प्रसाद मिश्र ने ध ति सत्य जैसे विषयों पर निबंध लिखकर गंभीर शैली में प्रकाश डाला है।

गोविंद नारायण मिश्र

गोविंद नारायण मिश्र की शैली में अलंकारों की प्रधानता है। संस्कृत की तत्सम शब्दावली के प्रयोगाधिक्य के कारण उनके निबंधों में जटिलता आ गई है। साहित्य को परिभाषित करते हुए उन्होंने लिखा है -

"मुक्ताहारी नीर-क्षीर-विचार सुचतुर - कवि - कोविद - राज - हिम - सिंहासनासिनी मंदहासिनी, त्रिलोक प्रकाशनी सरस्वती माता के अति दुलारे, प्राणों से प्यारे पुत्रों की अनुपम, अनोखी, अतुलवाली, परम प्रभावशाली स जन मनमोहिनी नवरस भरी सरस सुखद - विचित्र वचन रचना का नाम ही साहित्य है।" इस परिभाषा को पढ़ने से साहित्य से अवगत होना तो दूर रहा स्वयं यह परिभाषा ही गले से नीचे नहीं उतरती है।

बाबू श्याम सुंदर दास

श्याम सुंदर दास उच्च कोटि के आलोचक तथा सफल निबंधकार भी थे। इनके निबंध आलोचनात्मक गंभीर विषयों पर लिखे गए हैं जैसे 'भारतीय साहित्य की विशेषताएं', समाज और साहित्य, हमारे साहित्योदय की प्राचीन कथा तथा कर्तव्य और सभ्यता आदि। उनके निबंधों में विचारों का संग्रह तथा समन्वय ही मिलता है। आत्मानुभूतियों का प्रकाशन या जटिलता का दर्शन उनमें नहीं होता है। उनकी शैली प्रौढ़ होते हुए भी सरल है। उनके निबंधों में जटिलता कहीं दिखलाई नहीं पड़ती है। द्विवेदी जैसी सुबोधता भी उनमें नहीं है।

पद्म सिंह शर्मा

समालोचना के जन्मदाता पद्मसिंह बाबू श्याम सुंदर दास के समकालीन थे। शर्मा जी के निबंधों के दो संग्रह - पदमराग एवं प्रबंध मंजरी प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने निबंधों में महापुरुषों के जीवन का चित्रण, समकालीन व्यक्तियों के संस्मरण या उनको श्रद्धांजलि, साहित्य समीक्षा आदि विषयों को अपनाया है। उनकी शैली में वैयक्तिकता, भाषात्मकता एवं सरलता की प्रधानता थी। गणपति शर्मा को दी गई श्रद्धांजलि की कुछ पंक्तियां अवलोकनीय हैं -

"हा। पंडित गणपति शर्मा जी हमको व्याकुल छोड़ गए। हाय हाय! क्या हो गया। यह बज्रपात, यह विपत्ति का पहाड़ अचानक कैसे टूट पड़ा? यह किसकी वियोगाग्नि से हृदय छिन्न-भिन्न हो गया। यह किसके वियोग बाण ने कलेजे को बींध दिया यह किसके शोकानल की ज्वालाएं प्राण-पखेरू के पंख जलाए डालती हैं। हा। निर्दय काल-यवन के एक ही निष्ठुर प्रहार ने किस अन्य मूर्ति को तोड़कर हृदय मन्दिर सूना कर दिया।"

अध्यापक पूर्ण सिंह

अध्यापक पूर्ण सिंह अपनी शैली की विशिष्टता के लिए निबंधकारों में ख्याति प्राप्ति निबंधकार हैं। इनके निबंधों में स्वाधीन चिंतन, निर्भय विचार प्रकाशन तथा प्रगतिशीलता के दर्शन होते हैं शैली में अनूठी लाक्षणिकता, एवं चुभता व्यंग्य मिलता है।

"बादल गरज-गरजकर ऐसे ही चले जाते हैं, परंतु बरसने वाले बादल जरा सी देर में बारह इंच तक बरस जाते हैं।" या "पुस्तकों या अखबारों के पढ़ने से या विद्वानों के व्याख्यानों को सुनने से तो बस ड्राइंग रूप के वीर पैदा होते हैं।"

"आजकल भारत वर्ष में परोपकार का बुखार फैल रहा है।"

"पुस्तकों के लिखे नुस्खों से तो और भी बदहजमी हो जाती है।" जैसे वाक्यों से अध्यापक पूर्ण सिंह की निबंध शैली की रोचकता का नमूना मिल जाता है।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

गुलेरी ने कहानियों की तरह निबंध भी कम लिखे हैं किन्तु गुणवत्ता की द ष्टि से उनका बहुत अधिक महत्व है। उनके निबंधों में गंभीरता, एवं प्रगतिशीलता का सुंदर समन्वय दिखलाई पड़ता है। उनकी शैली में सरलता, रोचकता, व्यंग्यात्मकता तथा सरसता का गुण अत्यधिक परिमाण में उपलब्ध होता है। उनका प्रमुख निबंध कछुआ धर्म है जिसकी कुछ पंक्तियां अवलोकनीय हैं -

"पुराने-से-पुराने आर्यो की अपने भाई असुरों से अनबन हुई। असुर असुरिया में रहना चाहते थे, आर्य सप्त सिंधु को आर्याव्रत बनाना चाहते थे। आगे ये चल दिए, पीछे वे दबाते गए.......... पर ईशान के अंगूरों और गुलों का मुंजवत् पहाड़ की सोमलता का चस्का पड़ा हुआ था, लेने जाते तो वे पुराने गंधर्व मारने दौड़ते हैं। हां, उनमें से कोई-कोई उस समय का चिलकौआ नकद नारायण लेकर बदले में सोमलता बेचने को राजी हो जाता था। उस समय का सिक्का गौएं थीं। .... मोल ठहराने में बड़ी हुज्जत होती थी। जैसी कि तरकारियों का भाव करने में कुंजड़ियों से हुआ करती है। ये कहते कि गौ भी एक कला में सोम बेच दो। वह कहता, वाह। सोम राजा का दाम इससे कहीं बढ़कर है। इधर ये गौ के गुण बखानते। जैसे बुड्ढे चौबे जी ने अपने कंधे पर चढ़ी बाल-वधू के लिए कहा था कि 'या ही में बेटी' वैसे ये भी कहते हैं कि इस गौ से दूध होता है, मक्खन होता है, दही होता है, घी होता है, वह होता है।"

वास्तव में गुलेरी के निबंध उनके व्यक्तित्व की छाप से ओत-प्रोत हैं। उनकी शैली पर सर्वत्र उनका व्यक्तित्व छाया हुआ है।

द्विवेदी युगीन निबंधकारों के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग के निबंध प्रायः विचार-प्रधान हैं। भारतेंदु युगीन निबंधों की तरह इनमें तत्कालीन जीवन की अभिव्यक्ति एवं राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिवेशों का अंकन नहीं मिलता है। हास्य व्यंग्य के स्थान पर गांभीर्य की प्रधानता है। पूर्ण सिंह एवं गुलेरी के निबंधों के अतिरिक्त शेष निबंधकारों के निबंधों में वैयक्तिकता का अभाव है। निबंधों में मौलिकता नवीनता एवं ताजगी भी इनमें द ष्टिगोचर नहीं होती है। इससे यह अधिक स्पष्ट हो जाता है कि इनमें निबंधत्व कम वैचारिक संग्रह अधिक है। व्याकरणिक एवं भाषाई शुद्धता एवं परिमार्जन इनमें मिलता है।

3. शुक्ल युग

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने विषय, भाषा और शैली सभी द ष्टियों से हिंदी निबंधों को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा कर उन्हें उनकी पराकाष्ठा प्रदान की। निःसन्देह आचार्य राम चन्द्र शुक्ल को हिंदी का सर्वश्रेष्ठ निबंधकार कहा जा सकता है। द्विवेदी युग के बाद निबंधों का विकास इन्हीं के व्यक्तित्व से पहचाना जाता है। इसलिए इन्हीं के नाम पर इस युग का नामकरण किया गया है।

हिंदी निबंध के विकास की गति में तीसरे मोड़ का श्रेय रामचन्द्र शुक्ल के निबंधों के संग्रह चिंतामणि को है। इसने पाठकों के समक्ष नवीन विचार, नव अनुभूति एवं नई शैली उपस्थित की। इस युग के निबंधकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गुलाब राय, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रा नन्दन पंत, पं. सूर्य कांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, आचार्य नंन्द दुलारे वाजपेयी, शांति प्रिय द्विवेदी प्रेमचन्द, राहुल सांकृत्यायन, रामनाथ सुमन तथा माखन लाल चतुर्वेदी, पदुम लाल पुन्नालाल बख्शी, वियोगी हरि, रायकृष्ण दास, वासुदेव शरण अग्रवाल, डॉ. रघुवीर सिंह आदि उल्लेखनीय हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

आचार्य राम चन्द्र शुकल ने चिंतामणि (तीन भाग) द्वारा नवीन विचारधारा, नवीन अनुभूति तथा नव्य शैली का प्रारूप प्रदान किया। चिंतामणि के निबंधों का विषय अत्यंत सूक्ष्म एवं गंभीर है। जिसमें मनोवैज्ञानिकता तथा रसानुभूति की प्रधानता है। निबंधों का प्रतिपादन प्रौढ़तम शैली में हुआ है। जिसमें चिंतन की मौलिकता, विवेचन की गंभीरता, विश्लेषण की सूक्ष्मता तथा शैली की परिपक्वता दिखलाई पड़ती है। शुक्ल की लेखन कला में वैयक्तिकता, भावात्मकता एवं व्यंग्यात्मकता यथा स्थान द ष्टिगोचर होती है। उनके निबंधों में व्यक्ति एवं विषय का ऐसा अद्भुत समन्वय हुआ है कि यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि उनके निबंधों को व्यक्ति प्रधान या विषय प्रधान कहें। चिंतामणि (प्रथम भाग) के निवेदन में इसका निर्णय करने का भार अपने विज्ञ पाठकों पर छोड़ दिया है। ईर्ष्या, श्रद्धा-भक्ति, लज्जा, क्रोध, लोभ, मोह, लोभ-प्रीति आदि मनोव त्तियों का विश्लेषण उन्होंने अति प्रखर द ष्टि से किया है। समाजशास्त्रीय द ष्टिकोण भी स्पष्ट द ष्टिगोचर होता है। शुक्ल ने अपने निबंधों में मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्री एवं साहित्यकार तीनों के कार्यभार का निर्वाह अति सफलतापूर्वक किया है।

उनके साहित्यिक एवं आलोचनात्मक निबंधों में कविता क्या है?, साधारणीकरण एवं व्यक्ति वैचित्र्यवाद, काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था आदि प्रमुख हैं जो अपूर्व प्रतिभा, स्वतन्त्र चिंतन एवं मौलिक विचारों की अमिट छाप पाठकों पर छोड़ते हैं। उनके विचारों एवं निष्कर्षो से असहमत रहते हुए भी उनकी मौलिकता अनिवार्यरूप से सबने स्वीकारी है। साधारणीकरण की जटिल समस्या को शताब्दियों पूर्व संस्कृत के आचार्यो ने सुलझाने का प्रयत्न किया किंतु उन्हें पूर्ण सफलता नहीं मिली। उसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने नये ढंग से सुलझाने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। वे सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के धनी ही नहीं अपितु नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के महान व्यक्तित्व थे।

निबंध में उनकी वैयक्तिकता प्रमुख विशेषता है। लज्जा और ग्लानि पर विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है -

"लक्ष्मी की मूर्ति धातुमयी हो गई, उपासक सब पत्थर के हो गए .... आजकल तो बहुत सी बातें धातु के ठीकरों पर ठहरा दी गई हैं।.............. राजधर्म, आचार्य धर्म, वीर धर्म, सब पर सोने का पानी फिर गया है, सब टका-धर्म हो गए। .... सबकी टकटकी टके की ओर लगी हुई है।" ऐसे में चाटुकारों की खबर लेते हुए उन्होंने लिखा है -

"इसी बात का विचार करके सलाम-साधक लोग हाकिमों से मुलाकात करने के पहले अर्दलियों से उनका मिजाज पूछ लिया करते हैं।"

वास्तव में शुक्ल के निबंधों में वे सभी गुण विद्यमान हैं जो गंभीर विषयों के निबंधों के लिए अपेक्षित हैं। उनके कुछ निबंधों में जटिलता, दुरूहता, शुष्कता आदि आ गई है जिसका प्रमुख कारण निबंध-विषय की गंभीरता, अति प्रौढ़ता एवं अति सूक्ष्मता है। अति सर्वत्र वर्जयेत्र का पालन न करने से उनके कुछ निबंधों में दुर्बोधता आई है।

गुलाब राय

गुलाब राय के अनेक निबंध संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें फिर निराशा क्यों?, मेरी असफलताएं तथा मेरे निबंध आदि विशेष लोकप्रिय संग्रह हैं। गुलाब राय के निबंधों की विशेषताओं में वैयक्तिक सारल्य, अनुभूति का समन्वय, वैचारिक स्पष्टता, एवं शैली की सुबोधगम्यता आदि प्रमुख हैं। मेरी असफलताएं में गुलाब राय ने व्यक्ति परक विषयों को अति मनोहरकारी रूप से उपस्थित किया है। व्यंग्य का यथास्थान प्रयोग किया गया है। व्यंग्य का लक्ष्य किसी और को न बनाकर अपने को ही बनाया है। मेरी दैनिकी का एक प ष्ठ इनका प्रमुख निबंध है उसका कुछ अंश अवलोकनीय है -

"खैर आज कल उस (भैंस) का दूध कम हो जाने पर भी अपने मित्रों को छाछ भी पिला न सकने की विवशता की झूंझल के होते हुए भी उसके लिए भूसा लाना अनिवार्य हो जाता है। कहां साधारणीकरण एवं अभिव्यंजनाकवाद की चर्चा और कहां भूसे

का भाव! भूसा खरीदकर मुझे भी गधे के पीछे ऐसे ही चलना पड़ता है, जैसे बहुत से लोग अकल के पीछे लाठी लेकर चलते हैं...... लेकिन मुझे गधे के पीछे चलने में उतना ही आनंद आता है जितना कि पलायनवादी को जीवन से भागने में।" गुलाबराय ने अपने निबंधों में साहित्य और मनोविज्ञान की समस्याओं का समाधान भी उपस्थित किया है।

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

बख्शी ने अपने निबंधों में मौलिकता का प्रतिपादन करते हुए नवीन शैली का आदर्श प्रस्तुत किया है। उनके निबंधों के विषय अति सरल हैं यथा 'उत्सव', राम लाल पंडित, समाज सेवा, नाम तथा विज्ञान आदि। उनकी शैली की विशेषता अन्य निबंधकारों में नहीं मिलती है।

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल

वासुदेव शरण अग्रवाल ने सांस्कृतिक विषयों को अपने निबंध का विषय बनाया है।

डॉ. रघुवीर सिंह

रघुवीर सिंह ने इतिहास को अपने निबंधों का विषय बनाते हुए ऐतिहासिक धूमिल तथ्यों की धूल हटाकर उन्हें नवीन रूप प्रदान करने का सफल प्रयास किया है। इनकी निबंधशैली में वैयक्तिकता की प्रधानता है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि निबंध के विषय क्षेत्र में पर्याप्त गंभीरता, नवीनता एवं सूक्ष्मता का आविर्भाव हुआ है। शुक्ल युगीन निबंधों में गंभीर विषयों को लेकर उनकी समस्याओं को नवीन द ष्टिकोण से मौलिक विचारों के साथ प्रतिपादित किया गया है। साहित्य, इतिहास, संस्कृति तथा मनोविज्ञान इनके निबंधों के विषय रहे हैं। वैयक्तिक अनुभूतियों एवं भावनाओं के प्रकाशन का अनेक निबंधकारों ने लक्ष्य बनाया है। भाषा शैली की द ष्टि से यह युग अन्य युगों की अपेक्षा निबंध साहित्य में अत्यधिक विकसित, प्रांजल एवं प्रौढ़ द ष्टिगोचर होता है।

शुक्लोत्तर युग

शुक्ल परवर्ती निबंधकारों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र, आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी, जैनेंद्र, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, डॉ. सत्येंद्र, शांति प्रिय द्विवेदी, डॉ. विनय मोहन शर्मा, डॉ. रामरतन भटनागर, डॉ. राम विलास शर्मा, डॉ. विश्वंभर 'मानव', प्रभाकर माचवे, डॉ. पद्‌म सिंह शर्मा 'कमलेश', इलाचन्द्र जोशी, डॉ. भगीरथ मिश्र, चन्द्रवली पांडेय, डॉ. भगवत शरण उपाध्याय, राम व क्ष बेनीपुरी, कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर, रामधारी सिंह दिनकर, शिवदान सिंह चौहान, प्रकाश चन्द्र गुप्त तथा देवेन्द्र सत्यार्थी आदि प्रमुख हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

शुक्ल परवर्ती निबंधकारों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सर्वश्रेष्ठ निबंधकार हैं। इनके निबंध संग्रहों में अशोक के फूल, कल्पलता विचार और वितर्क, विचार प्रवाह तथा कुटज विशेष उल्लेखनीय संग्रह हैं। द्विवेदी का निबंध क्षेत्र अति व्यापक है। उन्होंने भारतीय साहित्य, भारतीय संस्कृति, प्रकृति, परंपरागत ज्ञान-विज्ञान, आधुनिक युगीन विभिन्न परिवेशों, प्रव तियों एवं समस्याओं का अपूर्व समन्वय किया है। उनके निबंध अध्ययन क्षेत्र की व्यापकता तथा चिंतन की गंभीरता से युक्त हैं किन्तु द्विवेदी की वैयक्तिक सरलता, सहजता, सरसता एवं विनोदी स्वभाव उसने नीसरता, शुष्कता या दुर्बोधता का प्रवेश नहीं होने देता है। व्यक्ति एवं विषय का पूर्ण तादात्म्य उनमें द ष्टिगोचर होता है। उनके गंभीर से गंभीर निबंधों को पढ़ते समय पाठक ऊबता नहीं है अपितु उपन्यास या काव्यानंद की रस विभोरता का अनुभव करता है। जिन निबंधों के लेखन में द्विवेदी का मन रमा नहीं है वे सरसता के अपवाद स्वरूप हैं। जब लेखक का मन ही नहीं रमा है तो पाठक का मन उसमें किस प्रकार रमकर आनंदानुभूति कर सकता है किन्तु द्विवेदी के अधिकांश निबंध लालित्य एवं कलात्मकता से परिपूर्ण आदर्श की स्थापना करते हैं।

द्विवेदी की भाषा शैली में त्वरित परिवर्तनशीलता द ष्टिगोचर होती है। निबंध के मनोभाव एवं विषयानुसार उसमें परिवर्तन होता रहता है। कालिदास युगीन वातावरण का चित्रण करते समय उनकी शैली स्वाभाविक रूप से संस्कृत गर्भित हो जाती है जबकि ग्रामीण जीवन का चित्रण करते समय शैली में सारल्य एवं चलताऊपन आ जाता है जिसमें लोक भाषा के शब्दों का आधिक्य एवं सामान्य शब्दों की प्रचुरता देखी जा सकती है। आधुनिक जीवन व विसंगतियों तथा दूषित प्रव त्तियों का चित्रण करते समय उनकी शैली हास्य-विनोदी एवं व्यंग्यात्मक हो जाती है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं -

"आसमान में निरंतर मुक्का मारने में कम परिश्रम नहीं और मैं निश्चित जानता हूं कि रहस्यवादी आलोचना लिखना कुछ हंसी खेल नहीं है। पुस्तक को छुआ तक नहीं और आलोचना ऐसी लिखी कि त्रेलोक्य विकंपित! यह क्या कम साधना है।"

आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी

आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी मुख्य रूप से आलोचक हैं। आलोचनात्मक निबंध लिखे हैं। अनेक निबंध संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। हिंदी साहित्य, नया साहित्य तथा नए प्रश्न प्रमुख हैं। मुख्य रूप से ये आलोचनाएं हैं किन्तु काव्य रूप एवं शैली की द ष्टि से निबंध के अंतर्गत रखा जा सकता है। इनमें वैचारिक प्रधानता है। इसलिए विचार प्रधान निबंध हैं जिनमें वैयक्तिकता की प्रधानता है। इनका मुख्य आधार व्यक्तिगत चिंतन एवं मनन है। व्यक्तिकता से प्रभावित होते हुए भी उनकी प्रतिपादन शैली विषयानुसार तथा विचारों से प्रतिबद्ध है। उसमें व्यक्तित्व की स्वतन्त्र सत्ता का आभास प्रायः नहीं मिलता है। विचार-गंभीरता आ जाने से शैली भी गूढ़ एवं बोझिल हो जाती है। इस द ष्टि से आचार्य वाजपेयी आचार्य शुक्ल की परंपरा के निबंधकार ठहरते हैं। उनकी शैली की बौद्धिकता एवं तार्किकता उच्च सतर के पाठकों को ही बौद्धिक आनंद प्रदान करती है।

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल भारतीय संस्कृति एवं पुरातत्व संबंधी विषयों पर निबंध लिखनेवाले निबंधकारों में सर्वश्रेष्ठ निबंधकार हैं। भारतीय संस्कृति एवं पुरातत्व से संबंधित इनके अनेक निबंध संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें 'प थ्वी पुत्र', 'मात्र भूमि' तथा कला और संस्कृति विशेष महत्वपूर्ण संग्रह हैं। डॉ. अग्रवाल के निबंधों में अध्ययन-गांभीर्य तथा चिंतन - मौलिकता का प्राधान्य है। प्राचीन तत्वों एवं उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने एवं स्पष्ट करने की अपेक्षा अपनी विशिष्ट व्याख्याओं के माध्यम से सर्वथा नवीन रूप प्रदान करते हुए उन्होंने अपने आधुनिक पाठकों के लिए उसे सुबोध बना दिया है। उनकी शैली में सरलता एवं स्पष्टता विद्यमान है जो उनके निबंधों की विशिष्टता है।

पं. शांति प्रिय द्विवेदी

आत्मानुभूति परक वैयक्तिक निबंध लिखने वालों में द्विवेदी का नाम मूर्धन्य है। इनके निबंध संग्रहों में जीवन-यात्रा, साहित्यिकी, हमारे साहित्य निर्माता, कवि और काव्य, संचारिणी, युग और साहित्य तथा सामयिकी आदि उल्लेखनीय हैं। इन्होंने कला एवं साहित्य विषयक निबंधों की रचना की है। जिसमें स्वानुभूति के आधार पर अपने विचारों की अभिव्यक्ति प्रदान की है। किंतु पथ-चिन्ह तथा परिब्राजक की प्रजा आदि में वैयक्तिकता को उभारा है। शैली में सरसता एवं प्रभावोत्पादकता विद्यमान है। कहीं-कहीं यह शैली करुणा प्रधान होकर करुणोत्पादक हो गई है। जैसे अपने संबंधित संस्मरण का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है -

"छुटपन में वह विधवा हो गई थी। उस अबोध वय में उसने जाना ही नहीं कि उसके भाग्य-क्षितिज में क्या पट परिवर्तन हो गया। जन्म काल से मां का जो आंचल उसके मस्तक पर फैला हुआ था। सयानी होने पर वही अंचल अपने मस्तक पर ज्यों-का-त्यों पाया, मानो शैशव ही उसके जीवन में अक्षुण हो गया। अचानक एक दिन जब वह अंचल भी मस्तक पद से छाया की तरह तिरोहित हो गया, तब उसके जीवन में मध्याह्न की प्रखर ज्वाला के सिवा और क्या शेष रह गया था।"

डॉ. नगेन्द्र

डॉ. नगेन्द्र का साहित्यिक आलोचनात्मक निबंधों की अभिव द्धि में असाधारण योगदान है। इनके निबंध संग्रहों में विचार और विवेचन, विचार और अनुभूति, विचार और विश्लेषण तथा कामायनी के अध्ययन की समस्याएं आदि विशेष महत्व के हैं। इन निबंधों का मूल स्वर विषय विवेचन है। अनेक निबंधों में वैयक्तिकता भी द ष्टिगोचर होती है फिर भी विवेच्य विषय या मूल समस्या के विवेचना की प्रधानता है। नगेन्द्र कुशल व्याख्याता हैं। वे किसी भी विषय पर अपना समाधान प्रस्तुत करने से पहले उसे पाठकों के हृदय में प्रतिष्ठापित कर देते हैं जिसके कारण पाठक गूढ़ातिमूढ़ निबंध को पढ़ते समय उबासी न लेकर अति दत्त-चित्तता से उद्योपांत पढ़ जाता है। इसका उदाहरण उनका "साधारणीकरण एवं व्यक्ति वैचित्र्यवाद" है। इस शैली का यह सर्वश्रेष्ठ निबंध है। डॉ. नगेन्द्र ने अधिकांश निबंधों में व्याख्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक शैली अपनाई है किन्तु कुछ निबंधों में रूपकात्मक या अप्रस्तुतात्मक शैली का प्रयोग भी किया है। जैसा कि वीणा पाणि के कंपाउंड में या हिंदी उपन्यास में किया गया है। वास्तव में विचारों की गंभीरता, चिंतन की मौलिकता एवं शैली की रोचकता इन तीनों का डॉ. नगेन्द्र ने सामंजस्य स्थापित किया है।

साहित्य एवं कला संबंधी विषयों पर उत्कृष्ट निबंध लिखे हैं जिनमें कला, कल्पना और साहित्य तथा साहित्य की झांकी आदि संग्रहीत हैं। तथ्यों को तर्क एवं प्रमाण से परिपुष्ट करके प्रतिपादन करते हैं।

डॉ. विनय मोहन शर्मा

डॉ. शर्मा के निबंध संग्रह 'साहित्यावलोकन' तथा 'द ष्टिकोण' आदि हैं। इन्होंने मुख्यतः सौंदर्य शास्त्रीय तथा साहित्यिक विषयों पर निबंध लिखे हैं। इनके व्यक्तित्व की सरलता एवं उदारता के परिणामस्वरूप निबंध शैली में सरलता, स्पष्टता तथा ऋजुता के गुण विद्यमान हैं। विषय प्रतिपादन से पूर्व पाठक मनोभूमि को विषयानुसार ढाल लेते हैं जिससे वह प्रतिपाद्य निबंध को सुनने, समझने या अध्ययन में तल्लीनतापूर्वक प्रव त्त हो जाता है। उदाहरण के लिए कलाकार एवं सौंदर्य बोध निबंध का अंश अवलोकनीय है -

"सौंदर्य क्या है?, उसका बोध कैसे होता है, और कवि या कलाकार पर उसकी किस प्रकार प्रतिक्रिया होती है? ये प्रश्न वर्षों से साहित्य और दर्शन में विवाद बने हुए हैं।" अलोचना या निबंध में ऐसे प्रश्न पाठक की उत्सुकता को बढ़ाने में सहायक होते हैं।

डॉ. राम विलास शर्मा

अत्यंत तीखी, व्यंग्यपूर्ण एवं सशक्त शैली में निडरता से विषय का प्रतिपादन करने वाले निबंधकारों में डॉ. राम विलास शर्मा का विशेष स्थान है। इन्होंने साहित्य, कला, संस्कृति तथा राजनीति आदि विषयों पर सौ से अधिक निबंध लिखे हैं जो संस्कृति और साहित्य, प्रगति और परंपरा, प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं तथा स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य आदि संग्रहों में संग्रहीत हैं। डॉ. शर्मा मार्क्सवादी या प्रगतिवादी विचारधारा के निबंधकार हैं। इनके निबंधों में यही द ष्टिकोण प्रधान है।

प्रकाश चन्द्र गुप्त

प्रकाश चन्द्र गुप्त के निबंधों का संग्रह 'नया हिंदी साहित्य : एक भूमिका' तथा 'साहित्य धारा' हैं जिनमें इनके निबंध संग हीत हैं। शैली सरल, स्पष्ट तथा रोचक है।

शिवदान सिंह चौहान

शिवदान सिंह चौहान के निबंध संग्रह 'साहित्यानुशीलन' तथा आलोचना के मान हैं जिनमें इनके निबंधों का संग्रह किया गया है। इनकी शैली में सरलता, स्पष्टता तथा रोचकता विद्यमान है।

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के निबंधों के विषय ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक हैं जिनमें उन्होंने उत्कृष्ट निबंधों का प्रस्तुतीकरण किया है। निबंधों में अध्ययन, मनन एवं चिंतन की गंभीरता द ष्टिगोचर होती है। इनके निबंध संग्रह 'भारत की संस्कृति का सामाजिक विश्लेषण', 'इतिहास के प ष्ठों पर', 'खून के धब्बे' तथा 'सांस्कृतिक निबंध' आदि उल्लेखनीय हैं।

डॉ. भगीरथी मिश्र

डॉ. भगीरथी मिश्र के निबंधों का संग्रह कला और साहित्य है।

डॉ. रामरतन भटनागर

डॉ. रामरतन भटनागर का निबंध संग्रह 'अध्ययन और आलोचना' है।

डॉ. रामधारी सिंह दिनकर

डॉ. दिनकर के निबंधों के संग्रह मिट्टी की ओर, अर्द्धनारीश्वर तथा रेती के फूल हैं।

महादेवी वर्मा

संस्मरणात्मक निबंध लिखने वालों में महादेवी का नाम सर्वश्रेष्ठ है। इनके संस्मरणों के संग्रह अतीत के चल-चित्र, स्म ति की रेखाएं तथा श्र ंखला की कड़ियां हैं। जिनमें सामाजिक विषमता तथा दीन-हीन मानव, पशु-पक्षियों की वेदना का चित्रण अनुभूति की भाव भूमि पर किया गया है। शब्द चयन एवं पद-विन्यास के भावों की मार्मिकता को स्पष्ट करने की सामर्थ्य एवं क्षमता

विद्यमान है। उदात्त विषयों के प्रतिपादन में शैली में सशक्तता एवं प्रौढ़ता विद्यमान है। महादेवी के संस्मरणों एवं निबंधों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें दार्शनिक की अंतर्दृष्टि, कवि की अभिव्यक्ति, चित्रकार की प्याली-तूलिका, तथा साहित्यकार की उजस्त्र लेखनी का अपूर्व समन्वय विद्यमान है।

रामव क्ष बेनीपुरी

रामव क्ष बेनीपुरी के निबंध संस्मरणात्मक हैं। जिनमें उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों से संबंधित व्यक्तियों का सह्रदयापूर्ण शैली में चित्रांकन किया है। इनके निबंध संग्रह माटी की मूरतें तथा गेहूं और गुलाब हैं। इनकी शैली काव्यात्मक तथा विवरणात्मक है। कही इनकी शैली आकुल-व्याकुल सामुद्रिक लहर-तरंगों के कंपायमान अधरों का चुंबन प्रति चुंबन लेकर अट्टहास कर उठती है।

हरिवंश राय 'बच्चन'

हरिवंश राय बच्चन ने संस्मरणात्मक निबंध लिखे। जिनका संग्रह 'क्या भूलूं क्या याद करूं' है। जिसमें इनके जीवन के मर्मस्पर्शी संस्मरण संग्रहीत हैं।

देवी लाल चतुर्वेदी 'मस्त'

देवी लाल चतुर्वेदी के निबंधों का संकलन 'झरोखे' है।

आचार्य चंद्रबली पांडेय

चन्द्रबली पांडेय ने समीक्षात्मक एवं गवेष्णात्मक निबंधों की रचना की। इनके निबंधों के संग्रह एकता तथा विचार विमर्श हैं। इनके निबंधों में अध्ययन गांभीर्य एवं तर्क-पूर्ण शैली का समन्वय द ष्टिगोचर होता हैं

नलिन विलोचन शर्मा

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर निबंध लिखे।

रांगेय राघव

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक निबंध लेखकों में इनका विशेष स्थान है।

डॉ. देवराज

अनेक निबंधकारों ने अपने निबंध का विषय साहित्य एवं संस्कृति को बनाया जिनमें डॉ. देवराज का नाम भी उल्लेखनीय है।

इलाचन्द्र जोशी

इलाचन्द्र जोशी का निबंध क्षेत्र व्यापक है। इन्होंने अनेक विषयों को निबंध के लिए चुना। इनके निबंधों के संग्रह 'साहित्य सर्जना', 'विवेचन', 'विश्लेषण', 'देखा-परखा' तथा 'महापुरुषों की प्रेम कथाएं' हैं। जोशी ने साहित्य, मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषण से संबंधित विविध विषयों पर विवेचनात्मक एवं प्रभावोत्पादक शैली में निबंध लिखे।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

'अज्ञेय' ने निबंध हेतु साहित्यिक विषयों का चयन किया। इनके निर्णयों का संग्रह त्रिशंकु है।

यशपाल

यशपाल ने कथा साहित्य की भांति निबंध साहित्य की अभिव द्धि में भी असाधारण योगदान किया। इनके निबंधों के संग्रह 'देखा, सोचा, समझा', 'मार्क्सवाद', 'चक्कर क्लब', 'न्याय का संघर्ष', 'गांधीवाद की शव परीक्षा', तथा राज्य की कथा' आदि प्रमुख हैं। शैली में सरलता तथा विचारोत्तेजकता विद्यमान है। कहीं-कहीं इनकी शैली व्यंग्यात्मक हो गई है। व्यंग्य सामाजिक एवं तीखे हैं, उदाहरण द्रष्टव्य है -

"कारतूसों की एक दुकान खोलो, जिसमें 'कलमाइड कारतूस' मुसलमानों के लिए और 'झटकाइड कारतूस' सिक्खों के लिए रहें। अच्छा मुनाफा रहेगा।"

गोपाल प्रसास व्यास

व्यास के निबंधों में हास्य-विनोद तथा व्यंग्य की प्रधानता है। उनके निबंध संग्रह 'कुछ सच : कुछ झूठ' तथा मैंने कहा प्रमुख हैं। व्यास छोटी से छोटी बात को भी अत्यंत रोचक एवं साहित्यिक ढंग से प्रतिपादन करने में सिद्धस्त थे। उदाहरण के लिए स्नान घर में भैंस वास्तव में घुस गई या पत्नी के मोटपे पर व्यंग्य करने के लिए कल्पना कर लिया और कल्पित भैंस को स्नान घर में घुसा ही नहीं दिया बल्कि अनूठा निबंध लिख डाला तथा यत्र-तत्र वे विभिन्न वर्गों के साहित्यकारों को भी भैंस के बहाने याद कर लेते हैं -

"एक दिन बाबू जी की पत्नी गुसलखाने में स्नान कर रही थी, तो भैंस भी अपना अधिकार समझकर उसमें घुस पड़ी। संकरा दरवाजा, छोटी जगह। भैंस घुस तो गई, मगर अब निकले कैसे?........... एकदम नई अलझन थी। प्रगतिशील भैंस के बढ़े हुए कदम प्रतिक्रियावादी होने को कतई तैयार न थे।"

प्रभाकर माचवे

प्रभाकर माचवे ने 'मुंह', गला, गाली, बिल्ली, मकान आदि साधारण विषयों का निबंध हेतु चयन करके अति रोचक निबंधों की रचना की है। उनके निबंध संग्रह नाम जो होता नहीं है, है 'खरगोश की सींग'।। शैली सरल, मुहावरेदार, प्रवाहपूर्ण तथा प्रभावोत्पादक है।

देवेन्द्र सत्यार्थी

देवेन्द्र सत्यार्थी ने लोक संस्कृति एवं लोक गीतों की प ष्ठभूमि पर, विभिन्न विषयों पर, अनुभूति पूर्ण निबंधों की रचना की है। इनके निबंधों के अनेक संग्रह एक युग : एक प्रतीक, रेखाएं बोल उठीं, क्या गोरी क्या सांवरी, कला के हस्ताक्षर आदि हैं। इनके निबंध अति मनोहारी हैं जिनमें मन को आकर्षित करने की क्षमता विद्यमान है।

जयनाथ नलिन

जयनाथ नलिन के निबंधों का संग्रह कला और चिंतन है जिसमें मौलिक निबंधों का संग्रह किया गया है।

डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

इंटरव्यू का हिंदीकरण अंतव्यू किया गया है। यदि इस शब्द में अंत्याक्षरागम के अनुसार अंतव्यू - अंतर्व्यूह कर लिया जाए तो चक्रव्यूह के आधर इस शब्द की सार्थकता में व द्धि हो जाए।

हिंदी साहित्य की निबंध परंपरा में अनेक शैलियों का प्रयोग किया गया है। एक नवीन शैली 'अंतर्व्यू शैली' है इसके प्रवर्तन का श्रेय डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' को है। इनके निबंध का संकलन 'मै इनसे मिला' (दो भाग) हैं। इन्होंने विभिन्न साहित्यकारों के लिए गए अंतर्व्यूह (साक्षात्कार) के आधार पर उनके व्यक्तित्व, दर्शन, साहित्य-स जन के भिन्न पक्षों को अति कलात्मक शैली में प्रतिपादित किया है। अंतर्व्यूह के अतिरिक्त डॉ. कमलेश के अन्य अनेक निबंधों की रचना करके हिंदी निबंध साहित्य की अभिव द्धि की है। इनके निबंधों में वैचारिक सरलता एवं स्पष्टता तथा शैलीगत सरसता विद्यमान है।

कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर

प्रभाकर ने जीवन एवं समाज को प्रेरित करने के लिए रोचक एवं प्रभावोत्पादक निबंधों की रचना की। प्रभाकर के निबंध संग्रह जिंदगी मुस्कराई, बाजे पायलिया के घुंघरू, दीप जले शंख बजे तथा क्षण बोले कण मुस्काए आदि उल्लेखनीय हैं।

राम नाथ सुमन

राम नाथ सुमन ने सैकड़ों निबंध लिखे हैं।

जैनेन्द्र कुमार

जैनेन्द्र कुमार ने सांस्कृतिक, नैतिक, राजनीतिक चिंतन को अपनी विशिष्ट शैली में विश्लेषणात्मक निबंधों के प्रस्तुत किया है। उनके निबंधों का संग्रह समय और हम है।

डॉ. संपूर्णानंद

डॉ. संपूर्णानंद के निबंधों में दार्शनिक विवेचन है किन्तु उसमें जटिलता नहीं है।

ललित निबंध

ललित निबंधों में लालित्य पर अधिक बल दिया जाता है। यह निबंध की नई विधा नहीं है। लालित्य निबंध की विशिष्ट विशेषता है। वर्तमान में इसे प्रव त्ति के आधार अलग विधा मान लिया गया है। निबंधकार अपने भावों, विचारों को सरस, अनुभूतिजन्य, आत्मीय एवं रोचकरूप में प्रस्तुतीकरण करता है। ललित निंबंधों को गंभीर विश्लेषण, ऊबाऊ वर्णन, जटिलता से बचाया जाता है।

ललित निबंधकारों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का प्रमुख स्थान है। उनके निबंधों में मानवतावादी जीवन दर्शन एवं संवेदनशीलता दोनों द ष्टिगोचर होते हैं। निबंधों में पांडित्य के साथ नवीन चिंतन-दर्शन भी दिखलाई पड़ता है। विचार और वितर्क "अशोक के फूल" तथा कल्पलता आदि उनके प्रमुख निबंध संग्रह हैं। इसके अतिरिक्त ललित निबंधकारों में विद्यानिवास मिश्र, कुबेर नाथ राय तथा विवेकी राय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

विद्यानिवास मिश्र संस्कृत भाषा एवं साहित्य के उद्भट विद्वान हैं। लोक साहित्य, साहित्य और लोक संस्कृति में उनकी गहरी पैठ है। शैली भावपूर्ण एवं काव्यमय है। प्रमुख निबंध संग्रह मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, तुम चन्दन हम पानी, संचारिणी, लागौ रंग हरी तथा तमाल के झरोखे से आदि हैं।

व्यंग्य निबंध

हिंदी साहित्य में भारतेंदु युग में ही व्यंग्य का प्रारम्भ हो चुका था किन्तु स्वातंत्र्योत्तर युग में व्यंग्य निबंध के नए युग का सूत्रपात हुआ। इसका श्रेय हरिशंकर परसाई को है। उन्होंने व्यंग्य को एक स्वतन्त्र विधा बनाने का यत्न किया। वास्तव में व्यंग्य स्वतन्त्र विधा नहीं है।

व्यंग्य निबंधों में निबंधकार समाज की समस्या विशेष पर निबंध लिखता है। व्यंग्य से पाठक में नवीन द ष्टि और सामाजिक जागरुकता पैदा करता है।

हिंदी व्यंग्य लेखकों में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्र नाथ त्यागी, गोपाल प्रसाद व्यास, बरसाने लाल चतुर्वेदी, प्रभाकर माचवे, बेढब बनारसी, तथा हरिश्चन्द्र वर्मा आदि प्रमुख हैं।

हिंदी निबंध साहित्य ने थोड़े से समय में ही पर्याप्त उन्नति कर ली है। भारतेन्दु युग से आज तक निबंध साहित्य प्रौढ़तर होता जा रहा है। कुछ निबंधकार पाश्चात्य निबंधकारों से प्रभावित होकर हिंदी साहित्य में भाषा एवं सौंदर्य की विहीनता का प्रतिपादन करते हैं। निबंध में अनुभूति मुख्य तत्व है। वर्तमानकाल में निबंध में अनुभूति शून्यता आती जा रही है। निबंधकार साहित्यिक समस्याओं तक अपने को संकुचित करता जा रहा है। अन्य परिवेशों को अपने निबंध का विषय बनाने में अपने को असफल पाता जा रहा है।

प्रफुल्लता, ताजगी, रोचकात तथा व्यंग्यात्मकता से वर्तमान निबंध दूर होता जा रहा है। ये प्रव त्तियां हिंदी निबंध के हास का द्योतन करती है। हिन्दी निबंध लेखकों का इस ओर विशेष ध्यान देना वर्तमान अनिवार्यता है।

28. संस्मरण

संस्मरण एक मनोहारी आत्म परक हिंदी गद्य साहित्य की आधुनिक विधा है। वास्तव में संस्मरण किसी समर्थमान स्म ति का शब्दांकन है। संस्मरणकार अपने वैयक्तिक जीवन के संपर्क में आए हुए व्यक्तियों के विभिन्न स्वरूपों का अपनी स्म त्यानुसार जो कथात्मक शैली में रेखांकन करता है वह संस्मरण कहलाता है। मानव जीवन में संपर्क में आने वाले व्यक्तियों की संख्या असीमित होती है जिसकी ओर सामान्य मनुष्य ध्यान नहीं देता है किन्तु संवेदनशील मानव संपर्क में आए उस विशिष्ट मनुष्य को भुला नहीं पाता जिसकी कुछ-न-कुछ अमिट छाप उस पर पड़ी होती है। वे यादें अंतस्तल में सोई रहती हैं जिनके सहारे संस्मरणकार उनका चरित्र-चित्रण स्वानुभूति के आधार पर शब्दों के माध्यम से करता है। अंतस्तल में सोई हुई छवि आकुलता-व्याकुलता के क्षण में जाग त हो शब्दायमान होकर संस्मरण का रूप धारण कर लेती है।

संस्मरण के मूल में अतीत की स्म तियों का विशेष महत्व है। संस्मरणकार अतीत की स्म तियों के आधार पर जो कुछ देखता-सुनता या अनुभव करता है उसे अपनी अनुभूतियों से राग रंजित करके उन्हें संस्मरण का साहित्यिक जामा पहना देता है। इस विषय में डॉ. आशा कुमारी का कहना है कि संस्मरणकार इतिहासकार की भाँति तथ्यपरक विवरण मात्र नहीं देता अपितु अपनी अनुभूतियों को साहित्यिकता से अभिमंडित करके प्रस्तुत कर देता है। इतिहसकार मात्र महत्वपूर्ण तथ्यों एवं घटनाओं को ही ग्रहण करता है जबकि संस्मरणकार सामान्य से सामान्य, छोटी से छोटी घटना को अपने संस्मरण का विषय बनाकर, अनुभूतियों से अभिषिक्त कर मनोरम, सरल, सरस शैली के द्वारा साहित्यिक रूप प्रदान कर संस्मरण का स जन करता है।

संस्मरण की वैयक्तिक भिन्नता के परिणाम स्वरूप प्रस्तुतीकरण में भी भिन्नता आ जाती है।

हिंदी संस्मरण विभाजन

भिन्नता को द ष्टिगत रखते हुए संस्मरण को अनके वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. मानव परक
2. पशु-पक्षी परक
3. यात्रा विवरणात्मक
4. आत्मकथात्मक
5. जीवनीमूलक
6. डायरीनुमा
7. मूल्यांकनपरक
8. श्रद्धांजलि मूलक

1. मानव परक

संस्मरण कार के जीवन में अनेक व्यक्ति आते हैं किंतु विशिष्ट होते हैं वे जो अपनी अमिट छाप अपने किसी गुण से छोड़ जाते हैं। महादेवी की पेड़ के नीचे लगने वाली साप्ताहिक ग्रामीण पाठशाला का एक शिष्य घीसा है जो सफाई पसंद है। सबसे पहले आकर पेड़ के नीचे सफाई करता है। एक ही कुर्ता है जिसे धो लेता है तो न सूखने पर गीला ही पहन कर आ जाता है। अपने पिल्ले से इतना प्रेम करता है कि गुरु जी से मिली जलेबी उसके लिए ले जाता है। गुरु भक्ति इतनी प्रबल है कि गुरु जी जाते समय अपनी गरीबी में एक तरबूज गुरु दक्षिण में देता है। हिंदू मुसलमान के दंगे से भयभीत गुरु जी को न जाने के लिए आग्रह करता है। ऐसा चरित्र कभी भूल सकता है। महादेवी ने उसे अपने संस्मरण का विषय बनाकर अमर कर दिया है।

2. पशु-पक्षी परक

संस्मरणकार के जीवन संपर्क में मानव मात्र का ही आगमन नहीं होता है अपितु पशु-पक्षी जानवर आदि का मनुष्य से भी अधिक लगाव हो जाता है।

महादेवी ने तोते के बच्चे को देखा जिसे कौवे मार रहे थे। बचा लिया और पिंजरे में पाल लिया जो सीता राम कहकर महादेवी को अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। यही स्थिति गिलहरी के बच्चे की थी जिसे कौवे मार रहे थे महादेवी ने बचाकर पाल लिया जो इनकी मेच पर, कुर्सी पर कभी आगे, कभी पीछे, कभी दायें, कभी बायें फुदकता रहता था कुछ खाने लगती तो वह अपना भाग पहले लेता था। उसका नामकरण कट्टो रखकर महादेवी ने जाति वाचक संज्ञा को व्यक्ति वाचक संज्ञा बना दी। सोना हिरणी भी ऐसी थी। महादेवी ने असंख्य पशुपक्षियों एवं जानवरों को जीवन दान ही नहीं दिया अपितु अपने संस्मरणों में उन्हें स्थान देकर उन्हें सदा के लिए अमर बना दिया।

3. यात्रा विवरणात्मक

संस्मरणकार यात्राएं करता रहता है। यात्रा में मानव, पशु-पक्षी, जीव जंतु, प्रकृति आदि अनेक से उसका संपर्क होता है। विशिष्ट विशेषता वाले को संस्मरण में स्थान देता है।

4. आत्मकथात्मक

संपूर्ण जीवन में अनेक तथ्य, घटनाएं एवं मनुष्य आते रहते हैं आत्म कथा लिखते समय उसमें से प्रबल शक्तिमान बिला बुलाए आ टपकता है उसके विषय में खट्टी मीठी यादें आ जाती हैं जिन्हें संस्मरण में शब्दांकित करता है।

5. जीवनी मूलक

जिस प्रकार संस्मरणकार के जीवन में आने वाले अनेक तथ्य या व्यक्ति होते हैं उसी प्रकार जिसकी जीवनी लिख रहे होते हैं उसके संपर्क में आने वालों का चित्रण जीवनी मूलक संस्मरण कहलाता है।

6. डायरी नुमा

प्रतिदिन की घटनाओं, घटनाओं से संबंधित पात्रों को दैनंदिनी में अंकित करते हैं। जिसका विशेष महत्व होता है वह संस्मरण का रूप लेकर व्यापार आधार फलक ग्रहण करता है।

7. मूल्यांकन परक

व्यक्ति, वस्तु, भाव या स्थान का मूल्यांकन करते समय उससे संबंधित विशिष्टता उभर कर सामने आ जाती है जो संस्मरण के रूप में विकसित हो जाती है।

8. श्रद्धांजलि मूलक

किसी की म त्यु या म त्यु दिवस पर शोक संवेदना प्रकट करने को श्रद्धांजलि कहते हैं। दिवंगत व्यक्ति गुणवान होता है तभी श्रद्धांजलि का अधिकारी होता है। उसके गुण विशेष या प्रेरणादायक तथ्यों का चित्र भी उस समय उभरकर आ जाता है जिसे संस्मरण का रूप श्रद्धांजलि कर्ता की संवेदना दे देती है।

हिंदी संस्मरणों का विकास इन वर्गों के आधार न करके सामान्य रूप से कालक्रमानुसार करना उचित है।

हिंदी संस्मरण : उद्भव एवं विकास

हिंदी साहित्य में संस्मरणों का अभाव नहीं है। हिंदी संस्मरण के विकास में सरस्वती, सुधा, माधुरी, चांद तथा विशाल भारत आदि पत्रिकाओं का विशेष योगदान है।

प्रथम संस्करण

सन् 1907 ई. में बाबू बाल मुकुंद गुप्त ने पं. प्रतापनारायण मिश्र एक संस्मरण लिखा जिसे हिंदी का प्रथम संस्मरण स्वीकारा गया। कुछ आलोचकों का कहना है कि बाबू बालमुकुंद गुप्त प्रथम संस्मरण लेखक नहीं हैं अपितु प्रथम संस्मरण लेखक स्वामी सत्यदेव परिव्राजक या पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' हैं।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र आधुनिक काल के गद्य साहित्य के जन्म दाता कहे जाते हैं। जिन्होंने गद्य लेखन की अनेक विधाओं की भांति संस्मरण लेखन का भी कार्य किया। उनका कुछ आप बीती कुछ जग बीती सुंदर संस्मरण है। उपर्युक्त दो संस्मरणों का उल्लेखमात्र है। शीर्षक तक ज्ञात नहीं है। इसलिए कुछ आप बीती कुछ जग बीती को प्रथम संस्मरण एवं भारतेंदु हरिश्चन्द्र को प्रथम संस्करणकार मानना औचित्यपूर्ण प्रतीत होता है।

विकास

हिन्दी साहित्य में वास्तविक संस्मरण लेखन कार्य द्विवेदी युग से प्रारंभ हुआ। द्विवेदी की प्रेरणा से सरस्वती में अनेक संस्मरण प्रकाशित हुए। इन जीवन परिचयों या संस्मरणों में लेखक की आत्मानुभूति की प्रधानता रही है। उन्हें मात्र जीवन व त्त नहीं कहा जा सकता है। इसलिए उन्हें जीवनी साहित्य न कहकर संस्मरण कहना उचित प्रतीत होता है ऐसा डॉ. गोविन्द तिगुणायत का कहना है। संस्मरण साहित्य को सम द्ध बनाने में अनेक संस्मरणकारों का योगदान मिला जिनमें प्रमुख संस्मरण लेखक निम्नलिखित हैं-

स्वामी सत्यदेव परिश्राजक- हिंदी संस्मरण लेखकों में स्वामी सत्य देव परिव्राजक का विशेष महत्व है। सन् 1905 ई. में उन्होंने अमेरिका की यात्रा की थी। यात्रा से संबंधित घटनाओं एवं संपर्क में आनेवालों का उन्होंने सजीव शब्दांकन किया है जो भाव एवं अनुभूति प्रधान है।

हेमचन्द्र जोशी- हेम चन्द्र जोशी फ्रांस यात्रा पर गए थे। यात्रा के दौरान उन्होंने अनेक अनुभव किए जिसे उन्होंने सरस एवं मनोरम शैली में प्रस्तुत किया। इसमें साहित्यिकता अधिक है। जोशी के संस्मरणों का संकलन 'फ्रांस यात्रा और संस्मरण' में किया गया है।

डॉ. पद्म सिंह शर्मा 'कमलेश'- डॉ. पद्म सिंह शर्मा का संस्मरण लेखकों में विशेष स्थान है। इन्होंने अपने संस्मरणों का विषय साहित्यकारों को बनाया। शर्मा उग्र स्वभाव के थे जिसके परिणामस्वरूप उनके संस्मरणों में सरसता के साथ-साथ नोंक-झोंक के भी दर्शन होते हैं। महाकवि अकबर इलाहाबादी का संस्मरण अति रोचक एवं सरस शैली में प्रतिपादित किया है। जिसमें अकबर का जीवन व त्त उभर कर सामने आ गया है तथा 'कमलेश' की विद्वता, सजीवता, त्वरित वाकपटुता ने भी साकाररूप ग्रहण कर लिया है। संस्मरण की भाषा सशक्त एवं भावाभिव्यंजन में सहयोगी सिद्ध हुई है।

पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी- संस्मरणकारों में श्रीनारायण चतुर्वेदी का विशेष स्थान है। इनके संस्मरणों का संकलन लखनऊ से देहरादून तक की यात्रा' में किया गया है। इसके अतिरिक्त मनोरंजक संस्मरण भी प्रकाशित हुआ। इनके संस्मरणों में हास्य-विनोद की प्रधानता है।

श्रीराम शर्मा- संस्मरण लेखकों में श्रीराम शर्मा उल्लेखनीय हैं। शर्मा शिकार के शौकीन थे। इसलिए इनके संस्मरणों में शिकार-संबंधित विषयों को अपनाया गया है। वैयक्तिकता की प्रधानता के कारण संस्मरणों में यथार्थ को अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। संस्मरण रोचक भी हैं। इनकी प्रमुख कृति सन् बयालीस के संस्मरण है।

बनारसी दास चतुर्वेदी- बनारसी दास चतुर्वेदी संस्मरण के प्रति पूर्ण समर्पित व्यक्ति हैं। उन्होंने अनेक संस्मरण लिखकर हिन्दी संस्मरण साहित्य की संव द्वि की है। अपने संस्मरणों में महापुरुषों को विषय रूप में ग्रहण करके सामाजिक वातावरण को सजीवता प्रदान की है। इनके प्रोत्साहन एवं प्रेरणा के फलस्वरूप हिंदी में अनेक संस्मरण ग्रंथों का प्रकाशन हुआ।

महादेवी वर्मा - महादेवी वर्मा के संस्मरण हिंदी संस्मरण साहित्य की अक्षय निधि हैं। उनके संस्मरणों का संग्रह अतीत के चलचित्र सन् 1941 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें संकलित सभी संस्मरणों में मर्मस्पर्शिता एवं रागात्मक अनुभूति की प्रधानता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो महादेवी की ममता इन संस्करणों में आकर सजीव एवं साकार हो उठी है। स्म ति की रेखाएं एवं पथ के साथी में संकलित संस्मरणों में महादेवी की साहित्य कला का चरमोत्कर्ष एवं पराकाष्ठा देखी जा सकती है। महादेवी ने स्वतः कहा है-

"इन स्म ति चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था। अंधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुंधली या उजली परिधि में ही लाकर देख पाते हैं।" महादेवी के संस्मरण उनके जीवन की विशिष्टताओं को अभिव्यंजित करने में पूर्ण समर्थ हैं। महादेवी मूलतः कवियित्री हैं, नारी हैं। इसलिए उनके संस्मरणों में कवि सुलभ एवं नारी सुलभ सभी विशेषताओं -

कोमलता, भावुकता, ममता, दया, त्याग, बलिदान एवं मधुरता आदि को स्वाभाविक रूप से स्थान मिल गया है। जिन्होंने संस्मरण को श्रेष्ठता प्रदान की है। महादेवी के संस्मरणों में सभी भाषिक गुण ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, चित्रोपमता भावाभिव्यंकता, सरलता तथा माधुर्य आदि विद्यमान हैं।

श्री निधि विद्यालंकार - नए संस्मरण लेखकों में विद्यालंकार का नाम अग्रगण्य है। इनका संस्मरण शिवालिक की घाटियों में प्रमुख है। जिसमें प्राकृतिक छटा वर्णित है। प्रकृति के सौंदर्य का संश्लिष्ट चित्रण अति मनोरम एवं आकर्षक बन गया है। चित्रात्मक भाषा इनकी प्रमुख विशेषता है।

राजेन्द्र लाल हांडा - हांडा आधुनिक संस्मरण लेखक हैं। इनके संस्मरणों का संकलन 'दिल्ली में बीस वर्ष' है।

राजा राधिका रमण सिंह - संस्मरण लेखकों में राजा राधिका रमण सिंह का नाम अति आदर से लिया जाता है। इनके संस्मरण अनेक संग्रहों में प्रकाशित हो चुके हैं। इनके संस्मरणों में वर्णन-चित्रण की सापेक्षित शैली का प्रयोग किया गया है। इनके संस्मरणों में टूटा तारा, नारी क्या एक पहेली, सावनी सभा, सूरदास, हवेली की झोपड़ी, पूरब और पश्चिम, वे और हम, देव और दानव तथा जानी, सुनी-देखी भाली आदि प्रमुख हैं।

अयोध्या प्रसाद गोयलीय - गोयलीय के अनेक संस्मरण प्रकाशित हो चुके हैं। इनका प्रसिद्ध संस्मरण संग्रह जन जागरण के अग्रदूत हैं। इनके अधिकांश संस्मरणों में जीवनियां हैं।

इनके अतिरिक्त शांति प्रिय द्विवेदी, राम व क्ष वेनीपुरी, कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर, राहुल सांकृत्यायन, गुलाब राय, देवेन्द्र सत्यार्थी, इलाचन्द्र जोशी, सेठ गोविंद दास, राजेन्द्र यादव, यशपाल, भगवती चरण वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर, उपेन्द्र नाथ अश्क, डॉ. नग्रेन्द्र, भदंत आनंद कौसल्यायन, ओंकार शरद तथा विष्णु प्रभाकर आदि भी उल्लेखनीय संस्मरण लेखक हैं। जिन्होंने अपने उत्कृष्ट संस्मरणों से हिंदी संस्मरण साहित्य के भंडार में अभिव द्धि की है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि 20वीं सताब्दी के अस्तित्व में आए संस्मरणों ने अपने अल्पकालीन जीवन में अत्यधिक विकसित रूप धारण करके उल्लेखनीय प्रगति का द्योतन किया है। आधुनिक प्रत्येक साहित्यकार संपर्क में आए हुए महान व्यक्ति से संबंधित विशिष्ट घटना को अपनी अनुभूतियों में पिरोकर, मनोरम, स्पष्ट, साहित्यिक भाषा का जामा पहनाकर, अपने विचारों से संप क्त करके रूपायित करने के लिए प्रयत्नशील हैं। हिंदी संस्मरण साहित्य की प्रगति इस तथ्य को द्योतन करती है कि गद्य की अन्य विधाओं की भांति संस्मरण साहित्य का भविष्य अति उज्जवल है।

29. रेखाचित्र

हिंदी गद्य साहित्य की नवीनतम विधा रेखा चित्र है। इसके लिए शब्दस्केच, शब्दचित्र, व्यक्तिचित्र, तूलिकाचित्र या चरित लेख आदि शब्द युग्मों का प्रयोग किया जाता है। जिनमें अंतिम चरित लेख भिन्न है। लेख निबंध का लघु रूप है। अर्थात् संक्षेप में किसी का चरित्र-चित्रण करना चाहिए लेख कहलाता है। रेखा चित्र शब्द युग्म का द्वितीय समस्त पद चित्र है। अन्य समासों में भी द्वितीय समस्त पद चित्र ही है चित्र को अलग कर देने से शब्द, शब्द, व्यक्ति, तूलिका ही बचते हैं। स्केच का अर्थ भी चित्र होता है। तूलिका चित्र बनाने का साधन है। शब्द अभिव्यक्ति का साधन है किंतु पेंसिल या पेन मात्र रेखाएं खींच कर चित्र उकेरते हैं। शब्दों के माध्यम से उकेरे गए चित्र को रेखाचित्र कहा जाता है। इसमें चित्र की पूर्णता न होकर अभिव्यक्ति की पूर्णता होती है। इन सबमें हिंदी में रेखाचित्र ही सर्वग्राह्य है।

नवीनतम विधा होने पर भी इसके तत्व प्राचीन काव्यों में भी उपलब्ध हैं। वाल्मीकि रामायण से लेकर आधुनिक साहित्य में रेखाचित्र के तत्व निरंतर द ष्टिगोचर होते हैं। पद्य एवं गद्य की सभी विधाओं में इसके तत्व विद्यमान हैं। मानव, मानवेतर, जड़ चेतन आदि के अंग प्रत्यंगों में द ष्टिगोचर होने वाले बिंब ही इसके तत्व हैं। चाहे वे स्थूल हों या सूक्ष्म। इन बिंबों का चित्रण ही रेखाचित्र कहलाता है। पाश्चात्य साहित्य के स्केच से अनुप्राणित है। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में हिंदी साहित्य में रेखाचित्र का प्रादुर्भाव हुआ।

रेखाचित्र, व्यक्ति, वस्तु, स्थान, भाव, घटना या परिवेश से संबंधित होने के फलस्वरूप यथार्थ की भूमि पर प्रतिष्ठित होता है। रेखाचित्र का आधार फलक यथार्थ है। रेखाचित्र किसी व्यक्ति का शब्द चित्र, किसी विशिष्ट व्यक्ति का संक्षिप्त विवरण, किसी विशिष्ट प्रव त्ति या घटना का व्यंग्यात्मक चित्रण हो सकता है।

रेखाचित्र गद्य की वह विधा है जिसमें चरित्र, द श्य या घटना विशेष का मुख्य रूप से वर्णन किया गया हो। डॉ. शिवदान सिंह चौहान का रेखाचित्र विषयक कथन द्रष्टव्य है-

“किसी व्यक्ति के रेखाचित्र में यह विशेषता होगी कि उसके व्यक्तित्व ने जो विशेष मुद्राएं शारीरिक या अवयवों की बनावट में जो विकृतियां ऊपर को उभार दी हैं उनके आभास को चित्र में ज्यों का त्यों पकड़ा जाए ताकि लेखक की अनुभूति के साथ उसके व्यक्तित्व की रेखाएं और भी सघन होकर दिखाई पड़ने लगें।”

डॉ. नगेन्द्र ऐसी किसी भी रचना को रेखाचित्र की संज्ञा देने के लिए उद्यत हैं जिसमें तथ्यों का उद्‌घाटन मात्र हो। उनके अनुसार तथ्यों का मात्र उद्‌घाटन रेखाचित्र है।

डॉ. विनय मोहन शर्मा के अनुसार -

“व्यक्ति, घटना या द श्य के अंकन को रेखाचित्र की संज्ञा दी जा सकती है।”

डॉ. भगीरथ मिश्र रेखाचित्र के लिए व्यक्ति का आलंबन ही स्वीकारते हैं, घटना या वातावरण का चित्रण उसकी सीमा के अंतर्गत नहीं आता।

उपर्युक्त परिभाषाओं के परिप्रेक्ष्य में कह सकते हैं कि रेखाचित्र वह शब्द चित्र है जिसमें व्यक्ति के आलंबन स्वरूप तथ्यों का अंकन किया जाता है।

डॉ. गोविंद त्रिगुणायत ने रेखाचित्र की विवेचना करते हुए लंबी परिभाषा दी है -

“रेखाचित्र, चित्रकला और साहित्य के सुंदर सुहाग से उद्‌भूत एक अभिनव कला रूप है। रेखा चित्रकार साहित्यकार के साथ-साथ चित्रकार भी होता है। जिस प्रकार चित्रकार अपनी तूलिका के कलारूप स्पर्श से चित्रपटल पर अंकित विश ंखल रेखाओं में से कुछ अधिक उभरी हुई रेखाओं को संवार कर एक सजीव रूप प्रदान कर देता है, उसी प्रकार रेखाचित्रकार मनः पटल पर विश ंखल रूप से बिखरी हुई शत-शत स्म ति रेखाओं में से उभरी हुई रमणीय रेखाओं को अपनी कला की तूलिका से स्वानुभूति के रंग से रंजित करके जीते-जागते शब्द चित्र में परिणत कर देता है। यही शब्द चित्र रेखा चित्र कहलाता है।”

हिंदी रेखाचित्र : उद्‌भव एवं विकास

रेखाचित्र की विषय वस्तु की संघटना देशानुरूप होती है। प्रव त्यानुसार रेखा चित्र को भावात्मक, विचारात्मक, विवरणात्मक, वर्णनात्मक, प्रकृति सौंदर्यात्मक, घटनात्मक, वैयक्तिक, समस्यात्मक, प्रतीकात्मक, हास्य व्यंग्यात्मक, संस्मरणात्मक, आत्मकथात्मक, तथ्यात्मक, मनोवैज्ञानिक तथा राजनीतिक आदि अनेक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

वास्तव में रेखाचित्र चरित्रात्मक ही होता है। यूनानी लेखक थियोफेस्टस ने 'कैरेक्टर्स' में विभिनन वर्गों के व्यक्तियों के रेखाचित्र प्रस्तुत किए थे। हिंदी में रेखा चित्रों का आर्विभाव बीसंवी सदी के तीसरे दशक में हुआ। ऐखा बिन्दु की ओर जनमानस का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय सन् 1938 ई. में प्रकाशित हंस के रेखाचित्र विशेषांक को है। जिसमें पच्चीस रेखा चित्र संकलित हैं। मधुकर ने भी रेखाचित्र विशेषांक निकाले। इन रेखाचित्रों की विषय वस्तु साहित्यकार, पत्रकार, कवि, अध्यापक, कथाकार तथा लेखिकाएं हैं। ये इन रेखाचित्रों ने अपने-अपने क्षेत्र के लब्ध-प्रतिष्ठित व्यक्तियों को ही रेखाचित्र का विषय बनाया है। हिंदी के प्रारंभिक रेखाचित्रों पर अंग्रेजी तथा रूसी रेखा चित्रों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

हिंदी - प्रथम रेखाचित्र - हिंदी में रेखाचित्र स जन का श्रेय पद्‌मसिंह शर्मा 'कमलेश' को है। इन्हें रेखाचित्र का जन्मदाता माना जाता है। इनके रेखाचित्रों का संकलन पद्‌म-पराग है जिसे हिंदी का प्रथम रेखाचित्र एवं पद्‌म सिंह शर्मा कमलेश को प्रथम रेखाचित्रकार माना जाता है। इन्होंने व्यक्ति चरित्रांकन में दक्षता प्रदर्शित की है।

बनारसी दास चतुर्वेदी ने उनके अकबर पर लिखे गए रेखाचित्र को प्रथम रेखाचित्र माना है।

भारतेंदु युग- गद्य की प्रायः प्रत्येक विधा का प्रारंभ भारतेंदु युग में हुआ। रेखा चित्र की स्वतन्त्र स्थापना इस युग में नहीं हो पाई थी। किंतु भारतेंदु के चरित्र प्रधान निबंधों में रेखा चित्र द ष्टिगोचर होते हैं।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र- स्वतंत्र रेखाचित्र नहीं लिखे।

प्रताप नारायण मिश्र - आत्माभिव्यंजनात्मक लेखों में रेखाचित्र के तत्व विद्यमान हैं।

पं. बालकृष्ण भट्ट -

बाल मुकुंद गुप्त - दोनों की रचनाओं में रेखाचित्र के तत्व उपलब्ध होते हैं।

द्विवेदी युग - द्विवेदी युग में भी रेखा चित्र का स्वतन्त्र विधा के रूप में विकास नहीं हुआ था। मात्र कुछ लेखकों के चरित्र लेखन में रेखाचित्र का आभास मिलता है।

पद्‌म सिंह शर्मा 'कमलेश' - पद्‌म सिंह शर्मा 'कमलेश' ने इस युग में चरित्रांकन कला में दक्षता प्रदर्शित की। इनके रेखा चित्रों का संकलन 'पद्‌म पराग' है। कमलेश में कला का वह रूप नहीं पाया जाता है जो आज के रेखाचित्रों में उपलब्ध है फिर भी कमलेश के अनुगामी आधुनिक रेखाचित्रकार हैं।

भाषा सर्वसाधारण की है जिसमें अरबी, फारसी, तत्सम तथा तद्‌भव शब्दों का मिश्रण पाठक को भावविभोर कर देता है। भाषा आडंबर विहीन आलंकारिक है। डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त का कथन द्रष्टव्य है - "आपके रेखा चित्रों की शैली में भी कुछ अपनी विशेषताएं द ष्टिगोचर होती हैं। उनमें एक ओर उर्दू का चुलबुलापन भाषा और प्रवाह मिलता है तो दूसरी ओर हिंदी के अनुरूप विषय की गंभीरता विचारों की मौलिकता और प्रतिपादन शैली की प्रौढ़ता द ष्टिगोचर होती है।"

श्रीराम शर्मा - सन् 1936 ई. तक हिंदी रेखाचित्रों का प्रकाशन पत्र-पत्रिकाओं में ही होता था। क्योंकि रेखाचित्र की स्वतन्त्र विधा का विकास द्विवेदी युग एवं छायावाद युग के संधि काल में हुआ। श्रीराम शर्मा का सर्वप्रथम रेखा चित्र संग्रह बोलती प्रतिमा सन् 1927 ई. में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह पर रूसी लेखक तुर्गनेव के संग्रह जीवित समाधि का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। बोलती प्रतिमा हिंदी का बहुचर्चित रेखाचित्र संकलन है। इन रेखाचित्रों में शर्मा ने ग्रामीण अंचल की समस्याओं, परिवेशों एवं श्रेष्ठताओं का सजीव चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त श्रीराम शर्मा ने 'जंगल के जीव', प्राणों का सौदा तथा वो जीते कैसे आदि संकलन प्रकाशित किए।

बनारसी दास चतुर्वेदी - हिंदी रेखा चित्र विधा को सम द्ध बनाने में बनारसी दास का विशेष योगदान रहा है। सन् 1919 ई. में बनारसी दास का प्रथम रेखा चित्र औरंगजेब, मर्यादा में प्रकाशित हुआ। उनके प्रारंभिक रेखाचित्र हमारे साथी तथा प्रकृति

के प्रांगण में नामक पुस्तकों में संग हीत हैं। अपने जीवन में अनेक अनूठे रेखाचित्र हिंदी साहित्य को प्रदान किए। अधिकांश पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। इनके प्रसिद्ध संग्रह - प्रिंस क्रोपाटकिज, रेखाचित्र, सेतुबंध तथा रंगों की बोलती रेखाएं आदि हैं। चतुर्वेदी के अनेक रेखाचित्र पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं। जिन्हें संकलित करने की आवश्यकता है। रेखाचित्र इनका सर्वश्रेष्ठ रेखाचित्र संग्रह है। चतुर्वेदी की कला का पूर्ण परिचय उनके रेखाचित्रों से मिलता है जिनमें उन्होंने सामान्य व्यक्तियों को आधार स्वरूप ग्रहण करके जीवन व्यापिनी करुणा को मूर्तिमान किया है।

इनमें एक सिपाही, संपादक की समाधि तथा अंधी चमारिन आदि आत्म चरित्रात्मक घटना प्रधान चित्र कहे जा सकते हैं। मूलतः इनके रेखाचित्र व्यक्ति प्रधान हैं। सरलता, रोचकता, तथा मनोरंजकता इनकी भाषा शैली की विशेषता है। उनके रेखाचित्र राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत हैं।

रामव क्ष बेनीपुरी - हिंदी रेखाचित्र के साहित्य भंडार को सम द्ध करने वाले रामव क्ष बेनीपुरी का अपूर्व योगदान है। बेनीपुरी का प्रतीकात्मक एवं रूपात्मक रेखाचित्र लिखने में विशेष महत्व है। इनकी भाषा में सारल्य, सरसता, अभिव्यक्ति कौशल, सहजता आदि गुण विद्यमान हैं जिसने इनके रेखाचित्रों को महत्वपूर्ण बना दिया। इनके रेखाचित्रों के संग्रह में लालतारा, माटी की मूरतें, गेहूँ और गुलाब, तथा मील का पत्थर आदि उल्लेखनीय हैं। गेहूँ और गुलाब की भूमिका में उन्होंने लिखा है - "ये शब्द चित्र पहले शब्द चित्रों से भिन्न हैं - छोटे, चलते, जीवंत। मैंने कहा - हैंड कैमरा के स्नैप-शॉट, आलोचना ने उस दिन डांटा - हांथी दांत पर की तस्वीरें।" बेनी पुरी ने कला पर उतना ध्यान नहीं दिया है जितना ध्यान विषय विविधता पर केंन्द्रित किया है। जिसके परिणामस्वरूप उनके रेखाचित्र मुखर होकर भी प्रभावोत्पादक नहीं हैं। समाज की कुरूपता को छांट-छांट कर अपने रेखाचित्रों का विषय बनाया है। "तत्कालीन मानव समाज की सम्पूर्ण स्थितियां एवं विवशताएं उनके रेखाचित्रों में मूर्ति हो उठी हैं।" शोषण, वर्ग संघर्ष, सामाजिक अन्याय, असमानता, कृषकों की दयनीय अवस्था, जमींदारी प्रथा के दुष्परिणाम, भ्रष्टाचार, नवीन संस्कृति की आकांक्षा, क्रांतिकारी भावनाएं, ईश्वर धर्म पर व्यंग्य, छुआछूत, जाति पाँति के उत्पन्न विषमताएँ आदि उनके रेखाचित्रों के विषय हैं।

डॉ. प्रभाकर माचवे ने बेनी पुरी के विषय में विचार करते हुए लिखा है -

"बेनीपुरी जी की भाषा शैली में भावोद्रेक के साथ ही शब्दों और व्यंग्य खंडों का संयत गठत हुआ प्रयोग एक अनूठी व्यंजना का निर्माण करता है। वे कहीं कहीं अति भावुकता से शब्दों और विराम चिन्हों का अतिरंजित प्रयोग करते हैं।"

छायावाद युग

श्रीराम शर्मा - श्रीराम शर्मा के रेखाचित्रों का प्रकाशन छायावाद युग में हुआ। चित्रकार साहित्य के रचयिता के रूप में इनको ख्याति मिली किंतु व्यक्तियों के चित्रांतन की विशिष्टता के फलस्वरूप वे सफल रेखाचित्रकार के रूप में हिंदी जगत में प्रसिद्धि मिली। इनके रेखाचित्रों में मानव के साथ-साथ जंगली प्राणियों के जीवन का भी चित्रण किया गया है। इनके रेखा चित्र दीप स्तंभ के समान रेखा चित्रकारों का मार्ग-दर्शन करने में सक्षम एवं समर्थ हैं।

पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी निराला - महाकवि निराला के रेखाचित्र उच्चकोटि के हैं। उनके रेखाचित्रों में कला एवं भावना की प्रधानता है। उनके रेखाचित्रों में चतुरी चमारी, कुल्ली भाट तथा बिल्लेसुर बकरिहा आदि रेखाचित्र आदि प्रसिद्ध हैं।

महादेवी वर्मा - हिंदी रेखाचित्र लेखकों में महादेवी वर्मा सर्वश्रेष्ठ रेखाचित्र लेखिका हैं। उनके रेखाचित्रों को देखकर ऐसी प्रतीत होता है मानों साक्षात छाया चित्र का अवलोकन कर रहे हों। क्योंकि उनमें फोटो ग्राफी का सौंदर्य समाविष्ट है। महादेवी वर्मा के अतीत के चल चित्र, स्म ति की रेखाएं, पथ के साथी तथा मेरा परिवार आदि महत्वपूर्ण रेखाचित्र संग्रह हैं। स्म ति की रेखाएं पथ के साथी तथा मेरा परिवार में विशेष रूप से उन्होंने अपने जीवन की उन अनेक कटु-मधुर, करुणा-विगलित स्म तियों को संजो-संवार कर रखा है जिन्होंने उनके जीवन में एक स्थायी स्थान बना लिया है। महादेवी ने स्वयं स्वीकारा है कि इनमें उनका जीवन चित्रित है। अतीत के चलचित्र में निम्न वर्गीय पात्रों की वेदनाओं, अभावों, समस्याओं, संघर्षों, संकटों, शोषण की विविध स्थितियों तथा विशेषताओं का चित्रण किया है। अतीत के चलचित्र के संबंध में डॉ. राजमणि शर्मा का कथन अवलोकनीय है -

"अतीत के चलचित्र' हिंदी की वह धाती है जो सन् 1930-1940 ई. के निम्न मध्यवर्गीय समाज की सच्ची झांकी सदैव संजोए रहेगी। इसमें मानव की आशा, आकांक्षा, निराशा है, कल्पना का ऐसा सजीव जगत है जो अपने वैविध्य में जगमगाकर हमारे समक्ष अपनी निधि खोल देता है।"

डॉ. ब्रजमोहन गुप्त ने उनके विषय में लिखा है -

"लेखिका का निरीक्षण इतना सूक्ष्म है और संवेदना का रंग इतना गहरा और उज्जवल है कि स्म ति में जो रेखाएं मात्र थीं - कागज पर उतरकर उनसे करुणा और हास्य व्यंग्य के छाया-प्रकाश में हंसते खेलते उच्चतम मानवीय तत्वों से अनुप्राणित स्पंदन शील चित्र बन गए हैं।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि महादेवी के रेखाचित्र संस्मरण प्रधान हैं। वास्तविकता यह है कि यह निर्णय करना कठिन है कि वे संस्मरण हैं या रेखाचित्र। क्योंकि उनका नामकरण भी ऐसा है अतीत के चलचित्र तथा स्म ति की रेखाएं। अतीत एवं स्म ति एक भाव के बोधक हैं तो चलचित्र संस्मरण तथा रेखाएं रेखाचित्र द्योतन करती हैं। वास्तव में दोनों का सुंदर समन्वय है।

छायावादोत्तर युग

यह युग रेखाचित्र का उत्कर्ष युग है। इस युग में सर्वाधिक रेखाचित्रकार हुए एवं रेखाचित्र लिखे गए। विषय की व्यापकता तथा रेखाचित्र की उत्कर्षता इसी युग में आई। लेखकों ने रेखाचित्र के सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किए हैं।

प्रकाशचन्द्र गुप्त - आधुनिक रेखाचित्र लेखकों में प्रकाशचन्द्र गुप्त का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने अनेक रेखाचित्र लिखे हैं। इनके रेखाचित्र संग्रह में पुरानी स्म तियां और नए स्केच तथा रेखाचित्र प्रमुख हैं। इनके रेखाचित्रों में मानवता की प्रेरणा को प्रमुखता दी गई है। वास्तव में गुप्त का यह प्रयत्न हिंदी रेखाचित्र साहित्य में सर्वप्रथम, मौलिक एवं सर्वथा नवीन है।

देवेन्द्र सत्यार्थी - भावात्मक रेखा चित्रकारों में देवेन्द्र सत्यार्थी का नाम महत्वपूर्ण है। उन्होंने अति सजीव तथा भाव प्रवण रेखाचित्रों की रचना की है। रेखाएं बोल उठीं। तथा अन्य संग्रहों में संग हीत रेखा चित्रों में उनका ध्यान विशेष रूप से भावों तथा तथ्यों पर केन्द्रित होता गया है। उनके रेखाएं बोल उठीं संग्रह में संग हीत दादा-दादी के चित्र, चिर नूतन चित्र तथा अच्छे भले आदमी की बात आदि रेखाचित्रों में जहां तथ्य निरूपण का प्राचुर्य है वहीं रेखाएं बोल उठी, सौंदर्य बोध तथा आज मेरा जन्म दिन है में भावात्मकता की अधिकता विद्यमान है। रेखाचित्र प्रायः भावात्मक शैली में लिखे जाने के परिणामस्वरूप गद्य काव्य जैसा सौंदर्य प्रस्तुत करते हैं। तथ्य निरूपक रेखाचित्रों में मार्मिकता का अभाव है।

कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर - वर्तमान हिंदी रेखा चित्रकारों में कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर उत्कृष्ट रेखाचित्रकार हैं। इनके रेखाचित्र संग्रहों में नई पीढ़ी के विचार, भूले हुए चेहरे, जिंदगी मुस्कुराई, माटी हो गई सोना, दीप जले शंख बजे, मंहके आंगन चहके द्वार तथा क्षण बोले कण मुस्काए आदि प्रमुख हैं। सभी संग्रहों में विशेषकर जिंदगी मुस्कुराई में प्रभाकर ने जिस प्रकार अपने पात्रों के अंतस्तल का सूक्ष्म चित्रांकन कर उनके जीवन के प्रति सहृदय की भावना को अत्यधिक गहनता प्रदान कर दी है, वह सराहनीय है। इनका एक रेखाचित्र मंजर अली सोख्ता पर लिखा गया है जिसकी प्रशंसा बनारसीदास चतुर्वेदी ने खुले दिल से की है।

राहुल सांकृत्यायन - समस्याजनक रेखाचित्र लिखने वालों में राहुल का नाम अग्रणी है। राहुल किसी भी समस्या को लेकर उसका शब्द चित्र प्रस्तुत करने में सिद्धस्त हैं। उनका रेखाचित्र रूपी विशेष उल्लेखनीय है जिसमें वेश्याव ति की समस्या को उभारा गया है। उन्होंने अनेक रेखाचित्र लिखे हैं जो पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे।

हर्षदेव मालवीय - हिंदी में व्यंग्यात्मक रेखाचित्र लेखकों में हर्षदेव मालवीय को प्रसिद्धि मिली है। इनके पुराने तथा पोंगल गुरू रेखा-चित्रों को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है।

विनय मोहन शर्मा - इनके रेखाचित्रों का संग्रह 'रेखा और रंग है' है जिसमें चौदह रेखाचित्र संग हीत हैं। इसमें पूसी बिल्ली से लेकर व क्ष, चिड़िया, थर्ड क्लास तक के विषय हैं। व्यक्तियों में डबली बाबू, घर के नौकर, वकील साहब, जग्गू काका, कन्हैया, बदलू धोबी, बंसी, इला, मास्टर साहब तक उनका प्रसार है। विनय मोहन शर्मा पात्रों के बहिरंग पर ऐसी द ष्टि डालते हैं कि वे मूर्तिमान होकर पाठकों के समक्ष सजीव एवं साकार हो जाते हैं।

विष्णु प्रभाकर - आधुनिक रेखा चित्रकारों में विष्णु प्रभाकर की रचना प्रक्रिया द्वंद्वमयी होने के कारण व्यक्ति और वस्तु के बहिरंग तक ही सीमित नहीं रहती वरन भीतर और बाहर के द्वंद्व को उजागर करने का प्रयास करती है। वास्तव में प्रभाकर वातावरण और वस्तुओं के माध्यम से व्यक्तित्व की विशेषताओं को उद्घाटित करने में पारंगत हैं।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'- अज्ञेय ने अनेक रेखाचित्रों की स जना की है। उनका रेखाचित्र संग्रह एक बूंद सहसा उछली है जिसमें अनेक सुंदर रेखाचित्रों को संग हीत किया गया है। अज्ञेय की द ष्टि इतनी पैनी और तीखी है कि वह द श्य तथा अंतस्तल पर एक ही साथ जा पड़ती है। वे देश तथा द श्य को एक नहीं मानते हैं उनकी विभिन्न अवस्थाएं मानकर अग्रसर होते रहते हैं। वे तो किसी भी स्थिति को प्रवाहमान धारा के रूप में देखने के अभ्यस्त हैं अतः द श्य या व्यक्ति के माध्यम से वे हमें कुछ दे जाते हैं जो अन्यों के लिए अजूबा बना रहता है।

अन्य रेखाचित्रकार - कुछ अन्य रेखा चित्रकारों ने भी इस विधा के विकास में पर्याप्त योगदान किया है जिनमें उदयशंकर भट्ट, उपेंद्र नाथ अश्क, सुरेंद्र नाथ दीक्षित, महावीर अधिकारी, फणीश्वर नाथ रेणु, व ंदा लाल शर्मा, प्रो. कपिल, पदुम लाल पुन्ना लाल बख्शी, हरिशंकर शर्मा, गुलाब राय, डॉ. नगेंद्र, अम त लाल नागर, ओंकरा शरद, डॉ. राम विलास शर्मा, डॉ. राम शंकर त्रिपाठी तथा डॉ. प्रेम नारायण टंडन आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक काल में रेखाचित्र विधा का विकास ज्योति तुल्य है। विभिन्न परिवेशों को विषय रूप में ग्रहणकर रेखचित्र लिखे जा रहे हैं। इनके विकास में पत्र-पत्रिकाओं का भी विशेष योगदान है। अभिनंनदन ग्रंथों के रूप में भी रेखाचित्र विधा का व्यापक उत्कर्ष-उन्नयन, प्रचार-प्रसार हो रहा है।

30. जीवनी

भारतीय साहित्य में पाश्चात्य साहित्य जैसी जीवनी लिखने की परंपरा नहीं रही है। जीवनी के विषय में विचार विश्लेषण करते हुए अम त राय ने लिखा कि यह अकाट्य सत्य है कि हमारे यहाँ जीवनियों का एक सिरे से अकाल है, जबकि यूरोप की जबानों में यह चीज़ आसमान पर पहुँची हुई है, कोई बड़ा साहित्यकार नहीं है, कलाकार नहीं है, वैज्ञानिक नहीं है, जननायक नहीं हैं, जिसकी कई-कई जीवनियां, एक से एक अच्छी न हों।

भारतीय आत्म प्रकाशन के स्थान पर आत्म गोपन को महत्व देता है जबकि जीवनी साहित्य गोपन के स्थान पर प्रकाशन में विश्वास करता है। कृष्णानंद गुप्त ने इस विषय में लिखा है-

"हमारे देश के प्राचीन साहित्यकारों ने अपने विषय में कभी कुछ कहने की आवश्यकता नहीं समझी। यहाँ तक कि दूसरों के संबंध में भी वे सदा चुप रहे हैं। इसी से हमारे यहां आधुनिक युग में जिसे इतिहास कहते हैं वह नही है, जीवन चरित भी नहीं है और आत्म कथा नाम की चीज तो बिलकुल नहीं नहीं है।"

भारतीय जीवन द ष्टि व्यष्टिमूलक न होकर समष्टिमूलक है। व्यक्तिवादी अपने को अन्यों के समक्ष रखने तथा अन्य के व्यक्तित्व का उद्‌घाटन करने में विश्वास रखता है। जीवन में व्यष्टिवादी महत्व को प्रतिपादित करते हुए विश्वनाथ सिंह ने लिखा है-

"जीवनी और आत्म कथा के लिए लौकिक द ष्टिकोण के अतिरिक्त व्यष्टिमूलकता भी होनी चाहिए, जिसका अभाव लौकिक संस्कृत में भी रहा है। भारतीय मनीषियों की चेतना इस काल में भी समष्टिमूलक रही है। वे समष्टि में ही अपना व्यष्टि विलीन कर देने के पक्षपाती थे।"

जिसके परिणामस्वरूप संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश में जीवनी साहित्य का अभाव रहा है।

हिंदी साहित्य के आरंभिक काल में जीवनी का प्रारंभिकरूप चरित काव्यों तक सीमित रहा है।

मध्यकाल में संतों, भक्तों एवं महात्माओं के जीवन चरित लिखने की परंपरा प्रोत्साहित हुई। भक्ति कालीन कवियों की श्रद्धा भावना ने उनकी जीवनी लिखने की प्रेरणा दी। संतों के जीवन चरित को परचई, परिचय कहा गया। ऐसी परचईयों में कबीर जी की परचई, नामदेव जी की परचई, रैदास जी की परचई तथा मलूकदास जी की परचई आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके पश्चात् भक्तों के जीवन चरित्र संबंधी ग्रन्थों में नाभादास - भक्त माल, गोकुल नाथ चौरासी वैष्णवन की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता तथा अष्ट सरवान की वार्ता आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। अष्ट सरवान की अभिप्राय अष्ट छाप के कवियों से है। इन ग्रंथों का स जन वैष्णव धर्म की व द्धि एवं पुष्टि हेतु किया गया है इसलिए इनमें तथ्यों का अभाव होने के कारण इन्हें जीवनी ग्रंथ की संज्ञा नहीं दी जा सकती है।

वार्ता ग्रंथों के अतिरिक्त इस काल में आचार्य केशव दास - वीर सिंह चरित - सन् 1906 ई., जहांगीर-जस-चंद्रिका सन् 1621 ई.; सूदन - सुजान चरित तथा चंद्रशेखर - हम्मीर हठ - सन् 1845 ई. आदि चरित काव्य की परंपरा में आते हैं।

जीवनी विकास

आधुनिक काल में जीवनी साहित्य का प्रारंभ हुआ।

भारतेंदु युग - गद्य की अन्य विधाओं की भाँति जीवनी साहित्य का श्रीगणेश भी भारतेंदु युग में हुआ। इस युग में आते ही जीवनी ने प्राचीन रूप का परित्याग करके नवीन रूप धारण किया तथा जीवनी गद्य साहित्य को विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया। राष्ट्रीय प ष्ठभूमि में जीवनी लेखन का अवसर प्रदान किया। अनेक जीवनियाँ प्रकाश में आई। जिनमें संत, महात्मा, राजा, विदेशी शासक, नेता, देशभक्त, क्रांतिकारी युवा तथा साहित्यकार का जीवन चरित प्रमुख रूप से उकेरा गया।

प्रथम जीवनी साहित्य - सर्वप्रथम जीवनी साहित्य भारतेंदु कृत 'चरितावली' है। उसके पश्चात् भारद्वाज कृर्त हिंदी जीवनी साहित्य : सिद्धांत और अध्ययन है। तथा प्रथम जीवन लेखक डॉ. भगवान शरण भारद्वाज हैं। इस ग्रंथ में भारतेंदु से स्वतन्त्रता

प्रापित से पूर्व तक लिखित सैकड़ों जीवनियों की सूची प्रस्तुत की गई है। साहित्यिक जीवनी कार्तिक प्रसाद खत्री द्वारा लिखित मीराबाई का जीवन चरित्र सन् 1893 ई. है।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र - भारतेंदु हरिश्चन्द्र साहित्य की अन्य विधाओं के साथ जीवनी लेखन में अग्रगण्य रहे हैं उनके द्वारा लिखी जीवनी 'चरितावली' है। जिसमें विभिन्न क्षेत्रों के महत्वपूर्ण व्यक्तियों के संक्षिप्त जीवन चरित लिखे हैं। उसके पश्चात् पंच पवित्रात्मा - सन् 1884 ई. उल्लेखनीय हैं। इसमें मुस्लिम धर्माचार्यो - महात्मा मुहम्मद, मुहम्मद अली, बीवी फातिमा तथा इमाम हसन - इमाम हुसैन की संक्षिप्त जीवनियां लिखी हैं।

छायावाद युग

छायावाद युग में जीवनी साहित्य का विकास होने लगा। धार्मिक, सामजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र के कर्मठ कार्यकर्ताओं की जीवनियाँ लिखी जाने लगीं जो प्रेरणा तथा उत्साहवर्धक प्रमाणित हुई। ऐसी जीवनियों में प्रमुख जीवनियाँ निम्नलिखित हैं -

स्वामी सत्यानंद - श्रीमद् दयानंद प्रकाश - सन् 1918 ई.

शिवनारायण टंडन - पंडित जवाहर लाल नेहरू सन् 1937 ई.

जगतपति चतुर्वेदी - लाला लाजपत राय - सन् 1933 ई.

श्री ब्रजेंद्र शंकर - श्री सुभाषा बोस - सन् 1938 ई.

मंमथ नाथ गुप्त - चन्द्र शेखर आजाद - सन् 1938 ई.

रामनाथ लाल 'सुमन' - मोती लाल नेहरू - सन् 1939 ई.

घनश्याम दास बिड़ला - बापू - सन् 1940 ई.

कार्तिक प्रसाद खत्री - जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि साहित्यिक जीवनी लेखकों में कार्तिक प्रसाद खत्री प्रथम जीवनी लेखक तथा इनके द्वारा लिखित मीराबाई का जीवन चरित्र - सन् 1893 ई प्रथम जीवनी है। ये सफल जीवनी लेखक थे। जीवनी लेखन में इनका पदार्पण जीवनी साहित्य के लिए महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

शिवनंदन सहाय - शिव नंदन सहाय ने 'भारतेंदु हरिश्चन्द्र' लिखा। इस जीवनी में भारतेंदु के जीवन की पूर्णता द ष्टिगोचर होती है। इसकी भाषा की सरसता एवं रोचकता ने इसे सफल जीवनी साहित्य का रूप प्रदान किया। शिवनंदन सहाय द्वारा लिखित दूसरी जीवनी गोस्वामी तुलसीदास सन् 1916 ई. है। यह जीवनी दो खंडों में विभक्त है।

बनारसी दास चुतर्वेदी - बनारसी दास चतुर्वेदी ने कविरत्न सत्यनारायण की जीवनी सन् 1926 ई. लिखी है। यह जीवनी उल्लेखनीय है। इसका महत्व इसलिए और अधिक है क्योंकि इसमें एक साधारण व्यक्ति का जीवन चरित मानवीय रूप में प्रस्तुत किया गया है।

छायावादोत्तर युग

श्रीमती शिव रानी देवी - प्रेम चंद का स्वर्गवास छायावाद युग में ही हो गया था। शिवरानी देवी छायावादोत्तर युग की लेखिका हैं। इन्होंने प्रेमचन्द घर में सन् 1944 ई. में प्रकाशित कराया जिसमें प्रेमचंद का जीवन चरित वर्णित है। यह महत्वपूर्ण जीवनी है। इसकी शैली संस्मरणात्मक, भाषा सरल, सहज एवं मनोरम है।

स्वातंत्र्योत्तर युग

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हिंदी जीवनी लेखन अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया। इसलिए इसे हिंदी जीवनी लेखन का चरमोत्कर्ष काल कहा जाता है। इस समय विश्वव्यापी वैज्ञानिक प्रगति हुई। मानव भौतिकवादी द ष्टिकोण के कारण नैतिक मूल्यों का हास होने लगा। राष्ट्र के प्रति मानव का मोहभंग यातनापूर्ण प्रतिक्रियाओं को जन्म देने लगा। मानव जीवन का कठोर यथार्थता से परिचय होने लगा जिसके परिणामस्वरूप युग के परिवेश में मानव-जीवन पढ़ा जाने लगा तथा वस्तुपरक कलात्मक अभिव्यक्ति का जन्म हुआ। फलस्वरूप जीवनी लेखन कला का महत्व बढ़ने लगा तथा कला की द ष्टि से इस युग की जीवनियां अद्वितीय रूप ग्रहण कर गई।

इस युग में धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक नेताओं, राष्ट्रीय क्रांतिकारियों तथा सुप्रसिद्ध साहित्यकारों की अनेक जीवनियां लिखी गई हैं।

आध्यात्मिक जीवनियां

पंडित ललिता प्रसाद - इन्होंने धार्मिक सामाजिक संत-महात्माओं की जीवनियां लिखी हैं जिनमें सन् 1947 ई. में श्री हरिबाबा की जीवनी प्रमुख है।

रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर - रंगनाथ राम चंद्र ने श्री अरविंद की जीवनी महायोगी लिखी।

राजनीतिक जीवनियां

महा पंडित राहुल सांकृत्यायन - राजनीतिक महापुरुषों की जीवनी को आधार बनाकर जीवनियाँ लिखने वालों में सांकृत्यायन का नाम सर्वोपरि है। इन्होंने साम्यवादी विचारकों को अपनी जीवनी लेखन के विषय के रूप में चयन किया। सन् 1953 ई. में स्तालिन, सन् 1954 ई. में कार्ल मार्क्स एवं लेनिन तथा सन् 1956 ई. में माओत्से तुंग की जीवनियां लिखीं। सांकृत्यायन द्वारा लिखित इन जीवनियों में राजनेताओं के बाह्ययांतरिक जीवन का सूक्ष्म स्थूल, विवेचन - विश्लेषण प्रस्तुत नहीं किया गया है। अपितु उनके मार्क्सवादी जीवन-दर्शन का ही प्रतिपादन किया गया है। राहुल की निष्ठा मार्क्सवाद में थी इसलिए उन्होंने स्वनिष्ठानुसार लोगों में साम्यवादी निष्ठा जाग त करने के लिए ये जीवनियाँ लिखी हैं।

रामव क्ष बेनीपुरी - रामव क्ष बेनीपुरी ने राजनीतिक नेताओं को जीवनियों का आधार बनाया है। इन्होंने कार्ल मार्क्स तथा जयप्रकाश नारायण नामक जीवनियां लिखीं जिनका विशेष महत्व है। इन जीवनियों में बेनी पुरी ने अपना हृदय रस उड़ेल दिया है। जिससे उनके चरित नायकों का जीवन उभर कर सामने आया है।

साठोत्तरी युग -

सन् 1960 ई. के बाद के काल में साठोत्तरी युग कहा गया है। स्वतन्त्रता के लगभग 12-13 वर्षों के पश्चात् जीवनी लेखन में नया मोड़ आया। जीवन धारा में परिवर्तन आया। देश विकास की ओर अग्रसर हुआ। नैतिक मूल्यों में बदलाव आया। आध्यात्मिकता का स्थान भौतिकता ने ले लिया।

ओंकार शरद - ओंकार शरद ने प्रसिद्ध समाजसेवी नेता डॉ. राम मनोहर लोहिया को जीवनी लेखन का विषय चुना। सन् 1971 ई. में लोहिया एवं स्वर्गीय प्रधानमन्त्री श्रीमती इंदिरा गांधी की जीवनी' धरती की बेटी आकाश हो गई लिखी।

डॉ. चन्द्र शेखर - डॉ. चन्द्र शेखर ने सन् 1985 ई. में स्व. राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह की जीवन यात्रा लिखी।

राजनीतिक व्यक्तियों पर लिखित जीवनियों के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वतन्त्रता से पूर्व राजनीतिक व्यक्तियों की जीवनियों के लेखन में उनके लेखक अपने चरित नायकों के राजनीतिक क्रिया कलापों के उल्लेख को अपनी उपलब्धि स्वीकारते थे इसलिए उनके मानवीय पक्षों की उपेक्षा की है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जीवनी लेखकों की विचारधारा में महान परिवर्तन आया है उन्होंने अपने चरित नायकों के अंतर्बाह्य गुणों को भी उभारा है जो उनका प्रशंसनीय कार्य है।

क्रांतिकारी जीवनियां

राजनीतिक नेताओं के अतिरिक्त जीवनी-लेखकों का ध्यान क्रांतिकारियों की ओर भी गया है। सुप्रसिद्ध क्रांतिकारियों की जीवनियां लिखी गई जिनमें -

विश्वनाथ वैषंपायन - अमर शहीद चंद्रशेखर - सन् 1965 ई.।

प्रो. वीरेंद्र सिंधु- युग द्रष्टा भगत सिंह और उनके म त्युंजय पुरखे - सन 1968 ई.

धर्मवीर - लाला हर दयाल - सन् 1970 ई.

मंमथनाथ गुप्त - क्रांतिदूत भगत सिंह और उनका युग - स. 1962।

साहित्यिक जीवनियाँ - जीवनियाँ तो सभी साहित्यिक गुणों से संप क्त होकर साहित्यिक होती हैं किंतु इनमें साहित्यकारों

के जीवन एवं उनकी कृतियों को जीवनी का विषय बनाया गया है जिनमें प्रमुख जीवनियां निम्नलिखित हैं-

ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ - बरुआ सुप्रसिद्ध पत्रकार हैं। इन्होंने जीवनी लिखी है -

माखन लाल चतुर्वेदी - सन् 1960 ई.

अम त राय - प्रेमचंद कलम के सिपाही - सन् 1962 ई.।

डॉ. रामविलास शर्मा - निराला की साहित्य साधना - (प्रथम खंड जीवन चरित) - सन् 1969 ई.

विष्णु प्रभाकर - शरत् चन्द्र की जीवनी - आवारा मसीहा सन् 1968 ई.।

हिंदी जीवनी के विकास क्रम विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी जीवनी लेखक का प्रारंभिक हिंदी साहित्य के प्रारंभिक काल से ही हो गया था किंतु रीति काल तक उनमें साहित्यिक रूप नहीं आ पाया था। माध्यम गद्य न होकर पद्य था। इसलिए उनको जीवनी की संज्ञा नहीं दे सकते। भारतेंदु युग से जीवनी का वास्तविक प्रारंभ माना जाना चाहिए। आधुनिक काल जीवनी लेखन का उत्कर्ष युग माना जाता है। इस काल में नेता, शासक, देशभक्त, क्रांतिकारी, तथा साहित्यकारों की जीवनियां लिखी गई। जीवनी लेखन के तत्वों तथा मानदण्डों के अनुसार अनेक श्रेष्ठ जीवनियां सामने आई।

वर्तमान समय में हिंदी का जीवनी - साहित्य जीवनी लेखन की कला तथा मानदंड के अनुसार अत्यधिक सम द्ध हो गया है जिसमें गुणात्मकता एवं परिमाण दोनों द ष्टियों से प्रगति द ष्टिगोचर हो रही है। जीवनी लेखन का भविष्य उज्जवल है आज यह युग की मांग है।

31. आत्मकथा

आत्म कथा का सामान्य अर्थ अपनी कहानी लेखक की जुबानी होता है। अथवा अपने संबंध में स्वयं कही या लिखी बातें। साहित्य में ऐसी पुस्तक जिसमें किसी व्यक्ति ने अपने जीवन की सभी मुख्य मुख्य बातों का वर्णन किया हो। इसे आत्म चरित भी कहते हैं। इसका अंग्रेजी पर्याय आटोबायोग्राफी है। कोई भी व्यक्ति आत्म कथा अपने जीवन के उत्तरार्द्ध के अंतिम भाग में लिखता है। उस समय जीवन की संपूर्ण घटनाएं यथातथ्य उसके समक्ष नहीं होती हैं। उनको संस्मरणों के सहारे स्म ति पटल पर अंकित करके आत्मकथा का स जन करता है। इसलिए आत्म कथा को हिंदी गद्य साहित्य की एक संस्मरणात्मक विधा कहा गया है। संस्मरणात्मक होने पर भी यह संस्मरण नहीं है उससे भिन्न विधा है। हिंदी साहित्य की आधुनिक नवीन विधाओं में आत्म कथा गद्य की प्रमुख विधा है। हिंदी में आत्मकथा लेखन की परंपरा अन्य भाषाओं की अपेक्षा अत्यल्प है। तात्विक विवेचन एवं यथार्थ की प्रधानता के अनुसार अन्य विधाओं से अधिक पुष्ट एवं प्रामाणिक विधा है। स्वयं अपने अतीत जीवन का व्यवस्थित क्रमिक वर्णन आत्मकथा को जन्म देता है।

आत्म कथा का शाब्दिक अर्थ अपनी कहानी होता है। आत्म कथा ऐसी जीवन कथा है जो उसी व्यक्ति द्वारा लिखी जाती है जिसके जीवन व त का वर्णन अभीष्ट होता है। इसे आत्मचरित या आत्मचरित्र भी कहा जा सकता है।

इसमें लेखक अपने गुण दोषों तथा सुर्घटनाओं-दुघटनाओं का वर्णन निष्पक्ष भाव से करता है। वैयक्तिक जीवन की घटनाओं का सुखदुखात्मक कैसी भी हों यथार्थ रूप में वर्णन करता है।

प्रथम आत्मकथा

हिंदी आत्म कथा का साहित्य लगभग 400 वर्ष पुराना है। प्राचीनतम आत्म कथा बनारसी दास जैन द्वारा लिखी गई। सन् 1641 ई. की रचना अर्द्धकथा है। इसके विषय में संपादक का कथन द्रष्टव्य है।

"कदाचित समस्त आधुनिक आर्य-भाषा साहित्य में इससे पूर्व कोई आत्म कथा नहीं है।" डॉ. राम चन्द्र तिवारी ने भी आत्म कथा लेखन का प्रारंभ यहीं से माना है। उनका कथन उल्लेखनीय है-

'आत्मकथा लिखने वालों में जिस निरपेक्ष एवं तटस्थ द ष्टि की आवश्यकता होती है। वह निश्चय ही बनारसी दास में थी। उसने अपने सारे गुण दोषों को सच्चाई के साथ व्यक्त किया है। यह आत्म कथा पद्य में लिखी गई है। इसके अतिरिक्त पूरे मध्यकाल में किसी अन्य आत्मकथा का उल्लेख नहीं मिलता।"

इस आत्मकथा में अकबर के समय के परिवेशों का यथार्थ चित्रांकन हुआ है। पद्य बद्ध होने कारण इसे प्रथम आत्म कथा श्रेय न हीं दिया जा सकता है। उसके बाद कुछ दिनों तक आत्म कथा नहीं लिखी गई है।

गद्य की अन्य विधाओं की भांति आत्म कथा भारतेंदु युग में ही मानना श्रेयस्कर है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र प्रथम आत्म कथा लेखक तथा कुछ आप बीती कुछ जग बीती प्रथम आत्म कथा है।

भारतेंदु युग

भारतेन्दु हरिशचंद्र बहुमुखी प्रमिभा के साहित्यकार थे। अधिकांश विद्वानों ने प्रथम कथा लेखन का श्रेय भारतेंदु हरिशचन्द्र को दिया गया है।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र - भारतेंदु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित आत्म कथा कुछ आप बीती कुछ जग बीती में उनकी युवावस्था की रोचक काव्यात्मक घटनाएं प्रस्तुत की गई हैं किन्तु यह आत्म कथा पूर्ण नहीं अपूर्ण है।

पं. अंबिका दत्त व्यास - व्यास हरिश्चन्द्र के समकालीन आत्मकथा लेखक थे। इन्होंने निज व त्तांत नामक आत्म कथा लिखी है।

इसके पश्चात् आत्मकथा लेखक निम्नलिखित हैं-

सत्यानंद अग्निहोत्री - मुझमें देव जीवन का विकास।

स्वामी श्रद्धा नंद - कल्याण पथ का पथिक - आदि इस युग की आत्म कथाओं की भाषा शिथि ल है किंतु तथ्य परक स्पष्टता अति उत्कृष्ट है।

द्विवेदी युग - द्विवेदी युग के प्रथम एवं प्रमुख साहित्यकार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हैं। इन्होंने 'सरस्वती' में अपनी ''अधूरी कहानी' प्रकाशित करवाई।

महावीर प्रसाद द्विवेदी - अधूरी कहानी

पं. देवी दत्त शुक्ल

पदुम लाल पुन्नामल बख्शी

श्याम सुंदर दास - इनकी आत्म कथा मेरी आत्म कहानी सन् 1941 ई. में प्रकाशित हुई। इसके विषय में हरदयाल का कथन अवलोकनीय है -

"श्याम सुंदर दास की 'मेरी आत्म कहानी' सन् 1941 ई. में प्रकाशित हुई। यह बड़ी सुगठित और सम द्ध आत्म कथा है इसमें साहित्यिक शैली में बाबू श्यान सुंदर दास ने अपने जीवन के साथ-साथ उस समय के साहित्यिक इतिहास को प्रस्तुत किया है।"

जयशंकर प्रसाद - पद्यमय आत्म कथा लिखी।

मुंशी प्रेम चंद - मेरी कहानी।

श्री वियोगी हरि - मेरा जीवन प्रवाह भावात्मक शैली।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद - आत्म कथा - राजनीतिक।

भाई परमानंद - आप बीती।

रामविलास शुक्ल - मैं क्रांतिकारी कैसे बना।

वास्तव में सभी आत्मकथाएं मात्र लेखकों के जीवन व त का ही द्योतन नहीं करती हैं अपितु इनमें समसामयिक परिवेश सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक आदि का चित्रण किया गया है।

स्वातंत्र्योत्तर युग

इस युग तक आते आते आत्म कथा बहुमुखी हो गई। स्वाधीन भारत की चिंतन प्रणाली में परिवर्तन आ गया। इस युग की प्रथम आत्म कथा यशपाल ने लिखी।

यशपाल - सिंहावलोकन - इसमें क्रांतिकारियों की आत्मकथा की मार्मिकता उल्लेखनीय है।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' - उग्र ने अपने बीस वर्षों की कथा को निष्पक्ष किंतु कलात्मक ढंग से प्रतिपादित किया।

सेठ गोविंद दास - आत्म निरीक्षण (तीन भाग)।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री - मेरी आत्म कहानी।

व ंदावन लाल शर्मा - अपनी कहानी।

डॉ. हरिवंश राय बच्चन - इधर एक दशक में सबसे महत्वपूर्ण आत्म कथा डॉ. हरिवंश राय बच्चन ने चार खंडों में प्रकाशित की है।

1. क्या भूलूं क्या याद करूं।
2. नीड़ का निर्माण फिर।
3. बसेरे से दूर और
4. दश द्वार से सोपान तक।

बच्चन ने इन्हें स्म ति यात्रा-यज्ञ नाम दिया है। इनके विषय में डॉ. रामचन्द्र तिवारी का कथन उल्लेखनीय है -

"इसमें उनका प्रारंभिक जीवन - संघर्ष, इलाहाबाद विश्व विद्यालय के अंग्रेजी विभाग के प्रोफेसर के अनेक संदर्भ, कैंब्रिज विश्वविद्यालय के उनके अनुभव, कैंब्रिज से डाक्टरेट करके लौटने पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उनकी उपेक्षा, उनकी अनुपस्थिति में उनके परिवार का असुरक्षित अनुभव करना, इलाहाबाद रेडियो स्टेशन पर हिंदी प्रोड्यूसर का उनका अनुभव, विदेश मंत्रालय में ऑफिसर आन स्पेशल ड्यूटी (हिंदी) के रूप में राजनयिक कार्यों में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए किए गए उनके प्रयत्न, सचिवालय के सचिवों की मानसिकता तथा वहां से अवकाश लेने के बाद उनका जीवन अनुभव एक व हद् उपन्यास की रोचक शैली में जीवंत और साकार हो उठा है। इस स्म ति यात्रा यज्ञ में प्रकारांतर से स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद का हिंदी भाषा और साहित्य का पूरा संघर्ष ही मूर्त हो गया है। इस आत्मकथा में संस्मरण, यात्राव त, कविता, साक्षात्कार, नैरेशन आदि अनेक विधाएं और शैलियां गुंफित हैं। सबसे बड़ी बात है - लेखक के आत्म स्वीकार का साहस।"

डॉ. बच्चन की आत्मकथा के विषय में धर्मवीर भारती ने लिखा है -

"हिंदी में अपने बारे में सब कुछ इतनी बेबाकी, साहस और सद्भावना से कह देना यह पहली बार हुआ है।"

डॉ. देवराज उपाध्याय - यौवन के द्वार पर

राजकमल चौधरी - भैरवी तंत्र।

साठोत्तरी युग

डॉ. रामविलास शर्मा - घर की बात राम विलास शर्मा की विस्त त आत्म कथा है जिसके विषय में स्वयं डॉ. राम विलास शर्मा ने लिखा है -

"घर की बात में वैज्ञानिक विवेचन कम, मानवीय संबंधों का चित्रण अधिक है। ....इसमें कई पीढ़ियों के लेखक और वार्ताकार सम्मिलित हैं।"

शिव पूजन सहाय- मेरा जीवन आत्म कथा में शिव पूजन सहाय के वैयक्तिक जीवन उभर कर सामने आया है साथ साथ अनेक साहित्यकारों, साहित्यिक घटनाओं तथा विभिन्न संदर्भो का प्रामाणिक दस्तावेज भी पाठक के समक्ष उपस्थित हो गया है।

कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर - तपती पगडंडियों पर पद यात्रा में कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर के तेजस्वी, सैद्धांतिक तथा कर्तव्यपरायण व्यक्तित्व के अनेक पक्षों का उद्घाटन हुआ है।

फणीश्वर नाथ रेणु - फणीश्वर नाथ रेणु की आत्मकथा आत्म परिचय है जिसमें उन्होंने अपने जीवन तथा रचना संघर्ष को अति स्वाभाविक ढंग से वर्णित किया है।

डॉ. नगेन्द्र - डॉ. नगेंद्र की आत्म कथा अर्धकथा है जिसमें उनके जीवन का अर्ध सत्य अभिव्यक्ति पर पा सका है। डॉ. नगेंद्र ने स्वयं लिखा है -

"यह मेरे जीवन का केवल अर्ध सत्य है - अर्थात् उपर्युक्त तीन खंडों में मैने केवल अपने बहिरंग जीवन का ही विवरण दिया है।........ जहां तक अंतरंग जीवन का प्रश्न है, वह नितांत मेरा अपना है - आपको उसका सहभागी बनाने की उदारता मुझमें नहीं है।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि डॉ. नग्रेंद्र ने अपनी आत्म कथा 'अर्ध कथा' में वास्तव में आधे अधूरे सत्य को ही उद्घाटित किया है जीवन की गोपनीयता या रहस्य का उद्घाटन नहीं किया है उसके विषय में चुप्पी साध ली है।

अम त लाल नागर - अम त लाल नागर की आत्मकथा टुकड़े-टुकड़े दास्तान है। आत्मकथा की भूमिका में उन्होंने कहा है-

"मैं पत्थर पर अकेरी गई ऐसी मूर्ति हूं जो कहीं कहीं छूट गई हो।"

वास्तव में इसमें कथा रस लबालब भरा है। इस आत्मकथा को आधुनिक जागरण का जीवंत इतिहास कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी।

राम दरश मिश्र - राम दरश मिश्र की आत्म कथा सहचर है समय के नाम से प्रकाशित हुई है यह चार भागों - 1. जहां मैं खड़ा हूं, 2. रोशनी की पगडंडियां, 3. टूटते बनते दिन तथा 4. उत्तर पथ में लिखी गई है। इसमें स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ग्रामीण परिस्थितियों से बाहर निकलकर, संघर्षरत अपने मार्ग का अनुसंधान करता हुआ, लक्ष्य की खोज में मग्न साहित्यकार सांसारिक अनुभव को अपनी व्यापकता में समेटे हुए ऐसा प्रतीत होता है मानो आधा भारत ही उसमें सिमट कर सजीव हो उठा है।

डॉ. रामदरश मिश्र की आत्मकथा सहचर है समय के विषय में डॉ. रामचंद्र तिवारी ने लिखा है "इसमें रामदरश मिश्र ही नहीं आज की पूरी साहित्यिक पीढ़ी है, बनते-बिगड़ते गांव हैं जिनका जीवन रस सूख रहा है, उभरते हुए नगर हैं जिनमें मनुष्यता मर रही है और सैकड़ों सामान्य लोग हैं जिनके रोजी रोटी के लिए किए जाने वाले ऊपरी खुरदुरे संघर्ष के भीतर संवेदना और सहानुभूति की तरल धारा आज भी प्रवाहित हो रही है। सचमुच यह आत्म कथा आज के भारत के सामान्य आदमी के जीवन का दस्तावेज है।"

उपर्युक्त आत्मकथाओं के अतिरिक्त अनेक आत्मकथाकारों की आत्म-कथाएं जिनमें स्वतन्त्र रूप से छपाने की सामर्थ या क्षमता नहीं है अथवा छपास नहीं है वे आत्म कथाएं 'सारिका' नामक पत्रिका के गर्दिश के दिन नामक स्तंभ में प्रकाशित होती रही है। ऐसे आत्म कथा लेखकों में भीष्म साहनी, राजेन्द्र यादव, कामता नाथ दूध नाथ सिंह के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं जिनकी संघर्षपूर्ण आत्मकथाएं प्रकाशित हुई हैं। इनको आत्म कथ्यपूर्ण आत्मकथा की संज्ञा नहीं दी जा सकती है क्योंकि इसमें आत्मकथा लेखकों का विभिन्न व्यक्तित्व अपना भिन्न भिन्न मिजाज व्यक्त करता है।

हिंदी आत्म कथा साहित्य अभी अपने को सम द्ध नहीं बना सका है। भविष्य में क्या करेगा कुछ कहा नहीं जा सकता है। कुछ आलोचकों का यह मात्र भ्रम है कि हिंदी माध्यम को अपना कर लिखने-पढ़ने वाले पंडित, मनीषी, महान, विद्वान या गौरवशाली नहीं हो सकते। किंचित उन्होंने कबीर, तुलसी, प्रसाद, निराला, महादेवी, हजारी प्रसाद या नगेंद्र के व्यक्तित्व को भली भांति जांचा परखा नहीं है क्या ये हिंदी माध्यम नहीं थे या हिंदी लिखने पढ़ने वाले नहीं थे।

32. रिपोर्ताज

रिपोर्ताज शब्द का रिपोर्ट अंग्रेजी से कोई संबंध प्रतीत नहीं होता है क्योंकि रिपोर्ट का अर्थ किसी घटना आदि का वह विवरण है जो किसी अधिकारी को उनकी जानकारी के लिए दिया जाता है जिसे प्रतिवेदन कहते हैं। किसी संस्था आदि के कार्यो का विस्त त विवरण। कार्य विवरण। किसी वस्तु या व्यक्ति के संबंध में जानने योग्य बातों का ब्यौरा। रिपोर्ट का बहुवचन रिपोर्ट्स बनेगा रिपोर्ताज नहीं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि रिपोर्ताज रिपोर्ट का हिंदी करण नहीं है। रिपोर्ट की संज्ञा रिपोर्टर होता जो प्रतिवेदन नहीं संवाददाता कहलाता है जिसका कार्य समाचार पत्रों में प्रकाशनार्थ घटनादि की सूचना देना होता है।

महाभारत युद्ध के समय संजय ध तराष्ट्र को आंखों देखा समाचार देता था ध तराष्ट्र के साथ बैठे हुए। प्रथम विश्वयुद्ध के समय चर्चिल युद्ध की विभीषिका का संवाद दाता बना था। इसलिए यह कहना कि प्रथम विश्वयुद्ध के समय रिपोर्ताज का आविर्भाव हुआ सत्य नहीं है। आविर्भाव तो महाभारत काल में हो गया था।

डॉ. हरदयाल का मानना है कि द्वितीय विश्व महायुद्ध के समय रिपोर्ताज का प्रचार प्रसार हुआ। डॉ. हरदयाल का कहना है -

“रिपोर्ताज का जन्म द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हुआ, जब साहित्यकारों ने युद्ध भूमि में राष्ट्रीयता और मानवीयता की भावना से लिया हुआ तथ्य, युद्ध भूमि के द श्यों और घटनाओं की रिपोर्ट समाचार पत्रों में दी। इन रिपोर्टो में व्यावसायिक संवाददाताओं की रिपोर्ट में स्वाभाविक भिन्नता आ गई थी यह भिन्नता इनकी साहित्यिकता - कलात्मकता और उत्साह में थी जो युद्ध में विद्यमान था। इस प्रकार अनायास ही रिपोर्ताज का जन्म हो गया।”

महादेवी वर्मा का कहना है -

“रिपोर्ट या विवरण से संबंध रिपोर्ताज समाचार युग की देन है और उसका जन्म सैनिक की खाईयों में हुआ है।”

रिपोर्ताज का विकास रूस में हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के समय इलिया एहरेन वर्ग को रिपोर्ताज - लेखक के रूप में विशेष प्रसिद्धि मिली।

रिपोर्ताज मूलतः फ्रेंच (फ्रांसीसी) भाषा का शब्द है। इसका अंग्रेजी पर्याय रिपोर्ट माना जाता है। रिपोर्ताज का अभिप्राय किसी घटना, खबर, आंखो देखा हाल का यथा तथ्य वर्णन है जिसमें संपूर्ण विवरण द श्यमान हो जाता है। जबकि वास्तविक घटना का यथातथ्य चित्र उपस्थित करना रिपोर्ट कहलाता है। हिंदुस्तानी में इसे रपट कहते हैं। इसका सीधा संबंध समाचार पत्र से होता है इसलिए तथ्य चयन पर विशेष महत्व दिया जाता है।

किसी विषय का आंखो देखा या कानों सुना वर्णन इतने कलात्मक, साहित्यिक और प्रभावोत्पादक ढंग से किया जाता है कि उसकी अमिट छाप हृदय पटल पर अंकित हो जाती है उसे रिपोर्ताज की संज्ञा दी जाती है। रिपोर्ताज लेखक की वैयक्तिकता के साथ-साथ इसमें भावना एवं संवेदना का आवेश भी समन्वित होता है। लेखक घटना विशेष को लेखक अपनी मानसिकता से प्रदीप्त करके पुनः मूर्त रूप में इसका प्रस्तुतीकरण रिपोर्ताज का स्वाभाविक धर्म है। रिपोर्ट की साहित्यिकता उसे रिपोर्ताज का स्वरूप प्रदान करती है। रिपोर्ताज को अन्य अनेक नाम दिए गए हैं जिनमें रूपनिका, सूचनिका तथा व त निदेशन आदि प्रमुख हैं किंतु प्रचलित एवं सर्वमान्य शब्द रिपोर्ताज है।

डॉ. भगीरथ मिश्र ने रिपोर्ताज को परिभाषित करते हुए लिखा है -

“किसी घटना या द श्य का अत्यंत विवरणपूर्ण सूक्ष्म, रोचक वर्णन इसमें इस प्रकार किया जाता है कि वह हमारी आंखों के सामने प्रत्यक्ष हो जाए और हम उससे प्रभावित हो उठें।”

कोई भी निबंध, कहानी, रेखाचित्र या संस्मरण पत्रकारिता से संप क्त होकर रिपोर्ताज का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। साहित्यिकता इसका अनिवार्य तत्व है। रेखांकित एवं रिपोर्ट का समन्वित रूप रिपोर्ताज को जन्म देता है क्योंकि रेखाचित्र साहित्यिक विधा है।

रिपोर्ताज का विवेचन करेते हुए शिवदान सिंह चौहान ने लिखा है -

“आधुनिक जीवन की द्रुतगामी वास्तविकता में हस्तक्षेप करने के लिए मनुष्य को नई साहित्यिक रूप विधा को जनम देना पड़ा। रिपोर्ताज उन सबसे प्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण विधा है।”

रिपोर्ताज का विकास अमेरिका एवं रूस में हुआ। भारत में इसका आगमन विदेशी है।

हिंदी में रिपोर्ताज लेखन की प्रणाली अति नवीन है। इसलिए यह साहित्य अन्य साहित्य गद्य विधाओं की अपेक्षा सीमित है।

हिंदी में उपलब्ध रिपोर्ताज, पत्र-पत्रिकाओं, उपन्यासों में प्रसांगानुकूल, ललित निबंधों तथा गोष्ठियों सभाओं, अधिवेशनों आदि के आधार लिखे गए रिपोर्ताज द ष्टिगोचर होते हैं। किन्तु इन्हें वास्तविक रिपोर्ताज की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। मात्र ललित निबंधों में इनका वास्तविक स्वरूप उपलब्ध होता है।

प्रथम रिपोर्ताज

रिपोर्ताज का प्रारंभ सन् 1940 ई. के आस पास माना जाता है। शिवदान सिंह चौहान द्वारा लिखित मौत के खिलाफ जिंदगी की लड़ाई प्रथम रिपोर्ताज है जो हंस पत्रिका में प्रकाशित हुआ। स्तंभ का नाम समाज और विचार था।

रिपोर्ताज का विकास

स्वतन्त्रता से पूर्व राष्ट्रीय परिवेश में चित्रण से रिपोर्ताज का प्रारंभ हुआ।

रांगेय राघव

रांगेय राघव ने प्रथम रिपोर्ताज अदम्य जीवन लिखा जो विशाल भारत में प्रकाशित हुआ था। सन् 1943 - 44 ई. में रांगेय राघव ने बंगाल के दुर्भिक्ष एवं महामारी विषय अनेक मार्मिक रिपोर्ताज लिखे। इनके रिपोर्ताज का संकलन तूफानों के बीच है। अन्य रिपोर्ताज यह है ग्वालियर में सांप्रदायिक दंगों, दमन नीति, अत्याचारों तथा ह्रदय हीनता का मार्मिक चित्रण किया गया है।

अम त लाल नागर -

अम त लाल नागर पर बंगाल के अकाल का अत्यधिक प्रभाव पड़ा जिसने उनसे महाकाल नामक उपन्यास की रचना रिपोर्ताज शैली में लिखवाया।

प्रकाशचन्द्र गुप्त -

प्रकाशचन्द्र गुप्त द्वारा लिखित रिपोर्ताज में घटना प्रधानता है। इनके रिपोर्ताजों में स्वराज्य भवन विशेष उल्लेखनीय है। अन्य रिपोर्ताज अल्मोढ़े का बाजार तथा बंगाल का अकाल आदि है। इनके सभी रिपोर्ताज हंस में प्रकाशित हुए।

स्वतंत्र्योत्तर रिपोर्ताज

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में अनेक महत्वपूर्ण घटनाएं घटीं जिन्होंने रिपोर्ताज लेखकों को रिपोर्ताज लिखने के लिए बाध्य कर दिया। भारत-पाक विभाजन के पश्चात भीषण नरसंहार हुआ। बंगाल में नोआखाली में हिंदुओं पर भयंकर अत्याचार किया गया। लूटपाट, मारकाट, हिंसा प्रतिहिंसा का दौर चलता रहा। इनसे संबंधित अनेक रिपोर्ताज लिखे गए।

साठोत्तरी रिपोर्ताज

सन् 1965 ई. सन् 1971 ई. में भारत पाकिस्तान युद्ध हुए। सन् 1962 ई. में भारत चीन युद्ध हुआ। इन युद्धों से संबंधित रिपोर्ताज लिखे गए। इसके अतिरिक्त भारत पर अनेक आपदाएं आई - बाढ़, सूखा, अकाल, अग्नि कांड, भूकंप, आतंकवाद तथा विमान दुर्घटना आदि। इन सब पर रिपोर्ताज लिखे गए।

धर्म वीर भारती -

सन् 1971 ई में बंगला देश स्वाधीनता संग्राम हुआ। बंगला देश से धर्म भारती ने अनेक रिपोर्ताज भेजे थे जो धर्म युग में प्रकाशित हुए।

डॉ. भगवत शरण उपाध्याय

फणीश्वर नाथ रेणु

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

निर्मल वर्मा

कमलेश्वर

लक्ष्मी कांत वर्मा

आदि अनेक रिपोर्ताज लेखकों ने रिपोर्ताज की रचना की जो तत्कालीन प्रकाशित होने वाली दिनमान, नया पथ, माध्यम, ज्ञानोदय, कल्पना, सारिका, अवकाश, सूर्या, हिंदी एक्सप्रेस, रविवार तथा साप्ताहिक हिंदुस्तान आदि पत्रिकाओं में समय समय पर विभिन्न स्तंभों में प्रकाशित होते रहे। इन पत्रिकाओं का रिपोर्ताज लेखन में विशेष योगदान रहा है।

डॉ. बालकृष्ण राव -

डॉ. बालकृष्ण राव ने वर्षो तक कल्पना पत्रिका के कमलाकांत जी ने कहा नामक स्थायी स्तंभ में रिपोर्ताज लिखे।

ख़्वाजा अहमद अब्बास -

सन् 1968 ई. के सारिका के कई अंकों में ख्वाजा अहमद अब्बास ने बिहार की डायरी नाम से बिहार के सूखे पर, बिहार के अकाल पर अनेक रिपोर्ताज प्रकाशित कराए।

निर्मल वर्मा -

निर्मल वर्मा का रिपोर्ताज प्रातः एक स्वप्न धर्म युग में प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होंने चेकोस्लोवाकिया में प्रविष्ट रूसी सेनाओं पर भावनात्मक एवं संवेदनात्मक रिपोर्ताज की रचना प्रस्तुत की थी।

वर्तमान काल में साहित्यिक गोष्ठियों, सभाओं, सम्मेलनों, अधिवेशनों आदि के आधार पर लिखे गए रिपोर्ताज प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे हैं। माध्यम पत्रिका के अनेक वर्षो तक विवेचक तथा गोष्ठी प्रसंग से संबंधित रिपोर्ताज प्रकाशित होते रहे हैं। वर्तमान काल में समसामयिक घटनाओं, महत्वपूर्ण प्रकाशनों, साहित्यकारों के जन्म-दिवस, उपाधि पत्र दिये जाने तथा सम्मानित किये जाने के अवसरों पर गोष्ठियां एवं सम्मेलनों का आयोजन किया जाता रहा है। उस समय रिपोर्ताज लिखे जाते रहे हैं तथा प्रकाशित होते रहे हैं। स्मरिकाएं प्रकाशित होती हैं।

रिपोर्ताज की विशिष्ट शैली का उपन्यासों में पर्याप्त प्रयोग होने लगा है। रिपोर्ताज शैली के माध्यम से लिखी गई आधुनिक साहित्यकारों की अनेक उत्कृष्ट औपन्यासिक कृतियां द ष्टिगोचर होती हैं। साहित्यकार की संवेदनशीलता बढ़ जाने पर उसकी रिपोर्ताज लेखन शैली सशक्त एवं प्रभावोत्पादक हो जाती है, युद्ध की विभीषिका, दुर्भिक्ष की भयंकरता या मानव समाज को प्रभावित करने वाली ह्रदय विदारक घटना के घटित होने पर रिपोर्ताज लेखक घटना के वैविध्य को रिपोर्ताज शैली का रूप देकर पाठक के समक्ष ऐसे प्रस्तुत करता है कि उसका दिल दहल जाता है।

वर्तमान काल के प्रौढ़, सशक्त, उत्कृष्ट एवं सरस साहित्यिक शैली में रिपोर्ताज लिखने वालों में उपेंद्र नाथ अश्क - पहाड़ों में प्रेम मय गीत; रामनारायण उपाध्याय - गरीब और अमीर पुस्तकें (रिपोर्ताज संग्रह); शिव सागर मिश्र वे लड़ेंगे हजार साल; भदंत कौसल्यायन - देश की मिट्टी बुलाती है; डॉ. धर्मवीर भारती युद्ध यात्रा, कामता प्रसाद - काम एवं मैं छौटा नागपुर से बोल रहा हूं, जगदीश चद्र जैन - पीकिंग की डायरी, यशपाल - चक्कर क्लब, विवेकी राय - जुलूस रुका है; कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर - क्षण बोले कण मुस्काए; फणीश्वर नाथ रेणु - ऋण जल धन जल; नेपाली क्रांति कथा, लाल भारती, एक लव्य के नोट्स एवं श्रुत-अश्रुत पर्व; प्रभाकर माचवे; गोरी नजारों में, शमशेर बहादुर सिंह- प्लाट का मोर्चा, वाचस्पति उपाध्याय-हरा भरा जनतंत्र है सूख गया स्वातंत्र्य; चंद्रभाल मधुव्रत - मान न मान यही है विज्ञान; कुबेर नाथ राय - गंध - मादन तथा राम आसरे - माओ के देश में आदि महत्वपूर्ण रिपोर्ताज लेखक तथा उनके रिपोर्ताज हैं।

विवेकी राय स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् परिवर्तित गांव, जीवन एक म त्यु के मध्य विभीषिका की आंहें भरते हुए गांव के दर्शक एवं दुख तथा वेदना भोगने वाले हैं। जुलूस रूका में ग्रामीणों की जीती जागती तस्वीर द ष्टिगोचर होती है। फणीश्वर नाथ रेणु

की तरह ही विवेकी राय ने अपनी औपन्यासिक कृतियों में रिपोर्ताज शैली का सुंदर एवं सफल प्रयोग किया है। फणीश्वर नाथ रेणु में परिवेश का चित्रांकन करने की अपूर्व क्षमता है जिसके परिणामस्वरूप परिवेशगत संपूर्ण अनुभव उद्घाटित हो जाता है।

वर्तमान काल में रिपोर्ताज ने स्वतंत्र गद्य विधा के रूप में अपने को प्रतिष्ठछापित कर लिया है। विकास यात्र की लगभग अर्ध शताब्दी पार कर ली है किन्तु परिणाम एवं गुणवत्ता की द ष्टि से इस को पूर्णता की प्राप्ति नहीं हुई। वर्तमान युग मीडिया एवं संचार संपर्क का है। इस द ष्टि से इसका भविष्य उज्जवल है।

33. हिंदी आलोचना : उद्‌भव एवं विकास

हिंदी में आलोचना का प्रारंभ बहुत देर से हुआ। हिंदी साहित्य के वीरगाथा काल तथा भक्ति काल में आलोचना का कोई व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध स्वरूप द ष्टिगोचर नहीं होता है।

पर्याय, शब्दार्थ एवं परिभाषा

आलोचना को समालोचना तथा समीक्षा आदि अनेक नामों से अभिहित किया जाता है। इसका अंग्रेजी पर्याय क्रिटिसिज़्म है। इन सभी शब्दों का सामान्य अर्थ सम्यक् निरीक्षण होता है।

आलोचना

{सं. आ लोच् (देखना) + गिच् + युच् + ल्युट् - अन्} से व्युत्पन्न है। लोच् धातु से पूर्व 'आ' उपसर्ग (विशेष अर्थ में) लोच् देखने के अर्थ में है लोच् से लोचन व्युत्पन्न है जिसका अर्थ देखने वाला अंग अर्थ आंख है। णिच्, ल्युट् तथा अन् प्रत्यय हैं। जिसका अर्थ किसी कृति या रचना के गुण दोषों का निरुपण या विवेचन करना होता है।

किसी कृति या कृतिकार के गुण-दोषों का भली भांति सम्यक् विवेचन या उनको देखना आलोचना कहलाता है।

समालोचना

सं. समालोचन + टाप् से व्युत्पन्न है जिसमें आलोचना से पूर्व 'सम' उपसर्ग बराबर अर्थ मं टाप् प्रत्यय लगा है जिसका अर्थ अच्छी तरह अर्थात् बराबर समान द ष्टि से देखना है। किसी कृति या कृतिकार के गुण-दोषों का किया जाने वाला विवेचन।

साहित्य में वह लेख जिसमें किसी कृति या कृतिकार के गुण दोषों के संबंध में समान रूप से अपने विचार प्रकट किए हों। इसे अंग्रेजी में रिव्यू कहते हैं। गुण दोष विवेचन की कला या विद्या होती है।

समीक्षा

सं. सम ईक्ष् (देखना) + अ-टाप् से व्युत्पन्न है। ईक्ष् से पूर्व सम उपसर्ग तथा टाप् प्रत्यय है। ईक्ष् से चक्षु अर्थात् आंख बना है। लोच् से लोचन तथा ईक्ष् से चक्षु दोनों का अर्थ आंख अर्थात् देखना है।

गुण दोषों की समान द ष्टि से कृति या कृतिकार को देखना या उसकी विवेचना करना समीक्षा कहलाता है।

क्रिजिसिज़्म का अर्थ मूल्यांकन करना या निर्णय करना होता है। साहित्यिक क्षेत्र में आलोचना, समालोचना तथा समीक्षा भिन्नार्थक हैं। जबकि सामान्य रूप से एक जैसे प्रतीत होते हैं। साहित्य में किसी भी साहित्यिक रचना या साहित्यकार के विवेचन विश्लेषण, गुण-दोष दिग्दर्शन, मूल्यांकन, सिद्धांत या नियम-प्रतिपादन तथा व्याख्या को आलोचना के अंतर्गत रखा जाता है। इस प्रकार आलोचना का अर्थ सम्यक निरीक्षण हुआ।

डॉ. श्याम सुंदर दास ने आलोचना के विषय में विचार करते हुए साहित्यालोचन में लिखा है -

"साहित्य क्षेत्र में ग्रंथ को पढ़कर उसके गुणों और दोषों का विवेचन करना और उसके संबंध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है। ....यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या मानें तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा।"

आलोचना का उद्देश्य प्रकट करते हुए डॉ. गुलाब राय ने लिखा है -

"आलोचना का मूल उद्देश्य कवि की कृति का सभी द ष्टिकोणों से आस्वाद कर पाठकों को उस प्रकार के आस्वाद में सहायता देना तथा उनकी रूचि को परिमार्जित करना एवं साहित्य की गति निर्धारित करने में योग देना है।"

आलोचना के साहित्यिक-वैज्ञानिक या व्यक्तिगत तथा वस्तुगत प्रमुख दो रूप होते हैं। वैसे विषयानुसार ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक, व्यावहारिक, निर्णयात्मक, तुलनात्मक, व्याख्यात्मक, मनोवैज्ञानिक, साम्यवादी नयी आदि अनेक रूप होते हैं।

भारतीय साहित्य में आलोचना का विकास

विद्वानों का यह मानना है कि आलोचना का विकास पाश्चात्य आलोचना के प्रभाव से भारत में आविर्भाव से हुआ। यह तथ्य भ्रामक है। भारतीय साहित्य में आलोचना का अति प्राचीन अस्तित्व है। भारतीय साहित्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम सैद्धान्तिक आलोचना का विकास हुआ है जिसे काव्य शास्त्र या अलंकार शास्त्र के नाम से अभिहित किया जाता रहा है। प्राचीनतम काव्य शास्त्र की रचना भरत मुनि द्वारा रचित 'नाट्य शास्त्र' है जिसमें साहित्य के मानदंड स्वरूप रक्ष सिद्धान्त को प्रतिष्ठापित किया गया है। साहित्य का मूल तत्व भाव है; रस सिद्धान्त भी भाव तथा भावनाओं के उद्वेलन की प्रक्रिया का स्पष्टीकरण करता हुआ साहित्य की विषय वस्तु का वर्गीकरण एवं विश्लेषण प्रस्तुत करता है। काव्य में भाव तत्व को सर्वाधिक महत्व प्रदान करके रस सिद्धान्त के आचार्यो ने एक उचित दिशा में काव्य शास्त्र को आगे बढ़ाया है। रस निष्पत्ति को लेकर भट्ट लोलट, शंकुक, भट्ट नायक, अभिनव गुप्त तथा पंडित राज जगन्नाथ आदि ने विभिन्न वैयक्तिक मतों की प्रतिष्ठा की है। आगे चलकर भामह, उदभट, दंडी आदि आचार्यो ने रस के स्थान पर अलंकार को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकारा है। अलंकार के संबंध में उनकी धारणाएं अति व्यापक थीं। उन्होंने अलंकार को सौंदर्य का पर्यायवाची माना है। परवर्ती युग में वामन रीति कुतक - वक्रोक्ति, आनंद वर्धनाचार्य - ध्वनि तथा क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्य की आत्मा मानते हुए रस संप्रदाय, अलंकार संप्रदाय, रीति संप्रदाय, वक्रोक्ति संप्रदाय, ध्वनि संप्रदाय तथा औचित्य संप्रदाय की स्थापना की। काव्य शास्त्रीय आचार्यो ने रस, अलंकार रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति तथा औचित्य की विवेचना की।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत साहित्य में आलोचना का पर्याप्त विकास हुआ किन्तु यह आलोचना सिद्धान्त - स्थापना तक ही सीमित रहा है, उनका व्यवहार विशद रूप में उपलब्ध नहीं होता है। जितना श्रम नए-नए सिद्धान्तों की स्थापना के लिए किया गया उतना श्रम संभवतः उनके प्रयोग में नहीं किया गया। आधुनिक युग की भांति हमें कहीं भी किसी भी प्रकार की आलोचना स्वतन्त्र ग्रंथ के रूप में नहीं मिलती। वास्तव में निर्णायात्मक पद्धति का प्रचलन था, लिखित विवेचना नहीं होती थी। व्याख्यात्मक आलोचना या टीका लिखने का प्रचलन संस्कृत में अधिक था।

हिंदी में आलोचना का विकास

संस्कृत की काव्य शास्त्रीय परंपरा के अनुसरण पर हिंदी साहित्य के मध्यकाल अर्थात् भक्ति काल एवं रीति काल में सैद्धान्कि आलोचना का विकास हुआ। यह आश्चर्यचकित करने वाला तथ्य है कि हमारे प्रारंभिक सैद्धान्तिक आलोचनात्मक ग्रन्थ सिद्धान्त विवेचन हेतु नहीं लिखे गए अपितु भक्ति या श्र ंगार अथवा काव्य रचना से प्रेरित होकर लिखे गए जिसमें सूरदास की साहित्य लहरी एवं नंददास की रस मंजरी प्रमुख हैं जिनमें नायक-नायिका भेद का निरूपण संस्कृत के काव्य शास्त्रीय ग्रंथरों के अनुसार किया गया है। किंतु इनका उद्देश्य नायक-नायिका भेद का निरूपण करना या समझााना नहीं है अपितु इनका एक मात्र लक्ष्य अपने आराध्य श्री कृष्ण एवं राधा की प्रेम लीलाओं में योगदान करना है। अकबर के दरबारी कवियों का उद्देश्य भी काव्य शास्त्रीय विवेचन न होकर रसिकता का पोषण करना था। ऐसे रसिक कवियों में कठकेश, रहीम, गोपा तथा भूपति आदि प्रमुख हैं।

भक्तिकाल की भांति ही सत्रहवीं सदी के मध्य अर्थात् रीतिकाल में आचार्य केशव दास ने कविप्रिया एवं रसिक प्रिया की रचना की जिनका उद्देश्य काव्य शास्त्र के सामान्य नियमों एवं सिद्धान्तों का परिचय करना था। इनकी रचना पातुर प्रवीण राय को काव्य शास्त्र की शिक्षा देने के लिए हुई थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि केशव की रचना में प्रौढ़ता नहीं है किंतु निःसन्देह उन्होंने ये रचनाएं विशुद्ध आचार्यत्व की प्रेरणा से प्रेरित होकर की थीं। केशव के आचार्यत्व का अनुसरण उसके परवर्ती कवियों ने भी किया जिन्हें उनकी कृतियों या प्रव त्तियों के आधार पर चार वर्गो में विभाजित किया जा सकता है -

i. **काव्य शास्त्रीय ग्रंथों के रचयिता** - अनेक कवियों ने काव्य शास्त्र के सभी अंगों का प्रतिपादन किया, जिनमें आचार्यत्व द ष्टिगोचर होता है।

ii. **रस एवं नायिका भेद संबंधी ग्रंथों के रचयिता** - इस वर्ग के कवियों का लक्ष्य आचार्यत्व कम मनोरंजक अधिक था। काव्य शास्त्र की आड़ में इन्होंने अपनी दमित, कुंठित काम वासनाओं, कामुकता एवं रसिकता की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

iii. **अलंकार शास्त्रीय ग्रंथों के रचयिता** - इस वर्ग के कवियों का उद्देश्य अलंकार का प्रतिपादन करना था। विद्यार्थियों को अलंकार की शिक्षा देने के लिए पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण को अपना लक्ष्य बनाया।

iv. **नखशिख एवं षडऋतु ग्रंथों के रचयिता** - इन कवियों का उद्देश्य नारी सौंदर्य के वर्णन में नख-शिख सौंदर्य प्रणाली को उत्तेजना हेतु अपनाया था। संयोग श्र ंगार के संचारी भाव के रूप में षडऋतु वर्णन को काव्य का रूप दिया।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति एवं रीति काल में काव्य शास्त्रीय एवं अलंकार संबंधी ग्रंथों में ही समीक्षा के सिद्धान्तों एवं अलंकार संबंधी ग्रंथों में ही समीक्षा के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। किंतु इनका महत्व अधिक नहीं है क्योंकि इनका आधार संस्कृत काव्य शास्त्र है तथा इनकी भाषा ब्रजभाषा पद्य है। संस्कृत अनुवाद मात्र करना इनका लक्ष्य था। इनमें मौलिकता का पूर्ण अभाव है। विवेचन की प्रौढ़ता, गंभीरता तथा स्पष्टता का भी अभाव है। इसलिए इन ग्रंथों को आलोचना के सच्चे स्वयप में नहीं स्वीकारा जा सकता है।

हिंदी साहित्य में आलोचना का विकास

आधुनिक हिंदी साहित्य गद्य के जनक एवं पालनकर्ता महान साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने हिंदी साहित्य के सभी उपेक्षित अंगों को विकसित किया। अतः आलोचना साहित्य भी उनके युग परिवर्तन कारी द ष्टि से कैसे ओझल हो सकता था। संस्कृत के प्रथम आचार्य भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र लिखा है।

हिंदी का प्रथम आलोचना ग्रंथ

भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने नाटक लिखा है। भारतेंदु आधुनिक हिंदी आलोचना के जन्मदाता एवं नाटक प्रथम आलोचना ग्रंथ हैं।

डॉ. श्याम सुंदर दास ने भाषाशैली को द ष्टिगत रखते हुए यह भ्रामक धारणा बना ली कि नाटक भारतेंदु की रचना नहीं है। इसका प्रमुख कारण नाटक की भाषा नहीं अपितु डॉ. श्याम सुंदर दास की रचना रूपक रहस्य है। यह उसी का रहस्य प्रतीत होता है कि कहीं उसकी महत्ता में कभी न आ जाए इसलिए यह घोषित करना श्रेयस्कर है कि नाटक भारतेंदु हरिश्चन्द्र की रचना नहीं है।

नाटक की भूमिका तथा समर्पण यह प्रमाणित करते हैं कि नाटक भारतेंदु की रचना है। क्यांकि विषयानुसार लेखक की शैली में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। भूमिका एवं समर्पण में भारतेंदु ने स्पष्ट लिखा है -

“आशा है कि सज्जनगण गुण मात्र ग्रहण करके मेरा श्रम सफल करेंगे।”

इस ग्रंथ को हरिश्चन्द्र ने अपने इष्ट देव को प्रेम पूर्वक समर्पित करते हुए लिखा है -

“नाथ! आज एक सप्ताह होता कि मेरे इस मनुष्य जीवन का अंतिम अंक हो चुका........... नहीं तो यह ग्रंथ प्रकाश भी न होने पाता.......... जब प्रकाश होता तो समर्पण भी होना आवश्यक है। अतएव अपनाए हुए की वस्तु समझकर अंगीकार कीजिए।”

‘कवि बचन सुधा’ में ‘हिंदी कविता’ नामक भारतेंदु का प्रथम आलोचनात्मक निबंध प्रकाशित हुआ।

भारतेंदु युग

भारतेंदु युग के प्रमुख आलोचनाकार बदरी नारायण चौधरी ‘प्रेमधन’, बालकृष्ण भट्ट, श्री निवास दास, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र

भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी साहित्य के सर्व प्रथम आलोचना लेखक हैं यदि संस्कृत में भरत मुनि ने सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र की रचना की तो हिंदी में सर्वप्रथम आलोचना ग्रंथ नाटक इन्होंने लिखा है। यह अत्यंत प्रौढ़ रचना है जिसमें प्राचीन भारतीय नाट्यशास्त्र एवं आधुनिक पाश्चात्य नाट्यशास्त्र एवं आलोचना साहित्य का सुंदर समन्वय किया गया है। तत्कालीन हिंदी नाटककारों के लिए नियम निर्धारण किया गया है जिनमें स्थान-स्थान पर लेखक की मौलिक उद्भावनाएं भी प्रकट हुई हैं। नाटक के भेदों का विवेचन करते हुए तत्कालीन सभी नाटकों, कठपुतली वालों, शहरों के तमाशों, पारसियों के नाटक आदि पर द ष्टि डालते हुए युग का मार्ग दर्शन किया गया है।

नाटक की अर्थ प्रकृतियों, संधियों आदि की घोषणा करते हुए उन्होंने लिखा है -

"संस्कृत नाटक की भांति हिंदी नाटकों में इनका अनुसंधान करना या किसी नाटकांग में इनको यत्नपूर्वक रखकर हिंदी नाटक लिखना व्यर्थ है।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारतेंदु में केवल अनुवाद करने की क्षमता एवं सामर्थ्य ही नहीं थी अपितु वे प्राचीन नाट्यशास्त्र को सर्वथा नवीन रूप देने में भी पूर्णतः समर्थ थे।

नाटक में सामान्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके संस्कृत, हिंदी एवं यूरोप के नाटक-साहित्य के विकास को प्रदर्शित किया गया है। साथ-साथ अपने समसामयिक नाटकों की आलोचना भी की है। व्यावहारिक आलोचना करते हुए तीखी व्यंग्यात्मकता से नहीं चूकते हैं। पारसी नाटकों की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा है -

"काशी में पारसी नाटक वालों ने नाचघर में जब शकुंतला नाटक खेता और उसमें धीरोदात्त नायक दुष्यंत खेमटे वालियों की तरह कमपर हाथ रखकर मटक-मटक कर नाचने और पतरी कमर बल खाय यह गाने लगा तब डॉक्टर थिबो, बाबू प्रमादादास मित्र प्रभ ति विद्वान यह कहकर उठ आए कि अब देखा नहीं जाता। ये लोग कालिदास के गले पर छूरी फेर रहे हैं। यही दशा बुरे अनुवादों की होती है। बिना पूर्व कवि के हृदय से हृदय मिलाए अनुवाद करना शुद्ध झख मारना ही नहीं, कवि की लोकांतर स्थिति आत्मा को नरक कष्ट देना है।"

बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन'

बदरी नारायण चौधरी ने भारतेंदु की 'नाटक' रचना के समय अपनी 'आनंद कादंबिनी' पत्रिका में संयोगिता स्वयंवर तथा बंग विजेता पुस्तकों की विस्त त आलोचना की।

बालकृष्ण भट्ट

बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी प्रदीप पत्रिका निकाली जिसमें उन्होंने सच्ची आलोचना स्तंभ में संयोगिता स्वयंवर की आलोचना की। भारतेंदु द्वारा प्रवर्तित आलोचना कार्य को अग्रसर करने का श्रेय बालकृष्ण भट्ट को है। संयोगिता स्वयंवर लाल श्री निवास दास द्वारा लिखा गया ऐतिहासिक नाटक था।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि सैद्धान्तिक आलोचना की तरह व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में भी प्राथमिकता नाटक को ही मिली।

भट्ट एवं प्रेमधन की आलोचनाओं में समीक्षा का विकसित रूप द ष्टिगोचर होता है। कहीं-कहीं उनमें तीक्ष्ण व्यंग्यात्मकता का भी सन्निवेश हो गया है। भट्ट की शैली में भावात्मकता, आत्मानुभूति तथा लेखन को सीधा संबोधित करने की प्रव त्ति दिखाई पड़ती है -

"लालाजी यदि बुरा न मानिए तो एक बात आपसे धीरे से पूंछे, वह यह कि आप ऐतिहासिक नाटक किसे कहेंगे।"

प्रेमधन की शैली में भट्ट जैसी सरसता एवं व्यंग्यात्कमता तो नहीं मिलती है किन्तु गंभीरता अधिक है।

गंगा प्रसाद अग्निहोत्री

समालोचना - सन् 1896 ई.।

अंबिका दत्त व्यास

गद्य काव्य मीमांसा।

द्विवेदी युग

महावीर प्रसाद द्विवेदी

सन् 1900 ई. में सरस्वती के संपादक के रूप में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का हिंदी आलोचना साहित्य में आगमन हुआ। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने "कालिदास की निरंकुशता", "नैषध चरित्र चर्चा" तथा 'विक्रमांक देव चरित चर्चा' आदि ग्रंथों की रचना की। उन्होंने अपने ग्रंथों में पुराने-नए कवियों के गुण दोषों का विवेचन व्यंग्यात्मक शैली में किया है। द्विवेदी मूलतः शिक्षक,

संशोधक एवं सुधारक आचार्य थे। उन्होंने अपनी आलोचनाओं के माध्यम से हिंदी काव्य को श्र ंगारिकता के दलदल से बाहर निकालकर उसे देश प्रेम और समाज सुधार की भावनाओं से अनुप्राणित कर दिया। ब्रज भाषा का स्थानापन्न खड़ी बोली को बनाने का श्रेय उन्हीं को है। द्विवेदी की शैली में सरसता, सरलता तथा व्यंग्यात्मकता विद्यमान है।

गंगा प्रसाद अग्निहोत्री

समालोचना।

पदुम लाल पन्ना लाल बख्शी

विश्व साहित्य

गणेश बिहारी मिश्र

श्याम बिहारी मिश्र

शुकदेव बिहारी मिश्र

मिश्र बंधु

महावीर प्रसाद द्विवेदी के पश्चात् हिंदी आलोचना के क्षेत्र में मिश्र बंधुओं का प्रवेश हुआ। उन्होंने हिंदी नवरत्न एवं मिश्र बंधु विनोद की रचना की। हिंदी नवरत्न में हिंदी कवियों को श्रेणीबद्ध करके उसके विभाग बनाए गए हैं। देव को बिहारी से बड़ा प्रमाणित किया गया है। देव को बड़ा बनाने के लिए इन्होंने बिहारी के दोहा में छिद्रांवेषण किया है। उनके अनेक दोष ढूंढ निकाले हैं।

पद्म सिंह शर्मा 'कमलेश'

बिहारी पर किए गए आक्रमण एवं बिहारी सतसई में दोष दर्शन के निरूपण को कमलो नहीं सह सके। फलस्वरूप उन्होंने बिहारी सतसई की भूमिका लिखी जिसमें चमत्कारिक ढंग से बिहारी की उत्कृष्टता का प्रतिपादन किया जिसके परिणामस्वरूप देव और बिहारी को विवाद का विषय बना दिया गया।

पं. कृष्ण बिहारी मिश्र

पं. कृष्ण बिहारी मिश्र ने देव और बिहारी की रचना की जिसमें दोनों कवियों के काव्य की तुलना में संयमित एवं मार्मिक शैली का प्रतिपादन किया। कहीं कहीं उन्होंने बिहारी पर आक्षेप भी किए।

लाला भगवान दीन 'दीन'

भगवान दीन को बिहारी पर किए गए कृष्ण बिहारी मिश्र के आक्षेप उचित प्रतीत नहीं हुए उसके प्रतिउत्तर में लाला जी ने बिहारी और देव की रचना की। इन तुलनात्मक रचनाओं में बिहारी - देव दोनों में से किसी एक की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। हिंदी नवरत्न - देव, पद्म सिंह - बिहारी, कृष्ण बिहारी मिश्र - देव तथा लाला भगवान दीन में बिहारी की श्रेष्ठता का आग्रह किया है। इसी प्रकार का विवाद भक्तिकालीन कवियों तुलसी - सूर को लेकर सूरसूर, तुलसी राशी या सूर शशी तुलसी रवि खूब चल था। आगे लकर बड़ा - छोटा सिद्ध करने का झगड़ा शांत हो गया।

उपर्युक्त आलोचकों के अतिरिक्त द्विवेदी युग में सैद्धान्तिक आलोचना को व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध स्वरूप प्रदान करने वाले आलोचकों में बाबू श्याम सुंदर दास, तथा पदुम लाल पुन्ना लाल बख्शी उल्लेखनीय हैं। गंगा प्रसाद अग्निहोत्री ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका में समालोचना नामक निबंध के द्वारा सैद्धान्तिक आलोचना का श्रीगणेश कर दिया था। बाबू श्याम सुंदर दास ने साहित्यालोचन के माध्यम से उसे प्रौढ़ता प्रदान की। इसके अतिरिक्त श्याम सुंदर दास ने रूपक रहस्य, भारतीय नाट्यशास्त्र भाषा रहस्य तथा हिंदी भाषा और साहित्य अनेक आलोचनात्मक ग्रंथों का प्रणयन किया। पदमु लाल पुन्ना लाल बख्शी ने विश्व साहित्य की रचना कर बाबू श्याम सुंदर दास की परंपरा अग्रसर करने में महत्वपूर्ण योगदान किया।

शुक्ल युग

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल के आलोचना क्षेत्र में आगमन से पूर्व हिंदी आलोचना में तुलसीदास आलोचना का प्रसार प्रचार था जिसके सामने न कोई विशेष आदर्श था और न ही कोई विशेष सिद्धान्त। अपितु बड़ा-छोटा प्रमाणित करने का आग्रह था। अपनी-अपनी रूचि के अनुसार अपने अपने ढंग से जिसे चाहें बड़ा सिद्ध करने का प्रयत्न चल रहा था किंतु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साहित्य का एक सुनिश्चित, व्यवस्थित एवं आलोचना की एक विकसित पद्धति लेकर अवतरित हुए। उन्होंने स्थूल व्यक्तिकता के लाभ-हानि के प्रश्न को त्यागकर साहित्य की सूक्ष्म शक्ति भावना एवं अनुभव को साहित्य की कसौटी के रूप में अपनाया। साहित्य में सौंदर्य को महत्ता प्रदान की।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने समाज हितैषिता को साहित्य का साध्य तो नहीं माना है किंतु एक ऐसे साधन के रूप में स्वीकार करते हैं, जो साहित्य को व्यापकता प्रदान करता है। वास्तव में शुक्ल ने कला कला के लिए एवं कला जीवन के लिए दोनों में अपूर्व सामंजस्य स्थापित किया है। आचार्य शुक्ल ने यद्यपि द्विवेदी युगीन प ष्ठभूमि पर आलोचना का श्रीगणेश किया है फिर भी उन्होंने उसे जितना उन्नत रूप प्रदान किया है उससे उन्हें युग आलोचना जगत का आलोक स्तंभ कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी।

आचार्य शुक्ल की आलोचना के तीन रूप हैं -

i. **सैद्धान्तिक** - चिंता मणि - दो भाग, रसमीमांसा सैद्धान्तिक आलोचना के अंतर्गत आते हैं।

ii. **ऐतिहासिक** - हिंदी साहित्य का इतिहास ऐतिहासिक आलोचना में आता है।

iii. **व्यावहारिक** - तुलसी ग्रंथावली, सूरदास का भ्रमरगीत सार तथा जायसी ग्रंथावली आदि की भूमिकाएं व्यावहारिक आलोचना के अंतर्गत आती हैं। रस मीमांसा के माध्यम से एक ओर उन्होंने भारतीय काव्यशास्त्र के विषय में अपनी सूक्ष्म पकड़, गंभीर द ष्टि तथा व्यापकता का परिचय दिया है तो दूसरी ओर भ्रमरगीत सार, तुलसी ग्रंथावली तथा जायसी ग्रंथावली आदि की सर्वांगीण भूमिकाएं लिखकर व्यावहारिक आलोचना का सुंदर स्वरूप प्रस्तुत किया है।। हिंदी साहित्य का इतिहास ऐतिहासिक आलोचना का मानदंड बन गया है। हिंदी साहित्य के परवर्ती आलोचकों ने उनके द्वारा प्रतिपादित आदर्शो एवं सिद्धान्तों को उदारता से स्वीकार किया है।

आचार्य शुक्ल ने हिंदी आलाचेना को प्रौढ़ता प्रदान की। उन्होंने हिंदी उच्च काव्य भावना के बल पर आलोचन शैली का निर्धारण किया है। शुक्ल ने अपने व्यापक, गंभीर अध्ययन, काव्य गुणों को पहचानने की अद्‌भुत क्षमता एवं विश्लेषणात्मक बौद्धिकता से हिंदी आलोचना साहित्य को अपूर्व उत्कर्षता प्रदान की।

शुक्ल ने प्रथम बार रस-विवेचना को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया। रस-विवेचन में शक्त ने मौलिक रूप से रसादि की पुनर्व्यवस्था की। क्रोचे के अभिव्यंजनावाद की कुंतक के वक्रोक्तिवाद से ुतलना करके उसे भारतीय वक्रोक्तिवाद का विलायती उत्थान स्वीकारना उनके अध्ययन की गहराई का द्योतन करता है। हिंदी की सैद्धान्तिक आलोचना परिचय और सामान्य विवेचन के धरातल से ऊपर उठाकर उसे गंभीर स्वरूप प्रदान करने का श्रेय शुक्ल को है। शुक्ल की शैली प्रौढ़, गंभीर, सूक्ष्म, सरस और प्रवाहपूर्ण है। जिसके परिणामस्वरूप पाठक उनकी बात को मानने के लिए बाध्य हो जाता है। आज हिंदी में दिखलाई पड़ने वाली समस्त आलोचना प्रणालियों का उद्‌गम शुक्ल की आलोचना पद्धति है।

शुक्ल के समकालीन अन्य आलोचकों में डॉ. श्याम सुंदर दास, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, बाबू गुलाब राय, कृष्ण शंकर शुक्ल, परशुराम चतुर्वेदी, चंद्रबली पांडेय पीतांबर दत्त वड्थ्वाल, तथा डॉ. रमा शंकर शुक्ल 'रसाल' आदि उल्लेखनीय हैं।

पं. कृष्ण शंकर शुक्ल

केशव की काव्य कला के द्वारा शुक्ल के व्यावहारिक आलोचना के मानदंडों की रक्षा की।

बाबू गुलाब राय

बाबू गुलाब राय ने सिद्धांत और अध्ययन तथा काव्य के रूप जैसी महत्वपूर्ण कृतियां हिंदी आलोचना साहित्य को प्रदान की।

पीतांबर दत्त बड़थ्वाल

हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय।

पं. परशु राम चतुर्वेदी

उत्तरी भारत की संत परंपरा।

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

हिंदी साहित्य का अतीत तथा बिहारी।

शुक्लोत्तर युग

शुक्ल के परवर्ती आलोचकों को छायावादी आलोचक की संज्ञा भी दी जाती है। जिसमें प्रमुख प्रसाद, पंत, निराला, एवं महादेवी हैं। इनके अलावा नंद दुलारे वाजपेयी, शांति प्रिय द्विवेदी, डॉ. नगेंद्र, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, गंगा प्रसाद पांडेय, डॉ. देवराज, डॉ. केशरी नारायण शुल्क तथा श्रीपाल सिंह 'क्षेम' आदि प्रमुख हैं।

जयशंकर प्रसाद

सुमित्रानंदन पंत

सूर्यकांत त्रिपाठी, निराला

महादेवी वर्मा

छायावादी कवियों एवं कवयित्री आदि ने अपने काव्य ग्रन्थों की भूमिका के रूप में आलोचनाएं लिखी हें जिनसे छायावादी आलोचना का श्री गणेश हुआ है। इनकी आलोचना में तीव्र जीवनानुभूति, सूक्ष्म सौंदर्य, चेतना, रमनीय कोमल कल्पना, अनुभूति प्रेरित रहस्यभावना, स्निग्ध शैली शिल्प, विशेषण विपर्यय, मानवीकरण, शब्द संगीत ही इस साहित्य चिंतन के केन्द्र बिंदु हैं। अनुमूल्यात्मक सौंदर्यवाद से उन्हें अभिहित किया जा सकता है।

आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी

आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी छायावाद और उसकी काव्य शैली के समर्थ व्याख्याता होने के नाते सौष्ठववादी आलोचक के रूप में माने जाते हैं। उन्होंने साहित्य का मूल्यांकन नैतिकवादी फार्मूले पर नहीं किया है। वाजपेयी की महत्वपूर्ण आलोचनात्मक कृतियों में महाकवि सूरदास, जयशंकर प्रसाद, हिंदी साहित्य - बीसवीं शताब्दी तथा आधुनिक हिंदी साहित्य है।

शांतिप्रिय द्विवेदी

द्विवेदी का संबंध प्रभाववादी आलोचना से है। किन्तु उन्होंने भावनात्मक ढंग से ही सही हिंदी की छायावादी समीक्षा को संवर्द्धित किया है। सामयिकी, संचारिणी तथा ज्योति विहंग इनकी श्रेष्ठ कृतियां हैं।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की आलोचना पद्धति संतों के जीवनादर्श, रवींद्र के मानवतावाद तथा सांस्कृतिक समाज शास्त्रीय द ष्टि से प्रभावित है। हिंदी साहित्य की भूमिका, कबीर, सूर साहित्य, साहित्य सहचर तथा हिंदी साहित्य का आदि काल इनकी आलोचनात्मक कृतियों में विशेष उल्लेखनीय हैं।

डॉ. नगेंद्र

डॉ. नगेंद्र सैद्धान्तिक आलोचना की प ष्ठभूमि को लेकर छायावाद के काव्य वैभव का साक्षात्कार करने वाले समर्थ समीक्षक थे। सुमित्रानंदन पंत, साकेत एक अध्ययन, रीति काव्य की भूमिका, विचार और विश्लेषण, रस सिद्धान्त, कामायनी के अध्ययन की समस्याएं, आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य प्रव त्तियां तथा अरस्तू का काव्य शास्त्र आदि प्रमुख आलोचना ग्रंथ हैं।

डॉ. राम कुमार वर्मा

डॉ. राम कुमार वर्मा ने हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास लिखा है। आदिकाल एवं भक्ति काल का विस्त त विवेचन किया गया है। अनेक कवियों का मूल्यांकन साहित्यिक शैली में किया गया है।

डॉ. भगीरथ मिश्र

डॉ. भगीरथ मिश्र ने हिंदी काव्य शास्त्र का इतिहास तथा हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास लिखा है।

स्वातंत्र्योत्तर युग

शुक्ल युग में आलोचना अनेक धाराओं में विभक्त होकर चलने लगी जिनमें ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक, व्यावहारिक, मनोविश्लेषणवादी एवं वैज्ञानिक अथवा प्रगतिवादी, प्रभाववादी, अंतश्चेतनावादी, शास्त्रीय तथा शोध-अनुसंधान परक आलोचना के अनेक रूप हुए हैं। आलोचकों ने विवेचन इसी आधार पर किया है जो उचित प्रतीत नहीं होता है। इसलिए शुक्लोत्तर युग के पश्चात् स्वातंत्र्योत्तर युग को अति लंग व खींचकर सन् 1960 के बाद की आलोचना को साठोत्तरी आलोचना युग से विवेचन उचित माना है।

प्रगतिवादी आलोचना सन् 1936 ई. के प्रगतिशील लेखक सम्मेलन के पश्चात् ही प्रारंभ हो गई थी जो सन् 1947 ई. तक चलती रही।

इस युग के आलोचकों में शिवदान सिंह चौहान, रामविलास सिंह प्रकाश चन्द्र गुप्त तथा नामवर सिंह आदि हैं।

शिवदान सिंह चौहान

प्रगतिवाद।

रामविलास शर्मा

भारतेंदु, प्रेमचंद, निराला तथा रामचन्द्र शुक्ल आदि आलोचनाएं प्रमुख हैं।

नामवर सिंह

नामवर सिंह ने इतिहास और आलोचना तथा कविता के नए प्रतिमान की रचना करके आलोचना को नया मोड़ दिया।

रांगेय राघव

रांगेय राघव ने आधुनिक कविता में विषय और शैली की रचना की। इस युग के अन्य आलोचक डॉ. मैनेजर पांडेय एवं चंचल चौहान हें।

साठोत्तरी युग

सन् 1960 ई. के बाद आलोचना ने नवीन मोड़ लिया। इस युग के आलोचकों में पं. शांतिप्रिय द्विवेदी, भगवत शरण उपाध्याय, डॉ. राम स्वरूप चतुर्वेदी, इलाचन्द्र जोशी, डॉ. नगेन्द्र, अज्ञेय, डॉ. देवराज उपाध्याय, परशुराम चतुर्वेदी, पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ. राम चन्द्र तिवारी, सीताराम चतुर्वेदी, लक्ष्मीनारायण सुधांशु, रवींद्र सहाय वर्मा, डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

शांतिप्रिय द्विवेदी

पं. शांतिप्रिय द्विवेदी प्रभाववादी आलोचक हैं।

भगवत शरण उपाध्याय

प्रभाववादी आलोचकों में उपाध्याय का नाम प्रमुख है। इन्होंने गुरुभक्त सिंह की नूरजहां में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है -

"मैं प्रभाववादी हूं। जब अनुकूल प्रभाव का स्पर्श होता है, तब प्रभाववादी चुप नहीं बैठ सकता है।"

इलाचंद्र जोशी

इलाचंद्र जोशी अंतश्चेतनावादी आलोचक हैं। इस आलोचना का सूत्रपात करने का श्रेय इन्हीं को है। इस आलोचना का मूल उत्स फ्रायड का अंतश्चेतनावादी कला सिद्धान्त है। फ्रायड के अनुसार काव्य कला दमित कामवासना की कल्पित अभिव्यक्ति होती है। अंतश्चेतनावादी आलोचक साहित्यकार के वैयक्तिक जीवन के गहन अध्ययन के आधार पर उनकी इन्हीं दमित वासनाओं का विवेचन एवं विश्लेषण करता है। इलाचन्द्र जोशी की साहित्य सर्जना, विवेचना, विश्लेषण तथा देखा परखा आदि कृतियों में उनका द ष्टिकोण स्पष्ट हो गया है। इसके अतिरिक्त डॉ. नगेंद्र, सच्चिदानंद हीरा नंद वात्स्यायन अज्ञेय, डॉ. देवराज उपाध्याय आदि ने इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

ऐतिहासिक आलोचना के क्षेत्र में कार्य करने वाले आलोचकों में हजारीप्रसाद द्विवेदी, परशुराम चतुर्वेदी, पं. विश्व नाथ प्रसाद मिश्र तथा रामचन्द्र तिवारी के नाम उल्लेखनीय हैं। इस आलोचना के अंतर्गत इतिहास एवं संस्कृति की विशाल परिस्थितियों में साहित्यकार की रचना का मूल्यांकन किया जाता है। डॉ. राम चन्द्र तिवारी की 'रीति कालीन हिंदी कविता और सेनापति, मध्य कालीन काव्य साधना, हिंदी का गद्य साहित्य तथा कबीर मीमांसा आदि ऐतिहासिक आलोचना की रचनाएं हैं।

शास्त्रीय आलोचकों में डॉ. राम चन्द्र तिवारी का नाम प्रमुख है-

लक्ष्मीनारायण सुधांशु

'जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत।'

डॉ. राम कुमार वर्मा

'साहित्य शास्त्र।'

डॉ. भगीरथ मिश्र

'काव्यशास्त्र।'

सीताराम चतुर्वेदी

'समीक्षा शास्त्र।'

लीलाधर गुप्त

'पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त।'

डॉ. देवराज

'रोमांटिक साहित्य शास्त्र।'

रवींद्र सहाय वर्मा

'पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिंदी पर उसका प्रभाव।'

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी

चतुर्वेदी हिंदी अनुशीलन के संपादक भी रहे हैं इनकी रचनाओं में - 'नए पत्ते', 'नई कविता', 'क ख ग', 'हिंदी नव लेखन', 'आगरा जिले की बोली', 'भाषा और संवेदना', 'अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या', 'हिंदी साहित्य की अधुनातन प्रव त्तियां', 'कामायनी का पुनर्मूल्यांकन', 'मध्यकालीन हिंदी काव्य भाषा', 'हिंदी काव्य एक साक्ष्य', 'कविता यात्रा', 'गद्य की सत्ता', 'स जन और भाषिक संरचना', 'इतिहास और आलोचना द ष्टि', 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास', 'काव्य भाषा पर तीन निबंध', 'प्रसाद', 'निराला', 'अज्ञेय', 'साहित्य के नए दायित्व', 'कविता का पक्ष', 'समकालीन हिंदी साहित्य - विविध परिद श्य', हिंदी गद्य विन्यास और विकास तथा 'तारसप्तक' से गद्य कविता आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

आनंद प्रकाश दीक्षित

'रस सिद्धान्त का स्वरूप विश्लेषण'

डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी

'रस विमर्श'। आदि प्रमुख शास्त्रीय आलोचना के लेखक उनकी कृति है।

शोध अनुसंधान आलोचना का विगत कुछ वर्षो से अत्यधिक विकास हुआ है।

डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने पाठालोचन की पद्धति का उपयोग करते हुए 'वीसल देव रास', 'पद्मावत', 'चंदायन' तथा 'म गावती' आदि का पाठ शोधन किया। **डॉ. दीन दयाल गुप्त** अष्ट छाप और बल्लभ संप्रदाय, **डॉ. राजपति दीक्षित** - तुलसीदास और उनका युग, **डॉ. विजय पाल सिंह** - 'केशव और उनका काव्य', **डॉ. सरयू प्रसाद अग्रवाल** - 'अकबरी दरबार के हिंदी कवि', **डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित** - 'रस सिद्धांत : स्वरूप मीमांसा', **डॉ. हीरा लाल माहेश्वरी**-'राजस्थानी भाषा और साहित्य', आदि

पी.एच.डी. एवं डी.दि्. उपाधि हेतु लिखे गए शोध प्रबंध हैं। ऐसे शोध प्रबंधों की वर्तमान समय में गणना करना भी कष्ट साध्य, श्रमसाध्य एवं असंभव कार्य हो गया है। शोध प्रबंध की ऐतिहासिकता अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि हिंदी का प्रथम शोध प्रबंध भारत में नहीं अपितु इटली में एल.पी.टेसीटरी द्वारा लिखा गया जिसका अनुवाद डॉ. राधि प्रसाद त्रिपाठी ने रामचरितमानस और बाल्मीकि रामायण के नाम से किया।

भारत वर्ष में हिंदी का प्रथम शोध प्रबंध 'हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय' पीतांबर दत्त बड़थ्वाल के द्वारा सन् 1934 ई. में काशी हिंदी विश्व विद्यालय वाराणसी में उपाधि हेतु प्रस्तुत किया गया। नई कविता ने नई समीक्षा को जन्म दिया।

हिंदी आलोचना साहित्य के विकास में लहर, 'नई धारा', 'साहित्य संदेश', 'कल्पना', 'आलोचना', तथा 'माध्यम' आदि पत्रिकाओं का विशेष योगदान रहा है। वास्तव में हिंदी आलोचना सर्व भावेन विकसित एवं प्रौढ़ है। आलोचना के क्षेत्र में आचार्यो एवं प्रध्यापकों का योगदान अविस्मरणीय है। आलोचना का भविष्य अति उज्जवल है।

34. दक्खिनी हिंदी साहित्य

'दक्खिनी' शब्द का विश्लेषण है जो 'दक्खिन' से व्युत्पन्न है। दक्खिन 'दक्षिण' का तद्भव रूप है जिसका अर्थ दक्षिण दिशा से है। इस दक्खिनी हिंदी का सामान्य अर्थ दक्षिण अर्थात् दक्षिणी भारत में प्रयुक्त होने वाली भाषा हिंदी। 'दक्षिणी' का तद्भव रूप 'दक्खिनी' है। दक्खिनी अर्थ दक्षिण दिशा में पड़ने वाले देश के निवासी था उनकी भाषा को दक्खिनी कहते हैं।

मध्य युग में दक्षिण भारत में प्रचलित हिंदी का वह रूप जिसमें मुसलमान कवि कविता करते थे और आधुनिक उर्दू के विकास का घनिष्ठ संबंध है। दक्खिनी, दखनी या दकनी का प्रयोग दो अर्थों में होता है। इसका अर्थ है दक्षिण निवासी मुसलमान। दूसरा अर्थ है, दक्खिनी या दकनी ज़बान (भाषा)। हाब्सन-जाब्सन कोश के अनुसार 'देकनी' हिंदुस्तान की एक विचित्र बोली है जिसे दक्षिण के मुसलमान बोलते हैं। दक्खिनी देश की स्वाभाविक भाषा है। दक्खिनी हिंदी की एक शैली है। इसका यह नाम देशपरक है इसमं अपेक्षाकृत विदेशी (अरबी, फारसी) शब्दों की मात्रा भी अल्प है।

अबकर के समय में मुगल सम्राटों की भाषा ने हिंदुस्तानी को नया रूप प्रदान किया। अकबर द्वारा लिखी ब्रजभाषा की पंक्तियों तथा मिर्जा खां द्वारा प्रयुक्त **'तुहफ़ातुल हिंद'** दक्षिण में जिस भाषा का उदय हुआ उसे 'उर्दू' नाम दिया गया। यह वास्तव में हिंदी अर्थात् हिंदवी का ही एक रूप है जिसमें अरबी फारसी के शब्दों का बाहुल्य है।

15वीं शताब्दी में अमीर खुसरो की भाषा हिंदी-हिंदुस्तानी थी। सिक्खों की भाषा तथा उसके गुरुपद हिंदुस्तानी में मिलते हैं। उस समय भारतीय मुस्लिम संस्कृति का विकास हुआ। तत्संबंधित भाषाएं दक्षिण में उत्तरी भारत की भाषाओं से भिन्न रूप ग्रहण करने लगीं। उत्तरी भारत वाले मुसलमान दक्षिण भारत आकर जिस हिंदी या हिंदुस्तानी का प्रयोग करते थे उसे दकनी - हिंदी या दकनी कहा गया। इसी में साहित्य का विकास होने लगा। 15वीं, 16वीं तथा 17वीं सदी के लेखकों ने दकनी हिंदी द्वारा फ़ारसीकरण का मार्ग प्रशस्त किया। अर्थात् दक्षिण की हिंदुस्तानी में अरबी-फारसी के शब्दों के प्रयोगधिक्य के द्वारा फारसीकरण किया जाने लगा। फारसी अरबी की लिपि को बढ़ावा मिला। 'आधुनिक कालीन दकनी' पर उत्तरी भारत की उर्दू का अधिक प्रभाव पड़ा जिसके परिणामस्वरूप 'दकनी' अब केवल एक स्थानीय बोली मात्र नहीं रह गई। अपितु दक्खिनी ने साहित्यिक रूप ग्रहण करना प्रारंभ कर दिया। 17वीं व 18वीं शताब्दी के उत्तरी भारत के मुसलमानों द्वारा प्रयोग किया जाने लगा तथा 'दक्खिनी' को नया नाम 'रेख्ता' दिया गया। यह बाहरी उपादानों की परिपुष्ट तथा पचावट की 'यावनी' भाषा बनी। यवनों की भाषा को 'यावनी' कहा गया। उसे 'उर्दू या मुसलमानी हिंदी' का प्रचार प्रसार दिल्ली लखनऊ तक ही सीमित नहीं रहा अपितु खड़ी बोली से मिलकर कोलकाता तक पहुंच गया। खड़ी बोली जिसमें हिंदी एवं उर्दू का समन्वित रूप है उससे 19वीं सदी में कोलकाता के फोर्ट विलियम कॉलेज में हिंदी उर्दू अर्थात् हिंदुस्तानी से खड़ी बोली गद्य का आविर्भाव हुआ।

डॉ. उदयनारायण तिवारी ने लिखा है -

"इसके अतिरिक्त गंभीरता से ग्रियर्सन के थिन पर विचार न करने से कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि हिंदुस्तानी, रेख्ता, उर्दू दक्खिनी पर्यायवाची हैं, जो ठीक नहीं है।"

साहित्यिक के प्राचीन नमूने 'दक्खिनी' में उपलब्ध हैं और बाद में वली औरंगावादी ने इसी में कविता की। अकबर के काल में दक्षिण में मालवा, खानदेश, बरीरर तथा गुजरात आदि थे। औरंगजेब ने शासन विस्तार किया। छः प्रांतों - बरार, खानदेश, औरंगबाद, हैदराबाद अथवा बीदर तथा बीजापुर तक राज्य विस्तार कर दक्षिण की सीमा में व द्धि की। जहां की भाषा दक्खिनी थी। दक्खिन प्रदेश पर आक्रमण के कारण उत्तर भारत के अनेक व्यक्ति एवं परिवार जिनमें हिंदु मुसलमान दोनों थे दक्षिण गए। इस्लाम को ग्रहण करने वाले नव मुसलमान थे। सैनिकों के साथ उनका संस्कार तथा उनकी भाषा भी आई। उत्तर भारत के बिहार, अवध तथा राजस्थान से संबंध थे। इनकी संपर्क भाषा खड़ी बोली थी। खड़ी बोली दिल्ली के आस पास की भाषा थी किंतु इनकी लिपि नागरी न होकर फारसी थी। फ्रेंच विद्वान गासो-द-तासी ने दक्खिनी हिंदी की इस विशिष्टता को देखते हुए इसे राष्ट्रीय भाषा कहा है।

दक्खिनी को 'हिंदवी' तथा हिंदी नाम से भी अवहित किया गया। हिंदवी आज भी दक्खिनी का पर्याय है। उस समय खड़ी बोली उत्तर भारत में उतना विकास नहीं कर सकी जितना विकास उसने दक्षिण में आकर किया जिसके प्रमुख कारण, दूरस्थ दिल्ली, राजकार्यालयों में प्रयोग, हिंदू मुसलमानों में समन्वय, शांतिपूर्ण परिवेश तथा सूफी फकीरों का होना आदि है। दक्खिनी का इतिहास 14वीं से 18वीं सदी तक लगभग पांच सौ वर्ष में व्याप्त है। दक्खिनी के विकास केन्द्र बीजापुर, गोलकुंडा, गुलबर्गा एवं बीदर थे। बहमनी, कुतुबशाही एवं आदिलशाही राज्य दक्खिनी के पोषक एवं संरक्षक थे। दक्खिनी को प्रारंभ में हिंदवी के नाम से जाना जाता था। डॉ. परमानंद पांचाल ने दक्खिनी का विवेचन करते हुए इसके संपूर्ण स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है -

दक्खिनी हिंदी, हिंदी का वह पूर्व रूप है जिसका विकास प्राय 14 वीं से 18वीं सदी तक दक्षिण के बहमनी, कुतुबशाही और आदित्यशाही आदि राज्यों के सुल्तानों के संरक्षण में हुआ था। यह मूलतः दिल्ली के आस-पास की हरियाणी एवं खड़ी बोली ही थी जिस पर ब्रज, अवधी तथा पंजाबी के साथ मराठी, सिंधी, गुजराती और दक्षिण की सहवर्ती भाषाओं अर्थात् तेलुगु, कन्नड़ तथा पुर्तगाली आदि का भी प्रभाव पड़ा था और अरबी, फारसी, तुर्की तथा मलयालम आदि देशी विदेशी भाशाओं के शब्द भी प्रचुर मात्रा में ग्रहण किए थे। इसके लेखक और कवि प्रायः इस्लाम के अनुयायी थे। इसे एक प्रकार से सबसे मिश्रित भाषा कहा जा सकता है।

दक्खिनी हिंदी के कवि एवं काव्य

राहुल सांकृत्यायन ने 'दक्खिनी हिंदी काव्य धारा' की रचना की है जिसमें उन्होंने दक्खिनी हिंदी के लगभग पांच सौ वर्षो को तीन कालों - आदिकाल, मध्यकाल तथा आधुनिक काल से विभाजित किया है।

आदिकाल

आदिकाल का समय सन् 1400 - 1500 ई. तक माना है। इस काल के प्रमुख कवियों में बंदानेवाज, शाहमीरांजी, अशरफ, फीरोज, बुरहानुद्दीन जामम, एकनाथ, शाह अली तथ वजही का उललेख किया है।

ख़्वाज़ा बंदानेवाज

इनका वास्तविक नाम सैयद मुहम्मद हुसैनी था। दूसरा नाम 'गेसू दराज' था। 'बंदानेवाज' का शाब्दिक अर्थ भक्तों पर दया करने वाला होता है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी राम को 'बंदानेवाज' कहा। 'गेसूदराज' का अर्थ लंबे बालों वाला होता है। 'गेसू' का अर्थ बाल है। रीति कालीन कवियों ने समस्यापूर्ति में इस शब्द का प्रयोग किया है -

लाम के मानिंद हैं गेसू मेरे घनश्याम के।

काफिर है वह जो बंदा नहीं इस लाम का।।

इनको दक्खिनी में विशेष ख्याति मिली। वे दक्षिणी भारत के ख्वाजा मुईउद्दीन चिश्ती (अजमेर) हैं।

सैयद मुहम्मद हुसैनी (सन् 1318-1420 ई.)

सैयद मुहम्मद हुसैनी का जन्म दिल्ली में हुआ था पिता का नाम युसुफ राजा हुसैनी था जो निजामुद्दीन औलिया के शिष्य थे। बाद में सैयद मुहम्मद हुसैनी भी निजामुद्दीन के शिष्य हो गए। इनके पिता सूफी संत एवं अच्छे कवि थे। सन् 1326 ई. में सैयद मुहम्मद हुसैनी ने दक्षिण की प्रथम यात्रा की। मुहम्मद तुगलक के दिल्ली से दौलताबाद राजधानी बदलने के कारण इनके पिता को भी दौलताबाद जाना पड़ा। जहां कुछ दिनों बाद उनका इंतकाल हो गया। उस समय सैयद मुहम्मद हुसैनी दस वर्ष के थे। चौदह वर्ष की अवस्था में उन्हें किसी कारण से दक्षिण से उत्तर आना पड़ा।

इनकी पत्नी रिजा खातून दिल्ली की थी। दो पुत्र एवं तीन पुत्रियां हुई। सन् 1400 ई. में पुनः हसनाबाद आ गए।

रचनाएं - फारसी के विद्वान थे। नागरी लिपि के ज्ञाता थे। दक्खिनी भाषा को फारसी लिपि में लिखा। फासरी में भी रचनाएं की दक्खिनी की कृतियों में **'चक्की नामा'** (पद्य), **'मेराजनामा'** (गद्य) तथा **'सेः पारा'** (गद्य) प्रमुख हैं। जिनमें गुरू की महत्ता, बाह्याडंबर की निंदा, पैगंबर की श्रेष्ठता तथा आत्मशुद्धि का प्रतिपादन किया है।

शाह मीरां जी

शाह मीरां का जन्म मक्का में हुआ था धर्म प्रचारार्थ भारत आए। कुछ दिन उत्तर में रहकर बीजापुर चले गए। बयाबानी के शिष्य थे। इनका निधन सन् 1497 ई. में हो गया। इन्हें **'शंशुल-उश्शाक'** भी कहते थे जिसका अर्थ **'प्रेमियों'** का सूर्य या **'भक्त सूर्य'** होता है।

रचनाएं - **'खुशनामा'** (पद्य), **'खुशनब्ज'** (पद्य), **'शहादतुल-हकीकत'** (पद्य), **'शाह मर्गूबुल-कुतुब'** (गद्य) तथा **'सबरस'** (गद्य) हैं।

बुरहानुद्दीन जानम

शाह मीरां जी के पुत्र बुरहानुद्दीन जानम (सन् 1544 - 1584 ई.) श्रेष्ठ विद्वान एवं सूफी संत थे। इन्होंने अपनी भाषा को **'हिंदी'** कहा।

रचनाएं-**'इरशाद नामा'** तथा **'कल्मतु हकायक'** - 1582.

वजही

दक्खिनी को चरमोत्कर्ष पर पहुंचाने का श्रेय वजही को है। डॉ. जोर ने वजही के विषय में लिखा है -

"वजही कई बातों के लिहाज से दक्खिन का एक अद्विातीय साहित्यकार है। उसका विषय स्वयं उसकी मानसिक उपज है। उसको इस बात का अभिमान था कि उसने और कवियों की तरह दूसरो के विषय उधार नहीं लिया। दूसरी भाषाओं से अनुवाद करना या दूसरे के विषय को उधार लेना उसकी द ष्टि में चोरी और दगाबाजी जैसा अपराध था।........ वजही वह सौभाग्यशाली कवि है जिसकी रचना के गद्य और पद्य दोनों नमूने इस समय मौजूद हैं। ये दोनों उसकी साहित्यिक शक्ति के सबसे अच्छे सबूत हैं। गद्य 'सबरस' के गुणों से साहित्य प्रेमी अपरिचित नहीं हैं और उसके पद्य कुतुब मुश्तरी के अध्ययन से कहा जा सकता है कि वह गोलकुंडा का बहुत बड़ा शायर है।....... वह वस्तुतः दक्खिन का एक आला करजे का कवि था। उसने बहुत अच्छा मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। उसमें बनावटी और रूढ़िगस्त विचारों का कोई स्थान नहीं है। उनसे मालूम होता है कि सर्वप्रथम उर्दू (दक्खिनी) कवियों ने हिंदी कविता का अनुकरण आरंभ किया था। यदि वह इस पर कायम रहते तो शायद उनकी कवि आज किसी दूसरे ही रंग में होती।"

रचनाएं-**'कुतुब मुश्तरी'** तथा **'सबरस'**।

मध्यकाल

इस काल का समय सन् 1500-1660 ई. तक माना गया है। इस काल के कवियों में **मुहम्मद कुली, अब्दुल, अमीन, गौवासी, तुकाराम, मीरां हुसैनी, अफजल, मुकीमी, कुतबी, अब्दुल्ला कुतुब, सनअती, खुशनूर, रुस्तमी** तथा **निशाती** प्रमुख हैं।

मुहम्मद कुली

मुहम्मद कुली (सन् 1564 - 1612 ई.) सन् 1580 ई. में गद्दी पर बैठा। कुली साहित्य कला प्रेमी शासक था। उसने लगभग एक लाख शेरों की रचना की। उसने परमार्थ, प्रेम, संस्कृति तथा सौंदर्य आदि पर शेर लिखे।

गौवासी

गौवासी दक्खिनी हिंदी के प्रतिनिधि कवियों में प्रमुख थे। ये अब्दुल्ला कुतुबशाह के राजकवि थे।

रचनाएं-**'सैफुल्मलूक-व-बदी उज्ज माल'** तथा **'तूतीनामा'**। **'सैफुल्मलूक-व-वदी उज्जमाल'** कथा काव्य है जिसकी कथा अलिफ लैला की कहानी पर आधारित है। इसमें ईश्वर स्तुति, संस्कृति, सौंदर्य, प्रेम, प्रकृति, विरह तथा युद्ध आदि सुंदर वर्णन किया गया है। तूतीनामा की रचना सन् 1639 ई. में सैफुल्मलूक से चौदह वर्ष बाद हुई है। जिसमें आश्रयदाता की भूरिभूरि प्रशंसा की गई है।

सनअती

रचनाएं-सन् 1645 ई. में **'किस्सा बेनजीर'** कथाकाव्य की रचना हुई। जिसमे 1615 शेर हैं। आदिलशाह की प्रशंशा की है।

खुशनूद

रचना - इनकी अनूदित रचना **'हश्त बहिश्त'** है अमीर खुशरो की रचना **'हश्त बहिश्त'** है सुल्तान मुहम्मद आदिल से प्रेरित होकर इसका अनुवाद किया।

आधुनिक काल

इस काल का समय सन् 1660 - 1840 ई. तक है। इस काल के कवियों में **नस्त्रती, मीरांजी खुदानुमा, तबई, गुलाम अली, इश्रती, जईफी, मुहम्मद अमीन, वज्दी, वली दकनी, वली वेल्लोरी, हाशिम अली, कयासी, बाकर अगाह,** तथा **तुराब दखनी** आदि प्रमुख हैं-

नस्त्रती

दक्खिनी हिंदी कवियों में नस्त्रती का महत्वपूर्ण स्थान था। ये औरंगजेब के समकालीन थे। बीजापुर के रहने वाले थे। नस्त्रती का परिवार सेना से सम्बद्ध था। प्रसिद्ध सूफी संत गेसूदराज का अनुयायी था।

रचनाएं-'गुल्शने इश्क' - इसमें मनोहर और मधुमालती के प्रेम का वर्णन किया गया है। प्रेम की प्रधानता के कारण उसका नाम प्रेट वाटिका है।

'अलीनामा'-चरित काव्य है जो सुल्तान अली आदिल से सम्बद्ध है। इस कथा काव्य में औरंगजेब शिवा जी और मालाबार के राजा के साथ महत्वपूर्ण युद्धों का सुंदर वर्णन है।

तबई

तबई (सन् 1672 - 1687 ई.) कुतुबशाह का दरबारी कवि था। दक्षिण का अंतिम महाकवि था।

रचना-'बहरामो गुलदाम' - इसमें 1340 शेर हैं। तबई ने इसका स जन 40 दिनों में किया।

वली दकनी

इनका नाम वली मुहममद था। वली मुहम्मद (सन् 1682 - 1730 ई.) के साथ पुरानी दक्खिनी धारा की परिसमाप्ति थी। उसके बाद उर्दू काव्य धारा का युग प्रारंभ हुआ। ये संधिकाल के महाकवि थे।

बाकर आगाह

आगाह (सन् 1745 - 1805 ई.) का जन्म वेल्लोर में हुआ था। अरबी, फारसी तथा उर्दू के ज्ञाता थे।

रचनाएं - अकायद नामा, तोहफतुन्निसा, हश्त बहिश्त (आ. भाग), रिया जुल्जनां, महबूबुल्कुलूब, हाशिया मन दर्पण, तोहफये-अहबाब, मेराज नामा, हिदायत नामा, गुल्जारे इश्क, रूप सिंगार, दीवान आगाह, रौजत-ल्-इस्लाम, फरायद-दर-अक्रायद, रियाज-स्-सैन, खम्सा मुत्बहरा, फिर्क हाय इस्लाम।

काव्यगत विशेषताएं

दक्खिनी हिंदी का काव्य सम द्ध है। काव्य धारा लंबी है। गद्य-पद्य दोनों की रचनाएं हुई। अधिकांश कवि मुसलमान हैं। सूफी धर्म एवं दर्शन का प्रभाव है। काव्यगत विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

दक्खिनी हिंदी की प्रशंसा

दक्खिनी हिंदी के रेखता, रेरन्ती, हिंदी, हिंदवी, हिंदुई आदि अनेक नाम हैं। कवियों ने इनकी महत्ता का गुणगान किया है। संस्कृत फारसी के ज्ञान के बिना भी दक्खिनी आसानी से समझी जा सकती है ऐसा सनअली का कहना है। अशरफ तथा बुहानुद्दीन ने दक्खिनी हिंदी की शक्ति और सामर्थ्य की प्रशंसा की है।

सौंदर्योपासना

दक्खिनी हिंदी के कवि सौंदर्य के अनूठे कवि हैं उन्होंने सौंदर्य की व्यापक अवधारणा की है। नर-नारी दोनों के सौंदर्य का वर्णन किया है। सौंदर्य वर्णन की द ष्टि से मुहम्मद कुली का नाम उल्लेखनीय है। वह गोलकुंडा का रंगीलेशाह था। उसने अनेक छंदों में नखशिख वर्णन और नायिकाओं के विभिनन प्रकारों का सौंदर्य निरूपण किया है। इस बादशाह कवि की अनेक प्रमिआएं थीं इसलिए उनके सौंदर्य पर भी छंद रचना की है। उसकी प्रमिकाओं में भागमती का महत्वपूर्ण स्थान था। वह बड़ी कलावंत नारी थी। उसे रूप चित्रण की आड़ में कवि ने सौंदर्य के अनुपन विश्व का स जन किया है। नखशिख वर्णन में नयन, कपोल, बाल, भौंह आदि का अति उत्तेजक एवं मादक वर्णन किया है। प्रेम कथा को अपने काव्य का विषय बनाया।

सैफुल्मलूक का वदी उज्जमाल ने पुरुष सौंदर्य का अंकन किया है। इनके सौंदर्य वर्णन में स्वाभाविकता है।

प्रेम व्यंजना

इनका काव्य मूल प्रतिपाद्य प्रेम है। इन्होंने प्रेम के अनेक रूपों तथा अनेक चित्रों को पूर्ण सफलता से अंकित किया है। प्रेम प्रतीक्षा, प्रेम उल्लास, प्रेम पिपासा, प्रेम मदिरा, प्रेम सुख, प्रेम दुख, प्रेम पाती, प्रेम अग्नि तथा प्रेम प्रभाव आदि प्रेम निरूपण के अनेक विषयों के द्वारा इन कवियों ने प्रेम की व्यंजना की है। प्रेम में विरह की आकुलता-व्याकुलता की व्यंजना अति सहजता से की है। वली दकनी का प्रेम व्यंजना में महत्वपूर्ण स्थान है। मुहम्मद कुली ने भी प्रेम का वर्णन किया है।

संस्कृति निरूपण

दक्खिनी कवियों में संस्कृति के प्रति अपार प्यार है। संस्कृति के बाह्यांतर दोनों प्रश्नों का वर्णन किया है। बंदा नेवाज की रचना से : पारा में प्रश्नोत्तर शैली अपनाई गई है। जो नीतिगत चेतना की व्यंजना करते हैं। उदाहरणार्थ गद्यांश प्रस्तुत है -

"**सवाल** - ईमान के झाडां क्या? और ईमान के डाल्यां क्या? और ईमान के बाद और ईमान का वतन क्या? और ईमान का बीज क्या? और ईमान का पोस्त क्या? और ईमान का का जीव क्या?

जवाब - ईमान की जीव कुरान। ईमान की जड़ तोबा। ईमान की डाल्यां सो बंदगी। ईमान की बात परहेजगारी। ईमान का तुख्म से इल्म। ईमान का पोस्त शर्म। ईमान का वतन सो मोमिन का दिल है।"

सवाल-जवाब में मानव के आचार-विचार, प्रेम-घ णा, आस्था-निष्ठा के विवेचन के द्वारा अच्छा मनुष्य बनने के लिए मानो आचार-संहिता प्रस्तुत कर दी है। इसके अतिरिक्त उत्सव-त्यौहार, मंगलाचरण, जन्मोत्सव - वर्षगांठ, विवाह - संस्कार, विवाह - भोज, सोहागरात, बारात - विदाई, नव वर्ष (नीरोज) आदि विभिन्न सांस्कृतिक आयामों का विशद वर्णन है।

प्रकृति चित्रण

दक्खिनी काव्य में प्रकृति के अनेक रूपों का सजीव, उद्दीपक, प्रेरणार्थक रूपों का वर्णन किया गया है। गर्मी, सर्दी, शरद, बसंत, वर्षा एवं हेमंत आदि ऋतुओं का मनोहारी रूप वर्णित है। प्रातः, मध्याह्न, संध्या का सजीव, मोहक चित्रांकन किया गया है। मुहम्मद कुली ने ऋतुराज वसंत का अति मादक एवं उत्तेजक रूप वर्णित किया है। वसंत की संपूर्ण सुषमा जीवंत हो उठी है।

वन शोभा, उद्यान शोभा, निशा सौंदर्य, आदि सुंदर वर्णन गौवासी में द ष्टिगोचर होता है। रात का स्वाभाविक चित्र उकेरने में गोस्वामी को अपूर्ण सफलता मिली है।

आश्रयदाता की प्रशंसा

अधिकांश कवि राज्याश्रित थे जिन्होंने रीतिकालीन कवियों की भांति अपने आश्रयदाता राजा की प्रशंसा मुक्त कंठ से की है। वजही तत्कालीन गोलकुंडा के बादशाह कुतुबशाह का राज कवि था। गौवासी का आश्रयदाता सुल्तान अब्दुल्ला कुतुबशाह था। मसनवी शैली के अनुसार कवियों में समसामयिक राजाओं की वंदना तथा प्रशंसा की है। प्रशंसा की शब्दावली द्रष्टव्य है तबई ने अपने आश्रयदाता सुल्तान अबुल हसन कुतुबशाह की प्रशंसा में लिखी है -

"शह अबुलहसन सच तूं शाहेदखिन। तुजे शाहराज् मदद बुल्हसन।।

दिया है खुदा वादशाही तुझे। सोहाता है जल्ले इलाही तुझे।।

शहंशह तू आज दिन सूर है। तेरे परते शाहा बला दूर है।।

मलाहत में ज्यों सूर चंदर है तूं। सलावत मने ज्यों सिकंदर है तू।।

खुदा बंदगी

प्रायः अधिकांश दक्खिनी कवि इस्लाम धर्मानुयायी हैं। खुदा में उनको विश्वास है, आस्था है। इसलिए उनकी बंदगी में कहीं चूक नहीं की है। अल्ला का हक कहीं नहीं मारा है। अल्ला बंदगी में अपनी खैर मानते हैं।

अशरफ ने अपनी रचना में अल्ला को दुनिया की सारी चीजों को बनाने वाला मानकर मंगलाचरण में ईश्वर का गुणगान किया है।

शाह बुरहान, गौवासी, ख्वाजा बंदानेवाज, खुशनूद बाकर आमाह आदि सभी ने अल्लाह की बंदगी की है। वाकर आगाह ने पैगंबर मुहम्मद के अनेक चित्रों को अपनी रचना में उकेरा है जिसमें मुहम्मद की आकृति, प्रकृति तथा वेशभूषा आदि की छटा वर्णित है।

स्वदेश प्रेम

इनकी कोई व्यापक राष्ट्रीयत नहीं थी किन्तु दक्खिनी क्षेत्र के प्रति उनमें अपार प्यार है। उसी को देश प्रेम के रूप में वर्णित किया है। कवि वजही का देश प्रेम वर्णन प्रशंसनीय है -

"दखिन सा नहीं ठार संसार में,
निपज फाजिला का है इस ठार में,
दखिन है नगीना अंगूठी है जग,
अंगूठी कुं तुर्मत नगीना है लग।
दखन मुल्क कूं धन अजब साज है,
कि सब मुल्क सिर हो दखिन ताज है।
दखिन मुल्क मौते च खामा अहै,
तिलंगाना उसका खुलासा अहै।

-कुतुब मुश्तरी।

युद्ध वर्णन

दक्खिनी काव्य धारा के कवियों में युद्धों का सजीव एवं जीवंत वर्णन किया गया है। ऐसे कवियों में नस्त्रती, इश्रती, वली वेल्लोरी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। नस्त्रती का शिवाजी और अली आदिल का पनाला में सन् 1661 ई. का युद्ध वर्णन दर्शनीय है -

"खडगां खनाखन सूर धर सूरां के यों बजने लगे।

जोहए का जोहरा गुल रह्या आवाज सुन झलकार का।।

खडगां खडगां लग अधिक चौधरते यों चिंगियां उड़ियं।

ज्यों आगकियां बिजलियां चमक वरस्यों बदल अंगार का।।"

कला शिल्प

दक्खिनी हिंदी के कलापक्ष का विवेचन करते हुए डॉ. श्रीराम शर्मा ने लिखा है -

"दक्खिनी के आरंभिक उच्चारण का विश्लेषण नव आर्यभाषाओं के ध्वनि संबंधी विवेचन के लिए महत्वपूर्ण है। यह विवेचन उस समन्वय प्रणाली से अवगत कराता है। जिसके कारण हिंदी भाषा क्षेत्र की विविध बोलियों, अरबी, फारसी, तुर्की तथा पश्तो आदि मराठी तेलुगु, कन्नड़ क्षेत्र की अनेक उपभाषाओं और बोलियों की ध्वनि संबंधी विविधताओं के बीच साहित्यिक दक्खिनी की ध्वनियां सुनिश्चित एक रूपता प्राप्त कर सकीं।"

दक्खिनी हिंदी में उपमा, रूपक, यमक, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा तथा अतिशयोक्ति आदि अलंकारों की सुंदर समायोजना की गई है।

दक्खिनी कवियों ने अविधा, लक्षण एवं व्यंजना शब्द शक्तियों का सुंदर प्रयोग किया है। प्रसाद एवं माधुर्य गुज की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। इसके अतिरिक्त रीतियों का भी प्रयोग किया गया है। विंब विधान एवं प्रतीक योजना का सफल निर्वाह किया गया है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों का समावेश किया गया है। भाषा सहज, सरल, शक्तिशाली, प्रभावोत्पादक एवं संप्रेषकीय है। भाषा भावनुसारिणी है। शिल्पविधान एवं भावविधान विचारनुसार हैं।

भाषा में संस्कृत, अरबी, फारसी, तुर्की, अवधी, ब्रज, तमिल, तेलुगु तथा कन्नड़ आदि के आधार भाषा गद्य एवं पद्य दोनों की खड़ी बोली है जिसे इन्होंने दक्खिनी नाम दिया है। इनकी भाषा को गंगा यमुनी कहा जा सकता है। आलोचकों ने मिश्रित भाषा भी कहा है। भाषा का समन्वित विधान सांस्कृतिक सूत्रबद्धता तथा राष्ट्रीयता को द ढ़ता प्रदान करने वाला है।

35. उर्दू साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

आगरा तथा दिल्ली के आस-पास की हिंदी अरबी-फारसी तथा अन्य विदेशी शब्दों के सम्मिश्रण से विकसित हुई है। इसका दूसरा नाम 'उर्दू' भी है। मुसलमानी राज्य में यह अंतर्प्रांतीय व्यवहार की भाषा थी। 19वीं शताब्दी में 'हिंदुस्तानी' का शब्द उर्दू का वाचक बन गया था। इसी को पुराने 'एंग्लो इंडियन', मूर भी कहते थे। स्पेन तथा पुर्तगाल वालों के अनुसार मूर मुसलमान थे।

उर्दू हिंदुस्तानी की वह शैली है जिसमें फारसी शब्द अधिक मात्रा में प्रयुक्त होते हैं तथा जो केवल फारसी लिपि में लिखी जा सकती है। हिंदुस्तानी, रेखता, उर्दू तथा दक्खिनी को पर्याय माना गया। उर्दू का प्रसार केवल नागरिक मुसलमानों तथा सरकारी दफ्तरों से संबंध रखने वाले लोगों तक ही सीमित रहा है। 19वीं सदी में दक्खिनी की परिणति उर्दू में हुई। उर्दू के देश व्यापी प्रचार-प्रसार के लिए दिल्ली में अंजुमन तरक्किए उर्दू की स्थापना हुई। उर्दू तुर्की शब्द है जिसका अर्थ तातार खान का पड़ाव या खेमा है। तुर्किस्तान ताशकंद तथा खोकंद में उर्दू का अर्थ किला है। शाही पड़ाव के अर्थ में उर्दू शब्द भारत में संभवतः बाबर के साथ आया तथा दिल्ली का राजभवन 'उर्दू ए मुल्ला' अथवा 'महान शिविर' कहलाने लगा। दरबार तथा शिविर में जिस मिश्रित भाषा का आगमन हुआ उसे 'जबाने उर्दू' कहा गया। उर्दू वास्तव में दरबारी भाषा है जनसाधारण से उसका कोई संबंध नहीं।

उर्दू भाषा का जन्म

सैयद इंशा ने स्पष्ट कहा है -

"लाहौर, मुल्तान, आगरा, इलाहाबाद की वह प्रतिष्ठा नहीं है जो शाहजहानाबाद या दिल्ली की है। इसी शाहजहानाबाद में उर्दू का जन्म हुआ है, कुछ मुल्तान, लाहौर या आगरा में नहीं।" उर्दू की जन्म कथा कुछ इस प्रकार है -

"शाहजहानाबाद के खुशबयान लोगों ने एक मत होकर अन्य अनेक भाषाओं से दिलचस्प शब्दों को जुदा किया और कुछ शब्दों तथा वाक्यों में हेर-फेर करके दूसरी भाषाओं से भिन्न एक अलग नई भाषा ईजाद की और उसका नाम उर्दू रख दिया।"

उर्दू शाहजादगाने तमूरिया (तैमूरी राजकुमारों) की ही जबान है और किला ही उस जबान की टकसाल थी।

मुहम्मद हसन आजाद ने उर्दू को 'ब्रजभाषा' से निकली जबान कहा है।

मीर अमन देहलवी ने उर्दू को 'बाजारी एवं लश्करी भाषा' कहा है।

डॉ. उदय नारायण तिवारी का कहना है कि लाहौर में उस समय पुरानी खड़ी बोली प्रचलित थी। उसी को विदेशियों ने व्यवहार की भाषा बनाया। इस प्रकार फौज की भाषा जो बाद में उर्दू कहलाई, 'खड़ी बोली' से उत्पन्न हुई।

जार्ज ग्रियर्सन बोलचाल की ठेठ हिंदुस्तानी से ही साहित्यिक उर्दू की उत्पत्ति मानते हैं।

श्री ब्रजमोहन दत्तात्रेय कैफी ने अपने अक्तूबर, 1951 के ओरियंटल कांफ्रेंस लखनऊ के भाषण में उर्दू की उत्पत्ति के संबंध में विचार करते हुए कहा था।

"शौरसेनी प्राकृत में विदेशी शब्दों सम्मिश्रण से ही उर्दू की उत्पत्ति हुई। इसे हिंदुस्तानी भी कहा जा सकता है।"

कतिपय भाषा शास्त्रियों के अनुसार खड़ी बोली में फारसी शब्दों के सम्मिश्रण से ही उर्दू की उत्पत्ति हुई।

'हिंदुस्तानी ठेठ' हिंदी का ही पर्याय है। और इसी को कतिपय विद्वानों ने खड़ी बोली नाम दिया। उर्दू की उत्पत्ति हिंदी से हुई और उर्दू वास्तव में हिंदी की ही एक शैली है।

उर्दू की जबान वस्तुतः एक वर्ग विशेष की भाषा है और यह नितांत कृत्रिम ढंग से हिंदुस्तानी अथवा ठेठ हिंदी या खड़ी बोली में अरबी फारसी शब्दों तथा मुहावरों का सम्मिश्रण करके बनाई गई है। यह कार्य दिल्ली में ही किला मुअल्ला में सम्पन्न हुआ इसलिए इसको 'जबाने-उर्दू-ए-मुअल्ला' भी कहते हैं।

सैयद इंशा अल्ला के अनुसार -

"यहां (शाहजहानाबाद) के खुशबयानयों (साधु वक्तव्यों) ने मुलफिक (एकमत) होकर मुताद्दिक (परिगठित) जबानों से अच्छे-अच्छे लफ्ज निकाले और बाजी इबारतों (वाक्यों) और अल्फाज (शब्दों) में तसर्रुफ (परिवर्तन) करके और जबानों से अलग एक नई जबान पैदा की जिसका नाम उर्दू रखा।"

उर्दू ने भाषा का रूप मीर की म त्यु सन् 1799 ई. के पश्चात लिया जब मसहबी ने लिखा -

"खुदा रक्खे जबां हमने सुनी है मीर वा मिरजा की।

कहें किस मुंह से हम ऐ मसहफी उर्दू हमारी है।।"

उत्तरी भारत में उर्दू भाषा का साहित्य 19वीं सदी में प्रारंभ हुआ जबकि दक्खिनी में इससे पांच सौ वर्ष पूर्व काव्य स जन होना प्रारंभ हो गया था।

उर्दू साहित्य के विकास को मुख्य रूप से तीन - आरंभिक, मध्य एवं आधुनिक कालों में विभक्त किया जा सकता है। आरंभिक काल में उर्दू काव्य का विकास दक्षिणी भारत में दक्खिनी के मसनवी रूप में हुआ। मध्यकाल में उत्तरी भारत मुख्य रूप से दिल्ली-लखनऊ के राजाओं के दरबारी वातावरण में हुआ मध्यकाल तक उर्दू कविता मुख्य रूप से गजल के रूप में इश्क और हुश्न के तंग गलियारों में अपनी कलाबाजी दिखलाती हुई सुरा-सुंदरी की तरह लोगों का दिल बहलाव करती रही। प्रेमाव त्ति की प्रधानता रही जो मनुष्य की मूलभूत पूंजी है।

आधुनिक काल में उर्दू का चरित्र बदल गया नज्म का जमाना आ गया। नज्म ने मनुष्य के व्यापक जीवन संघर्षो और लोक जीवन की अनेक समस्याओं तथा उसके यथार्थ से नाता जोड़ लिया। अब उर्दू काव्य ऐसे मैदान में प्रव ष्ट हो गया था जहां किसी आश्रयदाता का सहारा दूर-दूर तक द ष्टिगोचर नहीं होता था अपने ही बाहुल, संघर्ष शक्ति तथा बौद्धिकता का भरोसा था। जीवन का पाथेय यही बना। देश, समाज और जीवन की भाव भूमि के समक्ष खड़ा उर्दू कवि पलायन का नहीं संघर्ष का मार्ग चयन कर देश-समाज के कदम से कदम मिलाते हुए अग्रसर होने का प्रयासी बन गया था। काव्य प्रव त्ति के अनुसार विकास के कालों को 'मसनवी काल', 'गजल काल' तथा 'नज्म काल' भी कह सकते हैं। 'गजल काल' में लखनऊ में मरसिया शोक गीत का विकास हुआ किंतु वह मुख्य प्रव त्ति नहीं थी।

उर्दू साहित्य - आरंभिक काल : दक्खिनी काव्य

उर्दू भाषा का जन्म एवं विकास उत्तरी भारत के दिल्ली के आस - पास हुआ किंतु साहित्य का सर्वप्रथम उद्गम एवं विकास दूर दक्षिण भारत में हुआ। जिसे 'दक्षिणी देशीय काव्य', 'दक्खिनी उर्दू काव्य' या 'दक्खिनी काव्य' से अभिहित किया गया। उर्दू भाषा एवं साहित्य को प्रारंभ से राजकीय संरक्षण प्राप्त था जिससे विकसित प्रतिष्ठित होकर भी जन मानस की आकांक्षा की पूर्ति न कर सकी। बादशाहों ने भी उत्कृष्ट रचनाएं की।

प्रथम कवि

दक्खिनी के प्रथम कवि 'सैयद मुहम्मद हुसैनी' हैं इन्हें दो अन्य ख्वाजा बंदानेवाज (भक्तों पर कृपा करने वाले) तथा गेसू दरात (लंबे बालों वाले) नामों से भी पुकारा जाता था। सूफी संत कवि थे। उन्होंने गद्य-पद्य दोनों की रचनाएं की।

उर्दू साहित्य का विकास

इनके अतिरिक्त लगभग चालीस मुसलमान कवियों ने मसनवी शैली में प्रबंध काव्य तथा मुक्तक रचनाएं की जिनमें अकबर हुसैनी, निजामी, मुहम्मद कुली, कुतुबशाह, वजही, गौवासी, शेख मुहम्मद जुनेद, इब्न निशाती, इश्रती, तबई, नुस्रती, हाशिमी, आतिशी, अमीन, मुकीमी, सनाती, रुश्तमी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

मुहम्मद कुली कुतुबशाह दक्खिनी काव्य के विशेष कवि थे। ये आध्यात्मिक थे। साहित्यिकता एवं काव्यत्व की द ष्टि से इनके काव्य में उत्कृष्टता नहीं है किन्तु भाषा और साहित्य के विकास की द ष्टि से इनका ऐतिहासिक महत्व है।

दक्खिनी काव्य की विशेषताएं

उर्दू साहित्य के आरंभिक काव्य या दक्खिनी काव्य की विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

ईश्वर में विश्वास - इस काल के कवियों को अल्ला में पूर्ण आस्था थी। उनकी स्तुति एवं गुणगान में अनेक छंद उपलब्ध हैं। ईश्वर को एक माना है। पैगंबर मुहम्मद की आकृति, प्रकृति तथा वेशभूषा का वर्णन किया है।

दक्खिनी की प्रशंसा - उत्तर से दक्षिण को श्रेष्ठ ही नहीं सिर का ताज माना है। संस्कृत, फारसी आदि अन्य भाषाओं से अधिक सम्मान दक्खिनी को दिया है। हिंदवी में बाचा करना, तकरीर हिंदवी सब बखान, 'यों मैं हिंदवी कर आसान', आदि कथन दक्खिनी की प्रशंसा में कहे गए हैं।

आश्रयदाता - प्रशंसा - आश्रयदाता राजाओं के दरबारों में रहकर जीवन यापन करते थे। मसनवी के अनुसार शाहे तख्त की वंदना की है।

स्वदेश प्रेम - राष्ट्रीयता की भावना व्यापक नहीं थी उनका देश दक्षिण सीमित प्रदेश था। उससे उन्हें अत्यधिक प्रेम था। उसे इन्होंने 'दखिन सा नहीं ठार संसार में', 'दखिन है नगीना अंगूठी है जग', सब मुल्क सिर होर दखिन ताज है' आदि कथनों के द्वारा दक्षिण या स्वदेश प्रेम का वर्णन किया है।

सौंदर्य प्रेम - नर नारी के सौंदर्य का वर्णन, नख-शिख वर्णन में नायिका के नयन, कपोल, बाल, भौं आदि का सुंदर वर्णन किया है।

प्रेम-व्यंजना - प्रेम मानव की मूलभूत पूंजी है इसके अनेक प्रेम प्रतीक्षा, प्रेम उल्लास, प्रेम पिपासा, प्रेम मदिरा, प्रेम सुख, प्रेम दुख, प्रेम पाती, प्रेम प्रभाव आदि रूपों के साथ साथ विरह की सहज व्यंजना की है।

प्रकृति प्रेम - ग्रीष्म, वर्षा, शरद, वसंत, हेमंत तथा शिशिर आदि ऋतुओं, प्रातः मध्याह्न, संध्या तीनों कालों के साथ-साथ वन, लता, पशु-पक्षी, आदि का सुंदर चित्र उपस्थित किया है। वसंत का मादक एवं उत्तेजक वर्णन करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

संस्कृति प्रेम - संस्कृति में ईमान, वतन, जीव, कुरान, तोबा, बंदगी, परहेजगारी, तुख्म से इल्म, शर्म, मोमिन का दिल आदि एक ही स्थान पर सवाल-जवाब के द्वारा जीवन की नैतिकता एवं कर्तव्यपरायणता का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त, उत्सव-त्यौहार, मंगलाचरण, वर्षगांठ, जन्मोत्सव, जन्म दिन, विवाह, बारात विदाई, सोहागरात आदि का वर्णन किया है। कुली ने नव वर्ष (नीरोज) का सुंदर वर्णन किया है।

युद्ध वर्णन - युद्ध का सजीव एवं जीवंत वर्णन करने में नस्त्रती, इश्रती वली वेल्लोरी आदि उल्लेखनीय हैं। शिवाजी - अली आदिल के पनाला के युद्ध वर्णन में तलवारों की खनखनाहट ध्वनि काव्य का सौंदर्य प्रस्तुत कर देता है।

काव्य शिल्प - दक्खिनी के उच्चारण तथा आर्य भाषाओं के ध्वनि संबंधी विवेचन महत्वपूर्ण हैं। समन्वय की प्रणाली है। अरबी, फारसी एवं तुर्की के साथ-साथ अवधी, ब्रज, तथा पश्वों, मराठी, तेलुगु एवं कन्नड़ आदि देशी-विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया है। प्रसाद, ओज एवं माधुर्य मयी भाषा में रीतियों का भी समावेश किया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास तथा अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का सुंदर प्रयोग किया गया है।

उर्दू साहित्य - मध्यकाल

मध्यकालीन उर्दू साहित्य के विकास में दिल्ली एवं लखनऊ का विशेष योगदान रहा है। इसी के आधार पर मध्यकालीन उर्दू साहित्य को भागों में विभक्त किया जा सकता है।

दिल्ली - उर्दू साहित्य -

उर्दू भाषा की उत्पत्ति दिल्ली के आस पास हुई किंतु पांच सौ वर्षो तक साहित्य स जन दक्षिण में चलता रहा। दिल्ली उर्दू भाषा एवं साहित्य का प्रभुत्व बनाए रही। 18वीं शताब्दी में ऐतिहासिक परिवेश में परिवर्तन हुआ। उर्दू भाषा एवं साहित्य में नई चेतना आई। उर्दू भाषा एवं साहित्य का विकास दक्षिण से उत्तर आया। इसका श्रेय 'वली औरंगावादी' को है। उन्होंने उर्दू भाषा को दिल्ली में प्रतिष्ठित किया। दिल्ली यात्रा के मध्य वली ने दो महत्वपूर्ण कार्य -

i. उर्दू भाषा का प्रचार प्रसार किया तथा उर्दू की लोकप्रियता में व द्धि की।

ii. गजल एवं मरसिया विधा को मसनवी के समानांतर प्रतिष्ठा प्रदान की।

वली औरंगाबादी -

दिल्ली में वली और उनकी गजलों का अत्यधिक स्वागत हुआ। उसने फारसी के साहित्यकारों को उर्दू लेखन हेतु बाध्य कर दिया। फारसी भाषा के विद्वान कवि फितरत, उन्मीद, बेदिल, नदीम तथा आरजू आदि शिष्यों के अनुरोध पर उर्दू के शेर लिखने लगे जिनमें एक पंक्ति फारसी की तथा दूसरी पंक्ति उर्दू की होती थी। फारसी के कवियों ने स्वाभाविक रूप से दो भाषाओं को काव्य का माध्यम बनाया। जिसके संयोग से नई भाषा बनने लगी। मुगल सत्ता के प्रभाव घटने के परिणाम स्वरूप फारसी का प्रभाव भी घटने लगा। बादशाह मुहम्मद शाह उर्दू कविता का प्रेमी हो गया। उसी समय नादिरशाह दुर्रानी ने दिल्ली पर आक्रमण करके दिल्ली सल्तनत की नींव हिला दी। फारसी कवियों का राजकीय संरक्षण समाप्त हो गया फलस्वरूप जनभाषा उर्दू को सिर उठाने का अवसर मिल गया।

18वीं 19वीं शताब्दी में उर्दू कविता दिल्ली में खूब फूली भली। फारसी का प्राधान्य होने से जन मानस से दूर रही। प्रेम, सौंदर्य तथा शाश्वत सच्चाइयों की अभिव्यक्ति ने इसे लोकप्रिय बनाया। उर्दू के साथ से अब दक्खिनी शब्द अलग हो गया 18वीं शती के उर्दू साहित्य का विकास दो चरणों में हुआ। प्रथम में उर्दू कविता की नींव तैयार हुई और द्वितीय में उर्दू कवियों ने उस नीव पर भव्य महल का निर्माण किया।

प्रथम चरण के विषय में रघुपति सहाय फिराक, गोरखपुरी ने लिखा है -

प्रथम चरण या प्रारंभिक काल की चार विशेषताएं हैं -

i. दकनी शब्द का बहिष्कार।

ii. सूफियाना विषयों की कमी और ठोस भौतिक प्रेम प्रदर्शन।

iii. वर्णन में पहले से अधिक सफाई तथा प्रवाह।

iv. शाब्दिक अनुरूपता तथा द्वयअर्थक शब्दों का अधिक प्रयोग।

इस प्रव त्ति से संबंधित शायरों में खान आजू, शाह मुबारक आबरू, अशरफ अली फुगा, शाह हातिम, मिर्जा जानाजाना, मअहर, तांबा आदि उल्लेखनीय हैं।

द्वितीय चरण के शायरों ने उर्दू कविता को उन्नति के शिखर पर पहुंचा दिया जिनमें मीर तकी मीर, मुहम्मद रफी सौदा, दर्द एवं स्वज के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। पूर्ववर्ती उर्दू कविता की न्यूताओं से मुक्ति दिलाकर उसे रवानी दी। इस काल को उर्दू का स्वर्ण काल कहा जाता है।

समसामयिक कटु यथार्थ का विवेकपूर्ण प्रस्तुतीकरण किया गया। मीर की शायरी की उच्चता गालिब को भी नहीं मिली। आक्रमण कारियों के अत्याचारों से 'मीर तथा सौदा' दिल्ली छोड़ गए। 19वीं शताब्दी में उर्दू कविता को पुनर्जीवित करने वालों में हकीम मोमिन खां मोमिन, शेख इब्राहिम जौक, मिर्जा असदुल्ला खां गालिब, बहादुर शाह जफर, आदि का नाम बड़े गौरव से लिया जाता है। इनके अतिरिक्त दिल्ली में उर्दू कविता के पुनरुत्थान में योगदान देने वाले शायरों में शाहन सीर, सेफता, तसकीन, नसीन देहलवी तथा अनवर आदि के नाम प्रमुख हैं। गालिब युग निर्माता कवि हैं। इसलिए इस युग को गालिब युग की संज्ञा दी जाती है।

लखनऊ : उर्दू साहित्य

लखनऊ की उर्दू शायरी को लखनवी उर्दू कविता का नाम दिया गया है। 18वीं शताब्दी में नादिरशाह, अहमदशाह तथा मराठों-जाटों के अत्याचार से शायरी दिल्ली से उचट गई। दिल्ली के स्थान पर लखनऊ उर्दू कविता का केन्द्र बन गया। लखनऊ के अलावा फर्रुखाबाद, टांडा, अजीमाबाद, मुर्शिदाबाद, हैदराबाद तथा रामपुर के राजदरबारों में शायरों ने शरण ली। अन्य स्थानों की अपेक्षा उर्दू शायरी का गढ़ लखनऊ बन गया।

लखनऊ ने उर्दू शायरी पर अपना रंग जमाया तथा उसे दिल्ली शायरी से अलग कर दिया। लखनवी उर्दू कविता को सजाने-संवारने वालों में नासिख, आतिश, अनीस तथा दबीश का नाम प्रमुख है। लखनऊ में सौदा, जौक, मुसहफी तथा इंशा

ने उर्दू कविता का प्रसार-प्रचार किया। यदि नवाबों ने शायरों को शरण न दी होती, उन्हें बुला-बुलाकर सम्मानित एवं पुरस्कृत न किया होता तो लखनऊ में उर्दू शायरी का वह दौर न चल पाता जिसके लिए वह अलग से जानी-पहचानी जाती है। आसुफद्दौला, सआदत खां तथा वाजिद अली शाह 'अख्तर' आदि नवाबों ने उर्दू कविता को सम द्धि प्रदान की। अख्तर के चालीस ग्रंथों का उल्लेख मिलता है।

लखनऊ का परिवेश प्रारंभ में गजल के लिए काफी मुफीद था। लखनऊ की प ष्ठभूमि ने मरसिया को प्रतिष्ठित किया। मरसियाकारों में मीर बबर अली, अनीस, मिर्जा सलामत अली दबीर, रशीद, आरिफ तथा नफीस आदि के नाम प्रमुख हैं। अनीस की शायरी में सहजता, सरलता तथा अलंकार प्रियता है तो दबीर में आलंकारिक क्लिष्टता, जटिलता तथा कल्पना की प्रधानता है। अनीस भाववादी तथा दबीस कलावादी शायर थे।

उर्दू साहित्य - आधुनिक काल

सन् 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के पश्चात् राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में परिवर्तन आया। अंग्रेजी शासन की सुद ढ़ता तथा उनसे मुक्ति पाने के लिए भारतीयों की बेचैनी ने सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की। महात्मा गांधी का आंदोलन चल पड़ा। सन् 1947 में भारत स्वतन्त्र हो गया। इन घटनाओं से उर्दू कविता पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। एकांत प्रेम अब युगीन समस्याओं का चित्रण करने लगे।

मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आजाद' तथा अलताफ हुसैन 'हाली' ने हालरायड की प्रेरणा से सन् 1874 ई. में ही लाहौर में एक नए मुशायरी की नींव डाली। 'हाली' ने स्थानीय रंग, वास्तविकता से लगाव तथा जीवन के सच्चे चित्रण पर बल दिया। आजाद की प्रेरणा से उर्दू कविता में नवीन चेतना का उदय हुआ। उर्दू कविता का कायाकल्प हो गया। विषयवस्तु एवं क्षेत्र में विस्तार हुआ। आधुनिक काल की शायरी ने अपनी संकुचित भावभूमि का परित्याग कर जीवन के अहम् समस्याओं से जोड़ा तथा उसने अति संयम से युगीन चेतना का चित्रण किया।

उर्दू साहित्य - नवजागरण

उर्दू साहित्य के नवजागरण (सन् 1874 - 1935 ई.) ने राष्ट्र एवं सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति की। आधुनिक उर्दू का प्रारंभ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से हुआ। अंग्रेजों ने ज्ञान-विज्ञान की नवीन उपलब्धियां प्रदान की जिससे देश भक्ति तथा स्वतन्त्रता की विचारधारा का उदय हुआ। राजनीतिक आंदोलन तथा सुधारवादी आंदोलनों से उर्दू कविता प्रभावित हुई। मौलाना हुसैन, आजाद, अलताफ हुसैन, हाली, दुर्गा सहाय सुंरूर, पं. ब्रज नारायण चकबस्त तथा इकबाल जैसे शायरों ने उर्दू कविता में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति की तथा देश प्रेम, राष्ट्रभक्ति एवं जातीय भावना का प्रसार किया। आजान ने भारतीयों को साहस के साथ अग्रसर होने का संदेश दिया। आजाद ने गद्य-पद्य दोनों की रचनाएं की। नज्मे आजाद तथा अबेहयात इनकी प्रसिद्ध कृतियां हैं। दुर्गा सहाय सुरूर राष्ट्रीय भावना के कवि थे। उनकी राष्ट्रीय भावना में संकीर्णता तथा इस्लामपरस्ती को स्थान नहीं मिला।

डॉ. इकबाल ने "सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा" देश को महत्वपूर्ण तराना दिया।

उर्दू कवियों ने सामाजिक कुरीतियों एवं धार्मिक आडंबरों की कटु आलोचना की। जीवन मूल्यों को अपनाने के लिए प्रेरणा दी। बाल-विवाह तथा सती प्रथा के विरोध में शायरी लिखी।

उर्दू साहित्य - प्रगतिवादी काव्य धारा

सन् 1936 ई. में प्रेमचंद की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखक संघ का अधिवेशन हुआ। इस लड़ाई में उर्दू के तरक्की पसंद शायद पीछे नहीं रहे। जमाने के दुख दर्द को पहचाना तथा भारतीयों के मुक्ति संघर्ष को शायरी का विषय बनाया। उर्दू शायरी के प्रगतिवादी शायरों में जोश मलीहावादी, अहसान दानिश, रघुपति सहाय फिराक गोरखपुरी, फैज अहमद फैज, अली सरदार जाफरी, साहिर लुधियानवी, अहमद नदीम 'कासिम', मजाज लखनवी, कैफी आजमी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। जोश महीलावादी को 'शायरे इन्कलाब' तथा अहसान 'दानिश' को 'शायरे मजदूर' कहा जाता है। उर्दू शायरी में भौतिकवादी द ष्टिकोण आया। मार्क्स का भी प्रभाव पड़ा। जोश मलीहावादी ने इंसानियत को दीन-ईमान कहा। धर्म के ठेकेदारों की उड़कर निंदा

की। अली सरदार जाफरी ने धर्म की आड़ में होने वाले अत्याचारों और अनाचारों का पर्दाफाश किया। थोथी धार्मिकता की कटु आलोचना की। बंदगी और सिजदे का विरोध किया। शोषण-शोसित वर्ग को नष्ट कर साम्यवादी व्यवस्था का प्रतिपादन किया। फिराक ने श्रमिकों के स्वाभिमान एवं शक्ति को जाग त करते हुए बड़ी क्रांतिकारी रचना प्रस्तुत की।

उर्दू साहित्य - प्रयोगवादी काव्यधारा

सन् 1943 ई. में अज्ञेय ने 'तारशप्तक' का प्रकाशन किया। प्रयोगवादी काव्य रचना का श्री गणेश हुआ। द्विवेदी विश्व युद्ध के पश्चात् कुछ उर्दू शायरों ने परराष्ट्रीय इंग्लैंड, अमेरिका तथा फ्रांस के कतिपय कवियों - टी.एस. इलियट, एजरा पाउंड, पो बादलियर, हल्डा डुल्टन आदि से प्रेरित होकर नवीन शायदी की शुरुआत की। जो प्रगतिवादी उर्दू कविता के विरुद्ध एक नया काव्यांदोलन था। प्रगतिवादी उर्दू कविता ने नारेबाजी का रूप धारण कर लिया था। उसमें काव्यत्व हीनता आ गई थी। शायर बाह्य चित्रण में ऐसा रम गया था कि आंतरिक सौंदर्य पर उसकी द ष्टि ही नहीं जाती थी। स्वतन्त्र सत्ता तथा वैयक्तिक समस्याएं उपेक्षित हो गई। अभिव्यक्ति को प्रधानता दी गई। मानवीयता पर बल दिया गया। प्रयोगवादी शायर फ्रायड तथा सार्त्र से प्रभावित रहे हैं। उर्दू के प्रयोगवादी शायरों ने शिल्पगत प्रयोगों के साथ आजाद नज्म पर जोर दिया। इस नवीन काव्य प्रव ति को उर्दू में हल्क-ए-अरबाब जौंक की संज्ञा दी गई। इस हलके से इत्तिफांक रखने वाले शायरों ने नून.मीम. राशिद, मीरा जी, युसुफ जफर, अख्तरुल ईमान, सलाम, मछली शहरी, करयूम नजर, मुख्तार सिद्दिकी, मुमताज मुफ्ती तथा हसन अस्करी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रयोगवादियों ने प्रतीकों के माध्यम से वैयक्तिक अनुभवों की अभिव्यक्ति को प्रमुखता दी। तरक्की पसंद वालों पर मार्क्स तथा हलकाए अरबाबे जौक पर फ्रायड का प्रभाव था। प्रयोगवादी अंतश्चेतनावादी थे।

राशिद, मीराजी, अख्तरुल ईमान तथा मख्मूर जालंधरी ने वस्तु और शिल्प के स्तर पर नए-नए प्रयोग किए तथा आजाद नज्म को जिसे बेकाफिया शायरी भी कहते हैं उसे काफी लोकप्रिय बनाया। राशिद की गुनाह और मुहब्बत, एक दिन लारेंस बाग में, जुरअते परवाज तथा शराबी आदि नज़्मों में उनके व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन और मनोविश्लेषणवादी यथार्थ को कई रूप-रंगों में देखा जा सकता है। राशिद की शायरी में पलायनवाद है। जिंदगी को बेनकाब पाकर सातवीं मंजिल से छलांग लगार खुदकुशी करना चाहता है।

उर्दू साहित्य : स्वातंत्र्योत्तर युग

लंबे संघर्ष के बाद देश सन् 1947 ई. में आजाद हुआ। ब्रिटिश हुकूमत से निजात पाने की खुशी थी तो देश के टुकड़े हाने का दर्दनाक गम था। शायरों ने आजादी का स्वागत किया। पर शोक भी मनाया। जोश मलीहावादी, मजाज, तथा मुल्ला जैसे शायरों ने आजादी का स्वागत किया। जोश ने 'तराना-ए-आजादी' नज्म लिखी। कुछ दिनों बाद ही 'मातमे आजादी' लिखकर उसका मातम भी मना डाला। फैज ने सुबहे-आबादी नज्म में 'दाग-दाग' 'उजाला' देखा। सरदार जाफरी ने ऐसे ही माहौल-'आजादी नहीं धोखा है'-में आजादी-आजादी कहकर खुशियां मनाने वालों से बड़ी संजीदगी से पूछा -

"कौन आजाद हुआ?

× × ×

मादरे हिंद के चेहरे पर उदासी है वही।"

'राही मासूम रजा' ने पंजाब दंगे और देश विभाजन की बड़ी ही दर्दनाक नज्म लिखी और कहा कि इस बंटवारे ने देश को ही नहीं, जिंदगी की तमाम चीजों को काट-बांट कर रख दिया है।

स्वातन्त्र्योत्तर उर्दू शायरी में अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति भी चेतना जागी। उर्दू के शायरों ने रूस, एशिया, चीन, कोरिया, मिश्र, ईरान, फिलिस्तीन आदि देशों से संबंधित उन समस्याओं पर नज्में लिखी जिनसे अंतर्राष्ट्रीय संबंधित जगत प्रभावित होता है। फैज ने 'ईरानी तुलना के नाम', 'इन्कलाव-ए-रूस' तथा फिलिस्तीनी बच्चों के लिए जो नज्में लिखीं हैं उनसे व्यापक द ष्टिकोण का पता लगता है। फैज, जोश, जिगर तथा फिराक जैसे पिछली पीढ़ी के शायर गजल लिखते रहे। यथार्थवादी और रोमानी दोनों प्रकार की गजलें हैं। व्यक्तिगत सुख-दुख, आशा-निराशा तथा प्रेम-विरह के साथ-साथ युगीन समस्याओं को गजल में अभिव्यक्ति देकर परंपरागत स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। गमें-जानां एवं गमें दौरां एक दूसरे से समन्वित हो गए।

उर्दू साहित्य : नया युग

सन् 1950 ई. के बाद उर्दू शायरी में नई कविता जैसा नया दौर शुरू हो गया जिसमें शायरों की चेतना नए आलोक में नई जिंदगी के निर्माण के लिए विकल हो उठी। नया जीवन, नया उत्साह, नई आशाएं जन्मीं जिसके परिणामस्वरूप शायरी ने भी नया मोड़ लिया। सन् 1950-1960 ई. के बीच नई काव्य चेतना से परिपूर्ण शायरों में खलीलुर्रहमान, बाकर मेहदी, वहीद अख्तर, अमीक हनफी, मजहर, राही, मासूम रजा, बलराज कोमल आदि उल्लेखनीय हैं। खलीलुर्रहमान आजमी - आइनाखाने में , कागजी पैरहन, तथा नया अहद नामा, बलराज कोमल - मेरी नज्में तथा दिल का रिश्ता, राही मासूम रजा - रक्से मय, अजनबी शहर तथा अजनबी रास्ते एवं अमीक हनफी - संग पैराइन तथा सिंवाद जैसी रचनाओं में नयेपन को गति प्रदान की। नव्य धारा पर आधुनिकतावाद का गहरा प्रभाव है। इन शायरों ने जीवन की विसंगतियों, विडंबनाओं एवं जटिल जीवनानुभूतियों की अभिव्यक्ति हेतु नई भाषा और नए शिल्प का आविष्कार किया। नव्य धारा के चलते हुए गजल की उपेक्षा नहीं हुई। इस समय इब्ने इंशा, खलीलुर्रहमान आजमी, मुनीर नियाजी तथा जफर इकबाल ने गजल विधा को सम द्ध किया। नए शहरों ने उर्दू गजल को नई भाषा, नई जमीन और नई चेतना दी।

उर्दू साहित्य : साठोत्तरी युग

सन् 1960 ई. के बाद उर्दू शायरी ने करवट बदली। अतिवादी प्रव त्तियां उभरीं। ऐसे शायरों में शहर यार, विमल किरन अश्क, इफ्तेखार जालिब, शन्शुर्रहमान फारूखी जाहिदा जैदी, अहमद हुमैश तथा हसन कमाल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

साठोत्तरी उर्दू शायरी में आधुनिक जीवन द ष्टि के विकास के साथ-साथ समकालीन सामाजिक एवं राजनीतिक प्रश्नों से उलझने और उनके यथार्थ रूप में चित्रांकन की चेतना जाग त हुई। आठवें दशक में जब जनवादी चेतना का उदय हुआ तो उर्दू शायरी में जनता की समस्याओं को चित्रित करने और जनसंघर्ष में उर्दू साहित्य की भूमिका को रेखांकित करने के प्रयास हुए। किन्तु सन् 1960 ई. के बाद भी आदिल मंसूरी, विमल कृष्ण अश्क, शहरयार, शम्शुर्रहमान फारूखी, बशीर बद्र, निदा फाजली तथा शीन-फाफ-निजाम आदि शायर गजल विधा को सम द्ध करने में लगे रहे।

उर्दू साहित्य - प्रमुख काव्य रूप

उर्दू शायरों ने फारसी साहित्य से विषय वस्तु, शब्द संपदा, अप्रस्तुत योजना तथा द्वंद्वों का ही ग्रहण नहीं किया है अपितु काव्य रूप भी लिए हैं। उर्दू में जिन काव्य रूपों का प्रयोग हुआ है उनमें मसनवी, गजल, नज्म, मरसिया, कसीदा, हज्व, रूबाई, वासोख्त और मुखम्मस विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अलावा शहर आशोब्हम्द, नात, सलाम, नौहा, कतअ, फर्द, रेख्ती, मुस्तजाद, तरकीब, बंद तथा तर्जोऊबद आदि काव्य रूप भी प्रचलित रहे हैं। किंतु उर्दू शायरी में इनका विशेष विकास नहीं हुआ है।

मसनवी

सूफी प्रबंधात्मक शायरी को मसनवी कहते हैं यह एक शैली विशेष है जिसे मसनवी शैली कहते हैं। मसनवी एक ऐसा काव्य रूप है जिसके हर शेर के दोनों मिस्रे एक ही रटीफ और काफिए में होते हैं, लेकिन विभिनन शेरों के रदीफ और काफिए एक दूसरे से अलग होते हैं। पूरी मसनवी का एक ही छंद में होना अथा प्रवाह के लिए अनिवार्य होता है।

दक्खिनी

अशरफ - नौसरहार - सन् 1503 ई.; निजामी - कदमराव पदमराव; शाहमीरांजी - खुशनुमा तथा खुशनग्ज; निशाती-फूलवन; सनअती - किस्सा वे नजीर; तंबई - बहराम व गुलराम; मुहम्मद अमीन - युसूफ जुलेखा; इशरती - दीपक पतंग; नुस्रती - गुलशने इश्क तथा अलीनामा जैसी मसनवियां लिखकर उर्दू की मसनवी काव्य परंपरा को सम द्ध किया। इसे प्रेम गाथा काव्य धारा या मसनवी काव्य परंपरा कहा जा सकता है।

उत्तर भारत

उत्तर भारत में गजल विधा का विकास हुआ किंतु मसनवी शैली को भी जीवित रखा। मीर तकी मीर - अजगर नामा, जोशे इश्क, शोला-ए-इश्क, दरया-ए-इश्क, एजाज-ए-इश्क, कमालात-ए-इश्क आदि विशेष महत्व की हैं। दाग - फरियादे दाग; मोमिन - कौले गर्मी; विशेष उल्लेखनीय हैं। मीर हसन - सेहरुल बयान, दयाशंकर नसीम - गुलजारे नसीम व हत्काय हैं।

नवाब मिर्जा शौक लखनवी - फरेबे इश्क, जहरे इश्क, तथा बहारे इश्क लिखकर इश्क के सुख-दुख का अनुभूतिपूर्ण वर्णन किया है।

आधुनिक काल

आधुनिक काल में नज्म को व्यापक स्वीकृति मिली। हाली - तअस्सुब, इंसाफ, 'रहमो इंसाफ', 'हुब्बे वतन' तथा 'वर्षा ऋतु' जैसी मसनवियां लिखी। मसनवी जीवन के यथार्थ से जुड़ गई। इकबाल - साकीनामा तथा सरदार जाफरी - नई दुनिया को सलाम, जैसी मसनवियों में समसामयिक राजनीतिक सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति की।

गजल

गजल उर्दू की सबसे अधिक लोकप्रिय विधा है। गजल से महफिलें रंगीन होती है। मुशायरे जवां होते हैं। गजल का शाब्दिक अर्थ - प्रेमिका से वार्तालाप है। गजल का प्रधान विषय प्रेम है। गजल में सब कुछ फारसी से लिया गया। अन्दाजें बयां ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रेमी वार्ता से उठकर गजल आध्यात्मिक विचारों की गूढ़ता का भावात्मकता के साथ प्रस्तुत करने का माध्यम बन गई। इसमें बसीर एवं मिर्जा गालिब का विशेष योगदान है। लोकप्रिय एवं गजल की अबाध परंपरा को शुरू करने का श्रेय दक्षिण के प्रसिद्ध शायरा औरंगावादी को है। शाह मुबारिक आबरू, पकरंग, खान आरजू, फुगां, तांबा, मजहर आदि शायरों ने दिल्ली में उर्दू गजल की नींव डाली। उसी नींव पर मीर सौदा, सोज, दर्द आदि ने उर्दू गजल की भव्य इमारत खड़ी कर दी। मीर गजल के बादशाह थे। मोमिन, जौक, गालिब तथा जफर ने उर्दू गजल को शिखर तक पहुंचाया।

आधुनिक काल में गजल का चरित्र बदल गया। गजल युग की दास्तान बन गई। शाद, हसरत, फानी, असगर, गोडवी तथा जिगर आदि ने गजल को सम द्ध किया। अकबर इलाहाबादी, चकबस्त, इकबाल, जोश, फैज तथा फिराक ने गजल को नए भावों और विचारों से सम द्ध करके उसे नई चेतना दी। आजादी के बाद गजल का भाववादी चरित्र यथार्थवादी हो गया। गजल परंपरा में हिंदी गजल कार दुष्यंत कुमार तथा कुंवर बेचैन ने अच्छा नाम कमाया। धन्यात्मकता, कोमल कांत पदावली, सरसता, अर्थ सघनता, सांकेतिकता, विशेषताएं हैं।

रेख्ती

उर्दू भाषा और गजल के लिए पहले रेख्ता शब्द प्रचलित हुआ था बाद में इसी के आधार पर स्त्रियों की भाषा को रेख्ती और उन्हीं की दशा को चित्रित करने वाली शायरी को रेख्तीकहा गया। रेख्ती उर्दू भाषा की 'जनाना शायरी' है जिसमें निम्न वर्गीय औरतों की गाली-गलौज और कामुक भाषा शैली में उन औरतों की काम वासनाओं, कुंठाओं एवं दूषित मानसिक भावनाओं का वर्णन हुआ है। रेख्ती शायरों ने स्तर से बहुत नीचे उतर कामुकता और अश्लीलता की ओर से अपनी गजलों को अलग से रेखांकित किया है। दक्षिण के शायर हाशमी में इसके प्रारंभिक बीज द ष्टिगोचर होते हैं।

कसीदा

कसीदा को प्रशस्ति शायरी कहा गया है। राजा-महाराजा शासनाधिकारी अथवा किसी महापुरुष की प्रशंसा में की गई रचना कसीदा कहलाती है। फारसी अनुकरण पर उर्दू में कसीदा शायदी आई। सौदा, जौक, अमीर, ईशा तथा मुसहफी उर्दू के प्रसिद्ध कसीदाकार हैं। 'सौदा' को कसीदा का सम्राट कहा जाता है। दरबारों के नष्ट होने से यह परंपरा समाप्त हो गई। फिराक ने कसीदा के चार अंग - 1. भूमिका, मुख्य विषय, 3. प्रशंसा तथा 4. आशीर्वचन माने हैं।

हज्व

कसीदा अर्थात् प्रशंसा के विपरीत हज्वः अर्थात् निंदा को हज्वः की संज्ञा दी गई है। इसमें कुकृत्यों, अत्याचारों, धार्मिक रूढ़ियों, सामाजिक कुरीतियों तथा गलत व्यवस्थाओं की आलोचना की जाती है। 'सौदा इसके सम्राट' हैं उन्होंने समसामयिक शायरों की निंदापरक शायरी की रचना की। 'मीर जाहिक', फिदवी, 'मौलवी', 'नुदरत', 'मीर, हकीम गौस' तथा 'मिया फीकी' आदि सभी उसकी निंदा से नहीं बच पाए हैं।

मरसिया

मरसिया शोक गीत है जो किसी अपने प्रिय की मौल पर लिखा जाता है। गजल की तरह मरसिया भी उर्दू लोकप्रिय विधा रही है। इसमें म त व्यक्ति के गुणों एवं कार्यो का वर्णन इस प्रकार किया जाता है कि सुनने वाले उससे प्रभावित होकर प्रेरणा

ग्रहण करें तथा गम में डूब जाएं। मरसिया रोने-रुलाने का उपादान है। इससे दया, प्रेम, सौहार्द, सहानुभूति तथा करुणा आदि की भावना का उदय होता है। मरसिया लिखने वाले शायरों में मोमिन, हाली, इकबाल, माजिक, चकवस्त तथा फैज आदि प्रमुख हैं। इमाम हुसैन की सहादत पर लिखे गए मरसिया में नाटकीयता एवं प्रबंधात्मकता है।

रुबाई

चार मिसरों अर्थात् पंक्तियों की रचना को रुबाई कहते हैं। इसमें पहले, दूसरे और चौथे मिसरे का रदीफ और काफिया एक होता है। पहले मिसरे में विषय का श्रीगणेश होता है। दूसरे तीसरे में विवेचन-विस्तार होता है चौथे में नाटकीय ढंग से मार्मिकता के साथ सार का प्रस्तुतीकरण किया जाता है। अर्थ के घनत्व के कारण रुबाई लोकप्रिय विधा रही है। इस क्षेत्र के शायरों में अनीस लखनवी, शाद, अजीमावादी, जोश मलीहावादी तथा फिराक गोरखपुरी आदि प्रमुख रहे हैं। फिराक की रुबाइयों का संग्रह रूप है। उमर खैय्याम की मधुशाला के आधार पर हरिवंश राय बच्चन ने मधुशाला लिखकर हालावाद चलाया।

नज़्म

आधुनिक काल की प्रमुख विधा नज़्म है। सन् 1867 ई. में मुहम्मद हुसैन आजाद ने नज्म को नई भावना एवं चेतना प्रदान की। सन् 1874 ई. में नज्म का विकसित रूप आया। इस वर्ष अंजुमने उर्दू की ओर से लाहौर में मुशायरा हुआ था। आजाद ने नज्म की वकालत की तथा देश एवं समाज से संबंधित नज्में पढ़कर श्रोताओं का दिल जीत लिया। नज्म के छोटी और लंबी दो रूप हैं। नज्म कारों में हाली, दुर्गा सहाय सरूर, ज्वाला प्रसाद बर्क, इकबाल, चकबस्त, जोश मलीहावादी, फैज, फिराक तथा अली सरदार जाफरी आदि प्रमुख हैं। इनकी नज्मों में राष्ट्रीयता का स्वर गूंजा तथा प्रगतिशील चेतना की अभिव्यक्ति भी हुई। नज्म की लोकप्रियता ने गजल को दबा दिया। इसे अतुकांत कविता भी कहा गया। गजल का प्रचलन अब भी है किंतु समसामयिक जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति का सशक्त एवं लोकप्रिय माध्यम आधुनिक काल में नज्म ही है। नज्म में भी आजाद नज्म (अतुकांत कविता) का विशेष महत्व है।

36. लघूत्तरी प्रश्न

1. **साहित्येतिहास-दर्शन का क्या अभिप्राय है?**

उत्तर सामान्यतः साहित्य समाज सापेक्ष होता है। प्रत्येक साहित्यकार अपने युगीन वातावरण एवं परिस्थितियों से अवश्य प्रभावित होता है और कभी-कभी वह अपनी रचना से युग को भी प्रभावित करता है। इस प्रकार साहित्य एवं युगीन स्थिति का परस्पर घनिष्ठ संबंध होता है। साहित्यिक रचना के साथ-साथ उस युगीन परिस्थितियों का अंकन करना ही साहित्येतिहास का दर्शन कहलाता है।

2. **साहित्येतिहास लेखन की कितनी विधियाँ हैं?**

उत्तर साहित्येतिहास लेखन की मुख्यतः निम्नलिखित विधियाँ होती हैं-

1. **अकारादिक्रम विधि** - इसमें साहित्यकारों का परिचय वर्णमाला के क्रमानुसार दिया जाता है।
2. **कालक्रम विधि** - इसमें साहित्यकारों के जन्म आदि के अनुसार उनकी रचनाओं का मूल्यांकन किया जाता है।
3. **परिस्थिति-प्रव त्तिमूलक विधि**- इसमें युग विशेष की परिस्थितियों के अनुरूप रचनाओं का वर्णन किया जाता है।
4. **वैज्ञानिक अनुसंधान विधि** - इसमें साहित्य के एक पक्ष को लेकर उससे संबंधित सभी तथ्यों का संकलन किया जाता है।
5. **समाजशास्त्र सम्मत विधि** - इस विधि में लेखक समाजशास्त्र के सिद्धान्तों को ध्यान में रख कर साहित्येतिहास की रचना करता है।

3. **साहित्येतिहास लेखन की अकारादिद्रम विधि से क्या अभिप्राय है?**

उत्तर यह साहित्येतिहास लेखन एक विधि है। इसमें वर्ण क्रम के अनुसार साहित्यकारों का परिचय दिया जाता है। यह अत्यधिक प्राचीन विधि है। इसका आधुनिक समय में प्रचलन नहीं के बराबर है। गासी त तासी द्वारा रचित 'इस्तवार द ल लित्रेत्यूर ऐंदुई ए ऐंदूस्तानी' इसी विधि द्वारा लिखा गया साहित्येतिहास है।

4. **कालक्रम विधि से क्या अभिप्राय है?**

उत्तर साहित्येतिहास लेखन की यह एक अपेक्षाकृत अच्छी विधि है। इसमें साहित्यकारों के जन्म काल के अनुसार उनकी रचनाओं को क्रमबद्ध करके अध्ययन किया जाता है। इस विधि की मुख्य त्रुटि यह है कि जिस कवि का जन्म बाद में हुआ है, परन्तु उसने रचना कम आयु में ही लिख दी है उसका नाम उस कवि के ऊपर आ जाता है जिसका पहले जन्म हुआ हो, परन्तु उसका साहित्यि जीवन बाद में आरम्भ हुआ हो। जार्ज ग्रियर्सन द्वारा रचित द माडर्न वार्नक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुतान इसी विधि द्वारा लिखा गया साहित्येतिहास है।

5. **परिस्थिति - प्रव त्तिमूलक विधि पर प्रकाश डालिए।**

उत्तर यह साहित्येतिहास लेखन की एक श्रेष्ठ विधि है। इसमें किसी युग विशेष की विभिन्न परिस्थितियों जैसे - धार्मिक, राजनीतिक आदि के आलोक में साहित्यकारों की रचनाओं का मूल्यांकन किया जाता है। इस विधि की मुख्य कमी यह है कि एक ही युग में विभिन्न जीवन-द ष्टि रखने वाले दो कवियों के साथ यह विधि समुचित न्याय नहीं कर पाती। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' इसी विधि द्वारा लिखा गया साहित्येतिहास है।

6. **हिंदी साहित्येतिहास लेखन में खड़ी बोली और इतर भाषाओं के समावेश पर प्रकाश डालिए।**

उत्तर हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की इस बड़ी समस्या की ओर शिवदान सिंह चौहान ने आकर्षित किया है। हिन्दी साहित्य के आरम्भिक और मध्य काल तक राजस्थानी, ब्रजभाषा, अवधी आदि भाषाओं में रचित साहित्य का बाहुल्य है और आधुनिक काल में खड़ी बोली का वर्चस्व स्थापित हो गया है। परन्तु आज भी अवधी, राजस्थानी आदि भाषाओं का

प्रचलन है और इनमें साहित्यिक रचनाएँ भी लिखी जा रही हैं। परन्तु आधुनिक साहित्य में उनका समावेश नहीं किया जाता। यही हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में खड़ी बोली और इतर भाषाओं के समावेश की समस्या है।

7. आदिकाल के नामकरण की विवेचना कीजिए?

उत्तर हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में आदिकाल का नामकरण एक विवादास्पद विषय रहा है। इसके नामकरण और काल-निर्धारण के संदर्भ में विद्वानों के विचार आपस में नहीं मिलते। आचार्य शुक्ल ने आदिकाल को 'वीरगाथाकाल', मिश्र बन्धुओं ने प्रारम्भिक काल, डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'संधि एवं चारण काल', राहुल सांकृत्यायन ने 'सिद्ध सामंतकाल' कहा है। इसी प्रकार इसकी काल-सीमा पर भी विद्वानों में असहमति है। अतः हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में आविर्भाव काल अथवा आदिकाल का नामकरण एक समस्या बना हुआ है।

8. आदिकाल के गद्य साहित्य का संक्षप्त विवरण दीजिए।

उत्तर हिन्दी साहित्य के आरम्भिक काल के कवियों ने अपनी पूर्ववर्ती कवियों का अनुसरण करते हुए अधिकांश साहित्यिक रचनाएँ पद्य शैली में ही लिखीं। फिर भी गद्य शैली का कुछ साहित्यकारों ने प्रयोग किया। आदिकाल गद्य साहित्य को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है-चम्पू काव्य जैसे 'राउलवेल', 'उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण', तथा शुद्ध गद्य साहित्य जैसे - वर्ण रत्नाकर।

9. हिन्दी साहित्य के आदिकाल के नामकरण एवं काल सीमा पर प्रकाश डालिए।

उत्तर जार्ज ग्रियर्सन ने आदिकाल को 'चारण काल' कहा है तथा इसकी सीमा 700 ई० से 1300 ई. माना है। मिश्रबन्धुओं ने आदिकाल को 'प्रारम्भिक काल' कहकर इसकी समय सीमा 700 वि. से 1444 वि. तक मानी है। आचार्य शुक्ल ने इसे 'वीरगाथाकाल' कहकर इसकी अवधि सं. 1050 से 1375 तक मानी है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसे दो भागों - संधि काल (सं. 750 से सं. 1000) तथा चारण काल (सं. 1000 - 1375) में बांटा है। हिंदी साहित्य के आविर्भाव काल को 'आदिकाल' नाम हजारीप्रसाद द्विवेदी ने दिया है तथा इसकी समय सीमा 1000 ई. से 1400 ई. तक मानी है।

10. आदिकालीन सांस्कृतिक व साहित्यिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर आदिकालीन युग में दो संस्कृतियों के संक्रमण एवं ह्रास-विकास का युग है। यद्यपि आरम्भ में हिन्दू संस्कृति अपने उच्चतम शिखर पर दिखाई देती है परन्तु धीरे-धीरे मुसलमानों के आक्रमणों से यह टूटती-बिखरती सी दिखाई पड़ती है। मुस्लिम शासकों के मूर्ति-विरोधी होने के कारण मूर्तिकला को गहरा आघात पहुँचा है। संगीतकला, चित्रकला, वास्तुकला आदि पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव पड़ता दिखाई देता है। साहित्य के क्षेत्र में (क) संस्कृत, (ख) प्राकृत व अपभ्रंश तथा (ग) हिंदी, इन तीन धाराओं का अधिक प्रचलन था। संस्कृत मुख्यतः राजकवियों की भाषा बन चुकी थी, प्राकृत व अपभ्रंश धर्म के प्रचार व प्रसार का माध्यम बन चुकी थी और हिन्दी 'लोक-जीवन' का प्रतिनिधित्व करती थी।

11. आदिकालीन साहित्य-सामग्री का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर आदिकालीन साहित्य सामग्री को मुख्यतः तीन भागों - धार्मिक साहित्य, लौकिक साहित्य एवं इतर साहित्य में बांट सकते हैं। धार्मिक साहित्य में जैन साहित्य, सिद्ध साहित्य एवं नाथ साहित्य को सम्मिलित किया जाता है। जैन साहित्य मुख्यतः अपभ्रंश में लिखा हुआ है, सिद्ध साहित्य की भाषा को 'सांध्य भाषा' कहा गया है तथा नाथ साहित्य जनभाषा में लिखा हुआ है। लौकिक साहित्य में वीरगाथापरक काव्य अर्थात् रासो काव्य आता है जिसकी भाषा डिंगल व पिंगल है। इतर साहित्य में प्रेमकाव्य, स्वछन्द काव्य आते हैं।

12. सिद्ध साहित्य का संक्षिप्त में विवेचन कीजिए।

उत्तर सिद्धों की संख्या 84 मानी गई है परन्तु अभी तक लगभग 14 सिद्धों की ही रचनाएं प्रकाश में आई हैं। राहुल सांकृत्यायन ने 'हिन्दी काव्यधारा' में इन सिद्धों की वाणियों का संग्रह प्रस्तुत किया है जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि उनकी रचनाएं चर्यागीतों और दोहों के रूप में है। सिद्ध साहित्य समाज सापेक्ष ही है, परन्तु उसमें सामाजिक विद्रोह की भावना बहुत अधिक दिखाई देती है। उसमें पाखंडों, आडम्बरों आदि का विरोध किया गया है। उनकी भाषा को 'सांध्य भाषा' कहकर पुकारा जाता है।

13. जैन साहित्य का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर जैन साहित्य की अधिकांश रचनाएं अपभ्रंश में है। प्रसिद्ध जैन कवियों में देवसेन, स्वयंभू, पुष्पदंत, धनपाल आदि का नाम लिया जा सकता है। जैन साहित्य मे ंचरित व फाग दो शैलियों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है जैसे भतरेश्वर बाहुबली रास, चंदनबाला रास, स्थूल भद्र रास आदि जैन साहित्य की रचनाएं प्रबंध एवं मुक्तक दोनों ही रूपों में विद्यमान हैं। जैन कवियों ने अपनी रचनाओं के चांचर, चतुष्पदी, कवित्त, दोहा आदि छंदों का सर्वाधिक प्रयोग किया है।

14. नाथ साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर नाथों में मुख्यतः नौ नाथ गिने जाते हैं जिनमें गोरखनाथ सर्वोपरि हैं। नाथ साहित्य की सबसे बड़े विशेषता यह है कि यह साधनापरक है। इसमें कुंडलिनी के षट्चक्रों को भेदकर सहस्त्रार में पहुंचने पर समाधि अवस्था का ही चित्रण अधिक हुआ है। सिद्धों की भांति नाथों में भी अपने काव्य में रूपक तत्वों का प्रयोग किया है। उनका साहित्य मुख्यतः साखी, शब्द, दोहा, सोरठा आदि जैसे छन्दों से युक्त है। अभी नाथों का सम्पूर्ण साहित्य प्रकाश में नहीं आया है।

15. विद्यापति का साहित्यिक परिचय लिखिए।

उत्तर विद्यापति का जन्म सन् 1360 ई. में स्वीकार किया जाता है। वे एक बहुआयामी साहित्यकार थे। उन्होंने तीन भाषाओं संस्कृत, अवहट्ठ, मैथिली में काव्य रचना की। इनकी ख्याति का मुख्य आधार मैथिली भाषा में रचित 'पदावली' है। इसमें लगभग एक हजार पद हैं जो आज भी गीत के रूप में गाए जाते हैं। विद्यापति मूलतः श्र ंगारी कवि हैं। उन्होंने 'पदावली' में श्रीकृष्ण राधा को नायक-नायिका के रूप में चित्रित करके श्र ंगार रस से भरे पदों की रचना की है। इसके अतिरिक्त उन्होंने गोरक्ष विजय नामक नाटक भी लिखा है जिसकी भाषा संस्कृत एवं मैथिली है।

16. अमीर खुसरो के साहित्यिक परिचय दीजिए।

उत्तर अमीर खुसरो का जन्म सन् 1253 ई. में आधुनिक एटा जिला के पटियाली गांव में हुआ था। उन्होंने अपने जीवन में लगभग 99 ग्रंथों की रचना की जिनमें से अधिकांश फारसी भाषा में थे। यद्यपि हिन्दी भाषा में अभी तक उनकी कोई भी प्रामाण्डिक रचना प्राप्त नहीं हुई है परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि वे खड़ी बोली के प्रथम कवि थे। उनकी हिन्दी कविताओं को बारह भागों - पहेलियाँ, मुकरियाँ, निस्बतें, दोसुखन, ढकोसला, गीत, कव्वाली, फारसी-हिन्दी मिश्रित छन्द व गजल, फुटकल छन्द और 'खालिकबारी' में बांट सकते हैं। 'खालिकबारी' उनकी बहुचर्चित रचना है।

17. भक्तिकाल की सामाजिक परिस्थितियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर भक्तिकालीन युग में भारतीय समाज में हिन्दुओं व मुसलमानों का आधिपत्य था। आरम्भ में एकता दिखाई देती है, परन्तु धीरे-धीरे धार्मिक कट्टरता के कारण दोनों समुदाय एक दूसरे से दूर होते चले गए। चूंकि हिन्दू विजित थे इसलिए उन्हें समाज में अब उतना आदर व सम्मान प्राप्त न था। मुस्लिम शासकों की रूप लिप्सा के कारण हिन्दी स्त्री भी परदे के भीतर कर दी गई। कट्टर हिंदू मुसलमानों से दूरी बनाए हुए थे। धीरे-धीरे इस स्थिति में बदलाव आने लगा और अकबर के शासन काल में दोनों समुदायों के बीच यह कटुता काफी कम हो गई थी।

18. भक्तिकाल की साहित्यिक परिस्थिति का विवरण दीजिए।

उत्तर भक्तिकाल के आरम्भ में संस्कृत ही साहित्य की भाषा थी जबकि राजकाज की भाषा फारसी बनती जा रही थी। यह एक निर्विवाद सत्य है कि उस समय हिंदी का प्रचलन जोरों पर था, परन्तु संस्कृत और फारसी के सामने वह महत्वहीन ही थी। जो कवि राजदरबार का आश्रय लिए हुए थे वे राजाओं की प्रशंसा में काव्य रचना करने में लीन थे। दूसरी ओर, धर्म की व्याख्या करने वाले काव्यों में उच्च कोटि का ज्ञान प्राप्त होता है। धर्म से सम्बन्धित साहित्य लोक एवं परलोक दोनों के विषय में मार्गदर्शन करता है।

19. भक्तिकाल के गद्य साहित्य पर प्रकाश डालिए।

उत्तर वस्तुतः रीतिकाल तक हिन्दी में जो भी गद्य साहित्य लिखा गया, उसमें शुद्ध गद्य की साहित्यिक प्रव त्ति कम ही मिलती है। भक्तिकाल में लिखित गद्य साहित्य को मुख्यतः ब्रजभाषा, खड़ी बोली, राजस्थानी भाषा व दक्खिनी हिन्दी में बांटा जा सकता है। ब्रजभाषा के गद्य साहित्य में ध्रुवदास का 'सिद्धान्त विचार', नाभादास का 'अष्टायाम' आदि प्रमुख हैं।

खड़ी बोली में गंग कवि की 'चन्द छन्द बरनन की महिमा', जटमल का चम्पूकाव्य 'गोरा बादल की कथा', के अतिरिक्त भोगुल पुराण व 'गेणेस गोसठ' का नाम लिया जा सकता है। राजस्थानी भाषा में 'प थ्वीचन्द्रचरित' तथा दक्षिणी हिन्दी में 'हिदायतनामा', 'शिकारनामा' आदि प्रमुख हैं।

20. भक्तिकालीन खड़ी बोली गद्य साहित्य का परिचय लिखिए।

उत्तर भक्तिकालीन खड़ी बोली व गद्य साहित्य को दो वर्गो में बांटा जा सकता है - साहित्यिक प्रकार में वात शीर्षक से कथा-कहानी के रूप में और अन्योक्ति कथा के रूप में गद्य साहित्य प्राप्त होता है जबकि असाहित्यिक प्रकार में - टीका, टिप्पणी आदि के रूप में गद्य साहित्य प्राप्त होता है। इस काल में हिन्दी की सभी उपभाषाओं राजस्थानी, मैथिली, खड़ी बोली आदि सभी में तुकमय गद्य की प्रव त्ति देखी जा सकती है। इस काल के गद्य साहित्य में जटमल की रचना 'गोरा बादल की कथा' (चम्पूकाव्य) महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसके अतिरिक्त 'कुतुबशतक', 'भोगलुपुराण' आदि भी गद्य साहित्य की अनुपम रचनाएँ हैं।

21. भक्तिकालीन राजस्थानी गद्य साहित्य का संक्षेप में विवेचन कीजिए।

उत्तर राजस्थान की सभी बोलियों मे केवल मारवाड़ी बोली ही सर्वाधिक गद्य सम्पन्न है। भक्तिकाल में समस्त राजस्थानी भाषा में प्राप्त गद्य साहित्य की रचनाओं में 'तत्व विचार प्रकरण', 'प थ्वीचन्द्र चरित्र', 'धनपाल कथा', 'अंजना सुंदरी' कथा आदि प्रमुख हैं। इन रचनाओं में तुकबंदी और पद्यमय शैली का भी आश्रय लिया गया है। इनके अतिरिक्त राजस्थानी भाषा के गद्य साहित्य में 'उपदेश माला', 'योगशास्त्र' आदि जैसी कुछ कथात्मक व्याख्याएँ भी प्राप्त होती हैं। राजस्थानी गद्य साहित्य में प्राप्त सभी रचनाओं में 'प थ्वीचन्द्र चरित्र' सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

22. भक्तिकालीन ब्रजभाषा गद्य-साहित्य पर प्रकाश डालिए।

उत्तर यद्यपि भक्तिकाल में गोरखनाथ के नाम से अनेक गद्य रचनाएं प्राप्त होती हैं, परन्तु उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। सही अर्थो में भक्तिकाल की गद्य साहित्य की रचनाओं में ध्रुवदास की 'सिद्धान्त विचार', नाभादास की 'अष्टायाम', बनारसी दास जैन की 'परमार्थवचनिका' आदि का नाम उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त 'चौरासी वैष्णव वार्ता' भी भक्तिकाल के अंतिम पड़ाव की रचना मानी जाती है। इनके अतिरिक्त केशवदास की 'रसिक प्रिया' व 'कविप्रिया' में भी टिप्पणी के रूप में गद्य शैली का प्रयोग किया गया है।

23. संत काव्यधारा के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिए।

उत्तर संत काव्यधारा मुख्यतः निर्गुणोपासक है। संत कवियों ने अपने काव्य की रचना काव्यशास्त्र की द ष्टि नहीं की थी। अतः वे काव्य की आत्मा, रस निष्पत्ति आदि के विषय में उदासीन ही रहे। उनके काव्य में रस की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता 'साधारणीकरण' विद्यमान है। कबीर, दांदुदयाल आदि कवियों ने दाम्पत्य प्रतीकों के माध्यम से श्र ंगार रस का संचार किया है। संत काव्य की भाषा जनसाधारण की भाषा है। वह सरल, सहज व अकृत्रिम है। उसमें अनेक बोलियों के शब्द विद्यमान हैं। उनके काव्य में रूपक, उपमा, द ष्टांत, अन्योक्ति, अत्युक्ति, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। संक्षेप में, कहा जा सकता है कि संत काव्य की प्रमुख विशेषताएं उसके अनुभूति पक्ष में दिखाई देती हैं।

24. सूफी काव्यधारा के वैशिष्ट्य का संक्षेप में विवेचन कीजिए।

उत्तर सूफी काव्यधारा को प्रेमाख्यान काव्यधारा भी कह कर पुकारा जाता है। इस काव्यधारा की कथावस्तु में स्वाभाविकता की अपेक्षा वैचित्र्य को ही प्रमुखता दी गई है। अधिकांश काव्य प्रबंधात्मक है जिनके पात्र मानव व मानवेतर दोनों की श्रेणियों के होते हैं। अनेक स्थलों पर वस्तु वर्णन विशेषकर नायिका के अंगों का वर्णन विस्तारपूर्वक हुआ है। काव्य में श्र ंगार रस के संयोग व वियोग दोनों ही पक्षों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन हुआ है। सूफी काव्यधारा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि शैली की द ष्टि से सभी काव्य रचनाओं में अन्योक्ति व समासोक्ति का सहारा लिया गया है।

25. राम काव्यधारा के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिए।

उत्तर भक्तिकालीन राम काव्यधारा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके राम नर से नारायण बन चुके हैं; उन्हें देवत्व का पद प्राप्त हो चुका है। अधिकांश राम भक्त कवियों ने दास्य भाव से ही राम की उपासना की है और समन्वय

की भावना का वे बार बार प्रदर्शन करते हैं। राम काव्य में भारतीय संस्कृति का पोषण हुआ है और उसमें मर्यादा की महत्ता को सिद्ध किया गया है। इसमें काव्यशास्त्र में वर्णित लगभग सभी रसों का सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है। यद्यपि भाषा की द ष्टि से राम-भक्त कवियों में एकजुटता का अभाव दिखार्द देता है क्योंकि स्वयं तुलसीदास ने अपने रामकाव्य को अवधी व ब्रजभाषा में लिखा, उनका अनुसरण करते हुए अन्य राम भक्त कवियों ने भी अपनी अपनी भाषा को ही अभिव्यक्ति का साधन बनाया। अधिकांश राम काव्य में दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया, सोरठा, बरवै आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। राम काव्य में वासनात्मक भावों का नितांत अभाव है।

26. कृष्ण काव्यधारा के वैशिष्ट्य का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर भक्तिकालीन कृष्ण काव्यधारा के अधिकांश कवियों ने या तो बालकृष्ण की उपासना की है या फिर, युवा श्री कृष्ण की जो गोपियों को छोड़कर मथुरा चले गये थे। अधिकांश काव्य श्रीकृष्ण के इन्हीं दो रूपों के इर्द गिर्द घूमता है। उसमें महाभारत के योगेश्वर श्रीकृष्ण के कहीं भी दर्शन नहीं होते। अतः अधिकांश कृष्ण-काव्य में वर्णित लीलाएँ आनंद देने वाली हैं। इस काव्यधारा में कहीं तो सख्य भाव से तो कहीं दास्य भाव तो कहीं वात्सल्य भाव तो कहीं शांत भाव से कृष्ण की उपासना की गई है। इस काव्य में वात्सल्य एवं श्र ंगार रस का आधिपत्य है। अधिकांश काव्य ब्रजभाषा में है जिसमें चौपाई, छप्पय, कवित्त, सवैया आदि छंदों का प्रयोग हुआ है। रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा आदि अलंकारों का बहुतायत में प्रयोग हुआ है। अधिकांश काव्य गेय हैं और उसमें बिम्ब योजना का प्रयोग हुआ है।

27. भक्तिकालीन काव्य की उपलब्धि पर प्रकाश डालिए।

उत्तर भक्तिकालीन काव्य की सबसे बड़ी और पहली उपलब्धि यही है कि इस काल ने हिन्दी साहित्य जगत को उच्च कोटि व बड़े महत्व के कवि प्रदान दिए। उन्होंने अपने काव्य के योगदान से हिन्दी साहित्य को अत्यंत सम द्ध कर दिया। पहली बार, काव्य और भक्ति का इतने व्यापक स्तर पर समन्वय हुआ, सामंजस्य हुआ, इस काल के कुछ कवियों जैसे कबीर आदि ने एक ओर जहां धार्मिक पाखंड, आडम्बर आदि के किले मटियामेट कर दिए वहीं तुलसीदास, सूरदास आदि जैसे कवियों ने उन खण्डहरों के स्थान पर भक्ति के नए-नए भवन बनाए हैं जिनमें प्रवेश पाकर शोषित व पीड़ित जनता को शांति मिली। सूफी काव्यधारा ने इस शोषण व पीड़ा त्रस्त जनता को प्रेम का एक नया पाठ पढ़ाया। जन्त्र, मंत्र, टोने-टोटके, पाखंडों आदि से लिप्त जनता का ध्यान अद्वैतवाद, राम कृष्ण आदि की ओर गया और उसमें एक नयी शक्ति का संचार हुआ।

28. रीतिकाल के नामकरण पर प्रकाश डालिए।

उत्तर वस्तुतः उत्तर मध्य काल के नामकरण को लेकर विद्वानों में मतभेद रहे हैं। मिश्रबंधुओं ने इसे अलंकृत काल कहा है तो आचार्य शुक्ल ने इसे रीतिकाल नाम दिया है। पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे श्र ंगार काल कहा। इसी प्रकार डॉ. रमाशंकर शुक्ल रसाल ने इसे कला कला कहा है और डॉ. भगीरथ मिश्र ने इसे रीति श्र ंगार काल कहा है। इन सभी नामों में केवल रीतिकाल नाम ही अधिक उपर्युक्त एवं न्याय संगत है, क्योंकि इस काल के अधिकांश ग्रंथ रीति सम्बन्धी ही थे और कवियों की प्रव त्ति भी केवल रीति ग्रंथों को रचने की थी। यद्यपि सूदन, धनानंद जैसे कवियों ने किसी भी रीतिग्रंथ की रचना नहीं की थी, और इस द ष्टि से वे इस प्रव ति में नहीं आते, फिर भी रीति कवियों व रीति ग्रंथों का बाहुल्य देखते हुए इसे रीतिकाल कहना सर्वथा उपर्युक्त है।

29. रीतिकाल की साहित्यिक परिस्थितियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर साहित्य की द ष्टि से रीतिकाल अत्यंत सम द्ध युग रहा है। फारसी भाषा राजकीय भाषा थी। अतः इसकी अलंकार प्रधान शैली का अन्य सभी भाषाओं पर प्रभाव पड़ा। अधिकांश कवि दरबारी कवि थे अतः उनके काव्य में अपने आश्रयदाता के गुणगान की प्रधानता है। कवियों ने अपने काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए संस्कृत भाषा की ओर ताकना आरम्भ कर दिया। इस काल के कवियों का मुख्य उद्देश्य अपने सामर्थ्य का प्रदर्शन करना और काव्य रसिक समुदाय में काव्य रीति के ज्ञान का प्रसार करना था। जो कवि दरबारी नहीं थे, उनका काव्य दरबारी कवियों की तुलना में अधिक प्रभावशाली दिखाई पड़ता है। अतः कहा जा सकता है कि रीतिकाल हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान रखता है।

30. रीतिकाल की सांस्कृतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर रीतिकाल में सांस्कृतिक परिस्थितियां अधिक अनुकूल नहीं थी। औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता के कारण हिन्दी मुस्लिम समुदाय दूर दूर रहने लगे थे। वैष्णव सम्प्रदाय के पीठाधीश अपने-अपने राजाओं, श्रीमानों की गुरु दीक्षा देते देते स्वयं उनके समान विलासी हो गए थे। वे राम कृष्ण की लीलाओं में भी अपने विलासी जीवन की संगति खोजने लगे थे। धर्म में पाखंड, अंधविश्वास आदि ने पुनः पांव जमा लिए थे। जनता के अंधविश्वास का अनुचित लाभ पुरारियों और मुल्लाओं ने खूब उठाया। रामलीला, रासलीलार, रामचरितमानस का पाठ आदि सभी कुछ मनोरंजन का साधन बन गया था।

31. रीतिकालीन गद्य साहित्य पर प्रकाश डालिए।

उत्तर रीतिकाल में खड़ी बोली गद्य की तुलना में ब्रजभाषा गद्य अधिक सम द्ध है। इस काल में विभिन्न टीकाओं के साथ साथ गद्य शैली में कथा, वार्ता, जीवनी, आत्मचरित आदि की भी रचना हुई जिनमें 'सूरदास की वार्ता', 'निज वार्ता भावना', 'विवाह पद्धति' आदि का नाम लिया जा सकता है। खड़ी बोली का गद्य साहित्य ब्रजभाषा युक्त है और अधिकांश गद्य साहित्य अललित है। कुछ एक कृतियों के अनुवाद खड़ी बोली में हुए जिनमें 'भाषा योग वाशिष्ठ', 'भाषा उपनिषद्' आदि का नाम लिया जा सकता है। राजस्थानी भाषा में प्रेमपरक, वीरतापूर्ण, हास्यमय आदि बातें भी गद्य साहित्य में गिनी जाती है जिनमें 'बीरबल री बात', 'गोराबादल री बात' आदि का नाम लिया जा सकता है। इनके अतिरिक्त अवधी भाषा में 'उड्डील', 'रस विनोद', 'सगुनावती' आदि भी हिन्दी गद्य साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती हैं।

32. निर्गुण भक्ति के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

उत्तर निर्गुण भक्ति की अनुभूति पर जोर देती है। यदि व्यक्ति में अनुभूति का ज्ञान नहीं है तो उसकी भक्ति का ज्ञान केवल शब्द ज्ञान माना जाता है। आचार्य शंकराचार्य ने कहा है "अनुभवावसानत्वात् ब्रह्मज्ञानस्य"। निर्गुण भक्ति वस्तुतः ब्रह्मज्ञान का विषय है भक्ति का नहीं। निर्गुण भक्ति के कवियों ने मनुष्य को अपनी आत्मा के स्वरूप पहचानने, उसके अनुकूल कार्य करके, परमात्मा में विलीन होने को ही भक्ति माना है।

33. भक्तिकालीन वीर काव्य प्रव त्ति का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर यद्यपि भक्तिकालीन काव्य में चार धाराएं - निर्गुण, प्रेमाश्रयी, राम व कृष्ण काव्यधारा ही मुख्य रूप से गिनी जाती है, परन्तु इस काल में अन्य काव्य प्रव त्तियां भी प्रचलित थी। इस काल की वीर-काव्यधारा में कवि श्रीधर द्वारा रचित रणमल्ल छन्द, दुरसाजी आढ़ा द्वारा रचित 'विरुद्ध छिहत्तरी', दया राम द्वारा रचित 'राणा रासो' आदि उल्लेखनीय है। इनमें 'रणमल्ल छन्द' की भाषा ओजपूर्ण है और उसके लगभग 70 छंद प्राप्त हो चुके हैं। 'विरुद्ध छिहत्तरी' में महाराणा प्रताप की शूरवीरता का यशोगान हुआ है। 'राणा रासो' में सिसोदिया वंश की परंपरा का वर्णन हुआ है। इनके अतिरिक्त 'रतन रासो', 'क्याम खाँ 'रासो' आदि भी वीरकाव्य प्रव त्ति की रचनाएँ हैं।

34. 'सूफी' शब्द से क्या तात्पर्य है?

उत्तर 'सूफी' शब्द के मूलार्थ के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं। अधिकांश विद्वानों ने इसका अर्थ 'सफूद ऊन' माना है, क्योंकि वे सूफी शब्द की उत्पत्ति सूफ (ऊन) से मानते हैं। अतः जो साधक ऊन धारण करते थे, वे सूफी कहलाए। कुछ विद्वानों ने इस शब्द की उत्पत्ति सुफ्फा (चूबतरा) से माना है और कहा है कि जो साधक मदीना के आगे बने चबूतरे पर बैठते थे, वे सूफी कहलाए। कुछ विद्वान सफ्फ (पंक्ति) शब्द से भी 'सूफी' की उत्पत्ति होना स्वीकार करते हैं। वस्तुतः सूफी मत का सम्बन्ध इस्लाम से है। ये लोग आध्यात्मिक पथ पर गुरु व प्रेम को अधिक महत्व देते हैं। भारत में सूफी मत का आविर्भाव सिंध प्रांत में हुआ।

35. निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख कवियों और उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख कवियों में रामानन्द, कबीरदार, रैदास, नानकदेव, जम्भनाथ, हरिदास निरंजनी, सींगा, दादूदयाल, मलूकदास आदि का नाम उल्लेखनीय है। इनमें से भी संत कबीर दास प्रतिनिधि हैं। उनकी रचनाओं में बीजक प्रमुख है। नानक देव एक भ्रमणशील साधु थे। 'असा दी वार', 'रहिरास और सोहिला' उनकी प्रमुख रचनाएं

हैं। हरिदास निरंजनी की प्रमुख रचनाएं अष्टपदी जोग ग्रंथ, पूजा जोग ग्रंथ आदि हैं। 'अंगवधू' दादूदयाल की प्रसिद्ध रचना है। मलूक दास ने 'ध्रुवचरित', 'सुखसागर', ज्ञानबोध आदि रचनाएं लिखीं।

36. मनसबी शैली पर प्रकाश डालिए।

उत्तर इस शैली का प्रयोग जायसी ने अपनी प्रमुख रचना 'पदमावत' में किया था। इस शैली की अपनी कुछ विशेषताएं एवं नियम होते हैं जिनका पालन रचनाकार को करना पड़ता है। इसमें सबसे पहले खुदा अथवा ईश्वर को याद किया जाता है। फिर मुहम्मद साहब का स्मरण करते हुए अपने आश्रयदाता राजा का यशोगान किया जाता है। तत्पश्चात् कवि इसमें अपने स्वयं एवं अपने परिवार, कुल आदि का वर्णन करता हुआ लौकिक प्रेम के सहारे आलैकिक प्रेम का चित्रण करता है। इसमें साधक को पुरुष व परमात्मा को स्त्री माना जाता है तथ साधक प्रेम के बल पर ही अनेक बाधाओं को पार करता हुआ परमात्मा पर पहुंच जाता है।

37. सूफी काव्य के कथा स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

उत्तर हिंदी में प्राप्त सूफी काव्य का कथा स्वरूप रूढ़ हो गया है। अधिकांश प्रेमाख्यान काव्य में नायक और नायिका अपने माता-पिता की इकलौती संतान होते हैं। प्रायः विवाहित नायक-नायिका की सुन्दरता का वर्णन सुनकर विरह में व्याकुल हो उठता है तथा अपने स्वजनों का त्याग कर वह अपने संगी साथी या अकेले ही वेश बदलकर उसको प्राप्त करने के लिए निकल पड़ता है। गुरुजनों के आशीर्वाद से वह समस्त बाधाओं को पार करता हुआ नायिका को प्राप्त करने में सफल रहता है। कुछ प्रेमाख्यानक काव्यों को सुखांत व कुछ को दुखांत बनाया गया है।

38. प्रेमाख्यानक कवियों की गुरु महिमा पर प्रकाश डालिए।

उत्तर यद्यपि सूफी अथवा प्रेमाख्यान कवियों ने भी संत कवियों की भांति अपने काव्य में गुरू का स्मरण किया है। जहां जहां उन्होंने ईश्वर और खलीफा की स्तुति की है, वहां वहां उन्होंने गुरु की महत्ता को भी स्वीकार किया है, परन्तु यह एक दम स्पष्ट है कि उनकी गुरु भक्ति संत कवियों की गुरु भक्ति के समान उत्कृष्ट नहीं है। उन्होंने गुरु को केवल गुरु ही माना है, भगवान नहीं। सूफी कवियों ने अधिकांश स्थलों पर गुरु के स्थान पर पीर शब्द का प्रयोग किया है। यदि पीर ही उनके काव्य में नायक-नायिका को मार्गदर्शन कराता है तथा उनकी बाधाओं को दूर कराता है।

39. प्रेमाख्यानक काव्य की भाषा शैली पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर प्रेमाख्यानक काव्य की भाषा ठेठ अवधी है। जनता के बीच प्रचलित कथाओं को उन्होंने जनता की ही भाषा में कहा है जिसके कारण उसमें देशज शब्द का खुलकर प्रयोग हुआ है। कुछ एक स्थलों पर अपभ्रंश शब्दों का ही प्रयोग हुआ। सामान्यतः चौपाई और दोहा छन्द में ही रचना लिखी गई है। वैसे तो अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि सभी अलंकारों का प्रयोग हुआ है, परन्तु समासोक्ति अलंकार का प्रभुत्व बना हुआ है।

40. रीतिकाल में लक्षण ग्रंथों के निर्माण की परम्परा पर प्रकाश डालिए।

उत्तर रीतिकाल में अधिकांश कवियों ने लक्षण-ग्रंथों का निर्माण किया है। इनमें भी काव्य विवेचना का आधिपत्य है। लगभग सभी लक्षण ग्रंथकारों ने संस्कृत के लक्षण ग्रंथकार आचार्यों का अनुसरण करते हुए अपनी रचना में काव्य लक्षण का प्रकाश डाला है। परन्तु इसमें गहन चिन्तन व अध्ययन का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है, क्योंकि उन्होंने तो केवल संस्कृत के काव्यग्रंथों का अनुवाद मात्र किया है। इसलिए उनके लक्षण ग्रंथों में नवीनता का अभाव है। संस्कृत काव्यशास्त्र में आचार्य व कवि दोनों को अलग-अलग स्थान है, परन्तु रीतिकालीन लक्षण ग्रंथकारों ने पहले काव्य लक्षण लिखकर फिर उसका उदाहरण दे दिया है जिससे आचार्य और कवि का भेद भी समाप्त हो गया है।

41. रीतिकालीन काव्य की श्रंगारिकता का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर रीतिकालीन काव्य में श्रंगार रस की प्रधानता है। इस काल में अधिकांश कवि दरबारी थे तथा उनका काव्य प्रयोजन धन प्राप्ति था और धन उन्हें तभी मिल सकता था जब वे अपने विलासी राजाओं की इच्छानुरूप श्रंगारपरक रचनाएं लिखते थे। इस प्रकार उनका प्रतिपाद्य अत्यंत सीमित हो गया और वे केवल संयोग और वियोग अवस्थाओं का ही बढ़ा चढ़ा कर वर्णन करने तक सीमित रहे। इस कारण उनका काव्य प्रेम के उच्चतम सोपान तक नहीं पहुंच पाया।

42. रीतिसिद्ध काव्यधारा पर प्रकाश डालिए।

उत्तर इस काव्यधारा के कवियों का मुख्य उद्देश्य काव्य रचना था काव्यशास्त्रीय ज्ञान होते हुए भी वे कवि-लक्षणों की उपेक्षा करते रहे, परन्तु इनके काव्य पर काव्यशास्त्र की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। बिहारी, मतिराम, भूपति आदि की सतसइयां इसी वर्ग में आती हैं। यद्यपि इन काव्य रचनाओं का मुख्य विषय श्र ंगार है फिर भी विषय की विविधता देखने में आ जाती है। इन विविध विषयों में भक्ति, नीति, वीर रस आदि को गिना जा सकता है।

43. हिन्दी काव्य में भ्रमरगीत परम्परा का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर भ्रमरगीत का प्रथम बार उल्लेख 'श्रीमद्‌भागवात' के दसवें स्कन्ध के सैंतालीसवें अध्याय में श्लोक संख्या बारह से लेकर इक्कीस तक में हुआ है। इसके पश्चात् सूरदास के काव्य में यह उत्कृष्ट रूप में मिलता है। इसके पश्चात् तो अनेक कवियों ने इस परम्परा को अपना और इसी को आधार बनाकर काव्य ग्रन्थों की रचना की। इन कवियों ने नन्ददास का 'भंवरगीत' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अन्य कवियों में मतिराम, पद्‌माकर, भारतेंदु, सत्यनारायण कविरत्न, हरिऔध, जगन्नाथदास आदि का भी नाम लिया जा सकता है जिन्होंने इस परम्परा के फुटकर पदों की रचना की।

44. रीतिमुक्त काव्यधारा की प्रमुख प्रव त्ति पर प्रकाश डालिए।

उत्तर रीतिमुक्त कवियों की मुख्य प्रव त्ति स्वछन्द प्रेम रही है। इसलिए इनके काव्य में भी स्वछन्द और संयत प्रेम का निर्वाह हुआ है। उनमें भाव प्रवण ह्रदय की सच्ची अनुभूति है। उनमें कहीं भी कृत्रिमता, बनावट या कोई दुराव-छिपान नहीं है। इनके काव्य में वर्णित प्रेम लोक-लाज के भय व परलोक की चिंता से मुक्त है। इनका प्रेम एक सरल मार्ग के समान है। इस काव्यधारा में शारीरिक व मांसल प्रेम की तुलना में आंतरिक प्रेम को अधिक महत्व दिया गया है। अतः कहा जा सकता है कि इनका प्रेम शुद्ध ह्रदय का योग है, बुद्धि के तर्क-वितर्क को स्थान नहीं दिया गया है।

45. रीतिमुक्त काव्यधारा की विरहानुभूति का संक्षेप में परिचय दीजिए।

उत्तर रीतिमुक्त काव्यधारा में व्यथा-प्रधान प्रेम का निर्वाह अधिक हुआ है। विरहजनित पीड़ा ही इनके काव्य का पोषक तत्व है। विरह पीड़ा के वर्णन में कवियों ने अधिक रूचि दिखाई है, क्योंकि वियोग में कवि की द ष्टि अन्तर्मुखी हो जाती है। वियोग की अमिट प्यास उसके ह्रदय को सदैव प्रेमिका से मिलने के लिए आतुर रखती है। इन कवियों की प्रेम त ष्णा हर रोज बढ़ती ही जाती है। सम्भवतः उनकी इस विरहानुभूति पर सूफी कवियों के प्रेम की पीर का भी प्रभाव पड़ा है। यही कारण है कि उनका प्रेम रहस्यमय सा प्रतीत होता है।

46. भ्रमरगीत की अन्तर्वस्तु का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर भ्रमरगीत मानव "दय का आकर्षक चित्रफलक है। भ्रमर के माध्यम से इस काव्य में मानवीय ह्रदय के विभिन्न भावों को अभिव्यक्त किया गया है। इसके साथ साथ इसमें निर्गुण भक्ति की तुलना में सगुण भक्ति का माहत्त्य दिखाया गया है। गोपियों के वियोग वर्णन के माध्यम से प्रेम की महत्ता को भी दर्शाया गया है। अतः कहा जा सकता है कि भ्रमरगीत वियोगिनी नारी की मूक वेदना को मुखरित करने वाला और अद्वैतवाद के स्थान पर अवतारवार को सर्वश्रेष्ठ बताने वाला काव्य है।

47. उलटबांसियों से आप क्या समझते हैं?

उत्तर हिंदी काव्य में उलटबांसी एक ऐसी उक्ति है जो मोटे तौर पर सामान्य लोक प्रचलित धारणा के विपरीत दिखाई पड़ती है। वह अपने स्पष्ट अर्थ में विरोधपूर्ण एवं असम्भव सी प्रतीत होती है। परन्तु वह निरर्थक और बेतुकी न होकर अपने अन्दर एक गूढ़ अर्थ लिए होती है। जन साधारण तक उस गूढ़ बात को पहुंचाने के लिए कवियों ने इस चटपटी शैली को साधन बनाया है। विशेष रूप से संत कवियों ने अपने काव्य में उलटबांसियों का अधिक प्रयोग किया है।

48. सगुण भक्ति काव्य से क्या अभिप्राय है?

उत्तर 'सगुण' शब्द का अभिप्राय है - 'ईश्वरीय गुणों से युक्त'। वास्तव में ईश्वर को निर्गुण माना गया है, परन्तु यहां निर्गुण मोह-माया के तीन गुणों (सत्व, रज और तम) से सम्बन्धित है। इसी प्रकार ईश्वर में ऐश्वर्य, तेज, बल, ज्ञान आदि गुणों का समावेश माना गया है। इन गुणों का पता तभी चलता है जब स्वयं ब्रह्म किसी रूप को धारण कर इन गुणों

से सुसज्जित होकर लीला करते हैं। श्रीकृष्ण, राम आदि ऐसे ही रूप के उदाहरण हैं। अतः ब्रह्म द्वारा गुणों सहित अवतार धारण किए रूप की भक्ति करना ही सगुण भक्ति है।

49. राम काव्य परम्परा की समन्वयात्मकता पर प्रकाश डालिए।

उत्तर राम काव्यधारा की एक प्रमुख विशेषता यह रही है कि उसका द ष्टिकोण अत्यंत व्यापक है। यद्यपि इस काव्यधारा में राम की भक्ति व स्तुति को ही महत्व प्रदान किया गया है फिर भी कृष्ण, शिव, गणेश आदि देवताओं की पूजा-अर्चना आदि को भी स्थान दिया गया है। राम काव्य परंपरा के सबसे बड़े कवि और सबसे बड़े भथ्कत तुलसीदास ने स्वयं अपने रामचरितमानस में राम के द्वारा शिव की पूजा करवाई है। अतः यह कहा जा सकता है कि राम काव्यधारा के कवियों ने भक्ति को सुसाध्य मानकर ज्ञान, भक्ति, कर्म आदि के बीच समन्वय स्थापित किया है।

50. निम्बार्ग सम्प्रदाय का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर यह सम्प्रदाय कृष्ण भक्ति से सम्बन्ध रखने वाला ब्रजमण्डल का प्रमुख वैष्णव सम्प्रदाय है। माना जाता है कि इस सम्प्रदाय का उपदेश नारद मुनि ने निम्बार्काचार्य को दिया था। निम्बार्काचार्य ने अपने सिद्धांत की स्थापना के लिए पांच ग्रंथों की रचना की। वस्तुतः यह सम्प्रदाय 'द्वैताद्वैतवाद' पर आधारित है। इसमें ईश्वर को सगुण अवतारी श्रीकृष्ण के रूप में स्वीकार किया जाता है। कृष्ण-भक्ति में राधा-कृष्ण का युगल भाव स्वीकृत है। यह सम्प्रदाय दाम्पत्य भक्ति को ही श्रेष्ठ मानता है।

51. राधा वल्लभ सम्प्रदाय का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर इस सम्प्रदाय की स्थापना आचार्य हित परिवंश गोस्वामी ने सन् 1534 ई. में की थी। इस सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें न तो मुक्ति की कामना है और यह कर्मकाण्ड भक्ति को भी नहीं मानता। इसमें राधा को कृष्ण से भी ऊँचा स्थान देकर उनकी उपासना की जाती है। इस सम्प्रदाय के मन्दिरों में कृष्ण के साथ राधा की मूर्ति नहीं होती, बल्कि श्रीकृष्ण की वामभाग में एक गद्दी होती है जिस पर श्रीराधा लिखा होता है। इसे 'गद्दरी सेवा' भी कहते हैं।

52. चैतन्य या गौड़ीय सम्प्रदाय का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर इस सम्प्रदाय की स्थापना चैतन्य महाप्रभु ने की थी। यह सम्प्रदाय 'अचिन्त्य भेदाभेदे' सिद्धान्त पर टिका हुआ है। इस सम्प्रदाय का मत है कि ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल और कर्म - ये पांच तत्व ईश्वर के विभुचैतन्य, सर्वज्ञ, स्वतन्त्र मुक्तिदाता और विज्ञान रूप को दर्शाते हैं। ईश्वर विमुख होने पर जीव बंधनों में पड़ जाता है। मुक्ति पाने के लिए जीव को भक्ति करनी चाहिए जो कि पांच प्रकार की होती है - शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य।

53. कृष्ण काव्यधारा में प्रकृति चित्रण पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर कृष्ण भक्तिधारा प्रकृति चित्रण से भरपूर है। चूंकि श्रीकृष्ण की लीलाभूमि ब्रज प्रदेश ही है और वहां प्रकृति सौंदर्य का साम्राज्य है, इसीलिए कृष्ण काव्य में उसका अत्यधिक चित्रण होना स्वाभाविक ही है। वियोग श्र ंगार के वर्णन में प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त कृष्ण भक्ति कवियों ने उपमान के लिए सबसे अधिक प्रकृति का ही आश्रय लिया है। अतः कहा जा सकता है कि कृष्ण काव्यधारा में प्रकृति के विभिन्न रूपों पर्वत, वन, नदी, कुंज, लता, द्रुम आदि सभी का विधिवत प्रयोग हुआ है।

54. रीतिकालीन काव्य की वीर रस प्रव त्ति पर प्रकाश डालिए।

उत्तर वैसे तो रीतिकालीन काव्य में लक्षण ग्रंथों और श्र ंगार परक रचनाओं की अधिकता है, परन्तु औरंगजेब की कट्टर असहिष्णुता के कारण इस काल में वीर रस के काव्य की भी रचना की गई। इस प्रव त्ति के कवियों में भूषण, सूदन, पद्माकर आदि का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने अपनी ओजपूर्ण भाषा में औरंगजेब का विरोध करने वाले राजाओं की वीरता का गुणगान किया है। इन वीर रस के कवियों में राष्ट्रीयता का प्रधान स्वर है। नवीन खोजों में वीर रस से ओत-प्रोत और भी रचनाएँ प्रकाश में आयी हैं।

55. रीतिमुक्त कवियों के सौंदर्य चित्रण पर प्रकाश डालिए।

उत्तर यद्यपि रीतिमुक्त कवियों ने अपने पूर्ववर्ती कवियों की रीतिसिद्ध कवियों की भांति अपने काव्य में श्र ंगार और सौंदर्य का चित्रण किया है, परन्तु उसकी विलक्षण्ता यह है कि इन स्वच्छन्द कवियों की द ष्टि बाह्य सौंदर्य की अपेक्षा आंतरिक

सौंदर्य पर टिकी है जबकि अन्य कवियों की द ष्टि केवल बाह्य सौंदर्य पर टिकी रही है। अतः उसमें मांसल चित्रण की अधिकता है। घनानंद ने अपनी प्रेमिका सुजान, बोधा ने अपनी प्रेमिका सुभान और आलम ने अपनी प्रेमिका शेख के स्वाभाविक सौंदर्य का चित्रण किया है; उसमें कृत्रिमता नहीं है, वासनापरक द श्य नहीं हैं। यही रीतिमुक्त कवियों के सौंदर्य चित्रण की विलक्षणता है।

56. रीतिबद्ध काव्य में नारी-चित्रण पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर रीतिबद्ध कवियों के सामने नारी का एक ही रूप था - विलासिनी प्रेमिका का। चूंकि वे दरबारी कवि थे और भोग-विलास में डूबे अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करना ही उनके काव्य का अंतिम लक्ष्य था, इसलिए उन्होंने नारी को भोग विलास का एकमात्र उपकरण माना है। नारी के अन्य रूपों जैसे ग हिणी का रूप, माता का रूप, बहिन का रूप, पुत्री का रूप आदि पर उनकी द ष्टि नहीं पड़ी। कुछ एक रीतिबद्ध कवियों ने आराध्या देवी के भी शारीरिक अंगों का वर्णन करने में ही अपना अभिष्ट समझा है। "तजि तीरथ हरि राधिका तन दुति करु अनुराग। अतः कहा जा सकता है कि रीतिबद्ध कवियों की द ष्टि में नारी का महत्व केवल पुरुष की विषय-वासना का साधन बनने तक सीमित है।

57. रीतिकालीन नीतिकाव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर रीतिकालीन नीतिकार कवियों में घाघ, भड्डरी आदि का नाम लिया जा सकता है। सामान्यतः खेती-बाड़ी, शकुन, धर्म-आचार, राजनीति, सामान्य ज्ञान आदि के विषयों पर नीतिपरक काव्य की रचना हुई है। इस काव्यधारा में पद्यात्मक शैली को अपनाया गया है और सूक्तियों का प्रयोग हुआ है। अधिकांश कवियों की भाषा सरल एवं सहज है और वह साहित्यिक रूप लिए हुए हैं। उन्होंने दोहे, कुंडलियाँ आदि छन्दों का सर्वाधिक प्रयोग किया है। अधिकांश काव्य ब्रजभाषा में रचित हैं।

58. रीतिकालीन खड़ी बोली गद्य साहित्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर रीतिकालीन खड़ी बोली का गद्य-साहित्य भी शुद्ध रूप में नहीं है। इसके गद्य साहित्य में दूसरी भाषाओं का मिश्रण देखने में आता है। खड़ी बोली के गद्य साहित्य पर ब्रजभाषा का सर्वाधिक प्रभाव दिखाई देता है। अधिकांश साहित्य अध्यात्मक, दर्शन, वैद्यक, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल, गणित आदि विषयों पर आधारित है। ब्रजभाषा से प्रभावित खड़ी बोली के गद्य साहित्य में 'बिहारी सतसई (टीका)', 'जपु टीका' आदि प्रमुख है। ब्रज, पंजाबी, उर्दू आदि मिश्रित खड़ी बोली गद्य साहित्य में फर्सनाम, 'सुरासुर निर्णय' आदि प्रमुख हैं। अधिकांश गद्य साहित्य की भाषा में तत्सम शब्दों की प्रधानता है।

59. रीतिकालीन राजस्थानी गद्य साहित्य पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर रीतिकाल में राजस्थानी गद्य साहित्य का प्रचूर मात्रा में निर्माण हुआ है। अधिकांश गद्य साहित्य वंशावली, पत्र, वात के रूप में है। कुछ एक तुकबंदी में रचित गद्य ग्रंथ भी प्राप्त होते हैं। मुख रूप से वात विधा का राजस्थानी गद्य साहित्य प्रसिद्ध है। 'वात' गद्य साहित्य की प्रमुख रचनाओं में 'सिद्धराज जयसिंह री वात', 'गोरा बादल री वात', 'रावरामसिंह री वात' आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त इस काल में ललित गद्य साहित्य की रचनाएं भी प्राप्त होती हैं और कुछ गद्य साहित्य टीकाओं व अनुवादों के रूप में प्राप्त होता है।

60. रीतिकालीन भोजपुरी एवं अवधी के गद्य साहित्य पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर यद्यपि रीतिकाल में रचित भोजपुरी गद्य साहित्य अधिक मात्रा में प्राप्त नहीं हुआ है। और जो गद्य रचनाएं प्राप्त हुई है। उनमें अवधी मिश्रित भोजपुरी है। ऐसे ग्रंथों में फणीन्द्र मिश्र के 'पंचायत न्यायपत्र' का नाम लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अवघी भाषा में जो गद्य साहित्य प्राप्त होता है उसमें भी शुद्ध अवधी भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है, बल्कि ब्रजभाषा मिश्रित अवधी ही इन गद्य रचनाओं की भाषा है। अवधी की प्रमुख गद्य रचनाओं में रसविनोद, कबीर बीजक आदि का नाम लिया जा सकता है।

61. रीतिकालीन ब्रज-भाषा गद्य साहित्य पर प्रकाश डालिए।

उत्तर रीतिकाल में ब्रजभाषा ही कवियों की प्रमुख भाषा थी और जब गद्य साहित्य का विकास होने लगा तब भी अनेक लेखकों ने ब्रजभाषा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। ब्रजभाषा में रचित अधिकांश गद्य साहित्य वार्ता,

टीका, अनुवाद, संवाद, जीवनी, ललित गद्य आदि के रूप में प्राप्त होता है। विशेष रूप से वार्ता गद्य साहित्य अधिक महत्पूर्ण है। इनमें 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' आदि का नाम उल्लेखनीय है। ललित गद्य में 'भक्ति विवेचन', 'हस्तामलक' आदि प्रमुख रचनाएं हैं। शेष गद्य साहित्य अध्यात्म, गणित, ज्योतिष आदि विषयों पर आधारित है।

62. रीतिकालीन गद्य साहित्य के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिए।

उत्तर रीतिकालीन गद्य साहित्य को मोटे रूप से तीन भागों में बांटा जा सकता है - मौलिक गद्य रचनाएं, अनूदित गद्य रचनाएं, टीकापरक गद्य रचनाएं। इस काल के समस्त गद्य साहित्य पर ब्रज भाषा का मिश्रण देखने में आता है। सम्पूर्ण गद्य साहित्य में ब्रजभाषा में रचित गद्य साहित्य का आधिक्य है। अधिकांश गद्य रचनाएं धर्म, दर्शन, वैद्यक, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल, गणित आदि विषयों पर लिखी गई हैं। ब्रजभाषा में रचित 'वार्ता' गद्य साहित्य तथा राजस्थानी भाषा में रचित 'वात' गद्य साहित्य सम्पूर्ण रीतिकालीन गद्य साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

63. हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के उद्‌भव के समय की आर्थिक परिस्थितियों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के उद्‌भव के समय इंग्लैण्ड की औद्योगिक विकास का प्रभाव भारत की अर्थव्यवस्था पर पड़ा। ऐसा होना स्वाभावित भी था। इंग्लैण्ड के लिए भारत कच्चे माल का सस्ता तैयार स्रोत और तैयार माल की बड़ी मण्डी से ज्यादा महत्व नहीं रखता था। भारतीय कुटीर उद्योग इंग्लैंड के कारखानों में बने माल का मुकाबला नहीं कर सके। रेल, डाक तार आदि का प्रचलन मूलतः अंग्रेजों के आर्थिक हितों की रक्षा के लिए हुआ था, परन्तु कालान्तर में इनसे राष्ट्रीयता की भावना तीव्र हुई। प्रथम महायुद्ध के बाद अंग्रेजों का भारतीयों ने विरोध किया। 1905 में बंग-भंग हुआ और इसके विरोध में स्वदेशी आंदोलन की शुरुआत हुई।

64. आधुनिक काल के नामकरण पर विचार कीजिए।

उत्तर इसे गद्यकाल भी कहा जाता है। संवत् 1900 से जो साहित्य रचा जाने लगा उसमें विधात्मक द ष्टि से गद्य का ही विकास अधिक और प्रमुख रूप से हुआ है। यह आज तक की स जन प्रक्रिया के इतिहास से एकदम स्पष्ट है। अतः इसे गद्यकाल कहना भी उचित ही है। प्रव तियों और रूचियों की द ष्टि से इस काल में अपने पूर्ववर्ती कालों से स्पष्ट भिन्नता है। उस विभिन्नता में आधुनिक वैविध भी है, अतः आधुनिक काल नाम समीचीन है। इस नामकरण और युगीन प्रव तियों में गद्य पद्य की समस्त साहित्यिक विधाओं का स्वतः समावेश हो जाता है।

65. हिन्दी साहित्य के आधुनिक की राजनीतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर सन् 1857 में भारतीय स्वाधीनता संग्राम का पहला अध्याय लिखा गया। 1857 ई. की क्रांति की ज्वाला को अंग्रेजों ने अपने दमन चक्र से दबा अवश्य दिया परन्तु वे उसे पूर्ण रूप से समाप्त न कर सके। कम्पनी राज्य, विक्टोरिया के शासन में बदला और इतिहास में भयंकर आर्थिक शोषण का युग प्रारम्भ हुआ। कांग्रेस ने भारतीयों के लिए अधिकारों को मांगना आरम्भ कर दिया। तिलक ने कहा, "स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है, इसे मैं लेकर रहूंगा।" सुभाष ने चेतावनी दी कि आजाद हिन्द फौज दिल्ली के लाल किले पर ध्वज फहराएगी, लाला लाजपत राय ने जयघोष किया कि - "हम न खाएंगे, न खाने देंगे, न सोयेंगे, न सोने देंगे।" इस प्रकार के वातावरण में राजनीतिक उथल पुथल मची हुई थी।

66. हिंदी साहित्य के इतिहास के आधुनिक काल की आर्थिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर इंग्लैंड की औद्योगिक विकास का प्रभाव भारत की अर्थव्यवस्था पर पड़ा। इंग्लैण्ड के लिए भारत कच्चे माल का सस्ता स्रोत और तैयार माल की बड़ी मण्डी से ज्यादा महत्व नहीं रखता था। इंग्लैण्ड के तैयार माल का भारत के उद्योग मुकाबला न कर सके। परिणामस्वरूप उद्योग और मजदूर सब बेकार हो गए। रेल, डाक तार आदि का प्रचलन मूलतः अंग्रेजों के आर्थिक हितों की रक्षा के लिए हुआ। कारखानों में हड़तालें हुई। 1905 में बंग-भंग हुआ और इसके विरोध में स्वदेशी आंदोलन की शुरुआत हुई। गांधी जी का चर्खा आंदोलन और खादी का प्रचार इसी आर्थिक शोषण के विरोध का एक रूप था।

67. हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की सांस्कृतिक एवं धार्मिक दशा का वर्णन कीजिए।

उत्तर यह युग पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति के प्रसार का युग है। छापाखाना अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था। ईसाई मिशनरियों का प्रचार जोरों पर था। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज तथा आर्य समाज जैसे सुधार आन्दोलन भारतीयों द्वारा भी चलाए जा रहे थे। अंग्रेजों के प्रचार-प्रसार से जहां पाश्चात्य जगत की ओर झांकने के लिए खिड़की खुली वहीं पर संस्कृत आदि भारतीय भाषाओं की उपेक्षा से हम अपनी विरासत से कटने भी लगे।

बंगाल में एशियाटिक सोसायटी और पुरातत्व विभाग की स्थापना की गई। राजग ह, तक्षशिला, बनारस, पहाड़पुर तथा हड़प्पा और मोहनजोदड़ो आदि स्थानों की खुदाई में भारत के प्राचीन गौरव से संबंधित स्थानों पर खुदाई हुई। प्राचीन संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद अंग्रेजी में होने लगा। पश्चिम का भौतिकवाद और मार्क्सवाद की अवधारणएं एवं रूस की क्रांति भी भारतीय जनमानस को आंदोलित कर रही थी। विवेकानन्द, टैगोर तथा श्री अरविंद का प्रभाव भी पढ़े-लिखे वर्ग पर पड़ रहा था।

68. आधुनिक काल की साहित्यिक परिस्थितियों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर आधुनिक काल का साहित्य आम आदमी का साहित्य है। इस युग के साहित्यकार का सरोकार आदमी की आशाओं आकांक्षाओं से था। रीतिकालीन दरबारी संस्कृति क्रमशः नष्ट हो रही थी और साहित्य समाज का दर्पण और दीपक एक साथ बन रहा था। भारतेंदु युग पुनर्जागरण युग बना तो द्विवेदी युग समाज सुधार की तीव्र धारा को लेकर आया। छायावादी युग में शिल्पगत प्रयोगों का प्रारम्भ हुआ तो प्रगतिवाद, प्रयोगवाद में क्रमशः लघु मानव की प्रतिष्ठा एवं काव्य विषयों का विशदीकरण हुआ। आधुनिक युग साहित्य की द ष्टि से विविधता, बिखराव एवं विशिष्ट काव्य प्रव त्तियों का युग है।

69. भारतेंदु युगीन काव्य में देश भक्ति की भावना मुखरित हुई है। विवेचन कीजिए।

उत्तर भारतेंदु आधुनिक युग के प्रथम राष्ट्रीय कवि कहे जा सकते हैं। उनके काव्य में देश भक्ति की सशक्त भावना अभिव्यक्त हुई है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है - “भारतेंदु की वाणी का सबसे ऊँचा स्वर देश भक्ति का था।” उनकी कविताओं में देश की दुर्दशा का मार्मिक वर्णन किया गया है। इस युग में विदेशी वस्तुओं का परित्याग और स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने का प्रचार किया गया है।

70. भारतेंदु युगीन कविता का परिचय दीजिए।

उत्तर भारतेंदु युगीन कविता यथार्थ के काफी निकट है। यह उस युग की चेतना की प्रतिध्वनि ही नहीं, बल्कि उसका प्रतिनिधित्व भी करती है। इसमें जहां भारत की दयनीय स्थिति का चित्रण किया गया वहीं प्राचीन भारत के गौरव, और संस्कृति का भी वर्णन है। इस कविता में कहीं देश के अतीत की गौरव गाथा है तो कहीं अधोगति और कहीं भविष्य की भावना से जगी हुई चिंता है। उन्होंने हिंदी कविता को नवीन विषयों की ओर अग्रसर किया। हास्य व्यंग्य और विनोद भी इस कविता में मिलता है। भारतेंदु, प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिका दत्त व्यास, राधाकृष्ण दास आदि इस युग के मुख्य कवि हैं।

71. प्राचीनता एवं नवीनता का समन्वय भारतेंदु युगीन काव्य में दिखाई पड़ता है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर भाव, भाषा, शैली और उद्देश्य सभी द ष्टियों से इस युग के साहित्य में प्राचीनता और नवीनता के एक साथ दर्शन होते हैं । इस युग के साथ समाज, राजनीति, धर्म और संस्कृति का एक नया जमाना शुरू होता है। व्यापक जन चेतना का नई दिक्षा दीक्षा व राजनीति के कारण भारत के अतीत की ओर ध्यान जाता है, अतः भारतीय अतीत का गौरव आदर्श साहित्य का विषय बनता है। इस काल के साहित्य में नए पुराने दोनों प्रकार के विचार, आदर्श और उद्देश्य दिखाई पड़ते हैं।

72. ‘भारतेंदु स्वयं एक महान कृष्ण भक्त कवि थे।’ इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर भारतेंदु युग में भक्तिकालीन भक्तिभावना के आदर्श भी दिखाई पड़ते हैं। इस युग के गेय पदों में राधा और श्री कृष्ण की लीलाओं का सुंदर चित्रण किया गया है। भारतेंदु स्वयं एक महान कृष्णभक्त कवि थे। भारतेंदु ने माधुर्य भाव की भक्ति को ग्रहण किया था। वे कर्मकाण्ड में विश्वास नहीं करते थे।

73. भारतेंदु युग का काव्य जन जीवन से सीधा जुड़ा हुआ है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर रीतिकालीन साहित्य के विपरीत भारतेंदु युग का काव्य सीधा जन जीवन से अधिक जुड़ा हुआ है। इसमें समाज सुधार की प्रव ति पर बल दिया गया। इस काल के कवि ने न केवल राजनीतिक स्वाधीनता को ही प्रमुखता नहीं दी बल्कि मनुष्य की एकता, समानता और भाईचारे को भी महत्व दिया। इसमें सामाजिक बुराइयों छल-कपट, स्वार्थपरकता, पश्चिमी रंग में रंगे शिक्षितों पर व्यंग्य, पुलिस और सरकारी कर्मचारियों की लूट-खसोट, देश की सामान्य दुर्दशा, अकाल आदि का चित्रण करके समाज को जाग त किया है।

74. इतिव त्तात्मकता भारतेंदु युग के कवियों में दिखाई पड़ती है, क्या यह सही है? विवेचन कीजिए।

उत्तर भारतेंदु युगीन कविता में विचारों और अनुभूतियों की महानता नहीं है। केवल तुकबंदियों के द्वारा ही कवियों ने विभिन्न सामाजिक पक्षों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। प्रताप नारायण मिश्र के पद्यात्मक निबंध तथा दूसरे कवियों की उपदेशात्मक और सुधारात्मक कविताएं केवल इतिव त्तात्मकता से परिपूर्ण हैं। इस काल की कविता को किसी उच्च कोटि में नहीं रखा जा सकता।

75. भारतेंदु कालीन काव्य में समाज सुधार की भावना व्यंजित हुई है। विवेचन कीजिए।

उत्तर भारतेंदु कालीन काव्य में देश प्रेम की भावना के साथ साथ सामाजिक जागरण एवं समाज सुधार की प्रव ति भी देखी जा सकती है। नारी शिक्षा का समर्थ, वर्णगत भेद-भाव का विरोध, बाल विवाह का विरोध तथा अनमेल विवाह का निषेध जैसे गंभीर विषयों का वर्णन इस युग के काव्य में हुआ है। पश्चिमी सभ्यता के संपर्क में नया ज्ञान, आदर्श और नए संदेश हमारे देश में आने लगे। जिससे कुछ सुधार संभव हो पाए।

76. भारतेंदु युग के कवियों ने प्रकृति चित्रण में परम्परा का निर्वाह भर किया है। यह कथन क्या सही है? समीक्षा कीजिए।

उत्तर प्राकृतिक सौंदर्य का स्वच्छन्द चित्रण भारतेंदु युग की अंगभूत विशेषता है, किंतु अधिकांश कवियों ने केवल परम्परा का ही निर्वाह किया है। ऋतु विशेष में नायक-नायिका की मनोदशाओं के वर्णन में अधिक रूचि ली है। भारतेंदु ने सत्य हरिशचन्द्र नाटक में गंगा वर्णन और चंद्रावली नाटिका में यमुनावर्णन किया है। इस काल के काव्य में संवेदनाशीलता की कमी है और नागरिकता की अधिकता है।

77. भारतेंदु हरिश्चन्द्र पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए।

उत्तर भारतेंदु हरिश्चन्द्र बहुमुखी प्रतिभा के स्वामी थे। उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के चार रूप हैं - कवि, नाटककार, निबंधकार, तथा पत्रकार। उनके द्वारा रचित कृतियों की संख्या लगभग सत्तर है। उनमें प्रेम-मालिका, प्रेम-सरोवर, वर्षा विनोद, विनय पचासा, वेण गीत, प्रेम फुलवारी आदि प्रसिद्ध हैं। इनका प्रकाशन भारतेंदु ग्रन्थावली के नाम से हो चुका है। भारतेंदु की काव्यभाषा ब्रज भाषा है। उनकी व्यंग्यपूर्ण पहेलियां और मुकरियां प्रसिद्ध हैं।

78. बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' का परिचय दीजिए।

उत्तर 'प्रेमधन' भारतेंदु कालीन काव्य धारा के प्रसिद्ध कवि और लेखक थे। उन्होंने पद्य और गद्य दोनों विधाओं में रचनाएं की। पत्रकार के रूप में इन्होंने नागरी नीदर और आनन्द कादम्बिनी आदि पत्रिकाओं का सफल सम्पादन किया। अलौकिक लीला, वर्षा, बिन्दु, मयंक महिमा, हार्दिक हर्षदर्श, जीर्ण-जनपद आदि इनकी प्रसिद्ध काव्य कृतियां हैं। इनकी कविता का प्रमुख स्वर स्वदेश प्रेम और समाज-सुधार का है।

79. पंडित प्रतापनारायण मिश्र का परिचय दीजिए।

उत्तर मिश्र जी भारतेंदु युग के प्रसिद्ध कवि, निबंधकार और नाटककार थे। उन्होंने देश-भक्ति, राम भक्ति, गौरक्षा, बुढ़ापा आदि विषयों पर काव्य रचना की मन की लहर 'प्रेम - पुष्पावली - श्र ंगार विलास' आदि उनकी प्रसिद्ध काव्य रचनाएं हैं। उनकी कविताओं में इतिव त्तात्मकता की अधिकता है। इनकी कविता में राजनीतिक व्यंग्य का उदाहरण -

"पढ़ि कमाल कीन्हों कहा, हरे न देश कलेश।

जैसे कन्ता घर रहे, वैसे रहे विदेश।"

80. अम्बिकादत्त व्यास का परिचय दीजिए।

उत्तर व्यास जी कवि, नाटककार और पत्रकार थे। काशी के अच्छे कवियों में उनकी गणना होती थी। 'पावस पचासा', 'हो-हो होरी', 'सुकवि सतसई' आदि उनकी प्रसिद्ध काव्य कृतियां हैं। उन्होंने समस्या पूर्ति संबंधी अनेक कविताएं लिखी हैं। इनकी काव्य भाषा ब्रजभाषा है। कविता का उदाहरण देखिए-

सुमिरत छवि ननद नन्द की, विसरत सब दुःख द्वंद्व।

ओम अमन्द अनन्द हिय, मिलत मनहु सुख कंद।

81. द्विवेदी युगीन काव्य में इतिव त्तात्मकता की भावना प्रधान थी। विवेचन कीजिए।

उत्तर द्विवेदी युगीन कविता में प्रायः श्र ंगारमुक्त काव्य लिखा गया। इनके काव्य में आदर्शवादिता, सात्विकता और संयम के तत्व अधिक हैं। आर्य समाज तथा अन्य संस्थाओं के प्रभाव से साहित्य से अश्लीलता और उच्छ ंखलता का बहिष्कार कर दिया गया जिससे कविता में इतिव त्तात्मकता की भावना बढ़ी। इस कविता पर मराठी की इतिव त्तात्मकता का प्रभाव है, जिससे कविता में शुष्कता और नीरसता बढ़ी और अनुभूति से अधिक गहराई नहीं रही।

82. द्विवेदी युग के साहित्य का क्या महत्व है?

उत्तर हिन्दी साहित्य के इतिहास में संवत् 1950 से 1975 तक का समय द्विवेदी युग के नाम से अभिहित किया जाता है, जिसमें साहित्य चेतना का सूत्रधार महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। वे सरस्वती पत्रिका के सम्पादक थे। खड़ी बोली के व्याकरण की रचना, परिष्कार और संस्कार का सार। श्रेय द्विवेदी जी और उनके समकालीन कवियों को जाता है। द्विवेदी युग की कविता में राष्ट्रीयता का स्वर उभरा और इसके साथ ही आलोचना और कथा साहित्य के क्षेत्र में भी पर्याप्त प्रौढ़ता आई। इस युग के आलोचकों में मिश्रबन्धु, पं. पदम सिंह शर्मा, कृष्ण बिहारी मिश्र आदि का नाम उल्लेखनीय है। इनका युग वासतव में ही गद्य का युग था। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के आरम्भ में जिन शैलियों को जन्म मिला, द्विवेदी युग में उन्हें विकास का पूर्ण अवसर मिला। श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय, मैथिलीशरणगुप्त, रामचरित उपाध्याय आदि इस युग के प्रसिद्ध कवि हैं।

83. द्विवेदी युग का काव्य बौद्धिकता से प्रभावित हैं युक्ति युक्त उत्तर दीजिए।

उत्तर द्विवेदी युगीन कवि को पाश्चात्य संस्कृति के बौद्धिकवाद ने प्रभावित किया। इसी के प्रभाव से इन्होंने भारतवासियों के मन से हीन भावनाओं को दूर करेन के लिए प्राचीन भारतीय संस्कृति की बौद्धिक व्याख्या प्रस्तुत की। हिन्दू जागरण के लिए यह अति आवश्यक था। गुप्त के लिए राम अवतारी न होकर आदर्श मानव है। आर्य समाज का प्रभुत्व इस युग में छाया रहा। व्यक्तियों और आलोचकों ने प्राचीनता की बुद्धि सम्मत व्याख्या करके आधुनिकता को आदर्श बनाकर सफलता प्राप्त की।

84. 'द्विवेदी युग में उपदेशात्मक प्रव ति को छोड़कर कवियों ने मानवतावाद को ग्रहण किया।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर भगवान के गुणगान और सैद्धान्तिक व्याख्या के साथ साथ मानवता के आदर्शो की भी प्रतिष्ठा की है। इनमें पीड़ितों, शोषितों, दुर्बलों दलितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई है। कवि का मानना है कि मानव प्रेम से ही ईश्वर प्राप्ति संभव है। दीन-दुखियों के आंसू भक्त को भगवान के और निकट करते हैं और इसी के लिए इन्होंने दुखियों के प्रति अन्याय और अवहेलना करने वाली सामन्तीय सभ्यता की निन्दा की है। राम और कृष्ण को आदर्श के रूप में स्थापित किया है।

85. 'द्विवेदी युग में देश भक्ति से परिपूर्ण काव्य रचना हुई।' सिद्ध कीजिए।

उत्तर द्विवेदी युगीन कविता की राष्ट्रीय भावना जातीयता पर आधारित थी, जिसका मुख्य आधार देश के उज्जवल अतीत का गौरव था। केसरी नारायण शुक्ल के अनुसार - "जनता को अपना अतीत इतना प्रिय लगा कि इसके समक्ष उसे पाश्चात्य संस्कृति बिल्कुल हेय प्रतीत होने लगी।" देश भक्ति की भावना मुक्तक और प्रबन्ध काव्यों में प्रकट हुई। गुप्त का साकेत, उपाध्याय का प्रिय प्रवास, आदि जहां हिन्दी के गौरव ग्रंथ हैं वहां देश भक्ति और भारत की महान विभूतियों का भव्य दर्शन भी उनमें हैं।

86. प्रकृति चित्रण की द ष्टि से द्विवेदी युग की समीक्षा कीजिए।

उत्तर इस युग के कवियों का ध्यान प्रकृति के यथा तथ्य वर्णन की ओर गया। श्रीधर पाठक, अयोध्या सिहं उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी, आदि ने कहीं कहीं अद्‌भुत प्रकृति चित्रण किया है। इनके प्रकृति चित्रण मे संवेदनात्मकता एवं चित्रात्मकता का सम्मिश्रण है। नदी, पर्वत, समुद्र आदि का चित्रण करते हुए यदि इन्होंने परम्पराओं का पालन किया है तो उसमें रहस्यात्मकता को भी समावेशित किया है। परिगणन शैली का प्रयोग भी कहीं कहीं दिखाई देता है। पर उस से सजीव चित्र उपस्थित नहीं हो पाता।

87. 'द्विवेदी युग के कवियों पर गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव है।' स्पष्ट कीजिए।

उत्तर इस काल के कवि स्वयं को गांधीवाद से अछूते न रख सके। रामनरेश त्रिपाठी तथा मैथिलीशरण गुप्त गांधीवादी विचारधारा से बहुत प्रभावित थे। गांधी जी के प्रति गुप्त जी की गहरी आस्था थी। उन्होंने गांधी जी के अनेक सिद्धान्तों को अपने काव्य में पिरोया है। मानवीय संवेदना, अछूतोद्धार भावना, सत्याग्रह, अहिंसा आदि अनेक सिद्धान्तों का निरूपण उनके काव्य में हुआ है।

88. भाषा की द ष्टि से द्विवेदी युग का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर भाषा की द ष्टि से द्विवेदी युग सुधारवादी युग माना जाता है। अब ब्रज भाषा का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषा सुधार कार्य किया तथा खड़ी बोली को स्वतन्त्र व्याकरण सम्मत और परिमार्जित किया। उधर गुप्त ने खड़ी बोली की खड़खड़ाहट को दूर करके इसे साहित्यिक भाषा बनाया। इस युग में निश्चय ही खड़ी बोली अपना सुंदर रूप सुधार पर सुंदर भाषा बन गयी।

89. महावीर प्रसाद द्विवेदी का परिचय दीजिए।

उत्तर द्विवेदी जी सबसे प्रभावशाली साहित्यकार थे। वे संस्कृत, हिंदी, गुजराती, मराठी, बंगला आदि भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। सरस्वती के सम्पादक के रूप में इन्होंने भाषा और साहित्य के परिष्कार और उन्नति के लिए अथक परिश्रम किया। इनके ग्रंथों की संख्या अस्सी बनाई जाती है। इनकी प्रमुख काव्य कृतियों में काव्य मंजूषा, सुमन, गंगा लहरी, ऋतु तरंगिणी आदि हैं। इनके काव्य में इतिव त्तात्मकता की प्रधानता है।

90. अध्योध्या सिहं उपाध्याय 'हरिऔघ' जीवन परिचय दीजिए।

उत्तर हरिऔघ जी समय के प्रख्यात कवि थे। इन्होंने उर्दू, फारसी और संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया। इन्होंने काव्यों की रचना की जिनमें प्रियप्रवास, पद्य-प्रसून, चुभते चौपदें, चौखे चौपदे, रस कलश, पदैही वनवास आदि प्रसिद्ध हैं। हरिऔध जी सुधारवादी आंदालने से प्रभावित थे। इनमें भक्ति श्र ंगारिकता की प्रव तियां विद्यमान थीं। राष्ट्रीयता की प्रव ति उनके काव्य में मिलती है।

91. श्रीधर पाठक का परिचय दीजिए।

उत्तर श्रीधर पाठक का नाम द्विवेदी युगीन काव्यों में महत्वपूर्ण है। इन्होंने खड़ी बोली पद्य के लिए ताल एवं स्वर के नए ढांचे निकाले। उन्होंने लावणी शैली के आधार पर एकान्तवासी योगी तथा सन्तों की सधुक्कड़ी पद्धति पर जगत सच्चाई सार की रचना की। उनकी कविताओं में प्रकृति-प्रेम का आधिक्य मिलता है। प्रकृतिवर्णन सम्बन्धी कतिपय पंक्तियां द्रष्टव्य हैं-

विजन वन प्रानत था, प्रकृति मुख शान्त था।

अटन का समय या रजनी का उदय था।।

92. जगन्नाथ 'रत्नाकार' का परिचय दीजिए।

उत्तर ये हरियाणा के सफीदो नगरो के निवासी थे। ये उर्दू, फारसी, संस्कृत, बंगला आदि अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। इनके काव्य में भक्ति नीति, श्र ंगार एवं वीरता की प्रव तियां मिलती हैं। इनकी काव्य भाषा ब्रजभाषा है। श्र ंगार लहरी, हरिश्चन्द्र हिंडोला। गंगावतरण, उद्यव शतक आदि इनकी प्रमुख रचनाएं हैं।

93. रामचरित उपाध्याय का परिचय दीजिए।

उत्तर ये संस्कृत के अच्छे पण्डित थे और पुराने ढंग की कविता किया करते थे। बाद में द्विवेदी जी के प्रोत्साहन से भी खड़ी बोली में कविता करने लगे। राष्ट्र-भारतीय, देवदूत, देवी-द्रौपदी, भारत भक्ति आदि अनेक कविताएं उन्होंने खड़ी बोली में लिखी। रामचरित चिन्तामणि इनका प्रबन्ध काव्य है। सामाजिक बुराइयों को दूर करने में इनकी कविता नितान्त सक्षम एवं प्रभावी रही है।

94. रामनरेश त्रिपाठी 'निराला' का परिचय दीजिए।

उत्तर इनकी कविता लिखने में बचपन से ही रूचि थी। मिलन, पथिक, स्वप्न आदि अनेक प्रसिद्ध काव्य खण्ड हैं जिनमें राष्ट्र के प्रति प्रेम और समाजसेवा की प्रेरणा दी गई है। उन्होंने अनेक सुधारवादी कविताएं लिखी हैं। उनकी कविता में विश्व बंधुत्व की भावना मिलती है। यथा -

रक्तपात करना पशुता है, कायरता है मन की।

अरि को वश करना चरित्र से शोभा है तन की।।

95. मैथिलीशरण गुप्त का परिचय दीजिए।

उत्तर मैथिलीशरण गुप्त सच्चे अर्थो में राष्ट्र-प्रेमी, भारतीय संस्कृति के निष्ठावान व्याख्याता तथा उदारशमी मानवतावादी कवि थे। वे राष्ट्र कवि थे। उन्होंने अपने युग की सामाजिक एवं आर्थिक दुर्दशा को अपने काव्य का विषय बनाया। अनमेल विवाह, दुर्भिक्ष, दहेज प्रथा, व्यभिचार आदि के निरुपण के माध्यम से उन्होंने देशवासियों को जगाने का प्रयास किया। साकेत, जयद्रथ वध, यशोधरा, भारत भारती आदि इनकी रचनाएं हैं।

96. छायावाद की परिभाषा एवं स्वरूप का विवेचन कीजिए।

उत्तर दो महायुद्धों के बीच की स्वच्छन्दतावादी कविता को छायावादी कविता की संज्ञा दी जाती है। यद्यपि छायावाद हिंदी साहित्य की मौलिक और स्वतन्त्र काव्य धारा है परन्तु फिर भी कुछ आलोचक इसे अंग्रेजी की रोमान्टिक धारा या बंगला की नकल मानते हैं। छायावाद नाम प्रतीकात्मक है। मुकुटधर पाण्डेय ने सर्वप्रथम काव्यात्मक रूप में कहा था। - "यह कविता न होकर उसकी छाया है।" जो कि बाद में कविता के लिए रूढ़ हो गया। डॉ. नगेन्द्र छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्षम का विद्रोह मानते हैं।"

97. 'छायावादी काव्य में वैयक्तिवाद की प्रधानता है।' स्पष्ट कीजिए।

उत्तर वैयक्तिकता से अभिप्राय व्यक्तिवादिता से है। छायावादी कवियों ने काव्य में अपने व्यक्तित्व का प्रदर्शन किया है। इस काव्य में जाति, महाजाति अथवा आदर्श व्यक्तियों के सुख-दुख की नहीं अपितु साधारण व्यक्ति के सुख-दुख की बात है। कवि विषय वस्तु की खोज बाहर से नहीं, अपितु अपने भीतर से करता है और इसीलिए इसके काव्य में कहीं कहीं अहं भावना की अति है। इसका अहं भाव असामाजिक नहीं है। उसमें सर्व मिला हुआ है।

98. 'छायावाद का सबसे उज्जवल पक्ष उसका मानवतावाद है।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर छायावाद का युग विश्वयुद्ध और मानवतावाद की भावना का युग था। मानव मात्र की समानता का प्रचार कर रहे थे। प्रसाद की कामायनी और निराला की तुलसीदास इस भावना का सशक्त प्रचारक बन कर काव्य क्षेत्र में अवतरित हुए थे। मानव-प्रेम, करुण, असाम्प्रदायिकता, उदारता, विश्व बंधुत्व, राष्ट्रीय जागरण आदि भावनाओं के साथ भावुकता, कल्पना तथा प्रकृति में चेतना के दर्शन करने की प्रव त्ति ने हमारे ज्ञान के संबंध में व द्धि की थी। मानव प्रेम का वर्णन पंत ने यूं किया है - "सुंदर है विहग सुमन सुंदर, मानव तुम सबसे सुंदरतम।"

99. छायावाद में प्रकृति के सुंदर चित्र अंकित हुए हैं। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर छायावादी कवियों का मन प्रकृति में खूब रमा है। इस काल के काव्य में प्रकृति पर चेतनता का आरोप किया है। इसके लिए कवियों ने मानवीकरण अलंकार का प्रयोग किया है। सभी प्रमुख छायावादियों ने प्रकृति का चित्रण नारी रूप में किया है। प्रकृति के आलम्बन, उद्दीपन, मानवीकरण, दूती, रहस्यवादी सभी रूपों का चित्रण यहां हुआ है। इस चित्रण में श्लीलता और सात्विकता विद्यमान है।

100. छायावादी काव्य की नारी भावना को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर छायावदी कवियों ने नारी के प्रति सहज सहानुभूति रखी है। इनके नारी के प्रति प्रेम और सौंदर्य चिंतन में सूक्ष्मता और अश्लीलता नहीं हैं इनके नारी चित्रण में छुटाव छिपाव नहीं है। उसमें कवि की वैयक्तिकता है। उनकी कविताओं में नारी के सौंदर्य चित्रण में स्थूलता व नग्नता नहीं, बल्कि स्वाभाविकता है। कवियों ने नारी के दया, ममता, वासना, सहानुभूति - आदि भावों का भी चित्रण किया है।

101. छायावादी युग कवियों में स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम की भावना दिखाई पड़ती है। सिद्ध कीजिए।

उत्तर छायावादी कवियों के काव्य में राष्ट्रीय जागरण और स्वतन्त्रता का आह्वान भी सर्वत्र है पाश्चात्य रोमांटिक धारा के कवियों ने भी रहस्यवाद और स्वच्छन्दता की भावनाओं का सम्मिश्रण किया था। इस राष्ट्रीय जागरण की गोद में गढ़ने वाले कवियों के काव्य में राष्ट्र प्रेम की भावनाओं का पाया जाना स्वाभाविक है। जयशंकर प्रसाद के काव्य तो अलग, सभी नाटक भी राष्ट्र प्रेम की भावना और गीतों से ओत-प्रोत हैं

102. छायावादी काव्य में वेदन और करुणा की भावना सर्वत्र अभिवयक्त हुई है। सिद्ध कीजिए।

उत्तर इस काव्य में युगानुरूप वेदना की वि‍व ति हुई है। छायावाद के कर्णधारों का काव्य वेदना सेवावाद, मानवतावाद और अध्यात्मकवाद पर आधारित है। कुछ आलोचकों ने इस निराशावाद को तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन में असफलता के कारण माना है। डॉ. शिवदान सिंह चौहान लिखते हैं - "इसलिए यद्यपि उनकी वाणी में मनुष्य की महिमा का उदघोष है तो कहीं कहीं घोर नैराश्य से भरा और आत्मपीड़क चीत्कार भी है।"

103. छायावादी कविता में रहस्य भावना दिखाई पड़ती है। समीक्षा कीजिए।

उत्तर छायावादी कवियों का वर्णन विषय आध्यात्मिकता से अछूता नहीं है। छायावाद में बाह्य पदार्थो की अपेक्षा आंतरिकता की प्रव ति अधिक है। यही प्रव ति मनुष्य को रहस्यवाद की ओर अग्रसर करती है। रहस्यवादी कवि लौकिकता से अलौकिक और स्थूल से सूक्ष्मता की ओर अग्रसर होता है। डॉ. गणपति चंद्र गुप्त के शब्दों में - "वीणा में पंत रहस्यवादी थे, गुंजन में पत्नी या प्रेयसीवादी और युगान्त के बाद स्थूल भौतिकवादी और यही बात निराला में मिलती है।"

104. छायावादी काव्य आदर्शवादिता की भावना से परिपूर्ण है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर छायावाद में आंतरिकता की प्रव ति की प्रधानता है। उसमें पदार्थो के बाह्य रूप चित्रण की प्रव ति नहीं है। अपनी इस अन्तर्मुखी प्रव ति के कारण उसका द ष्टिकोण काव्य के भावजगत् और शैली में आदर्शवादी रहा है। उसे सांसारिक पदार्थो के बाह्य चित्रण की अपेक्षा अपनी सहानुभूतियां अधिक यथार्थ और महत्वपूर्ण लगी हैं। यही कारण है कि उसका काव्य संबंधी द ष्टिकोण कलात्मक रहा और उसमें सुंदर तत्वों की प्रधानता बनी रही।

105. 'छायावादी कवि केवल साहित्यिक ही नहीं थे वरन् संगीत का भी कुशल ज्ञाता था।' इस कथन के आधार पर छायावादी की योग्यता को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर छायावाद का काव्य छन्द और संगीत दोनों द ष्टि से उच्च कोटि का है। इसमें प्राचीन और नवीन दोनों छन्दों का प्रयोग है। छायावादी कवि प्रणय, यौवन और सौंदर्य का कवि है। संक्षिप्तता, तीव्रता, आत्मभिव्यंजना, भाषा की मस णता आदि सभी गुण इनके काव्य में हैं। रामनाथ सुमन के शब्दों में - "इस कवि में जो मस्ती है, भावना, अनुभूति की म दुता है उसे देखते हुए उसकी प्रतिभा गीति काव्य की रचना के अत्यन्त उपयुक्त थी।"

106. जयशंकर प्रसाद का परिचय दीजिए।

उत्तर जयशंकर प्रसाद ने छायावादी काव्य का श्रीगणेश किया। प्रसाद जी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कलाकार हैं। उन्होंने काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध आदि क्षेत्रों में साहित्य का स जन किया। वे प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। प्रकृति चित्रण उनके काव्य की महत्वपूर्ण विशेषता है। नारी की महत्ता, प्रेम निरूपण, कल्पना की प्रधानता, लाक्षणिकता, संगीतात्मकता आदि प्रसाद जी के काव्य की महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं। इनकी काव्य क तियों में कामायनी, आंसू झरना, लहर, कानन-कुसुम, करुणालय, प्रेम पथिक रचनाएं महत्वपूर्ण हैं।

107. सुमित्रानन्दन पंत का परिचय दीजिए।

उत्तर पंत जी सुकुमार भावनाओं के कवि हैं। उन्होंने प्रकृति के अनेक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं। बिम्ब योजना,

अलंकार-योजना, गीतिकार सौन्दर्य भावना, कल्पना की अतिशयता आदि अनेक काव्य की महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं।

108. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का परिचय दीजिए।

उत्तर निराला जी छायावदी के उद्‌भद कवि हैं। जूली की कली से उनका साहित्यिक जीवन प्रारम्भ होता है। उनके काव्य में भारतीय संस्कृति के अतीत गौरव के प्रति श्रद्धा, सांस्कृतिक जागरण, राष्ट्रीय चेतना, प्रगतिवादी विचारधारा, नारी सौंदर्य, प्रकृति सौंदर्य आदि का सुन्दर वर्णन हुआ है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने अनेक काव्य ग्रन्थों की रचना की है। जिनमें परिमल, अनामिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, अनिमा, वेला, नये पत्ते, अर्चना और आराधना आदि प्रमुख हैं। परिमल और अनामिका में छायावाद की सभी प्रव त्तियां देखी जा सकती हैं। कुकुरमुत्ता में कवि ने पूंजीपतियों पर तीखा प्रहार किया है। राम की भक्ति पूजा उनकी प्रौढ़तम कृति है। छायावादी काव्य को निराला जी की मुख्य देन है - मुक्तछन्द।

109. महादेवी वर्मा का परिचय दीजिए।

उत्तर महादेवी वर्मा का कवियित्री एवं गद्य लेखिका के रूप में हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। नीहार रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा आदि उनके प्रसिद्ध काव्यग्रंथ हैं। रश्मी और दीपशिखा उनके मौलिक गीतों का संकलन है। भावमयता, प्रकृति चित्रण, वैयक्तिक अनुभूतियों की प्रधानता, श्र ंगार एवं व्यंग्य भावना, कल्पना की उड़ान, मानवीकरण, लाक्षणिक प्रयोग, प्रतीकात्मकता, आदि अनेक विशेषताएं उनके काव्य में झलकती हैं। महादेवी जी करुणा और वेदना की कवयित्री हैं। उनके काव्य में करुणा एवं वेदना की तीव्र अनुभूति झलकती है।

110. रामधारी सिंह दिनकर का परिचय दीजिए।

उत्तर दिनकर जी की कविता पर राष्ट्रीयता की छाप सबसे अधिक झलकती है। रेणुका, रसवन्ती, द्वंद्वगीत, हुंकार, धूप-छांव सामधेनी, कुरुक्षेत्र रश्मिरथी आदि उनके महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। उनकी रेणुका में रोमांस और आक्रोश है। हुंकार में कवि का द ष्टिकोण राष्ट्रवादी है। सामधेनी में परिवेश के प्रति विक्षोभ एवं राष्ट्र प्रेम की भावना व्यक्त हुई है। दिनकर जी की काव्य द ष्टि प्रगतिशील, मानवीय एवं सांस्कृतिक है।

111. प्रगतिवाद का स्वरूप एवं परिचय स्पष्ट कीजिए।

उत्तर जो विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र में साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र में समाजवाद, दर्श के क्षेत्र में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद है, वही साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद है। इस प्रगतिवाद का मूल आधार कार्ल मार्क्स की विचारधारा है। अनेक विद्वान प्रगतिवाद और प्रगतिशील को एक दूसरे का पर्याय मानते हैं यह भ्रामक है। इन दोनों में सूक्ष्म अंतर है - "प्रगतिवाद शब्द मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा में सर्वथा सम्बद्ध है। जबकि प्रगतिशील शब्द उससे सर्वथा स्वतन्त्र।"

112. कला के प्रति प्रगतिवादी लेखकों का क्या द ष्टिकोण है?

उत्तर कला के प्रति प्रगतिवादी लेखक का द ष्टिकोण पूर्णतः समाजवादी है। कला ऐसी है जो सबकी समझ में आ सके और सबसे शुभ प्रेरणा प्रदान कर सके। प्रगतिवादी चित्रण में भौतिक जीवन का चित्रण रहता है। प्रगतिवादी सर्वसाधारण की भाषा के लिए कलागत विकास, रूप रंग और रोमांस का मोह त्याग कर खरी और तीखी शैली अपनाता है। कला और शैली के इस रूप में बाहरी चमक दमक और आकर्षण नहीं होता पर फिर भी इसमें प्रभाव डालने की उद्‌भुत शक्ति होती है।

113. प्रगतिवादी काव्यधारा में क्रांति की भावना को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए पुरानी परम्पराओं का समूल नाश आवश्यक है। शोषक वर्ग का पूर्ण विनाश जब हो जाएगा तभी मजदूर किसान को समाज में उच्चता प्राप्त होगी। लेकिन शोषक वर्ग सरलता से मार्ग से हटने वाला नहीं है। अतः क्रांति के मार्ग पर चलकर प्रलयंकारी स्वर उत्पन्न करना आवश्यक है। प्रगतिवादी कवि शोषण रूपी फोड़े का इलाज मरहम से नहीं अपितु उसे जड़े से काट कर फैंक देना चाहता है। अमीरों और राजनीतिज्ञों के धोखे में कवि नहीं आना चाहता। अहिंसा की दुहाई देते हुए विनोबाभावे ने भूदान आंदोलन आरम्भ किया, लेकिन नागार्जुन ने इसका विरोध किया।

114. प्रगतिवादी काव्यधारा में नारी की स्थिति का वर्णन कीजिए।

उत्तर प्रगतिवादी कवि के लिए नारी भी मजदूर एवं किसान के समान शोषित है, जो कि युग-युग से सामंतवाद की कारा में पुरुष दसाता की लौहमयी श्र ंखलाओं में बंद है। वह अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खो चुकी है। समाज में उसे वह स्थान प्राप्त नहीं है जो पुरुष को है। प्रगतिवादी कवियों ने नारी के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए उसे सम्मान देने की मांग की है। प्रगतिवादी कवि ने रूपसी नारी का चित्रण न करके कृषक बालाओं एवं मजदूर स्त्रियों का चित्रण किया है।

115. प्रगतिवादी काव्य में मार्क्स तथा रूस का गुणगान किया गया है युक्ति युक्त उत्तर दीजिए।

उत्तर प्रगतिवादी कवियों ने साम्यवाद के प्रवर्तक मार्क्स तथा रूस, जहां उनकी विचार पल्लवित और पुष्पित हुई, दोनों का उन्मुक्त गान किया। इस बात का विचार न करते हुए कि वहां की मान्यताएं भारत के लिए उपयोगी भी सिद्ध हो सकती हैं या नहीं। पंत को कहीं कहीं साम्यवादी दर्शन की व्याख्या मात्र जुटाने में लग जाते हैं। निःसन्देह उनकी ऐसी रचनाओं में भाषा की स्वच्छता है, पर वे किसी प्रकार भी रागात्मक साहित्य की कोटि में नहीं आएगी।

116. मानवतावाद की द ष्टि से प्रगतिवादी काव्य का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर प्रगतिवादी कवियों के दो समुदाय हैं - 1. अपनी मात भूति के लिए लिखता है और विधवाओं का उद्धार करना चाहता है। 2. समस्त मानवता का उद्धार चाहने वाले। उसे संसार के सब पीड़ित लोगों से प्यार एवं सहानुभूति है। उसे संसार के किसी भी कोने में किए गए अत्याचार के प्रति रोष है। उसके लिए हिन्दु मुस्लिम, हब्शी और यहूदी मानव के नाते सब बराबर हैं।

117. 'प्रगतिवादी काव्य में वेदना और निराशा की भावना अभिव्यक्त हुई है।' स्पष्ट कीजिए।

उत्तर इस काव्य धारा की वेतना वैयकित्क और सामाजिक है। प्रगतिवादी कवि संघर्षो से जूझता हुआ निराश नहीं होता। उसे विश्वास है कि वह इस सामाजिक वैषम्य को दूर करने में सफल होगा और वह उस समता के स्वर्ग विहान की आशा करता है। उसकी ओजस्विनी वाणी शोषित वर्ग को स्फूर्ति प्रदान करके उसे अत्याचार के विपरीत मोर्चा लेने के लिए तैयार करती है। प्रगतिवादी इसी संसार को स्वर्ग बनाना चाहते हैं।

118. 'प्रगतिवादी काव्य में रूढ़ियों का विरोध हुआ है।' विवेचन कीजिए।

उत्तर प्रगतिवादी कवि ईश्वर को स ष्टि का कर्ता न मानकर उसके महत्व को नकारता है। उसे ईश्वर की सत्ता, आत्मा, परलोक, भाग्यवाद, धर्म, स्वर्ग, नरक आदि पर विश्वास नहीं है। उसकी द ष्टि में मानव की महत्ता सर्वोपरि है। उसके लिए धर्म एक अफीम का नशा है और प्रारब्ध एक सुंदर प्रवंचना। उसके लिए वर्ण-व्यवस्था निराधार है। सभी समान हैं। बाह्य आडंबरों एवं अंधविश्वासों में यह विश्वास नहीं करता, अपितु इनकी आलोचना करता है।

119. 'प्रगतिवादी काव्य जहां एक ओर शोषितों के प्रति स्नेह रखता है वहीं दूसरी शोषकों के प्रति घ णा।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर प्रगतिवादी कवि का मानना है कि शोषित मानव जाति के लिए एक घोर अभिशाप है और इसका निवारण साम्यवादी व्यवस्था का लक्ष्य है। कवि शोषित की करुण दशा का चित्रण स्नेहवश करता है। वह दीन दलितों की दशा को देख आंसू बहाता है जबकि शीर्षकों की कटु आलोचना करते हुए आंखों से अंगार बरसाता है। कहता है "हो यह समाज चिथड़े-चिथड़े शोषण पर जिसकी नीव गड़ी।" कवि सामाजिक जीवन के वैषम्य को देखकर आक्रोशमयी प्रलयंकारी वाणी में वज्रनिघौष कर उठता है।

120. प्रयोगवाद का आरम्भ कब और क्यों हुआ?

उत्तर सन् 1943 में अज्ञोय जी के तारसप्तक के सम्पादन के साथ ही प्रयोगवाद का जन्म हुआ है। कारण, प्रथम तो छायावाद ने अपने शब्दाडंबर में बहुत से शब्दों और बिम्बों के गतिशील तत्वों को नष्ट कर दिया। दूसरे प्रगतिवाद ने सामाजिकता के नाम पर विभिन्न भावस्तरों एवं शब्दसंस्कारों को अभिधात्मक बना दिया था। ऐसी स्थिति में भाषा और शैली में सामर्थ नहीं रहा। परिणामस्वरूप उन कवियों को जो इनसे प थक थे, सर्वथा नया स्तर और नए माध्यमों का प्रयोग करना पड़ा। ऐसा इसलिए भी करना पड़ा कि भाव स्तर की नई अनुभूतियां विषय और संदर्भ में इन दोनों से सर्वथा भिन्न थीं।

121. प्रयोगवाद के मूल तत्व क्या हैं?

उत्तर 1. नवीनता - नवीन विषयों का वर्णन नई शैली में करना, 2. मुक्त यथार्थवाद - यथार्थ का ज्यों का त्यों चित्रण करना। साहित्य में जो प्रसंग (अश्लीलता, नग्नता) अब तक स्थान नहीं प्राप्त कर सके थे, उनका चित्रण इन कवियों ने किया है। 3. बौद्धिकता - नया कवि बौद्धिकता का अधिक वर्णन करता है, भावात्मकता का नहीं 4. क्षणिकता - प्रयोगवाद में एक क्षण का महत्व प्रतिपादित किया गया है। क्षणिक आनन्द सम्पूर्ण जीवन में सुख ही सुख भर देता है।

122. प्रगतिवादी काव्य धारा में अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद आत्मा तक छाया हुआ है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर प्रगतिवादी कवि की अन्तरात्मा में अहंनिष्ठा व्यक्तिवाद इस रूप से बद्धमूल है कि वह सामाजिक जीवन के साथ किसी प्रकार से गठबंधन नहीं कर पाता। वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति आधुनिक काव्य की मुख्य विशेषता है। भारतेन्दु द्विवेदी और छायावादी युग में इसकी प्रधानता रही पर प्रयोगवादी कवि की वैयिक्तिकता तो मात्र आत्म विज्ञान बनकर ही रह गई। इनका लक्ष्य है-"कवि न होऊँ नहि चतुर कहाऊँ।"

123. प्रयोगवादी कविता में नारी का क्या रूप चित्रित हुआ है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर प्रयोगवादी कविता में नारी के तीन रूपों का चित्रण हुआ हैं 1. आधुनिक नारी जो बौद्धिक है, 2. भारतीय ग हणी जो हिन्दू संस्कृति में अपनी द ढ़ आस्था रखती है, 3. मध्यवर्गीय परिवारों की नारियां जो जीवन को एक भार समझकर ढो रही हैं। अज्ञेय जी ने पुरूष एवं स्त्री का संबंध पति पत्नी स्वीकार न करके चिरन्तन पुरुष और चिरन्तन स्त्री का सम्बन्ध स्वीकार किया है। पुरुष से संबंध स्थापित करती है अपनी तन, मन, धन की लालसा को पूर्ण करने के लिए। वह धोखा देती है और धोखा खाती है।

124. प्रयोगवादी कविता और रीतिकालीन कविता में क्या समानता है?

उत्तर यद्यपि प्रयोगवादी कवि स्वयं को आधुनिक मानता है परन्तु उसकी कविता में सदियों पुरानी रीतिकाव्य की पद्धति का अनुकरण स्पष्ट दिखाई देता है। जिस प्रकार उन्होंने (रीतिकाल के कवियों) जीवन के व्यापक मूल्यों में से केवल रसिकता और कामुकता का मुख्य रूप से चित्रण किया, उसी प्रकार नए कवि ने कुण्ठाओं और दमित वासनाओं का अधिक चित्रण किया है। उसकी अभिव्यक्ति, अर्थशून्य है। रीतिकाव्य की चमत्कारवादिता नई कविता में भी देखी जा सकता है। उनका कलापक्ष मनोहारी था, लेकिन उनका तो यह पक्ष भी सिवाय नए प्रयोगों के कुछ नहीं है।

125. प्रयोगवादी काल में नग्नता एवं अश्लीलता दिखाई पड़ती है। उत्तर दीजिए।

उत्तर प्रयोगवादी काव्य में उन वस्तुओं का चित्रण बड़े गौरव के साथ किया है जिनका श्रेष्ठ साहित्यकार बहिष्कार करता है। इस कवि का लक्ष्य दमित वासनाओं एवं कुठाओं का चित्रण मात्र रह गया है। काम वासना जीवन का अंग अवश्य है, किंतु जब वह अंग न रहकर अंगी और साधन न रहकर साध्य बन जाती है तब उसकी विकृति एक घोर भयावह विकृति के रूप में होती है। यदि यूं कहा जाए कि प्रयोगवादी काव्य में सेक्स का खुला चित्रण है तो कोई अत्युक्ति न होगी।

126. नई कविता में निराशावादी भावनाओं से संप क्त है। समीक्षा कीजिए।

उत्तर नई कविता का कवि अतीत की प्रेरणा और भविष्य की उल्लासमयी उज्जवल आकांक्षा दोनों से विहीन है, उसकी द ष्टि केवल वर्तमान पर टिकी है। यह निराशा के कुहासे से संर्वत्तः आव त है। उसका द ष्टिकोण द श्यमान जगत के प्रति भ्रमवादी तथा निराशावादी है। उनके लिए कल निरर्थन है, उसे उसके दोनों रूपों पर भरोसा और विश्वास नहीं है। डॉ० गणपति चंद्र गुप्त के शब्दों में - "उनकी (नई कविता के कवियों की) स्थिति उस व्यक्ति की भांति है जिसे यह विश्वास हो कि अगले क्षण प्रलय होने वाली है। अतः वे वर्तमान में ही सब पा लेना चाहते हैं।"

127. 'नई कविता (प्रयोगवाद) में बौद्धिकता की प्रधानता है।' क्या यह ठीक है। युक्ति युक्त उत्तर दीजिए।

उत्तर नई कविता में अनुभूति एवं रागात्मकता की कमी है। इसमें बौद्धिक व्यायाम की उछल-कूद आवश्यकता से भी अधिक है। नया पाठक इससे प्रभावित हुए बिना इसकी पहेली बुझौवल के चक्रव्यूह में फंस जाता है। धर्मवीर भारती ने इसे बौद्धिकता के विषय में कहा है - "प्रयोगवादी कविता में भावना है, किंतु हर भावना के सामने एक प्रश्न चिन्ह लगा

हुआ है। इसी प्रश्न चिन्ह को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। सांस्कृतिक ढांचा चरमरा उठा है और यह प्रश्न चिन्ह उसी की छविमात्र है।"

128. प्रयोगवादी कविता में उपमानों की नवीनता है। निरुपण कीजिए।

उत्तर प्रयोगवादी कवि ने उपनामों के इतने अधिक नए प्रयोग किए हैं, जिससे लगता है कि कवि बाजीगर बन गया है। इन नए उपमानों के प्रयोग में सुरूचि का भी ध्यान आवश्यक है। अलंकारों का धर्म काव्य सौंदर्य में अभिव द्धि करना है, किंतु उजले वस्त्रों को कफन की उपमा देना, बादल को हड्डी कहना तथा टूटे सपने को भुंजा हुआ पापड़ कहने से सौंदर्य स ष्टि न होकर पाठक के मन में विक्षोभ की स ष्टि होती है। हां कहीं कहीं अच्छे उपमान भी दिखाई पड़ते हैं।

129. 'प्रयोगवादी काव्य में छन्द के बंधन को स्वीकारा नहीं गया।' क्या यह कथन ठीक है। विवेचन कीजिए।

उत्तर प्रयोगवादी कलाकार अन्य क्षेत्रों के समान छन्द के बंधन को स्वीकार न सका और उसने मुक्तक परंपरा में विश्वास किया। कुछ नए गीतों की रचना की, कुछ नए प्रयोग किए। कुछ ऐसी कविताओं की रचना की जिसमें न लय है न गति अपितु गद्य की सी नीरसता एवं शुक्श्ता है। एक प्रसिद्ध आलोचक ने कहा है - "यही कारण है कि प्रयोगवादी कवियों ने मुक्तक छन्द अपने आप में हलचल सी, एक बवण्डर सा रखते हुए प्रभावशून्य प्रतीत होते हैं। उनकी करुणा और उच्छवास भी पाठक के हृदय को द्रवित नहीं कर पाते। हां, तो होता क्या है कि विस्मयकारिणी स ष्टि।"

130. अज्ञेय का परिचय दीजिए।

उत्तर अज्ञेय नई कविता के प्रवर्तक एवं समर्थ कवि हैं। इनके उपन्यास कार कवि, कहानीकार, पत्रकार, यात्राव त्तान्त लेखक आदि अनेक रूप हैं। अज्ञेय जी नई कविता के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। भग्नदूत, चिंता, हरि घास पर क्षणभर, बावरा-अहेरी, इन्द्र धनुष रौंदे हुए, आंगन के पार द्वार आदि उनके महत्वपूर्ण काव्य संग्रह हैं। आस्था, विश्वास का स्वर व्यष्टि व समष्टि की भावना, व्यंग्य आदि उनके काव्य की अनेक विशेषताएं हैं। उनकी कविता में बौद्धिकता की प्रधानता है। उन्होंने अपनी कविता में नए उपमानों, बिम्बों प्रतीकों एवं शब्दों को विकसित किया है। इस द ष्टि से अज्ञेय नई कविता के प्रमुख स्तम्भ हैं।

131. गिरिजाकुमार माथुर का परिचय दीजिए।

उत्तर प्रयोगवादी कवियों में गिरिजाकुमार माथुर का नाम भी प्रसिद्ध है। इनकी कविता का प्रमुख विषय प्रेम और विरह है। उनकी कविता में श्र ंगारिकता की प्रधानता है। कहीं कहीं संघर्ष और क्रांति की भावना भी झलकती है। शिल्प के क्षेत्र में संगीतात्मकता एक प्रमुख विशेषता है। उनकी कविता में सहज संगीत, लय और प्रवाह है। माथुर जी ने अपनी कविता में नए शब्दों, बिम्बों एवं प्रतीकों का भी प्रयोग किया है। मंजीर धूप के धान, नाश और निर्माण, प थ्वी कल्प आदि उनकी प्रमुख काव्य रचनाएं हैं।

132. धर्मवीर भारती का परिचय दीजिए।

उत्तर धर्मवीर भारती एक सफल प्रयोगवादी कवि एवं पत्रकार हैं। उनकी रचनाओं में वासनाओं एवं काम कुण्ठाओं, दुख, निराशा का सुंदर चित्रण हुआ है। उनकी काव्यरचनाओं में अंधा युग, ठण्डा लोहा, सात-गीत वर्ष, कनुप्रयिा आदि प्रमुख हैं। अंधायुग में उन्होंने सांस्कृतिक क्रांति उत्पन्न करने का प्रयास किया है। निराला के प्रति थके हुए कलाकार से फूल मोलबत्तियां और टूटते सपने आदि उनकी बड़ी सुन्दर कविताएं हैं। बिम्ब और प्रतीक योजना, नाटकीयता की द ष्टि से उनकी कविता सरल है। उनकी भाषा सहज, सरल और स्पष्ट है।

133. 'नई कविता में क्षण का महत्व स्वीकार किया गया है।' समीक्षा कीजिए।

उत्तर यह कविता जीवन के एक क्षण को सत्य मानती है और सत्य को पूरी शक्ति के साथ भोगने का आग्रह करती है। क्षणबोध शाश्वत जीवन बोध का विरोधी नहीं बल्कि उसे प्राप्त करने की यथार्थ प्रक्रिया है। क्षण में दिखाई पड़ने वाले किसी जीवन सौंदर्यमय भाव में अनुभूत होने वाली जीवन-व्यथा, जीवन का उल्लास, क्षण में दिख पड़ने वाली मन:स्थिति या बाहरी व्यापार का कोई हिस्सा छोटा नहीं होता । उसका जीवन और साहित्य में एक अपना मूल्य है - वह क्षण की मार्मिक सत्यानुभूति जीवन को एक नवीन सार्थकता प्रदान करती है।

134. व्यंग्यात्मकता की द ष्टि से नई कविता का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर नई कविता में कवियों ने आज के युग में व्याप्त विषमता का व्यंग्यात्मक चित्रण किया हैं व्यंग्यात्मक शैली में जीवन और सभ्यता के चित्रण में कवि को अद्‌भुत सफलता मिली है। श्रीकान्त वर्मा ने नगरहीन मन शीर्षक कविता में आज के नागरिक जीवन की स्वार्थपरकता, छल-कपटपूर्ण जिंदगी को स्वर दिया है। अज्ञाय की कविता सांप में भी नागरिक सभ्यता पर करारा व्यंग्य किया है। - "सांप तुम सभ्य तो हुए नहीं, न होगे...।"

135. समकालीन कविताकी अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

उत्तर जब कभी आधुनिकता शब्द को लेकर विद्वान चर्चा करते हैं तो वे आधुनिकता और समकालीनता में भेद करने का प्रयास करते हैं। यह भी कहते हैं - 'आधुनिकता काल-निरपेक्ष मूल्य है जबकि समकालीन काल-सापेक्ष अनुभव है। डॉ. हरदयाल के शब्दों में - "कोई व्यक्ति अपने समय को यदि अनुभव के स्तर पर ग्रहण कर लेता है तो वह समकालीनता के बाध से युक्त है।" फिर भी प्रश्न उठता है कि इसका अर्थ क्या है? इसका शाब्दिक अर्थ है - अपने समय से जुड़ने का भाव।

136. 'समकालीन कविता में सांस्कृतिक विपन्नता के दर्शन होते हैं।' स्पष्ट कीजिए।

उत्तर सांस्कृतिक विपन्नता के दर्शन होने का कारण है कि हमारी संस्कृति के अधिकांश मूल्य खो रहे हैं। नया बनता समाज उन्हें छोड़ रहा है। या यूं भी कह सकते हैं कि आधुनिक पीढ़ी उन्हें अपनाना ही नहीं चाहती। आठवें दशक तक आते आते संस्कृति के प्रति ये आक्रमण और आक्रोश और भी तीव्र हो गए। समकालीन कविता में संस्कृति के प्रति ये बेगानापन हमें बार बार दिखाई पड़ता है। मानो ये कवि कहना चाहते हों कि हमारे समूचे इतिहास एवं संस्कृति की पुनः जांच होनी चाहिए।

137. समकालीन कविता विद्रोह और तनाव की कविता है क्यों?

उत्तर समकालीन कविता के लिए राजनीति एक सजीव सच्चाई है। पंचवर्षीय योजनाओं में अरबों रूपये लगाने के उपरान्त भी गरीबी, बेकारी, मंहगाई, भुखमरी, अकाल आदि की स्थिति बनी रही है। हमारी ग ह नीति और विदेश नीति असफल रही। इस प्रकार के वातावरण का साहित्य पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। इस कविता में सामाजिक रूढ़ियों के प्रति आक्रोश की भावना विद्यमान है। लीलाधर जूगड़ी, चंद्रकांत देवताले आदि अत्यधिक आक्रोश के कवि हैं।

138. 'समकालीन कविता में पौराणिक संदर्भ किस प्रकार आए हैं।' स्पष्ट कीजिए।

उत्तर समकालीन कविता में पौराणिक संदर्भो को लेकर लिखने वाले अनेक कवि हैं। अज्ञेय की असाध्य वीणा, नरेश मेहता की संशय की एक रात, कुंवर नारायण की चक्रव्यूह तथा जगदीश चतुर्वेदी की 'सूर्यपुत्र' जैसी कविताओं को लिया जा सकता है। सन् 1985 में प्रकाशित विश्वनाथ तिवारी की कविता 'टल गया एक महाभारत' इस बात का सबूत है कि आज का कवि अपनी रचनात्मक ऊर्जा को प्राप्त करने के लिए मिथ्क और यथार्थ के अनेक रूपों को स्वीकार करता है।

139. समकालीन कविता में आम आदमी की स्थिति कैसी है। स्पष्ट कीजिए।

उत्तर समकालीन कविता को आम आदमी की कविता कहा गया है। उसमें सर्वत्र आम आदमी की खोज का प्रयास किया गया है। लीलाधर जगूड़ी लिखते हैं -

'बाहर कहीं से भी दबोचो आदमी की जात'

ढीली पड़ गई।

समकालीन कविता की भाषा अत्यंत सल एवं दैनिक जीवन की भाषा है। यह आम आदमी की भाषा है।

140. राजस्थानी गद्य पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए।

उत्तर हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल में राजस्थान ही संस्कृति और साहित्य का केन्द्र रहा। इस समय की भाषा डिंगल थी। चारम भार कवियों ने धर्म, नीति, इतिहास, छन्द शास्त्र आदि विभिन्न विषयों पर ग्रन्थ लिखे। इस काल की कुछ पुस्तकें हैं - रघुवरजस प्रकास, आनन्द रघुनन्दन, पंचाख्यान, भाषा भरथ, बेलि क्रिसन रुकमणीरी आदि। बाद में इसमें ब्रजभाषा का प्रयोग बढ़ गया और राजस्थानी गद्य का निर्माण लगभग बंद हो गया।

141. ब्रजभाषा गद्य पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

उत्तर ब्रजभाषा गद्य का सर्वप्रथम लेखन गोरख पंथी किसी लेखक को माना जाता है। गोरख सार गोरख गणेश गोष्ठी, महादेव गोरख संवाद इनकी गद्य रचनाएं हैं। 16वीं शताब्दी में बल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने श्र`गार रक्ष मण्डन लिखा तथा 17वीं शताब्दी में पुष्टिमार्गी कवि ने चौरासी वैष्णव की वार्ता तथा दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता नामक पुस्तकें लिखीं, जिनका ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक मूल्य अब भी है। 1795 ई. में जयपुर नरेश प्रताप सिंह की आज्ञा से हीरालाल ने 'आइनेअकबरी' का भाषा वधनिका नामक बड़ी पुस्तक लिखी।

142. खड़ी बोली ग्रंथ पर संक्षिप्त नोट लिखिए।

उत्तर खड़ी बोली दिल्ली के आस पास बोली जाने वाली जनसाधारण की भाषा है। धीरे - धीरे खड़ी बोली विकसित होकर गद्य लेखन की मुख्य भाषा बन गई। गद्य क्षेत्र में खड़ी बोली की प्रतिष्ठापना का एक अन्य कारण यह भी है कि अंग्रेजों ने अपना काम सुचारू रूप से चलाने के लिए जिस भारतीय भाषा को सीखा वह यही थी क्योंकि इसका प्रचलन समाज में सबसे अधिक था। खड़ी बोली गद्य की सर्वप्रथम रचना अकबर के दरबारी कवि गंग की चंद छन्द बरनन की महिमा (1570 ई.) है। इसके पश्चात् रामप्रसाद निरंजनी की भाषायोग वरिष्ठ रचना है।

143. लेखक चतुष्टय से अभिप्राय है?

उत्तर खड़ी बोली गद्य के विकास की परम्परा में मुंशी सदासुख लाल नियाज, इंशा अल्ला खां, लल्लू जी लाल और सदल मिश्र के नाम उल्लेखनीय हैं। सन् 1800 में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई और इस में जान गिल क्राइस्ट ने हिन्दी उर्दू में गद्य की पुस्तकें तैयार करने की व्यवस्था की। लल्लू जी लाल और सरला मिश्र दोनों इस कॉलेज में काम करते थे पर सादसुख लाल और इंशा अल्ला खां ने स्वतन्त्र रूप से खड़ी बोली गद्य में लिया।

144. सदासुख लाल का परिचय दीजिए।

उत्तर सदासुख दिल्ली के निवासी थे और एक कंपनी में नौकरी करते थे। ये उर्दू फारसी में शायरी करते थे और उन्होंने इन भाषाओं में अनेक पुस्तकें लिखीं। नौकरी से रिटायर होने के पश्चात् इन्होंने विष्णु पुराण से उपदेशात्मक प्रसंग लेकर एक पुस्तक लिखी और हिंदी में श्रीमद् भागवत का सुख सागर के नाम से स्वतन्त्र अनुवाद किया। इन्होंने हिन्दुओं की बोलचाल की शिष्ट भाषा का प्रयोग किया यह इनके गद्य में जगह जगह पंडिताऊपन है। स्थान स्थान पर तत्सम शब्दावली के प्रयोग के द्वारा उन्होंने भावी साहित्यिक रूप की स्थापना का आभास दे दिया था।

145. हिन्दी गद्य के विकास में इंशा अल्ला खां का योगदान स्पष्ट कीजिए।

उत्तर इंशा अल्ला खां उर्दू के प्रसिद्ध शायर थे। अनेक नवाबों की सेवा में रहकर इन्होंने काफी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। इनके द्वारा लिखित रानी केतकी की कहानी हिन्दी गद्य की पहली मौलिक रचना है। इन्होंने फड़कती हुई मुहावरेदार और विनोदपूर्ण शैली में लिखा। इन्होंने, अरबी, फारसी, अवधी, ब्रज और संस्कृत के शब्दों से बचकर खड़ी बोली में लिखने का प्रयास किया पर फिर भी फारसी ढंग के वाक्य विन्यास का प्रभाव इन पर स्पष्ट है। डॉ. शिवदान सिंह चौहान के शब्दों में, "गद्य में मुहावरों का ऐसा प्रयोग उनके पूर्ववर्ती किसी लेखक ने नहीं किया था और न ही किसी ने हिन्दी गद्य में इस कोटि की मौलिक रचना की थी।"

146. हिंदी गद्य साहित्य में लल्लू लाल जी का योगदान स्पष्ट कीजिए।

उत्तर लल्लूलाल जी आगरा के रहने वाले गुजराती ब्राह्मण थे। हिन्दी, उर्दू और संस्कृत भाषा के अच्छे जानकार थे। इन्होंने भागवत के दशम् स्कन्ध की कथा को लेकर प्रेमसागर नामक पुस्तक की रचना की। इसकी भाषा पर ब्रज और उर्दू का बहुत अधिक प्रभाव है। एक अंग्रेज ने इनकी पुस्तक के विषय में लिखा है। कि, "Such a language did not exist in India before. When therefore, Lalluji Lal wrote his Prem Sagar in Hindi, he was invetning an altogether new language.'

इसके अतिरिक्त इन्होंने बेताल पचीसी, सिंहासन बतीसी, शकुन्तला नाटक, माधव विलास हितोपदेश आदि का हिन्दी में अनुवाद किया । बिहारी सतसई पर इन्होंने टीका भी लिखी।

147. भारतेंदु युगीन हिन्दी निबन्ध पर एक नोट लिखिए।

उत्तर भारतेंदु हिन्दी के प्रथम प्रतिभा सम्पनन निबन्धकार हैं। उन्होंने समाज सुधार, इतिहास, धर्म, पुरातत्व, यात्रा, कला, भाषा, इतिहास आदि विभिनन विषयों पर निबन्ध लिखे हैं। निबन्धों के द्वारा उन्होंने सामाजिक कुरीतियों का जमकर प्रहार किया है। अंग्रेजी सरकार पर भी व्यंग्य किया है। रामायण का समय, काशी, कश्मीर कुसुम, संगीत सार, हिन्दी भाषा आदि उनके प्रसिद्ध निबन्ध हैं। इस युग के बालकृष्णभट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, श्री निवासदास, राधाचरण गोस्वामी आदि प्रमुख निबंधकार हैं। इस युग के निबंध आंख, भौं, नाक, कान आदि से लेकर सामाजिक साहित्यिक आदि सभी विषयों पर लिखे गए हैं।

148. हिन्दी गद्य के विकास में ईसाइयों का योगदान क्या है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के लिए ईसाई मिशनरियों ने अनेक स्कूल खोले। ईसाई लोग मुफ्त में ही अपने द्वारा छापे गए ग्रन्थों को लोगों को देने लगे। इनका गद्य उच्च कोटि का नहीं था। इसमें क त्रिमता, शिथिलता, व्यर्थ शब्दों और मुहावरों का गलत प्रयोग था। इनका गद्य सरल और सीधा था। चलती भाषा में भावों को अभिव्यक्त किया गया था। शिक्षा संबंधी पुस्तकें और नागरी लिपि में सुंदर टाइप के लिए हमें ईसाई धर्म के प्रचारकों का आभार स्वीकार करना चाहिए। उनका गद्य के विकास में प्रत्यक्ष नहीं तो अप्रत्यक्ष सहयोग अवश्य रहा है।

149. राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्दी ने हिन्दी के विकास में क्या योगदान दिया था?

उत्तर शिवप्रसाद हिन्दी के पक्षपाती एवं संरक्षक अनेक विघ्नबाधाओं के आने पर भी इन्होंने हिन्दी के उद्धार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। ये शिक्षा विभाग में इन्स्पैक्टर थे और अंग्रेजों के कृपाभाजन थे। इन्होंने हिन्दी में पुस्तकें लिखी और सहयोगियों से लिखवाई। इन्होंने इतिहास, अर्थशास्त्र, न्यायशास्त्र आदि से संबंधित पुस्तकें छपवाई और हिन्दी की रक्षा की।

150. राजा लक्ष्मण सिंह की हिन्दी सेवाओं का वर्णन करो।

उत्तर ये शिव प्रसाद की समझौतावादी नीति के कट्टर विरोधी थे। इनकी धारणा थी कि बिना उर्दू के शब्दों के प्रयोग के हिन्दी का सुन्दर गद्य लिखा जा सकता है। ये तत्सम शब्दों के पक्षपाती थे। जिसके कारण इनकी भाषा में कृत्रिमता आ गई है। इन्होंने प्रजा हितैषी नामक हिन्दी में एक पत्र निकाला तथा कुछ पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया। इन दोनों के सहयोग से हिन्दी का प्रचार कार्य जोर पकड़ गया था।

151. विभिन्न धर्म प्रचारकों ने हिन्दी के विकास में क्या योगदान दिया?

उत्तर ईसाई धर्म की प्रतिक्रिया में राजा राममोहन राय ने बंगाल में वेदान्त और उपनिषदों का ज्ञान साथ ले ब्रह्म समाज की स्थापना की। उन्होंने वेदान्त सूत्रों का हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित कराया। उत्तरी भारत में स्वामी दयानन्द ने वैदिक धर्म प्रचार के लिए आर्य समाज की स्थापना की। उन्होंने हिन्दुस्तार को आर्यावर्त और हिन्दी को आर्य भाषा का नाम दिया। सत्यार्थ प्रकाश में इन्होंने मुसलमानों और ईसाईयों की भर्त्सना की तथा अनेक पुस्तकें लिखी। पंजाब में हिंदी प्रचार का प्रायः समूचा श्रेय आर्य समाज को ही है।

152. द्विवेदी युगीन निबन्ध साहित्य पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती के सम्पादक पद से भाषा में सुधार, सत्-साहित्य के प्रसार, लेखन निर्माण और पाठकों की ज्ञानव द्धि का महान कार्य किया। इन्होंने लेखकों का सुसंस्कृत ढंग से बात करना सिखाया। अंग्रेजी के आदर्श निबंधकार बेकर के निबंधों का अनुवाद किया। इस युग के निबंधों के विषय गम्भीर हैं और वे शिष्ट और पढ़े लिखे लोगों के ही अधिक निकट हैं। डॉ.श्याम सुंदर दास, अध्यापक पूर्ण सिंह, बनारसी दास चतुर्वेदी आदि इस युग के मुख्य निबंधकार हैं।

153. शुक्ल युग के निबंधों पर नोट लिखिए।

उत्तर इस युग के सर्वश्रेष्ठ हिंदी निबंधकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हैं। चिंतामणि में संग हित निबंधों के माध्यम से शुक्ल जी ने नए विचार, नई अनुभूति और नई निबन्ध शैली प्रस्तुत की। चिंतामणि (भाग दो) में उच्च कोटि के साहित्यिक, आलोचनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक निबन्ध हैं। इनमें शुक्ल जी के शास्त्रीय विषयों पर मौलिक, गंभीर एवं प्रौढ़ विचार

प्रकट हुए हैं। उनका विषय प्रतिपादन रूखा न होकर रसात्मक है। शुक्ल युग के अन्य निबन्धकारों में डॉ. गुलाबराय, जयशंकर प्रसाद, वियोगी हरि, माखन लाल चतुर्वेदी, निराला, महादेवी वर्मा आदि प्रमुख हैं।

154. शुक्लोत्तर युगीन हिन्दी निबन्ध साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर शुक्लोत्तर युग में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, नंद दुलारे वाजपेयी, वासुदेव शरण अग्रवाल, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा आदि प्रमुख हैं। आज के निबन्ध साहित्य में वर्णनात्मक एवं विचारात्मक निबन्धों का अभाव है। निबंधों में विवेचनात्मक भावात्मक एवं वैयक्तिकता की प्रधानता है।

155. प्रेमचन्द पूर्व युग के हिन्दी उपन्यास साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर मुंशी प्रेमचन्द से पूर्व का युग उपन्यास का आरम्भिक युग माना जाता है। हिन्दी का पहला उपन्यास लाला श्री निवास दास द्वारा लिखा गया 'परीक्षा गुरू' माना जाता है। भारतेंदु युग में सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों की रचना भी की गई थी। श्रद्धाराम फिल्लोरी, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण दास, किशोरी लाल गोस्वामी, देवकीनंदन खत्री इस युग के प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। देवकी नंदन खत्री के चंद्रकान्ता संतति ने हिंदी उपन्यास क्षेत्र में खूब धूम मचाई। नारी जागरण, समाज सुधार, रोमांच, इतिहास, मनोरंजन आदि विशेषताएं इस युग के उपन्यासों में मिलती हैं।

156. प्रेमचन्द्र युगीन हिन्दी उपन्यास पर एक नोट लिखिए।

उत्तर हिन्दी उपन्यास में प्रेमचन्द का आगमन एक बहुत बड़ी घटना है। उन्होंने उपन्यास को सामान्य जनजीवन से जोड़ दिया। उन्होंने सेवासदन, परदान, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, तथा गोदान जैसे अनेक उपन्यासों की रचना की। इस युग के उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद कंकाल, तितली, इरावती (अपूर्ण) आदि, बेचन शर्मा, चतुरसेन शास्त्री, व ंदावन लाल वर्मा, इलाचंद जोशी आदि प्रमुख हैं।

157. प्रम चंदोत्तर युगीन सामाजिक उपन्यासों पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

उत्तर इस युग में पर्याप्त मात्रा में सामाजिक उपन्यास लिखे गए। प्रसाद, कौशिक, चतुरसेन शास्त्री, उपेन्द्र नाथ अश्क आदि ने समाज सुधार के नाम पर यथार्थवाद की आड़ में वर्जित विषयों पर लिखकर अश्लीलता का चित्रण किया। भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, अम त लाल नागर, गोविन्द दास, उदयशंकर भट्ट आदि ने अपने उपन्यासों में व्यक्ति और स्वतन्त्रता के लिए समाज की रूढ़ परम्पराओं और पुराने मूल्यों के प्रति संघर्ष चित्रित किया है। नागर का बूथ और समुद्र व्यष्टि और समष्टि का प्रतीक है।

158. प्रेमचंदोत्तर साम्यवादी हिन्दी उपन्यास साहित्य पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

उत्तर राहुल सांकृत्यायन के सिंह सेबयति, 'वो नगर से गांव तक' तथा यशपाल के दादा कामरेड, पार्टी कामरेड आदि उपन्यास साम्यवादी विचारधारा के पोषक हैं, जिनमें युग जीवन के संघर्ष का चित्रण किया गया है। इन्होंनें समाज के खोखलेपन को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया है। नागार्जुन, रांगेय राघव, गौरव प्रसाद गुप्त, अम तराय आदि ने भी मार्क्स के सिद्धान्तों की पुष्टि करते हुए अपने उपन्यास लिखे। राजेन्द्र यादव का प्रेत बोलते हैं की साम्यवादी विचारधारा का उपन्यास है, जिस पर सारा आकाश नाम से फिल बन चुकी है।

159. प्रेमचंदोत्तर हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यासों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर हिंदी में ऐतिहासिक उपन्यासों की यह धारा बहुत क्षीण है। पूर्व प्रेमचंद युग में जो ऐतिहासिक उपन्यास मिलते हैं, वे किवल इतिहास नामधारी हैं। व ंदावन लाल वर्मा, निराला, सांकृत्यायन, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि का नाम इस क्षेत्र में उल्लेखनीय है। चतुरसेन शास्त्री का नगर वधू एक सुगठित ऐतिहासिक रचना है। अम त लाल नागर के शतरंज के मोहरें और सुहाग के नूपुर प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

160. प्रेमचन्द के बाद के हिन्दी आंचलिक उपन्यास साहित्य पर विवेचन कीजिए।

उत्तर अंचल का अर्थ है - जनपद या क्षेत्र विशेष। जिन उपन्यासों में किसी क्षेत्र विशेष या जनपद के जन-जीवन का समग्र चित्रण हो उन्हें आंचलिक उपन्यास कहते हैं। फणीश्वर नाथ रेणु का 'मैला आंचल', उदयशंकर भट्ट का 'लोक-परलोक' तथा 'सागर और लहरें', रांगेय राघव का 'काका और कब तक पुकारूं' आदि महत्वपूर्ण आंचलिक उपन्यास हैं। इन

उपन्यासों की कमजोरी उनकी स्थानीय बोली है। लेखक को अपनी जाति, धर्म, संस्कृति और वर्ग से अत्यधिक प्रेम होता है। इन उपन्यासों में यह प्रेम भी व्यक्त हुआ है। इन उपन्यासों की सफलता इनका यथार्थवाद है।

161. प्रेमचन्दोतर मनोविश्लेषणात्मक हिन्दी उपन्यास साहित्य पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर आधुनिक मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण शास्त्र के प्रकाश में मानव मन की कुंठाओं, ग्रंथियों और दमित वासनाओं की व्यवस्था करने वाले उपन्यासों मनो विश्लेषणवादी कहलाते हैं। इस कोटि के अन्तर्गत आने वाले उपन्यासकारों पर फ्रायड, एडलर और युंग की विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। उस द ष्टि से जैनेन्द्र कृत 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र' और 'कल्याणी', इलाचंद्र जोशी कृत 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'प्रेत और छाया' तथा 'जहाज का पंछी' और अज्ञेय कृत 'शेखर एक जीवनी', 'नदी के द्वीप' तथा 'अपने अपने अजनबी' विशेष उल्लेखनीय हैं।

162. प्रेमचन्दोत्तर युग के व्यक्तिवादी उपन्यास साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर कुछ उपन्यासकारों ने समाज सत्ता की अपेक्षा व्यक्ति सत्ता को महता प्रदान की है। उन्होंने व्यक्तिवादी जीवनद ष्टि से मानवीय मूल्यों और धारणाओं को व्याख्यायित किया है। इस वर्ग के अंतर्गत भगवती प्रसाद वाजपेयी, उषा देवी मिश्रा तथा उदयशंकर भट्ट आदि आते हैं। वर्मा जी के 'चित्रलेखा', 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'वाजपेयी के दो बहनें', 'चलते-चलते', मिश्रा के 'पिया वचन का मोल' और भट्ट के 'नए मोड़' तथा 'एक नीड़ दो पंछी' आदि उपन्यासों में व्यक्ति की सत्ता और महत्ता का अत्यंत सफलतापूर्वक चित्रण हुआ है।

163. स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य पर संक्षेप में लेख लिखिए।

उत्तर स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हिंदी उपन्यासकारों की एक पूरी पीढ़ी उभर कर सामने आई है। इनके उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ को व्यापक स्वीकृति, व्यक्ति स्वतन्त्रण को प्रव ति तथा आधुनिक बोध की अनुभूति दर्शनीय है। इस द ष्टि से मोहन राकेश (अंधेरे बंद कमरे), राजेन्द्र यादव (उखड़े हुए लोग), उषा प्रियंवदा (रुकोगी नहीं राधिका), श्री लाल शुक्ल (राग दरबारी), मन्नु भण्डारी (आपका बंटी) आदि का योगदान अविस्मरणीय है।

164. हिंदी निबंध के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर "गद्यं क वीनां निकषं वदन्ति" के आधार पर हिंदी में आचार्य शुक्ल का कथन है कि "यदि गद्य कवियों की कसौटी है, तो निबन्ध गद्य की कसौटी है"। अतः जब तक किसी भाषा के गद्य का स्वरूप व्यवस्थित नहीं हो जाता, तब तक उच्चकोटि के निबन्धों का स जन असंभव है। आधुनिक युग से पूर्व हिंदी में निबन्ध के अभाव का सबसे बड़ा कारण यह है कि उस समय व्यवस्थित और परिष्कृत गद्य अनुपलब्ध था। आधुनिक काल में मुद्रण यंत्र तथा पत्र-पत्रिकाओं के प्रचलन और पाश्चात्य साहित्य के संपर्क के कारण ही हिन्दी निबन्ध का जन्म और विकास संभव हो सका है।

165. प्रेमचंद पूर्व हिन्दी कहानी साहित्य का उल्लेख कीजिए।

उत्तर सरस्वती और इंदु नामक पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी कहानी का जन्म हुआ। हिन्दी की प्रथम कहानी के रूप में चर्चित रानी केतकी की कहानी (इंशा अल्ला खां) राजा भोज का सपना (शिव प्रसाद सितारे हिन्द), अद्‌भुत्अपूर्व स्वप्न (भारतेंदु हरिश्चन्द) ग्यारह वर्ष का समय (रामचन्द्र शुक्ल) और इन्दुमति (किशोरीलाल गोस्वामी) इनके पश्चात् बंग महिला की 'दुलाई वाली' तथा सन् 1909 में व ंदावन लाल वर्मा की 'राखी बंद भाई' का प्रकाशन हुआ।

166. प्रयोगशील परंपरा के हिंदी उपन्यासों का वर्णन कीजिए।

उत्तर कहानी और कविता की भांति उपन्यास क्षेत्र में भी आजकल कुछ नवीन प्रयोग किए गए हैं। धर्मवीर भारती का सूरज का सातवां घोड़ा में भिन्न भिन्न व्यक्तियों की अलग अलग कहानियों को एक सूत्रात्मकता के रूप देने का प्रयास किया गया है। रुद्र जी ने बहती गंगा में सत्रह कहानियों के द्वारा काशी नगरी के पिछले दो सौ वर्षो की ऐतिहासिक झांकी प्रस्तुत की है। गिरधर गोपाल ने चांदी के खण्डहर में केवल चौबीस घंटों की कथा को अपने उपन्यास का विषय बनाया है। ग्यारह सपनों का देश अनेक लेखकों द्वारा लिखा गया है।

167. आधुनिकता बोध से प्रभावित हिन्दी उपन्यासों का वर्णन कीजिए।

उत्तर आज के उपन्यास को भी आधुनिक औद्योगिकरण, बौद्धिकता, यन्त्रीकरण तथा पश्चिमी विचारधारा ने प्रभावित किया

है। मोहन राकेश के 'अंधेरे बन्द कमरे' और 'आने वाला कल' आधुनिकता से प्रभावित उपन्यास है। राजकमल चौधरी का 'मछली मरी हुई' समलैंगिक यौन सुख से लिप्त स्त्रियों की कहानी है। श्रीकान्त वर्मा, कमलेश्वर, नरेश मेहता, कृष्णा सोबती आदि ने आधुनिक जीवन की संवेदनाएं प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

168. प्रेमचंद और प्रसाद युग के कहानी साहित्य पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर प्रेमचंद और प्रसाद ने हिंदी कहानी साहित्य को एक नया मोड़ दिया। उन्होंने कहानी को जन-जीवन से जोड़ा। आधुनिक कहानी का सूत्रपात उन्हीं से होता है। 1911 में प्रसाद की प्रथम कहानी ग्राम तथा प्रेमचन्द की सन् 1916 में पंच परमेश्वर कहानी छपी। प्रेमचंद लगभग 300 कहानियां लिखीं। 'पूस की रात', 'नमक का दरोगा', 'कफन', 'ईदगाह' आदि। प्रसाद ने 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आंधी', 'इन्द्रजाल' आदि प्रसिद्ध कहानियां हैं। पाण्डेयवेचन शर्मा, चतुरसेन शास्त्री, व ंदावन लाल वर्मा आदि इस युग के उल्लेखनीय कहानीकार है।

169. प्रेमचन्दोत्तर काल का कहानी साहित्य स्पष्ट कीजिए।

उत्तर प्रेमचन्दोत्तर काल में सर्वप्रथम आते हैं - मनोवैज्ञानिक कहानीकार। इनमें जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचंद जोशी तथा भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि प्रमुख हैं। इन कहानीकारों ने घटना प्रधान कहानियों की जगह सूक्ष्म मनोविज्ञान तथा चरित्र प्रधान कहानियां लिखीं। जैनेन्द्र की पाजेब कहानी जगत प्रसिद्ध है। विपथगा, परम्परा कोठारी की बात आदि अज्ञेय जी की प्रसिद्ध कहानियां हैं। यशपाल, अम तराय नागर, उपेन्द्रनाथ अश्क रांगेय राघव तथा विष्णु प्रभाकर आदि इस युग के मुख्य कहानीकार हैं।

170. आधुनिक युग के कहानी साहित्य पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर आधुनिक युग के कहानीकारों में फणीश्वरनाथ रेणु (आंचलिक कहानीकार), राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश, आमरकान्त, धर्मवीर भारती, उषा पियंवदा आदि हैं। इनमें राजेन्द्र यादव का जहां लक्ष्मी कैद है, धर्मवीर भारती का चांद और टूटे हुए लोग, शैलेश-मटियानी का मेरी तैंतीस कहानियां आदि प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। हरिशंकर परसाई, जे.पी. श्रीवास्तव, के पी सक्सेना, बेढब बनारसी आदि हास्य व्यंग्य के कहानीकार हैं।

171. जैनेन्द्र की कहानियों का वर्णन कीजिए।

उत्तर जैनेन्द्र ने अधिकांश कहानियां मनोवैज्ञानिक आधार पर लिखीं, जिसमें हिन्दी कहानी क्षेत्र में एक नवीन युग का आरम्भ हुआ। उन्होंने बाह्य समस्याओं के स्थान पर आंतरिक समस्याओं को सहानुभूति ढंग से वर्णित किया है। जिसमें इनमें बौद्धिक रोचकता बनी रहती है। इनमें पाठक को थका देने की प्रव त्ति अधिक है। ज्वालादत्त शर्मा, जनार्दन प्रसाद तथा सिधरावशरण गुप्त आदि ने इसी आधार पर अपनी कहानियां लिखी। इनमें यथार्थ और कोमल कल्पना का मिश्रण है।

172. अज्ञेय और उनके सहयोगी कहानीकारों का परिचय दीजिए।

उत्तर अज्ञेय और इलाचंद्र जोशी की कहानियों में मनोवैज्ञानिकता का समावेश तो अवश्य है लेकिन जैनेन्द्र जैसा नहीं। इस पर फ्रायड के यौनवाद का सीधा प्रभाव है। इन्होंने दमित वासनाओं और कुंठाओं का उन्मुक्त चित्रण किया है। इनके उपन्यासों में जीवन सत्यों का अभाव है। अज्ञेय के कहानी संग्रह - विपथगा, कोठारी की बात, जयदोल आदि अत्यन्त प्रसिद्ध हुए हैं। भगवती प्रसाद वाजपेयी, पहाड़ी तथा नरोत्तम दास आदि अज्ञेय के सहयोगी कहानीकार थे।

173. यशपाल की कहानियों का परिचय दीजिए।

उत्तर यशपाल हिन्दी कहानी साहित्य के श्रेष्ठ कथाकारों में से एक हैं। यह मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित हैं। इनकी कहानियों में यथार्थवादी द ष्टिाकेण हैं और इनमें समाज की कुरीतियों की कटु आलोचना है। ये कला और जीवन में स्वाभाविकता के पक्षपाती हैं। इन्होंने सामाजिक ऐतिहासिक और पौराणिक कहानियां लिखी हैं, जो अत्यंत संयत और स्वाभाविक है। उपेन्द्रनाथ अश्क का कहानी संबंधी द ष्टिकोण यशपाल जैसा ही है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, रामप्रसाद पहाड़ी, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा आदि भी इसी पथ के राही कहानीकार हैं।

174. साठोत्तरी कहानी साहित्य का निरूपण कीजिए।

उत्तर सन् 1960 के बाद भारतीय जीवन में मोहभंग की स्थिति आती है। ऐसे समय में लगा कि जिंदगी का सारा अंदरूनी ढांचा भुरभुरी मिी की तरह ढहते जा रहा है। मुक्त लेखकों के एक वर्ग ने यह घोषणा कर दी कि वह समकालीन जीवन के आंदोलन के स्तर पर एक पहचान लेकर आया है। इस प्रकार यह समय एक नया तेवर लेकर आगे आया है। ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, कमलानाथ, ममता कालिया, सुधा अरोड़ा आदि इस युग के कहानीकार हैं।

175. हिंदी अकहानी पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर अकहानी के जन्मदाता वो कहानीकार हैं जिन्होंने स्वतन्त्रता के बाद होश संभाला। यद्यपि अकहानी भी कहानी है पर वह अपने से पिछले कहानियों की विशेषताओं से मुक्त है। नई कहानी में जो अनुभूति की प्रमाणिकता और भोगे हुए यथार्थ का स्वर था वह अब असत्य और कल्पित माना जाने लगा। दूधनाथ सिंह, ज्ञानरंजन, गंगाप्रसाद वियन, शानी परेश आदि अकहानी के प्रमुख कहानीकार हैं।

इन कहानियों का विषय - लोकतन्त्र की विद्रुपता, युवावर्ग की बौखलाहट आदि हैं।

176. हिंदी की सचेतन कहानी साहित्य पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर सन् 1964 के आस-पास कहानी के क्षेत्र में नए नया आंदोलन प्रारम्भ हुआ। इसे सचेतन कहानी नाम दिया गया। इसके प्रवर्तक महीप सिंह हैं। उनके संपादन में एक सचेतन पत्रिका निकली और इस तरह के अन्य कहानीकार इन आंदोलन में शामिल होते गए। सचेतन कहानी में यथार्थ के प्रांत, परिवेश के प्रांत, जीवन मूल्यों के प्रति एक नई द ष्टि का बोध होता है। महीप सिंह ने कहा है - "जीवन को उसकी सारी विसंगतियों में जीकर झेलने की द ष्टि ही सचेतन द ष्टि है। महीप सिंह, श्याम परमार, मनहर चौहार, मधुकर सिंह इस कहानी आंदोलन के मुख्य कहानीकार हैं।

177. अचेतन कहानी आंदोलन पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर सातवें दशक से पूर्व कुछ लोग सचेतन कहानी की प्रतियिा में अचेतन कहानी के नाम का नारा बुलन्द करने वाले भी देखे गए हैं। इन कहानियों का विषय समाज के अलगाव और बिखराव का चित्रण है। संत्रास, भय, कुंठा, हताशा आदि का चित्रण ऐसी कहानियां करती हैं। अचेतन कहानी के प्रवर्तक गिरिराज किशोर तथा काशीनाथ सिंह आदि माने गए हैं।

178. सक्रिय कहानी आंदोलन का विवेचन कीजिए।

उत्तर सन् 1980 के आस-पास हिंदी कहानियों के नाम के साथ एक और आंदोलन जुड़ता हुआ दिखाई देता है। कुछ कहानीकारों ने पश्चिम की एक्टिव स्टोरी की तरह हिंदी में भी कहानी लिखना आरंभ किया इसका आरंभ मंच पत्रिका के प्रकाशन के साथ हुआ। इसके संपादक राकेशवत्स हैं। इस कहानी के लेखकों ने सक्रिय कहानी को समझाते हुए उसका स्वरूप इस प्रकार व्यक्त किया है - "सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है - आदमी की चेतना, दर्जा और जीवंतता की कहानी।"

179. हिंदी नाटक के स्वरूप का विवेचन कीजिए।

उत्तर हिन्दी नाटक के विकास के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। विद्वानों का मत है कि हिन्दी नाटक का उद्भवकाल 13वीं शताब्दी और उससे भी पहले विद्यापति से माना जाता है। वैसे नाटक का सम्यक् विकास आधुनिक काल में भारतेंदु काल से ही माना गया है। डॉ. दशरथ ओझा ने गय-सुकुमार (सन् 1232) नामक नाटक को हिन्दी का प्रथम नाटक माना है। दूसरे विद्वान गोपालचन्द्र के नहुष को प्रथम मानते हैं। परन्तु नाटक कौन सा प्रथम है यह विवादित है। संक्षेप में यूं कह सकते हैं - हिन्दी नाटक का उद्भव भी हिन्दी उपन्यास एवं कहानी की भांति 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही हुआ है।

180. नई कहानी की शिल्पगत विशेषताओं का परिचय दीजिए।

उत्तर शिल्प की द ष्टि से नई कहानी बहुत आगे बढ़ गई है। उसमें सांकेतिकता, प्रतीकात्मकता, बिम्ब विधायकता, भाष्य की स जनशीलता, शैली की नित्य नूतनता दर्शनीय है। नई कहानी की सांकेतिकता, कुंठा, ग्रस्त, स्त्री पुरुषों की मनो ग्रंथियों को खोलकर रख देने में सक्षम है। जीवन की जटिलताओं को व्यक्त करने के लिए नए कथाकारों ने कई तरह के बिम्ब विधान किए हैं। निर्मल वर्मा, कमलेश्वर और अज्ञेय की कहानियों में अर्थपूर्ण बिम्ब विधान के उदाहरण मिलते हैं।

181. नई कहानी के वैयक्तिकता संबंधी पहलुओं का उद्‌घाटन कीजिए।

उत्तर नई कहानी के वैयक्तिक संदर्भ जीवन के गहन गंभीर पत्रों को ही व्यक्त करते हैं। इस क्रम की सारी कहानियां संबंधों के बनने और सम्बन्धों के टूटने की हैं व संबंधों से टूटे व्यक्ति के एकांकीपन की पीड़ा इन कहानियों में व्यक्त है। नई कहानियों में स्त्री पुरुष के बदले हुए संबंधों का चित्रण हुआ है। युद्ध स्वतन्त्रता और बाद में तेजी से बढ़ते हुए औद्योगिकरण-शहरीकरण की परिस्थितियों को नई कहानी में सशक्त अभिव्यक्ति मिली है।

182. प्रेमचन्दोत्तर हिंदी उपन्यास की प्रमुख प्रव त्तियां क्या थीं?

उत्तर प्रेमचंद के बाद वाले उपन्यासों मे ंविद्रोह का स्वर उभरा है। आर्थिक शिथिलता व शोषण के विरुद्ध विद्रोह इन उपन्यासों में देखा जा सकता है। इसी के साथ पूर्व स्थापित सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोही प्रव ति भी मिलती है। प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यासों में स्त्री-पुरुषों के यौन संबंधों को लेकर कई प्रश्न उठाए गए हैं व कई सम-असम स्थितियों का यथार्थ व मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द जोशी आदि के उपन्यासों में काम - कुण्ठाओं और यौन विकृतियों का चित्रण व स्त्री-पुरुष के अवैध संबंधों की समस्याओं का चित्रण बहुतायत मिलता है।

183. प्रेमचंद युग की कहानियों की मुख्य प्रव त्तियां क्या थी?

उत्तर प्रथम बार कहानियों का विषय उच्चवर्ग के स्थान पर मध्यम और निम्न वर्ग को बनाया गया है। सामाजिक और कौटुम्बिक समस्याओं, विसंगतियों तथा विद्रुपताओं का उद्‌घाटन हुआ है। साम्यवाद के प्रभाव से शोषक-शोषित मनोव त्ति का चित्रण करने की प्रव ति भी दिखाई पड़ती है। इस युग की कहानियों में संगठित कथानक, अनुभव की प्रौढ़ता, मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण, संवेदनशीलता का समन्वय है। इस युग की कहानियों में स्वाधीनता-संग्राम, गांधी जी के असहयोग आंदोलन, अहिंसक क्रांति, समाज सुधार यथार्थ जीवन की विभीषिका, आर्थिक विपन्नता का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

184. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास के नायक का स्वरूप कैसा था?

उत्तर स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में अवतरित हुआ नायक प्रेमचंद, यशपाल, जैनेन्द्र, अज्ञेय की परम्परा से सर्वथा भिन्न है। नया-नायक व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों ही स्तरों पर विक्षुब्ध हो गया और मूल्यहीनता के कारण दिशाधारा की भांति भटकने को विवश हो गया। इन उपन्यासों का नायक उस पूरी भीड़ का ही एक चेहरा है जो रोजगार के लिए दफ्तरों, झूठे इंटरव्यू और काम की लालसाओं में भटक रहा है। वह नायक पराजित होकर और क्रुद्ध होकर अपने दायरे में छटपटाता और स्वयं को विस्थापित अनुभव करात है तथा कुण्ठाग्रस्त होकर आत्महत्या को अपनी अंतिम परिणति के रूप में चुनता है।

185. 'उपन्यास में यथार्थवाद की अवधारणा है।' टिप्पणी लिखिए।

उत्तर कलाकार जीवन को दो प्रकार से चित्रित करता है - एक में वह अपने आदर्शो, कल्पना व धारणाओं का प्रयोग करता है, दूसरे में वह संसार को जैसा देखता है वैसा ही चित्रित करता है। प्रथम स्थिति में आदर्शवाद और द्वितीय यथार्थवाद है। यथार्थवाद समाज की प्रमुख व ज्वलंत समस्याओं का चित्रण करता है। यथार्थवाद यह कहकर सामाजिक व्यवस्थाओं, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के प्रति अनास्था का भाव प्रकट करता है। इसमें उच्च वर्गीय, मध्य वर्गीय व निम्न वर्गीय व्यक्तियों का समान रूप से चित्रण करता है। यथार्थवाद ने कला का संबंध विज्ञान से किया और उसे विश्लेषण शक्ति से विभूषित किया है।

186. हिन्दी कहानियों में प्रेमचन्द का स्थान निर्धारित कीजिए।

उत्तर प्रेमचंद का आविर्भाव हिन्दी कहानी युग की एक महत्वपूर्ण घटना थी। सन् 1916 से लेकर सन् 1936 तक उन्होंने लगभग 300 कहानियां लिखीं। डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार - प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में दलित मानवता के प्रति सहानुभूति का भाव प्रदर्शित किया है। उनका आदर्शवाद उनकी इसी सहानुभूति का परिणाम है। वह उनकी आत्मा से निकला है। कौरा दिखावटी नहीं है। मनोवैज्ञानिक आधार लेकर चलने वाली उनकी आदर्शवादी कहानियां उनकी कहानी कला के चरम सौंदर्य प्रदर्शित करती हैं। इस द ष्टि से प्रेमचंद की टक्कर का कलाकार हिंदी में आज तक नहीं जन्मा है।

187. भारतेंदु युगीन हिन्दी नाटक साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर भारतेंदु जी इस युग के सर्वश्रेष्ठ नाटककार थे। उन्होंने अनेक नाटकों की रचना की। वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चंद्रावली, भारत दुर्दशा, विषस्यविषभौषद्यम, अंधर नगरी आदि। इन्होंने इन नाटकों में इतिहास, समाज एवं राष्ट्रीय विषयों को अपनाया है। भारतेंदु जी के नाटकों पर संस्कृत तथा बंगला नाटकों का प्रभाव है। इनके नाटकों में पूर्व और पश्चिम का समन्वय दिखाई देता है। प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास, श्री निवास दास, प्रेमधन आदि इस युग के मुख्य नाटककार हैं।

188. द्विवेदी युगीन हिन्दी नाट्य साहित्य पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर महावीर प्रसाद द्विवेदी का युग सुधारवादी युग कहलाता है। नाटक के विकास में इस युग का योगदान तो है किन्तु कथ्य एवं शिल्प की द ष्टि से कुछ नया जोड़ने में असमर्थ रहा है। किन्तु इस अनुवाद कार्य का विशेष महत्व यह है कि इसी कारण पारसी कम्पनियों में अभिनीति नाटकों में उर्दू का स्थान हिंदी को मिलने लगा। इस काल के नाटककारों में नारायण प्रसाद बेताब, राधेश्याम कथावाचक, आगाह, कश्मीरी, तुलसीदास शैदा और हरिकृष्ण जौहर के नाम अग्रगण्य हैं।

189. प्रसादयुगीन हिन्दी नाट्य साहित्य का विवेचन कीजिए।

उत्तर जयशंकर प्रसाद का आगमन हिन्दी नाटक के लिए वरदान सिद्ध हुआ। उनके नाटकों में हिन्दी नाटक-कला का विकास अपने यौवन काल को पहुंच चुका था। प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित हुआ है। सज्जन, करुणालय, राज्यश्री, अजातशत्रु, चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि नाटक प्रमुख हैं। इनमें से अधिकांश ऐतिहासिक हैं। यद्यपि रंगमंच की द ष्टि से प्रसाद के नाटक अधिक सफल नहीं हैं तथापि इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रसाद अपने युग के सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं। लक्ष्मी नारायण मिश्र, गोविन्द दास, हरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्द बल्लभ पंत आदि इस युग के मुख्य नाटककार हैं। इनके नाटकों पर गांधीवाद का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

190. प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक साहित्य का विवेचन कीजिए।

उत्तर प्रसादोत्तर हिंदी नाटक का बहुमुखी विकास हुआ है। हरिकृष्ण प्रेमी, जिन्होंने प्रसाद युग में लिखना आरम्भ किया था। किंतु वे प्रसादोत्तर युग तक लिखते रहे, उन्होंने ऐतिहासिक नाटकों की रचना की है। रक्षाबंधन, स्वप्न भंग, प्रतिशोध, आहुति आदि उनके प्रसिद्ध नाटक हैं। व ंदावन लाल वर्मा, उदयशंकर भट्ट, जगदीश चन्द्र माथुर, मोहनराकेश, रामकुमार वर्मा, विष्णु प्रभाकर आदि इस युग के प्रमुख नाटककार हैं। इनके नाटकों में विवाह, जाति-पांति, भेदभाव, सामाजिक विषमता आदि समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया गया है।

191. स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी नाटकों का विवेचन कीजिए।

उत्तर स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जहां विभिन्न प्रकार के मौलिक नाटकों की रचना की गई वहां पंजाबी, बंगला, मराठी, कन्नड़, तमिल, अंग्रेजी आदि भाषाओं के नाटकों का हिन्दी अनुवाद करके हिन्दी नाटक साहित्य को सम द्ध किया गया है। इस युग में ऐतिहाकसिक एवं समस्याप्रधान नाटकों के अतिरिक्त भाव प्रधान (नीतिनाट्य) तथा प्रतीक नाटक भी लिखे गए हैं। विष्णु प्रभाकर, चिरंजीत, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर आदि इस युग के प्रमुख नाटककार हैं।

192. ऐतिहासिक हिन्दी नाटक पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर नाटककार जयशंकर प्रसाद ने मुख्यतः ऐतिहासिक नाटकों की रचना की थी। प्रसाद ने 1910 से 1933 तक निरंतर नाटकों की रचना की जिनमें राज्यश्री, स्कन्दगुप्त चंद्रगुप्त जनमेजय का नागयज्ञ आदि प्रमुख है। इसके साथ ही व ंदावन लाल वर्मा, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, सेठ गोविंद दास उदय शंकर भट्ट आदि नाटककार भी इसी श्रेणी के हैं। इन्होंन अपने देशवासियों के आत्मगौरव, स्वाभिमान, उत्साह और प्रेरणा का संचार करने के लिए अतीत के गौरवपूर्ण संदर्भो को अपनी रचनाओं में चित्रित किया है।

193. पौराणिक नाटक साहित्य का विवेचन कीजिए।

उत्तर पौराणिक विषय को आधार बनाकर अनेक नाटककारों ने नाटकों का प्रणयन किया। प्रसाद, सुदर्शन, गोविन्द, बल्लभ पंत, माखन लाल चतुर्वेदी आदि पौराणिक नाटककार हैं। इन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से समाज पर कटु व्यंग्य

किए हैं। मेघनाथ, उर्मिला, सीता की मां, सुदामा आदि प्रमुख पौराणिक नाटक हैं। उदयशंकर भट्ट को पौराणिक नाटककारों में प्रतिनिधि नाटककार कहा जा सकता है। इनके अम्बा और सागर विजय प्रमुख पौराणिक नाटककार हैं।

194. अनूदित नाट्य साहित्य का विवेचन कीजिए।

उत्तर अनूदित नाटकों की जो परम्परा भारतेंदु और द्विवेदीयुग से चली आई थी वह अब भी अक्षुण्ण रूप से चल रही है। अन्य भाषाओं के नाटकों का हिन्दी में अनुवाद करते हिन्दी के नाटक साहित्य को सम द्ध किया जा रहा है। बंगला, मराठी, कन्नड़ आदि भारतीय भाषाओं के अनेक नाटकों का हिन्दी अनुवाद किया गया है। स्वयं भारतेंदु ने विद्या सुंदर, पाखण्ड विडम्बना, धनंजय, विजय, कर्पूर मंजरी आदि अनूदित नाटकों की रचना की। जीत- शर्मा, अनिल कुमार मुखर्जी, कृष्ण बल देव आदि ने विदेशी नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया है।

195. मार्क्सवादी या प्रगतिवादी उपन्यास साहित्य पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिए।

उत्तर जीवन के आर्थिक असंतुलन, वर्ग संघर्ष, मजदूर तथा शोषित वर्ग का यथार्थ चित्रण तथा शोषक वर्ग, मजदूर तथा शोषित वर्ग का यथार्थ चित्रण तथा शोषक वर्ग की भर्त्सना इन उपन्यासों की कथावस्तु होती है। यशपाल इस क्षेत्र के अग्रणी कथाकार हैं। उनके दादा कामरेड, मनुष्य के रूप तथा देशद्रोही इस प्रव ति के प्रमुखतम उपन्यास हैं। नागार्जुन इस प्रव ति के दूसरे बड़े लेखक हैं। उनके कुंभीपाक, बाबा बटेश्वर नाथ प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इनके अतिरिक्त भैरवप्रसाद गुप्त, अम तराय, रामेश्वर शुक्ल, अंचल इस श्रेणी में आते हैं।

196. मनोवैज्ञानिक हिन्दी उपन्यास साहित्य का निरूपण कीजिए।

उत्तर मानव की हीन मानसिक ग्रन्थियों, कुंठाओं, प्रतिक्रियाओं एवं मनोविश्लेषण की चर्चा उन उपन्यासों का प्रमुख विषय होता है। ऐसे साहित्य पर फ्रायड के सिद्धान्तों की छाप स्पष्ट है। जैनेन्द्र के उपन्यास हिंदी के सर्वश्रेष्ठ अंतश्चेतनवादी उपन्यास हैं। परख, सुनीता, त्यागपत्र, सुखदा, विवर्त, अनाम स्वामी, मुक्तिबोध उनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं। इसके अतिरिक्त इलाचंद जोशी, अज्ञेय, नरेश मेहता, डॉ. देवराज आदि के मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं।

197. राजनैतिक उपन्यास साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर समाज में फैले भ्रष्टाचार शासन की पैंतरे बाजियां तथा उनमें पिसती जनता का प्रतीकात्मक व्यंग्यात्मक चित्रण ही इन उपन्यासों का आम तत्व है। श्री लाल शुक्ल का 'रागदरबारी' भगवती चरण वर्मा का सबहिं न चावत राम गोसाई, शिव प्रसाद सिंह का अलग अलग वैतरणी, बदी उज्जमां का एक चूहे की मौत, गुरुदत्त का दो लहरों की टक्कर मणि मधुकर का सफेद मेमने इस प्रव ति की श्रेष्ठ कृतियां हैं।

198. आलोचना का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके स्वरूप का विवेचन कीजिए।

उत्तर आलोचना शब्द लोच धातु से बना है जिसका अर्थ होता है - देखना। किसी वस्तु या कृति की सम्यक (भली प्रकार) व्याख्या उसका मूल्यांकन आदि करना आलोचना है। भारतीय साहित्य में आलोचना की प्राचीन परिपाटी है। संस्कृत साहित्य में इसका चरम विकास हुआ है जिनकी आलोचना का आरम्भ हम भक्तिकाल से मान सकते हैं। आधुनिक युग में प्रैस के विकास तथा गद्य के विकास से प्राचीन आलोचना में पाश्चात्य प्रणाली का मिश्रण हुआ। आधुनिक आलोचना का वास्तविक आरम्भ गद्यकाल की देन है। गद्य के आविर्भाव से अनेक पत्र-पत्रिकाएं निकलने लगीं। इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से आधुनिक आलोचना का श्रीगणेश माना जाता है।

199. भारतेंदु युगीन हिन्दी आलोचना पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर आधुनिक काल के जनक भारतेंदु ने हिन्दी की प्रत्येक विधा पर शुरुआत की समीक्षा की। इसका अपवाद नहीं है। भारतेंदु ने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से आलोचनात्मक लेख लिखे। उन्होंने कवि वचन सुधा तथा हरिश्चन्द्र मैगजीन में कुछ नोट समालोचना के नाम से निकाला करते थे। श्रीनिवास दास के संयोगिता स्वयंवर नाटक पर बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी प्रदीप पत्रिका में एक छोटी समालोचना लिखी। इसके अतिरिक्त बद्रीनाथ चौधरी, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री आदि इस युग के आलोचक हैं।

200. द्विवेदी युगीन हिन्दी आलोचना पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर महावीर प्रसाद द्विवेदी के महान् प्रयासों से आलोचना विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। सरस्वती पत्रिका के माध्यम से उन्होंने हिन्दी आलोचना के स्वरूप को व्यवस्थिति किए एवं अपने युग के आलोचकों का मार्ग दर्शन कर उन्हें नई दिशा प्रदान की। इस युग की आलोचना को पांच भागों में बांट सकते हैं - 1. शास्त्रीय आलोचना, 2. तुलनात्मक आलोचना, 3. अनुसंधानपरक आलोचना, 4. परिचयात्मक आलोचना, 5. व्याख्यात्मक आलोचना। द्विवेदी जी के संबंध आचार्य शुक्ल ने कहा है - "द्विवेदी जी ने नई पुस्तकों की भाषा की खरी आलोचना करके हिन्दी साहित्य का बड़ा उपकार किया।" डॉ. श्यामसुंदर दास, पदम सिंह, कृष्ण बिहारी मिश्र आदि इस युग के मुख्य आलोचक हैं।

201. शुक्ल युगीन हिन्दी आलोचना साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आलोचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्हें हिन्दी का प्रथम प्रौढ़ आलोचक माना जा सकता है। शुक्ल एक सुनिश्चित मानदण्ड तथा विकसित समीक्षा पद्धति लेकर आलोचना के क्षेत्र में आए। इनकी आलोचना के तीन रूप हैं - सैद्धान्तिक, ऐतिहासिक, व्यावहारिक आलोचना। डॉ. श्याम सुंदर दास, पदुम लाल पुन्ना लाल बख्शी, गुलाब राय आदि इस युग के मुख्य आलोचक हैं।

202. शास्त्रीय सैद्धान्तिक आलोचना का विवेचन कीजिए।

उत्तर सैद्धान्तिक आलोचना में समस्त काव्य अंग, काव्य तत्व, काव्य प्रयोजन, काव्य हेतु, काव्य के लक्षण आदि का मूल्यांकन किया जाता है। इस युग के नए तत्व चिंतकों ने नई आलोचना नाम से लिखना आरम्भ किया। इनके मूल में विदेशी आलोचना साहित्य का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इनकी भाषा जटिल है, पाठक जान ही नहीं पाता कि आलोचक क्या कहना चाहता है। इन आलोचकों में अस्पष्टता एवं भ्रांति सर्वत्र है। डॉ. नगेन्द्र, डॉ. देवराज, डॉ. लीलाधर, बाबू गुलाबराय आदि इस श्रेणी के आलोचक हैं।

203. मनो विश्लेषणकारी आलोचना का परिचय दीजिए।

उत्तर हिंदी में मनोविश्लेषण वादी आलोचना भी प्रभुत्व में आई। फ्रायड, एडलर यंग आदि ने माना है कि समाज भय से मान में उत्पनन होने वाली काम वासना तथा अनेक अन्य प्रकार की इच्छाएं मन के भीतर-ही-भीतर उमड़ती-घुमड़ती रहती है और कुछ समय के पश्चात् वहीं कुंठाओं को जन्म देती है। यही कुंठाएं साहित्यकारों के साहित्य में दिखाई देती हैं। अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, धर्मवीर भारती आदि ने अपने साहित्य में इसे स्थान दिया है और साथ ही आलोचनाएं लिखकर इस सिद्धान्त का समर्थन किया। अज्ञेय का त्रिशंकु और आत्मेनपद तथा इलाचन्द्र जोशी का साहित्य चिंतन विवेचना, विश्लेषण साहित्य चिंतन आदि रचनाओं में मनोविश्लेषणवादी आलोचना का रूप मिलता है।

204. प्रयोगवादी आलोचना पद्धति का परिचय दीजिए।

उत्तर प्रयोगवादी कवियों ने अपनी पुस्ताकें का मूल्यांकन करने के लिए एक भिन्न आलोचना पद्धति का आरम्भ किया जो इलियट आदि पश्चिमी विचारकों से प्रभावित है। आलोचकों ने इस आलोचना को नई आलोचना का नाम दिया है। इसमें कलाकार के अनुभूति और सामाजिक पक्ष को महत्व न देकर रूप विधान को अधिक महत्व दिया जाता है। इसमें परम्परागत मूल्यों के प्रति विद्रोह भावना है। और भाषा शैली विषयवस्तु आदि के क्षेत्र में नए-नए प्रयोग किए गए हैं जिसका मूल मंत्र व्यक्ति स्वतन्त्रता है। अज्ञेय, लक्ष्मीकांत वर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी, धर्मवीर भारती, डॉ. जगदीश गुप्त आदि इस श्रेणी के मुख्य आलोचक हैं।

205. शौष्ठववादी आलोचना पद्धति पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर इसमें वैयक्तिकता पर आधारित तटस्थता के साथ साथ मूल्यांकन और निर्णय को महत्व दिया गया है। इस पद्धति के आरम्भिक रूप के दर्शन पंत, निराला, महादेवी, वर्मा आदि के काव्य सग्रहों की भूमिकाओं के रूप में लिखे गए आलोचनात्मक निबन्ध हैं। नंद दुलारे वाजपेयी, शांतिप्रिय द्विवेदी, गंगा प्रसाद पाण्डेय आदि ने इसी पद्धति को अपनाया है। ये पद्धति भी बहुत प्रचलित नहीं हुई है। वर्तमान युग में ऐसी आलोचना कभी-कभी दिखाई दे जाती है।

206. प्रगतिवादी आलोचना साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर इस युग में एक ऐसी समीक्षा पद्धति का उदय हुआ जो काफी सशक्त बनी रही है। इसे मान सेवाएं या प्रगतिवादी

पद्धति कहते हैं। इनका द ष्टिकोण पूर्ण रूप से समाजवादी है। ऐसे जन-जीवन से जुड़े हुए साहित्य के समर्थक हैं जिसमें शोषण, अन्याय, अत्याचार आदि का मार्मिक चित्रण किया गया हो। इन्होंने व्यक्तिवाद या आदर्शवाद का विरोध करते हुए साहित्य जगत में एक निराला जैसे छायावादी कवि भी प्रगतिवादी कविताएं लिखने लगे। ये बाद में प्रगतिवादी आलोचक दो वर्गों में विभाजित हो गए थे। एक वर्ग ने प्राचीन साहित्य की प्रशंशा की तथा दूसरे ने उसका बहिष्कार करने की बात की। डॉ. रामविलास शर्मा प्रगतिवादी आलोचकों में प्रमुख हैं।

207. रेखाचित्र किसे कहते हैं?

उत्तर रेखाचित्र कहाने से मिलता-जुलता साहित्यिक रूप है। इसे शब्द चित्र भी कहते हैं। अंग्रेजी में इसका नाम स्केच है। रेखाचित्र में किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना या भाव का कम से कम शब्दों में कर्मस्पर्शी भावपूर्ण एवं सजीव अंकन किया जाता है। रेखाचित्र में सांकेतिकता अधिक रहती है। लेखक कम से कम शब्दों में किसी व्यक्ति या वस्तु की मुख्यतः विशेषता को उभार देता है। संस्मरण में चित्र-शैली का प्रयोग किया जाता है। रेखाचित्रों में कल्पना की प्रधानता एवं घटनाओं की समग्रता रहती है। रेखाचित्रकार शब्दों और वाक्यों के संकेतों से बहुत कुछ कह डालता है।

208. रेखाचित्र की परिभाषा दीजिए।

उत्तर विभिन्न विद्वानों ने रेखाचित्र की परिभाषा दी है। श्री भगीरथ मिश्र के अनुसार "शब्द चित्र में किसी व्यक्ति की यथार्थ तथा वास्तविकता चारित्रिक विशेषताओं को उभारने का प्रयत्न होता है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में - रेखाचित्र में उसे कहते हैं। जिसमें रेखाएं हो पर मूर्त अर्थात् उतार चढ़ाव, दूसरे शब्दों मे कथानक का उतार चढ़ाव आदि न हो, तथ्य का उद्‌घाटन मात्र हो। श्री विनय कोहन शर्मा का मत है - रेखाचित्र में व्यक्ति, घटना या द श्य का अंकन होता है। इन विभिन्न भाषाओं से स्पष्ट होता है कि रेखाचित्र में किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना का शब्दों के माध्यम से मर्मस्पर्शी चित्रण किया जाता है।

209. रेखाचित्र की विशेषताएं स्पष्ट कीजिए।

उत्तर रेखाचित्र में किसी व्यक्ति अथवा वस्तु की विशिष्टताओं का प्रभावशाली ढंग से चित्रण किया जाता है। इसमें सूक्ष्म चित्रण एवं विश्लेषण का होना आवश्यक है। इसके वर्ण्य विषय में यथार्थता होती है, साथ ही कल्पना का भी थोड़ा सा पुट विद्यमान रहता है। इसमें संवेदनशीलता, सहृदयता तथा प्रभावोत्पादकता का होना भी जरूरी है। रेखाचित्र की भाषा सांकेतिक, भावविशमयी वर्णनात्मक, व्यावहारिक, काव्यमयी, बोधगम्य तथा सरस होती है। इनमें निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग मिलता है। कथात्मक, निबन्ध तरंग, वर्णनात्मक, सम्वाद, सूक्ति, डायरी, सम्बोधन, आत्मकथात्क।

210. निराली जी के रेखचित्रों का परिचय दीजिए।

उत्तर सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के कुल्ली भाट और बिल्लेसुर बकरिहां के उपन्यास और रेखाचित्र दोनों के अंतर्गत स्वीकृति प्रदान की गई है। निराला के उपन्यासों की अपेक्षा रचनाओं की मौलिक भिन्नता इस बात से सिद्ध है। कि इसमें निराला जी ने यथार्थ व्यक्तियों को अपनी लेखनी का उद्देश्य बनाया है। इन रेखाचित्रों में निराला की भाषा लोक संस्कृति के तत्वों से ओतप्रोत तथा मुहावरेदार है। जिसमें गजब की शक्ति तथा स्वाभाविकता भरी हुई है। शब्द अनायास एवं सहज रूप में आगे-आगे चलते हैं। भाषा में न कृत्रिमता है और न प्रयत्नशीलता।

211. डॉ. नगेन्द्र द्वारा रचित रचनाओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर डॉ. नगेन्द्र के चेतना के बिम्ब में दस रेखाचित्र संश्रमरण हैं। इन चित्रों में विश्लेषण का प्राधान्य होने के कारण तटस्थता का गुण अपनी सहज छटा बखूबी दिखा सका है। डॉ. नगेन्द्र आलोचक शास्त्काल और कवि के समन्वय की निष्पत्ति है, अतः उनके रेखाचित्रों में हार्दिकता का आधिक्य कहीं नहीं है। वरन् कहीं कहीं तो इसका अभाव भी अनुभव होता है। उनके वर्णनों में स्पष्टता, खण्ड-खण्ड बात को समझाने की क्षमता इतनी उग्र है कि लगता है उनका अध्यापक रेखाचित्रकार पर हावी हो बैठा है। उनकी यह विशेषता सभी रेखाचित्रों में है।

212. विष्णु प्रभाकर के रेखाचित्रों का परिचय दीजिए।

उत्तर विष्णु प्रभाकर के कुछ शब्द कुछ रेखाएं तथा हंसरी निझर दहकती भट्टी में रेखाचित्रात्मक रचनाएँ हैं। इनमें रेखाचित्रों के अतिरिक्त संस्मरण और यात्रा व त्तान्त भी हैं। विष्णु प्रभाकर अपने रेखाचित्रों को सामान्यतः प्राकृतिक चित्रण से

प्रारम्भ करते हैं क्योंकि उन्हें पाठकों को अपने विषय की ओर आकृष्ट करने का यही सबसे उचित माध्यम प्रतीत होता है। विष्णु प्रभाकर घटनाओं और स्थितियों को दो परस्पर जोड़कर देखने के आदी हैं। वे सामाजिक स्थितियों के पीछे निहित विषमताओं को सामने लाने में दक्ष हैं।

213. निर्मल वर्मा के रेखाचित्रों का वर्णन कीजिए।

उत्तर निर्मल वर्मा का 'चीड़ों पर चांदनी' यात्रा व तांत न होकर स्म तिखण्डों का एलबम है जिसमें अनेक तारों जैसी यादें सर्वत्र झिलमिला रही हैं। वर्मा ने आइसलैण्ड के एक किसान परिवार की सांस्कृतिक स्थिति का जो चित्र दिया है, वह उनकी गहरी पैठ और सांस्कृतिक सूत्र को ही प्रकट नहीं करता वरन् अन्य यूरोपीय देशों की सांस्कृतिक स्थिति को भी तुला पर रख देता है। निर्मल वर्मा अनुभूति के चरण क्षणों में भी सामाजिकता के सूत्र जोड़े रखते हैं।

214. रिपोतार्ज से क्या तात्पर्य है?

उत्तर रिपोतार्ज अंग्रेजी शब्द रिपोर्ट से भिन्न है पर यह उससे संबंधित अवश्य रहा है। सामान्य रूप से रिपोर्ट लिखने या लिखवाने का संबंध सूचक देने या भेजने से जोड़ा जाता है। इसमें केवल तथ्यों पर बल दिया जाता है। रिपातार्ज में कानों सुनी या आंखों देखी बात को इतने प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया जाता है कि उसका प्रभाव मन-मस्तिष्क पर गहरा पड़ता है। "रिपोतार्ज" फ्रांसीसी भाषा का शब्द है। जिस रचना में वर्ण्य विषय का आंखों देखा तथा कानों सुना ऐसा विवरण प्रस्तुत किया जाए कि पाठक की हृदय तंत्री के तार झंकृत हो उठें और वह उसे भूल न सके। उसे रिपोतार्ज कहते हैं।"

215. हिन्दी रिपोतार्ज लेखकों का नामोल्लेख कीजिए।

उत्तर प्रकाशचन्द्र गुप्त, उपेन्द्रनाथ अश्क, रामनारायण उपाध्याय, भदन्त आनन्द कौसाल्यायन, शिवसागर मिश्र, डॉ. धर्मवीर भारती, कन्हैया लाल मिश्रा प्रभाकर, शमशेर बहादुर सिंह, श्रीकांत वर्मा, डॉ. जयभगवान गोयल आदि ने श्रेष्ठ रिपोतार्ज लिखे हैं। इनके द्वारा रचित रिपोतार्जो के संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कुछ प्रमुख रिपोर्ताज संग्रह-रेखाएं और चित्र, देश की मिट्टी बुलाती है, वे लड़ेंगे हजार साल, प्लाट का मोर्चा, अपोलो का रथ आदि हैं। इनमें बंगाल का अकाल, आजाद हिन्द फौज विभाजन की स्थितियां और विभिन्न समस्याओं का चित्रण हुआ है। भारत-चीन, भारत-पाक युद्धों के अवसरों पर इस विधा के लेखन को विशेष बल मिला था। बाद में बंगलादेश के उन्नयन ने भी इस प्रव ति को विशेष बढ़ावा दिया था।

216. पत्र लेखन साहित्य का परिचय दीजिए।

उत्तर पत्रों का संबंध व्यक्तिगत जीवन से होता है। प्रत्येक व्यक्ति कभी न कभी किसी न किसी को पत्र अवश्य लिखता है। दूर बैठे व्यक्ति तक अपने विचार पहुंचाने का यह एक प्रभावी तरीका है। पत्र की कलात्मकता ही उसे साहित्यिक सिंहासन पर बैठा देती है। वैचारिक या भावात्मक द ष्टि से सम्पन्न व्यक्ति के ये पत्र बहुत महत्वपूर्ण हो सकते हैं। देश काल की परिस्थिति, प्रव तियों और इतिहास का ज्ञान भी उसके पत्रों के माध्यम से होता है जैसे - प्रसिद्ध उर्दू शायर मिर्जा गालिब के पत्रों के माध्यम से सन् 1857 की क्रांति का स्वरूप, उसके कारण और दिल्ली की बदहाली का पूरा विवरण हमें मिल जाता है।

217. हिंदी में साक्षात्कार विधा का उद्भव कैसे हुआ?

उत्तर हिन्दी में साक्षात्कार विधा के दर्शन दो महायुद्धों के बीच होने लगे थे। इस विचार का आरम्भ बनारसी दास चतुर्वेदी के द्वारा किया गया था। उन्होंने सन् 1931 में रत्नाकर से बातचीत कर उसे लिपिबद्ध किया था जो विशाल भारत नामक पत्र में छपी थी। सन् 1932 में प्रेमचंद के साथ 'दो दिन' नामक साक्षात्कार भी प्रकाशित हुआ था। सन् 1941 में जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी द्वारा लिया गया भदन्त आनन्द कौसल्यायन साक्षात्कार प्रसिद्ध हुआ था।

218. यात्रा व तान्त से क्या तात्पर्य है?

उत्तर यात्रा व तान्त किसी यात्रा का शुद्ध व तान्त नहीं होता बल्कि जिस स्थान की यात्रा की जाती है उसके सौंदर्य, प्रकृति, संस्कृति, परिवेश और जनसंपर्क की अनुभूतियाँ भी होती है। इसमें जीवन की स्पष्ट और साक्षात् जानकारी होती है। यह सुनी सुनाई कथा न होकर प्रत्यक्ष दर्शन पर आधारित होती है। यात्रा व तान्त की रचना के लिए आवश्यक है कि

लेखक ने स्वयं किसी विशेष स्थान की यात्रा की हो। उसे इसका निजी अनुभव होना चाहिए क्योंकि यात्रा व तान्त में अनुभवों और अनुभूतियों के स्थूल और सूक्ष्म दोनों रूप दिखाई देते हैं।

219. हिंदी साहित्य में संस्मरण लेखन कब प्रारम्भ हुआ?

उत्तर हिंदी में संस्मरण का आरम्भ द्विवेदी युग में प्रकाशित होने वाली पत्रिका सरस्वती से हुआ। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार "सरस्वती के विभिन्न अंकों के समय-समय पर अनेक रोचक संस्मरण प्रकाशित होते रहे हैं। स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अनुमोदन का अन्त (फरवरी 1905) सभा थी सभ्यता (अप्रैल 1907) विज्ञानाचार्य बासु का विज्ञान मन्दिर (जनवरी 1918) आदि की रचना करके संस्मरण साहित्य की श्री व द्धि की।"

220. संस्मरण साहित्य का प्रवर्तक किसे मानते हैं?

उत्तर संस्मरण साहित्य के प्रवर्तक के रूप में भी श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। पत्रकार होने के नाते ये अनेक महान व्यक्तियों के निकट संपर्क में रहे। नेशनल कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने अफ्रीका की यात्रा की। इन्होंने इन सबसे संबंधित विशेष प्रकार के संस्मरण लिखे हैं। अतः इन्हें संस्मरण लिखने की कला का पथ-प्रदर्शक माना जा सकता है। 'साबरमती आश्रम' में महात्मा गांधी जी जैसे इन्होंने अनेक सुघड़ संस्मरण लिखे हैं।

221. प्रारंभिक संस्मरण लेखकों के नामोल्लेख कीजिए।

उत्तर संस्मरण लेखन करने वाले अन्य स्मरणीय नाम घनश्याम दास बिरला, श्री मन्नारायण अग्रवाल, भदन्त आनन्द कौसल्यायन रामव क्ष बेनीपुरी, कन्हैयालाल मिश्र, नरहरि विष्णु गाडगिल हैं। बिरला जी ने बापू नामक रचना में गांधी जी के जीवन से संबंधित अनेक संस्मरण प्रस्तुत किए हैं। भदन्त-आनन्द कौसल्यायन के 'जो न भूल सका' तथा 'जो लिखना पड़ा' महत्वपूर्ण है। रामव क्ष बेनीपुरी की 'माली की मूरतें' भी बड़े ही सजीव एवं रोचक संस्मरण हैं। कन्हैया लाल मिश्र ने 'भूले हुए चेहेरे' तथा नरहरि विष्णु गाडगिल ने 'स्म ति शेष' लिखकर इस विधा को सम द्ध किया है।

222. श्रीमती महादेवी वर्मा के संस्मरणों का परिचय दीजिए।

उत्तर महादेवी वर्मा ने अनेक संस्मरण लिखे। उनके द्वारा रचित 'अतीत के चलचित्र', 'स्म ति की रेखाएं' और 'पथ के साथी' नामक तीन कृतियों को इस विधा में रखा जाता है, पर इनमें से पथ के साथी निश्चय ही एक सर्वाधिक सशक्त संस्मरणात्मक सर्जना है। इसमें इन्होंने अपने समसामयिक कवियों एवं साहित्यकारों के अत्यन्त सजीव संस्मरण प्रस्तुत किए हैं। इनके अतिरिक्त महादेवी जी की 'मेरे प्रिय संस्मरण' और 'संस्मरण' भी इसी प्रकार की रचनाएं हैं।

223. कुछ प्रसिद्ध संस्मरण रचनाओं का नाम लिखिए।

उत्तर व ंदावन लाल वर्मा द्वारा रचित 'कुछ संस्मरण', 'इलाचन्द्र जोशी की मेरे प्राथमिक जीवन की झलकियां', मन्मथ नाथ गुप्त की 'क्रांति युग के संस्मरण', शिव नारायण टण्डन की 'झलक', शिव पूजन सहाय की 'वेदिन', सत्यवती मलिक की 'अमिट रेखाएं', देवेन्द्र सत्यार्थी की 'रेखाएं बोल उठी', शांति प्रिय द्विवेदी की 'स्म तियां व कृतियां', राहुल सांकृत्यायन की 'बचपन की स्म तियां', डॉ. नगेन्द्र की 'चेतना के बिम्ब', कृष्णा सोबती ही 'हम हशमत', ज्ञान चंद की 'कथा शेष', 'घर' में आदि प्रमुख संस्मरणात्मक कृतियां हैं।

224. जीवनी विधा का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

उत्तर जीवनी किसी व्यक्ति के जीवन घटनाओं का विवरण है। अपने आदर्श रूप में वह प्रयत्नपूर्वक लिखा गया इतिहास है जिसमें किसी व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित विवरण मिलता है। जीवनी किसी व्यक्ति के द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में लिखी जाती है। जीवनी किसी भूतकाल से संबंधित किसी महान् व्यक्ति या समकालीन श्रेष्ठ व्यक्ति से जुड़ी हुई हो सकती है। लेखक जीवनी लिखते समय सम्बन्धित व्यक्ति के मित्रों, सगे-संबंधियों पड़ोसियों आदि की सहायता ले सकता है। लेखक सम्बन्धित व्यक्ति की कमियों को उजागर कर सकता है लेकिन उसके जीवन प्रसंग से खिलवाड़ करके उसके चरित्र को धूमिल नहीं कर सकता।

225. शोध साहित्य से क्या तात्पर्य है?

उत्तर शोध साहित्य के मूल में किसी एक व्यक्ति या विषय को लेकर अनुसंधात्मक ढंग से उसकी समग्र एवं सर्वांगीण समीक्षा प्रव ति ही काम किया करती है। इस प्रकार के साहित्य विकास के क्षेत्र में उच्चतम मान स्थापित करने की प्रव ति के

कारण ही प्रमुखतः हुआ है। किसी विशेष व्यक्ति या विषय के संबंध में अपनी सर्वज्ञता का महत्व प्रतिपादित करने की प्रव ति भी शोध साहित्य के मूल में विद्यमान है। इससे साहित्य एवं साहित्यकारों के संबंध में नव्य क्षितिजों का उद्घाटन भी हो जाता है। इन दिनों इस विधा में विभिन्न विश्वविद्यालयों में बहुत कार्य हो रहा है।

226. हिन्दी के प्रारंम्भिक जीवनी साहित्य का परिचय दीजिए।

उत्तर हिंदी साहित्य में जीवनी साहित्य की परंपरा भक्तिकाल से मिलती है। नाभादास द्वारा रचित 'भक्तमाल', गोसाई गोकुलनाथ विरचित 'चौरासी वैष्णव की वार्ता' तथा 'दौ सौ वैष्णव की वार्ता' इस दिशा में प्रथम प्रयास कहे जा सकते हैं। इनमें संख्याओं के अनुरूप ही अनेक वैष्णव भक्तों के चरित्र अंकित किए गए हैं। इसके पश्चात् बेणी माधव द्वारा रचित 'गोसाई चरित' नामक जीवनी उपलब्ध होती है। अकबर काल में एक कवि बनारसी दास ने 'अर्द्धकथानक' नाम से अपनी आत्मकथा को भी पद्यबद्ध किया था। इन्हें विशुद्ध जीवनी साहित्य के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता। इसे मात्र ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

227. संस्मरण और रेखाचित्र में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर संस्मरण प्रायः प्रसिद्ध व्यक्तियों के ही लिखे होते हैं और इनके लेखक भी प्रायः प्रसिद्ध व्यक्ति ही होते हैं। जबकि रेखाचित्र के लिए इस प्रकार का कोई बंधन नहीं होता। इनके प्रधान से प्रधान पात्र भी साधारण होते हैं। संस्मरण का संबंध देश, काल एवं पात्र तीनों से होता है जबकि रेखाचित्र का संबंध देश और काल से न होकर केवल पात्र से ही होता है। संस्मरण में रेखाचित्र की तुलना में आत्मनिष्ठता अधिक होती है। संस्मरण लेखक की कोई निश्चित शैली नहीं होती। वह किसी भी शैली को अपना सकता है। रेखाचित्रकार को शैली सम्बन्धी स्वतन्त्रता नहीं, उसे सदैव चित्रात्मक शैली ही अपनानी पड़ती है। चित्रात्मक शैली के अभाव में रेखाचित्र का स जन संभव नहीं है।

228. आत्मकथा किसे कहते हैं?

उत्तर हिन्दी की अन्य गद्य विधाओं के समान इसका उद्भव भी आधुनिक काल में हुआ। इसमें लेखक भाषा के माध्यम से अपने जीवन को स्वयं प्रस्तुत करता है। वह स्मरण के आधार पर जीवन के आरम्भ से लेकर लेखन कार्य के क्षणों तक को संस्मरणात्मक रूप में चित्रित करता है। उसमें यथार्थ सदा विद्यमान रहता है। लेखक अपने जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का ही वर्णन नहीं करता अपितु अनेक प्रभावों का वर्णन भी करता है। महापुरुषों द्वारा लिखी गई आत्मकथाएं पाठकों का मार्गदर्शन करती हैं तथा प्रेरणा देती हैं। जीवनी और आत्मकथा में यही अंतर है कि जीवनी में लेखक किसी अन्य पुरुष की कथा लिखता है और आत्मकथा में स्वयं अपनी कहता है।

229. हिंदी एकांकी के उद्भव का परिचय दीजिए।

उत्तर हिन्दी में एकांकी रचना का कार्य सन् 1930 के बाद आरम्भ हुआ था। इनका आधार और आकार प्रकार पश्चिमी स्वरूप के अनुसार था। डॉ. नगेन्द्र ने माना है कि भारतेंदु युग के बाद यह कार्य आरम्भ हो गया था। महेश चन्द्र प्रसाद, देवी प्रसाद गुप्त, रूप नारायण पाण्डेय, बद्रीनाथ भट्ट, पांडेय बेचन शर्मा उग्र और जयशंकर प्रसाद ने एक-एक एकांकी सम्बन्धी रचना की थी, लेकिन इस विधा का वास्तविक लेखन डॉ. राम कुमार वर्मा ने किया। डॉ० राम कुमार वर्मा को हिंदी एकांकी लेखन का जनक माना जाता है। उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट, विष्णु प्रभाकर, जगदीश चन्द्र माथुर आदि अनेक मुख्य एकांकीकार हैं।

230. भारतीय भाषा में पत्रकारिता का प्रारम्भ कब हुआ?

उत्तर सन् 1816 तक जितने भी भारतीय पत्र प्रकाशित हुए वे सब अंग्रेजी में थे, लेकिन सन् 1818 में पहली बार भारतीय भाषा में मासिक पत्र प्रकाशित हुआ था, जिसका नाम था 'दिग्दर्शन'। इसे ईसाई धर्म के प्रचार के लिए छापा गया था, बाद में राजा राम मोहन राय के प्रभाव से बंगला गजट नामक पत्रिका छपी थी, जिसमें स्वतन्त्र और उदार विचारों को प्रकट किया गया था। भारतीय पत्रकारिता में नए अध्याय को जोड़ने का वास्तविक, श्रेय राजा मोहन राय को ही है, उन्होंने बंगाल में संवाद 'कौमुदी' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया था, उन्होंने ईसाई धर्म का विरोध करने के लिए इस पत्र को आरम्भ करवाया था, लेकिन अंग्रेज सरकार की विरोधी नीतियों के कारण यह बहुत देर तक चल नहीं पाया था।

231. हिन्दी के प्रारम्भिक समाचार पत्रों का वर्णन कीजिए।

उत्तर हिन्दी में प्रकाशित पहला साप्ताहिक पत्र 'उदण्ड मार्तण्ड' है। जिसे युगल राज शुक्ल ने 30 मई, 1826 को कलकत्ता से प्रकाशित किया। सन् 1845 में राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द ने 'बनारस अखबार' नामक साप्ताहिक पत्र आरम्भ किया था। लगभग इसी समय राजा राममोहन राय ने हिंदी में 'बंगदूत' का आरम्भ किया था। 'मार्तण्ड', 'मालवा', जगदीप भास्कर, सुधाकर, 'सामदण्ड मार्तण्ड', 'बुद्धि प्रकाश', 'शिमला अखबार' आदि ऐसी पत्र-पत्रिकाएं हैं जो सन् 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम से पहले भारतीय जनमानस में अपना स्थान बना चुके थे। भारतेंदु की पत्रिका 'कवि वचन सुधा' का प्रकाशन सन् 1867 को हुआ था। सन् 1854 मे कलकत्ता से हिन्दी का पहला दैनिक समाचार पत्र 'समाचार सुधा दर्पण' प्रकाशित हुआ था।

232. स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में प्रकाशित होने वाले दैनिक पत्रों के नाम लिखिए।

उत्तर जहां 19वीं शताब्दी के अंत तक हिन्दी में केवल तीन दैनिक पत्र प्रकाशित होते थे, वहां स्वाधीनता के बाद इनकी संख्या हजारों तक पहुंच गई है। नवभारत टाइम्स, जागरण, स्वतन्त्र भारत, अमर उजाला, वीर प्रताप, वीर अर्जुन, पंजाब केसरी, दैनिक ट्रिब्यून, हिन्दुस्तान, जनसत्ता, दैनिक भास्कर, नई दुनिया, राजस्थान पत्रिका आदि हजारों समाचार पत्र हैं, जिनका यहां नामोल्लेख करना असंभव सा है।

233. साप्ताहिक पत्रों का नामोल्लेख कीजिए जो स्वतन्त्रता के बाद छपने लगे थे।

उत्तर हिन्दी में साप्ताहिक पत्रिकाओं का आरम्भ 'उदण्ड-मार्तण्ड' से हुआ था। तब से अब तक अनेक महान् पत्रकारों ने हिन्दी साहित्य को श्रेष्ठ पत्रिकाएं प्रदान की हैं। स्वतन्त्रता के बाद की कुछ प्रमुख पत्रिकाएं हैं - धर्म युग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिनमान, रविवार आदि हैं। डॉ. धर्मवीर भारती के सम्पादन में छपने वाले 'धर्मयुग' ने जो प्रतिष्ठा अर्जित की थी, वह हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में अपूर्व है।

234. गद्य गीत किसे कहते हैं?

उत्तर गद्य में काव्य जैसा प्रभाव उत्पन्न करके भावों को अभिव्यक्त करने की प्रव ति ने इस विधा को जन्म दिया। भावावेश के सुख - दुखात्मक क्षणों में मानव की वाणी में काव्यमयता का संचार होने लगता है। यदि इसमें ताल लय एवं संगीत का भी समन्वय हो जाता है, तब तो यह 'गीति काव्य' के नाम से अभिहित किया जाता है और यदि भावावेश की यह अभिव्यक्ति तरलायित गद्य में ही रहती है तो इसे गद्य गीत या गद्य काव्य के नाम से अभिहित किया जाता है।

235. हिन्दी में रचित बाल किशोर साहित्य का परिचय दीजिए।

उत्तर हिन्दी में बाल किशोर साहित्य रचने की सामान्य प्रव ति स्वतन्त्रता पूर्व युग में भी दिखाई देती है। तब अक्सर इस तरह की पत्र-पत्रिकाओं के लिए ही ऐसा साहित्य लिखा जाता था। 'बाल सखा', 'सुमन सौरभ', 'पराग', 'चंदामामा', 'चंपक' आदि पत्रिकाओं ने इस रूचि को निश्चय ही विशेष विकास प्रदान किया था। पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद साक्षरता का अधिकाधिक प्रचार करने और हो जाने से इस प्रकार की स जनात्मक प्रक्रिया को विशेष महत्व मिला है। आज इस प्रकार का साहित्य तात्विक एवं मनोवैज्ञानिक द ष्टि से विशेष महत्व प्राप्त करता जा रहा है और इसकी रचना भी खूब हो रही है।